[illegible]

[illegible]

श्रीजिनवाण्यैनमः ।

भास्कर

ऐतिहासिकपत्र ।

भाग १] जुलाई से सेप्टेम्बर १८१२ आषाढ़ से भाद्र वीर नि० २४३८ [किरण १

मङ्गलाचरण ।

जयति मुदमम्लभव्य-पाथोरुहाणां, हरति तिमिर-राशिं या प्रभा भानवीव ।
कृतनिखिलपदार्थद्योतना भारतीद्धा, वितरतु धुतदोषा साऽर्हती भारती व." ॥ १ ॥

"वाणी कर्मकृपाणी द्रोणी संसारजलधिसन्तरणे ।
वेणीजितघनमाला, जिनवदनाम्भोजभासुरा जीयात्" ॥ २ ॥

भावार्थ—कमलरूपी भविकोंके मनमें आनन्द उपजाने वाली, सूर्य्यसम्बन्धिनी प्रभा कीसी अन्धकारको नष्ट करनेवाली तथा सभी सांसारिक और पारमार्थिक पदार्थोंको समुद्भासित करनेवाली ज्योतिर्मय सरस्वती आप (पाठकों)की रक्षा करें ॥ १ ॥ (श्रीअमितगत्याचार्य्य)

भावार्थ—ज्ञानावरणादि अष्ट[illegible]को नष्ट करनेके लिये कृपाण कीसी, संसार-समुद्रसे पार होनेके लिये नौका कीसी और अपनी वेणीसे मेघसमूहको भी जीतनेवाली श्रीजिनेन्द्र भगवानके मुखकमलकी प्रकाशमयज्योति श्रीजिनवाणी सदा जय हो ॥ २ ॥ (महाकवि हरिश्चन्द्र)

भारतीस्तवन।

भारती माता तुम्ही त्रिभुवन-प्रथा-संचालिका।
तीन लोकोंकी तुम्ही गरिमा तुम्ही गुणमालिका। १।
है सदा सत्कीर्तियां निर्भर सवोंकी आपपर।
हो रहीं बातें सुसम्पादित सवोंकी आपपर। २।
हो यहां जिनधर्म्मकी प्राचीनताकी जागृति।
जैन-साहित्यादिकोषोंकी समुन्नति जागृति। ३।
जैनधर्म्मीकी अविद्याका सदा निर्मूल हो।
कायमनकर्म्मोंसे विद्याको व्यसनता मूल हो। ४।
था समुन्नत देश भारतवर्ष फिर हो उस तरह।
मान, मर्यादा, दया, शुभ-सन्तति हो उसतरह। ५।
इन समुन्नतियोंके साधनको बतानेके लिये।
जैन-सिद्धान्तोंकी बातोंको दिखानेके लिये। ६।
है कलेवर "जैनभास्कर" का ये प्रथमोदय भी है।
आपके मृदु-जलज-हस्तोंमें समर्प्पित सविध है। ७।
क्रूर कुत्सित कायरोंको चालचल छाये नहीं।
विघ्न बाधाएँ इसे मनसे भी अपनाये नहीं। ८।
ज्ञानमय-किरणोंकी पूंजीको सदा बढ़ती रहे।
पत्र-गुण-ग्राहीकी चेष्टा चौगुनी चढ़ती रहे। ९।
आपका यह कार्य्य है तुम स्वामिनी इस कार्य्यकी।
सर्वथा रक्षा करो उन्नति करो इस कार्य्यकी। १०।

समर्पण

प्रिय धर्म्म-धौरेय-विज्ञ-पाठक-महोदयो !

श्री जिनवाणीके कृपा-कादम्बसे "श्रीजैन-सिद्धान्त-भवन"—संरक्षित प्राचीन धार्म्मिक-महत्वका कुछ अंश उपहार-रूपसे लेकर आज हम आपलोगोंकी सेवामें उपस्थित हुए हैं। महोदयो ! यह वही उपहार है जिसके अस्तित्वका दृढ़करनाही हमारे पूर्वाचार्य्यों तथा महर्षियोंने अपना पारमार्थिक मुख्योद्देश्य समझ रक्खा था, यह वही उपहार है जिसको कारण-विशेषतया उच्छृङ्खलतासे औरोंकी समझमें जैन-धर्मका यथार्थरूप सन्देह-दोलारूढ़ हो रहाहै और यह वही उपहार है जो अब तक अज्ञानान्धकारमें रह कर भी अन्यान्य विद्वानोंके दृष्टिगत होनेसे ही उनकी चित्त-पटलपर अपने पुरातन-प्रभावका सहसा चित्र खींच देता है।

इस उपहारका नाम "भास्कर" है। प्राचीन तथा आधुनिक कवियोंने यद्यपि चन्द्रमा ही को चन्द्रिका को जगदाह्लादिनी मान रक्खा है तौभी हमारे इस "भास्कर" की किरणोंकी प्रचण्डता केवल अज्ञान ही को सुझाने, सन्तप्त करने और हटानेके लिये नहीं है किन्तु विज्ञोंकी धार्म्मिक-प्रतिभा-पद्मको सदा प्रस्फुटित करने और संसारमें प्रकटित तथा गुप्त प्राचीन पदार्थोंको दिगदिगन्त तक समुज्ज्वलित करने लिये है। इस प्रथमोदित-बाल-"भास्कर" की किरणें हमारे विज्ञ-पाठकोंके सन्देह-समूह-शीतका अशेष परिशोषण और उनका मुकुलित अपनी प्राचीनताका गौरव-विचार विकसित करें ऐसी चेष्टा हमने यथासाध्य इस छोटेसे उपहारमें अवश्य की है किन्तु इसका फल सुविज्ञ पाठकोंके विचार पर निर्भर है। यद्यपि आजकल प्रायः सबकोई नव्य-पदार्थाभिलाषी होगये हैं किन्तु नवीनताकी अत्यधिकतासे तथा अल्पज्ञव्यक्ति-द्वारा मनमानी कपोल-कल्पनासे विद्वानोंकी दृष्टि साम्प्रतिक नयी वस्तुओंसे एकदम मुड़ी हुई है इस लिये नये उपहारोंसे सबोंको नाक सिकुड़ाते हुए देख कर हमने प्राचीनाचार्य्य-रचितही उपहारको भेंट करना एक धार्म्मिक-कर्तव्य समझा है।

यद्यपि अनेक उपन्यास-प्रेमी और अद्भुत-घटना-संयोजक व्यक्ति इस उपहारके ऐतिहासिक विषयको नीरस समझकर इससे अनिच्छा प्रकट करेंगे किन्तु हमने उन्हीं सुविज्ञ समाजहितैषी और धर्महितैषी महोदयोंका ध्यान आकर्षित करनेके लिये इस विषयको छेड़ा है जिनके मस्तिष्कमें पहलेहीसे आरोपित-समाजोपकार बीज अब अङ्कुरितोन्मुख हो रहा है। सुविज्ञो! इस पत्रके उद्देश्यसे तो आप सबोंको मालूमही होगा कि यह एक बड़ा गहन तथा जटिल विषय है और जबकि आज तक हमने किसी एक साधारण पत्रका भी सम्पादन नहीं किया है और न मेरा यह काम ही है किन्तु श्रीजिनवाणी महारानीके दया-दाक्षिण्य, जैन-समाजकी वर्त्तमानहीनावस्था और प्राचीन इतिहासके अभावहीने इस महत्कार्य्यके सम्पादन-का दुर्वहनीय भार उठानेको हमे सहसा प्रोत्साहित किया है। इस उपहारका संग्रह एक महती-संस्थासे हमने किया है इस लिये यदि हमारी अबहुदर्शितासे संग्रह करनेमें कुछ त्रुटि रह गयी हो तो आप सब वह हमारी त्रुटि समझें नकि इस संस्थाकी। क्योंकि सांसारिक मनुष्यकी मनुष्यताका लक्षण 'भूल' है अतः मनुष्य मात्रको अनवधानताका विस्तृत-क्षेत्र समझ कर इसकी त्रुटिकी ओर विशेष ध्यान न देकर आपलोग अपनी गुण-ग्राहकता ही का परिचय देंगे। यह कार्य्य एक बड़े राजा महाराज तथा प्राञ्जल विद्वान् का है तौभी यदि मेरा उत्साह और श्रीजिनवाणीकी ऐसीही अपरिमेय अनुकम्पा बनी रही तो हम इसको सर्वोत्तम बनानेका सदा अध्यवसाय करते रहेंगे। अन्तमें हम उसी भव्य-भारतीके पाद-पाथोजमें इस उपहारको सविनय समर्पित कर आशा करते हैं कि हमारी सम्पादन-शैली तथा कार्य्य-तत्परताकी परिशुद्धि उत्तरोत्तर हुआ करेगी।

समर्प्पयिता।

सम्पादक

पत्रका उद्देश्य और सम्पादकीय वक्तव्य ।

प्यारे सज्जनो ! जिस देशमें समाचारपत्रोंकी बहुलता और उसके पढ़नेकी शैली परिष्कृत रहती है वही देश आजकल समुन्नत समझा जाता है। किन्तु लोगोंका यह विचार आधुनिक देशोन्नतिका कारण मानना भ्रमसा जान पड़ता है क्योंकि पत्रके प्रथमसञ्चालकने पत्रका कुछ औरही उद्देश्य निश्चित कर रक्खा था और आजकलके पत्र अपने मनमाने उद्देश्य निश्चित कर अलगही अपनी अपनी डफली बजाते फिरते हैं। पत्र वह चीज है जिससे सभी देशोंकी भाषाओंका साहित्य सर्वाङ्ग-सुन्दर तथा परिपूर्ण हो और पत्र वह चीज है जिससे देशोंकी भाषा और विद्वत्ताका गौरव मालूम पड़े। यद्यपि इस समय कोई देश, प्रान्त, नगर तथा ग्राम ऐसा नहीं है जहांके लोग पत्र-प्रवाहकी उद्वेलित-लहरोंसे परिप्लावित न हों किन्तु इने गिने दो ही चार पत्र ऐसे हैं जिनसे सामाजिक उन्नतिकी सम्भावना कुछ की जा सकती है। वास्तविकमें पत्रोंके मुख्योद्देश्य येही हैं कि प्राचीन पूर्व-पुरुषोपार्ज्जित ऐतिहासिक सामग्रियां और उनकी कीर्त्ति जो अन्धकारमें छिपी हुई हैं उनको प्रकाशित कर समाजको उनके अनुसार चलने और अपने अपने सामाजिक अभिमान करनेकी सर्वोत्कृष्ट शिक्षा दें किन्तु आजकल इसी सर्वमान्य विषयकी अवहेलना करनेसे सभी सामाजिक-बन्धन तथा धार्म्मिक-बन्धन जीर्ण शीर्ण हो शिथिलताको प्राप्त होरहे हैं। विशेष कर जैन-समाजको इतिहासके विषयमें सबसे पीछा पड़े देख कर हम लोगोंने "श्रीजैन-सिद्धान्त-भवन"-द्वारा संग्रहीत जैनइतिहास, शिलालेख, पट्टावली और चित्र आदि प्राचीनता-प्रदर्शक चीजोंका संग्रह कर एक पत्र निकालनेका विचार किया।

वर्त्तमान समयमें जितने उन्नतियोंके साधन हैं उनमें ऐतिहास वार्तोंको जानना, पूर्वाचार्य्य, महर्षि और अपने पूर्व-पुरुषोंकी कीर्त्तियोंको जानना भी उन साधनोंका एक मुख्य अंग है। यदि ऐसी उत्कृष्ट ऐतिहासिक-सामग्रियां हम लोगोंके पास न होतीं तो इस आर्य्यभूमि-भारतके बड़े बड़े विद्या-धुरन्धर और वीरपुरुषोंके चरित्रोंका जानना दुर्लभ हो जाता और हम लोग कैसे जानते कि

समयके फेरसे ऐसीही उन्नति और अवनति हो सकती है। किसी समय यह जैन-धर्म भी इस सारे भारतवर्षका धर्म था और किसी समय जैनाचार्यों द्वारा ही इसके साहित्यकोशकी बड़ी भारी पूर्त्ति हुई है। हम बड़े गौरवके साथ कह सकते हैं कि जैसी विपत्तियां (१) इस जैनधर्मपर आई हैं यदि और किसी धर्मपर ऐसी आतीं तो शायद वह धर्म संसारमें अपना अस्तित्व ही न रख सकता।

परन्तु हमारे पूर्वाचार्य्योंने अपने बुद्धि-बल, विद्या-बल और प्रभावसे उन विपत्तियोंका यथासाध्य निराकरण किया और यह उसीका फल है कि आज तक भी जैनधर्मावलम्बियोंको अपने पूर्वऋषियों द्वारा कथितअलङ्कार, साहित्य, न्याय, व्याकरण, ज्योतिष और वैद्यक आदि सभी ग्रन्थोंको सर्वोच्च और सर्वश्रेष्ठ कहनेका गौरव प्राप्त है इसीलिये हम कहते हैं कि जब तक हम लोग अपनी परम्पराको जान कर उन महर्षियोंका यथा-नुसरण न करेंगे तब तक हम लोगोंकी उन्नति नहीं हो सकती। देखिये इस समय भारतवर्ष तथा अन्यान्य देशोंमें यह बात प्रसिद्ध हो रही है कि जैनधर्म बौद्ध-धर्मकी एक शाखा मात्र है। भला कहिये तो सही इस भ्रान्तिका क्या कारण है? यदि विचार कर देखा जाय तो मालूम होगा कि इसके कारण केवल दो हैं। प्रथम समाजने पूर्वाचार्य्योंकी कीर्त्तियोंकी रक्षा नहीं की कि हमारे पूर्वज हमारे लिये कैसे कैसे अमूल्य रत्न छोड़ गये हैं और दूसरा यह है कि हम लोग इस बातपर दृष्टि ही नहीं देते कि आधुनिक समयमें दूसरे लोग जैनधर्मके विषयमें क्या कह रहे हैं तथा उनके भ्रान्त प्रश्नोंके उत्तरके लिये हमारे पास कौनसी प्रचीन सामग्री है। यदि हम लोग उन सामग्रियोंकी ओर एक बार भूल कर भी दृष्टि-पात करते तो आज यह दुस्सह कलङ्क हम लोगोंके माथे नहीं मढ़ा जाता। जिस मतके खंडनके लिये हमारे परमपूज्य विद्वच्छिरोमणि भट्टाकलङ्कदेवने छः महीनों तक अविरल परिश्रम किया था सो आज यह जैनधर्म उसी धर्मकी शाखा बतलायी जाय? कहिये भाइयो! यह जैनियोंके लिये थोड़ी लज्जाकी बात है?

भाइयो! आज भी उन आचार्य्योंके बनाये लाखों ग्रन्थ मौजूद हैं। यदि हम अब भी सचेत हो जायँ और उनकी रक्षा करें तो हम लोगोंके पास बहुत कुछ सामग्री है। यह भी हमी लोगोंकी अज्ञानताका कारण है कि

नोट (१) यदि होसकेगा तो हम इसका पूर्ण इत्तान्त अगले अंकमें देंगे।

दियाजाय, उनका पूरा [illegible] लिखा जाय जिसमें बची बचायी चीजोंका अब अधिक अधःपतन नहीं होने पावे और हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थोंके मंगला-चरण, तथा प्रशस्ति दी जायं कि जिससे लोग फेर बदल कर आचार्यों और इष्टदेवोंका नाम हटाकर अपना कर प्रसिद्ध नहीं करने पावें। दूसरा उद्देश्य यह है कि अभी बहुत से जैन-ग्रन्थ ऐसे हैं जिनका पता ठिकाना सर्व-साधारण-को मालूम नहीं है; उनके नाम तथा रचयिताके नाम प्रकाशित किये जायँ कि जैन-समाजको अधिक लाभ पहुंचे। इस पत्रका एक यह भी उद्देश्य है कि "भवन" में जैनधर्मके शिलालेख, ताम्रपत्र, चित्र और सिक्के आदि अलभ्य सामग्रियोंका संग्रह तथा रक्षाकी जाय। आशा है कि इससे भी सर्व-साधारणको अन्यसामग्रियोंकी अपेक्षा कम लाभ नहीं होगा। इसका अनुभव इतिहास-लेखकोंको ही होगा कि इनसे उन्हें कितना लाभ पहुंचा है। इनसे प्राचीन समयका हाल तथा सम्वत् आदिका निर्णय ठीक ठीक हो जाता है। यदि सिक्के, शिलालेख और चित्र आदि प्राचीन सामग्रियां नहीं होतीं तो आज भारतवर्षकी प्राचीनावस्थाका पूर्ण-वृत्तान्त एकदम अन्धकार ही में छिपा रहता। इतिहासका जीर्णोद्धार मानो इन्हीं चीजों द्वारा हुआ है। इन्हीं सब बातोंको विचार कर विद्वानोंकी बहुसम्मतिसे यह पत्र निकाला जाता है, जिससे सबको लाभ पहुंचे और वे अपनी प्राचीनावस्थाको स्मरण कर अपना कर्त्तव्य-पालन करें और समाजकी उन्नति करें।

महोदयो! ऐसे पत्रके सम्पादनका भार हमसे अल्पज्ञोंके लिये यद्यपि दुस्सह है तथापि हम लोगोंने अपने पूर्वमहर्षियों ही के प्रतिभा-बल तथा प्रसाद-बलसे इसके सम्पादन करनेका साहस किया है। क्योंकि जब बड़े बड़े आचार्योंने अपने अमोघ-विद्या-कौशलसे अनेक गौरव-पूर्ण ग्रन्थोंको भी रच रच कर अन्तमें अपनी त्रुतिकी सम्भावनाकी क्षमा मांगी है तो हमें तो उन की प्रथाका पीछा करना परमावश्यक है। हम लोग इस बातको तो बड़े अभिमानके साथ कह सकते हैं कि इस पत्रिकामें जितनी बातें तथा जितने विषय सन्नियोजित होंगे वे प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्वानों, शिला-लेखों तथा पूर्वाचार्य-कृत ग्रन्थोंके अकाट्य-प्रमाणोंसे परिप्लावित होंगे इसलिये यदि कहीं विद्वानोंको सन्देह हो वे हमसे पूछकर प्रमाणों द्वारा अपना सन्देह-निवारण करसकते हैं। सच बात तो यह है कि जैनियोंके ऐतिहासिक विषयका उल्लेख करना बड़ा कठिन है क्योंकि अन्य धर्मावलम्बियोंने अपने इतिहासकी सामग्री बहुत दिनोंसे

ठीक कर रक्खी है और जब बहुतसे बहुदर्शी विद्वानोंने जैनधर्म्म बौद्धधर्म्मकी शाखा समझ कर जैनइतिहास तथा सिद्धान्त बौद्ध-धर्म्मके इतिहासों और सिद्धान्तोंके अन्तर्गत मान रक्खे हैं तब अजैन विद्वानोंके मस्तिष्कमें सुदृढ़ प्रौढ़-रीतिसे जमी हुई मीमांसाको प्रक्षालित करना ज़रा जटिल विषय है। किन्तु हम लोग समझते हैं कि अपने पूर्व-महर्षियोंही की कृपासे तथा उनके पाद-परागके स्पर्शानुभवसे यह कार्य्य सुसम्पादित होगा। यदि कहीं प्रमाद-वश त्रुटि रह गयी हो तो विद्वद्गण बाल्य-क्रीड़ावत् हमलोगोंकी भूलोंकी ओर ध्यान न देकर इसे अनुमोदन करते हुए उन त्रुटियोंकी सूचना हमें देकर उत्साह बढ़ायेंगे।

पत्रका मुख्योद्देश्य

इस पत्रका मुख्योद्देश्य यह होगा कि इसमें ऐतिहासिक विषयकी चर्चा तथा "भवन"में सुरक्षित-शास्त्रोंके परिचयके सिवाय और पत्रोंके से राजनैतिक और सामाजिक विषयका उल्लेख बिल्कुल ही नहीं रहेगा और यहभी इसका एक मुख्योद्देश्य रहेगा कि किसी समाचारपत्रके विषयोंकी आलोचना नहीं करना तथा उनके निस्सार और निष्प्रयोजन आक्षेपोंकी ओर दृष्टि-पात भी नहीं करना किन्तु सत्य-सिद्धान्त और परिपुष्ट-प्रमाणके प्रकाशित करनेमें यदि किसीके मन्तव्यों तथा सिद्धान्तोंसे विरोध पड़ता हो तो यह "भास्कर" उसकी ओर कुछ ध्यान नहीं देकर "शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि" इस नीति वाक्यको स्मरण करता हुआ अपनेको 'उचितवक्ता' कहलानेकी सदा चेष्टा करेगा क्योंकि हमारे आचार्य्योंने अपने धार्म्मिक-विचार और सैद्धान्तिक-बातों-को प्रकट करनेमें कभी किसीकी परवाह नहीं की है। परन्तु "भास्कर"के ऐतिहासिक-विषयके सच्चे जिज्ञासु और मर्म्मज्ञ विद्वद्गणोंको यदि इसके विषय-लेखोंमें किसी प्रकार की शङ्का होगी तो वे जैसे चाहेंगे; पत्रद्वारा, अन्य समाचारपत्र-द्वारा अथवा भास्करही द्वारा हम आचार्य्योंके प्रख्यात-प्रमाणों और प्राचीनतर-शहादतों आदिसे उनकी शङ्का-सन्ततिको दूर करनेका उद्योग करेंगे। हमें आशा है कि इस उद्देश्यको सभी विद्वज्जन सहर्ष अनुमोदन करेंगे।

रक्षा करनी मनको नहीं भाती इस लिये नवीन कीर्त्तियां ही करनी ठीक जंची है। भला यह तो कहिये जब आपने बड़े बड़े महर्षियों, आचार्यों तथा अपने पूर्वजोंकी कीर्त्तियां अपनी असावधानतासे मिटा दीं तो आपकी भी तो सन्तान आपही का अनुकरण करेगी। तब भला कहिये आपकी नयी कीर्त्ति कितने दिनके लिये है। इसके अतिरिक्त तनिक विपक्ष-भावसे विचारिये तो कि विशेष लाभ आपकी नयी कीर्त्तिमें है या पुरानी कीर्त्तियोंमें? प्राचीन सामग्रियोंके संग्रह करनेसे हम लोगोंके महान् पुरुषोंका नाम सदा वर्त्तमान रहेगा और उनकी कीर्त्तियां देखकर मनमें उत्साह-तरङ्ग-वलियां अविरल तरङ्गित हुआ करेंगी, इससे हम लोगोंको यह बार बार स्मरण रहेगा कि हम किसकी सन्तान हैं और हमारे पूर्वज कैसे थे। सम्भव है उनके सदाचरणोंका स्मरण और अनुसरण करते करते हम लोग भी अपने पूर्वगौरवको प्राप्त करलें तथा हम लोगोंकी वर्त्तमान हीनावस्था स्वप्नसी हो जाय। किन्तु इस अवनता-वस्थामें अपने पूर्वजोंको तथा उनकी कीर्त्तियोंको भूल बैठें और अपना नाम करना चाहें तो हमें दृढ़ विश्वास है कि हम लोगोंके नाम, यश और धर्म्म कदापि विद्यमान नहीं रह सकते वरञ्च हम लोग दिन दिन नीचेकी ओर गिरते जायंगे। इन्हीं बातोंको सोच विचार कर स्वर्गीय बाबू देवकुमारजीने अपने पूर्वजोंकी कीर्त्तियोंकी ही रक्षा करनी अपना कर्त्तव्य समझा था इसी लिये जैनधर्म्म-सम्बन्धी प्राचीन सामग्रियोंका सावधानता-पूर्वक संग्रह किये जानेके लिये इस "श्रीजैन-सिद्धान्त-भवन" को स्थापित किया और इसीको सूचित करनेके लिये हम लोगोंने भी आप विज्ञ भाइयोंके सामने उपस्थित होना उचित समझा है। पाश्चात्य विद्वानों और जर्मन विद्वानोंकी जितनी प्रशंसाकी जाय थोड़ी है। क्योंकि जैनधर्म्म उनका धर्म्म नहीं, प्राचीन कीर्त्तियां उनके पूर्वजोंकी कीर्त्ति नहीं तौभी करोड़ों रुपये व्यय करके उन लोगोंने हमारे जैन-मतकी सर्व-प्राचीनताका पता लगाया है और बल्कि आज हम लोग उन्हींसे धर्म्मकी शिक्षा पाते हैं। अर्थात् इन लोगोंने हम लोगोंकी बहुत सी प्राचीन वस्तुओंकी खोजकी है। इस लिये ये लोग हम सबोंके आदर्श योग्य हैं।

सब भाइयोंकी राय हुई कि कोई ऐसा उपाय किया जाय जिससे सर्व साधारण भाइयोंको भी इस "भवन" से लाभ पहुंचे। पीछे निश्चित किये जाने पर यही ठीक जंचा कि एक ऐतिहासिक पत्र निकाला जाय जिसका मुख्य उद्देश्य यह होगा कि इस पत्रमें "भवन" की संग्रहीत वस्तुओंका विवरण

हमारे धर्म्मके लाखों ग्रन्थ जिनसे जैनधर्म्मकी विद्याका पता लगता था उनमें से बहुत कुछ नष्टहो गयें तथा जो बचे बचाये हैं भी तो उनके खोजने-वाले, उनकी भलीभांति रक्षा करनेवाले और उनके विषयको समझनेवाले आज कोई नहीं देख पड़ते। जैसे जैसे उनका नाश हुआ जाता है वैसे वैसे हमारे ज्ञान-भण्डारमें भी कमी हो रही है। दूसरा यह कि हम लोग अपनी करनी से आप अज्ञानान्धकारमें निमग्न होते जाते हैं। अभी तक जो कुछ बचा है हम लोगोंके लिये बहुत है। उन आचार्य्योंके लेखों तथा बची बचायी सामग्रियोंसे संसारपर भली भांति यह बात विदित होती है कि प्राचीन समयमें जैनधर्म्म क्या था और इसका महत्व कहां तक फैला हुआ था किन्तु खेदका विषय है कि आज हम लोग अपनी आंखों देख रहे हैं कि कैसे महत्व-पूर्ण तथा प्रभाव-शाली मन्दिर, कीर्त्तिस्तम्भ और शिलालेख आदि जो एक समय बड़े आदरकी दृष्टिसे देखे जाते थे तथा जिनकी प्रतिष्ठा और रक्षासे जैनधर्म्मकी प्रतिष्ठा तथा रक्षा थी, वही सब प्राचीन वस्तुएं आज हीनावस्थाको प्राप्त होरही हैं। हम लोगोंकी अनवधानतासे अन्यधर्म्मावलम्बियोंने हम लोगोंके आचार्य्योंके बनाये हुए अमूल्य और अलभ्य ग्रन्थोंको इधर उधर उलट फेर कर अपना बना लिया और बनाते जाते हैं बल्कि आचार्य्योंके नाम मिटाकर उनकी कीर्त्ति विलुप्तकर अपने नाम की ध्वजा संसारमें फैला रहे हैं। इसमें दूसरों का दोषही क्या है जब हम अपनी सम्पत्ति अपनी नहीं समझते, उसकी रक्षा नहीं करते तथा प्रगाढ़ निन्द्रामें खर्राटे ले रहे हैं तब लुटेरे हमारा सर्वस्व लूट ले जायं, हमे दरिद्र बना छोड़ें इसमें उनका दोषही क्या है? देखिये एक दृष्टान्त हम आपके सामने उपस्थित करते हैं। महाराज अमोघवर्षकी बनाई हुई "प्रश्नोत्तररत्न-माला" के मंगलाचरण और प्रशस्तिके श्लोक बदल कर भिन्न भिन्न मतावलम्बियोंने उसे अपना लिया।

इस समय जैन-समाजकी दशा कुछ और ही तरहकी दीख पड़ती है। सब लोग यही चाहते हैं कि ऐसा कोई काम करें जिसमें मेरा नाम मेरे बाद भी वर्त्तमान रहे। वह समझते हैं कि प्राचीन सामग्रियोंकी रक्षा करनी व्यर्थ है क्योंकि उनमें से तो कुछ सड़ गल गयीं और जो बची बचाई टूटी फूटी मिलती भी हैं तो वे किसी कामकी नहीं। यह विचार हमारे पढ़े लिखे भाइयोंका है और जो पढ़े लिखे नहीं हैं उनको भला इन प्राचीन वस्तुओंका पताही क्यों कर लगे। अर्थात् किसीको पुरानी चीजोंकी



५

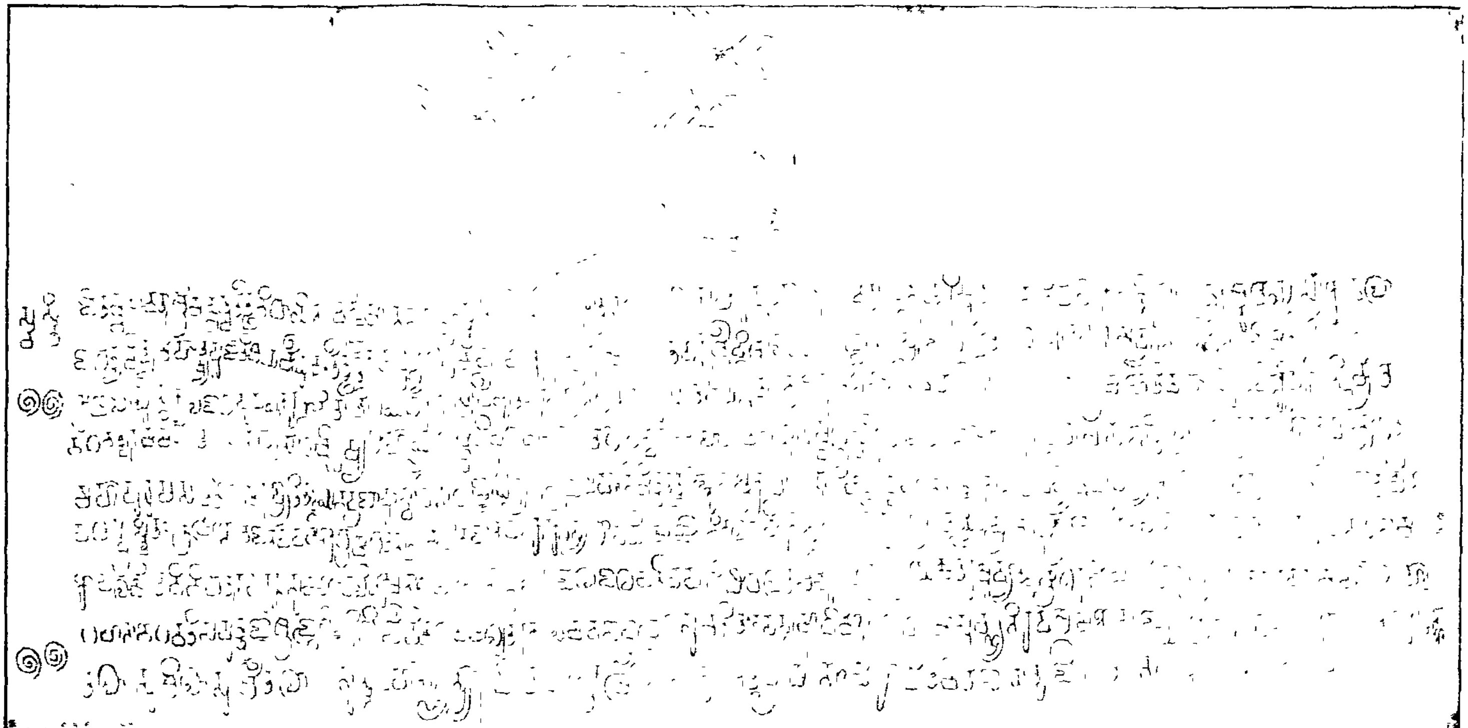
चन्द्रगिरि पर्वतपर श्री१०८ भद्रबाहु स्वामीका शिलालेख।

श्री १०८ अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी और उनके शिष्य मगधाधिपति महाराज चन्द्रगुप्तका इतिहास।

मगधाधिपति महाराज चन्द्रगुप्तका नाम प्रायः सभी इतिहास-प्रेमियोंने सुना होगा और जहाँ तक हमें मालूम है हम यह कहनेमें भी अत्युक्ति नहीं समझते कि सभ मतावलम्बी आचार्य्योंने और पुराण-कारोंने अपने अपने पुराणों तथा ग्रन्थोंमें इनका नाम किसी न किसी प्रकारसे उल्लेख किया है। और कहाँ तक कहा जाय आधुनिक कवि विशाखाचार्य्यने भी "महाराज चन्द्रगुप्त" का वर्णन अपने "मुद्राराक्षस" नामक नाटकमें किया है। महाराज चन्द्रगुप्त अपने समयके एक बड़े भारी प्रभावशाली राजा थे और आपके समयमें बड़ी बड़ी प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना हुई है। जैसे ग्रीकके शाहंशाह का भारतपर आक्रमण, उनके प्रधान-सेना-ध्यक्षके साथ महाराज चन्द्रगुप्तका युद्ध और इनकी सन्धि इत्यादि। भारतवर्षके इतिहासमें उस समय एक नवीन युग हुआ था इसीलिये महाराज चन्द्रगुप्तकी भारतवर्षके इतिहासों में बड़ी प्रसिद्धि है। परन्तु अबतक कुछ दिनोंसे यह बात प्रसिद्ध हो रही है कि मगधाधिपति महाराज चन्द्रगुप्त बौद्ध थे किन्तु हम अपने पाठकोंके सम्मुख यह प्रमाणित करना चाहते हैं कि महाराज चन्द्रगुप्त जैन थे नकि बौद्ध। ये पंचम श्रुतकेवली स्वामी भद्रबाहुके मुख्य-शिष्योंमें से थे। इन्हींसे इन्होंने जिन-दीक्षा ग्रहण की थी और यही कारण है कि अन्यमतावलम्बी विद्वानों में चन्द्रगुप्तके राज्य-शासनके समय-निर्णयमें मतभेद होता है। अर्थात् उनकी दीक्षा लेनीही मतभेदका कारण है। महावंशके ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि चन्द्रगुप्तने ३४ वर्ष तक राज्य किया और वायुपुराणके कर्ता २४ ही वर्ष बतलाते हैं। इस विषयमें भी मतभेद है कि चन्द्रगुप्तने पुत्रको राज्य-शासनका भार देकर इस असार संसारको छोड़ा वा राज्यावस्थामें ही उनका मरण हुआ। परन्तु आगे उद्धृत-शिलालेखसे आप महानुभावोंको पूर्णतया प्रतीत हो जायगा कि उन्होंने राज्य-सम्पत्तिको तृणवत् जान अपने पुत्र सिंहसेन अपर नाम बिन्दुसारको राज्य दे

दीक्षा ग्रहण की थी। पंचम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी वीर-नि० सम्वत् (१) १६२ में मौर्यवंशी महाराज चन्द्रगुप्तके समयमें हुए थे। एक समय उज्जयिनी नगरीमें कार्त्तिक शुक्ला पूर्णिमाके दिन महाराज चन्द्रगुप्तने रात्रीके पिछले पहर में १६ स्वप्न देखें। उनमें अन्तिम स्वप्न एक १२ फणका नाग देखा। तब महाराज चन्द्रगुप्तने अपने गुरु श्रीभद्रबाहु स्वामीसे उन स्वप्नोंका फल पूछा तो स्वामीने अन्तिम स्वप्नका फल उत्तर भारतवर्षमें बारह वर्षका घोर दुर्भिक्ष बतलाया। इसके बाद एक दिन भद्रबाहु स्वामी अपने शिष्योंके साथ नगरमें आहारके लिये गये और एक व्यक्तिके द्वारपर जा पहुँचे परन्तु वहाँ एक बालक इतने ज़ोरसे रो रहा था कि इनके बारह बार पुकारने पर भी कि[illegible] उत्तर नहीं दिया। तब इनको यह निश्चय हो गया कि १२ वर्षका [illegible] यहां आरम्भ हो गया। राजमन्त्रीने इस आपत्तिके हटानेके लिये अर्थात् दुर्भिक्ष-शान्तिके लिये अनेक यज्ञ होमादि और कई प्रकारके बलिप्रदानादि करनेकी चेष्टा की परन्तु चन्द्रगुप्त इस पापसे भयभीत हो कर अपने पुत्र सिंहसेन अपर नाम बिन्दुसारको राज्य-भार सौंप कर इस असार संसारसे विरक्त हो अपने गुरु भद्रबाहु स्वामीसे दीक्षा लेली। सिंहसेनके मन्त्रीने "नाभाल्वभाशिटक" नामक ब्राह्मणसे यज्ञ करानेकी और बलिदानादिककी सम्मति ली और इधर जैन ब्राह्मणोंको भी एक स्थानपर एकत्रित कर यज्ञमें पशुहिंसा करनेके विषयमें दोनोंमें खूब वाद विवाद कराया परन्तु "धर्मकी सदा जय होती है" इस कथनानुसार अन्तमें जैन ब्राह्मणोंकी ही बात रही। भद्रबाहु स्वामीने देखा कि यह घोर दुर्भिक्ष विन्ध्य तथा नीलगिरि पर्वतके मध्यमें होगा, इसके प्रभावसे अनेक प्राणी कालकवलित होंगे तथा इस समयमें मुनिधर्म भी पालना कठिन हो जायगा यानि उनका भी धर्म भ्रष्ट हो जायगा। ऐसा विचार कर बारह हजार मुनियोंका संघ लेकर दक्षिण देशको प्रस्थान किया। महाराज चन्द्रगुप्त भी गुरुके साथही साथ चले गये। कटवप्र नामक एक रमणीय पर्वतके निकट पहुंचने पर किन्हीं चिन्हों द्वारा भद्रबाहु स्वामीको यह मालूम होगया कि हमारी आयु बहुत थोड़ी रह गई है और हमारा अन्तिम समय निकट है इसलिये स्वामीने श्रीविशाखाचार्य मुनिके साथ सर्व संघको दक्षिण चोलपाण्ड्य देशमें भेजा और केवल चन्द्रगुप्त मुनिको अपने पास रहनेकी आज्ञा दी। जिन्होंने अपने गुरुके अन्त काल तक उनके साथ रहकर उनकी अन्तिम-क्रिया की तथा असीम गुरु-

नोट—१ वीर-निर्वाण सम्वत् १६२ = विक्रम सम्वतसे २०७ वर्ष पूर्व अर्थात् २६४ बी० सी०।



४
चन्द्रगिरि पर्वतके शिलालेखकी स्पष्ट प्रतिलिपि।

भक्ति दिखायी। उधर श्रीविशाखाचार्य १२ वर्ष तक चोलपाण्ड देशमें धर्मोपदेश करते हुए विहार करते रहे। जब १२ वर्षका समय व्यतीत हो गया तब विशाखाचार्य अपने शिष्योंके साथ विहार करते हुए उत्तर कर्णाटक देशमें जहां उन्होंने अपने गुरु श्रीभद्रबाहु स्वामीको छोड़ा था वहीं आये। वहां आकर उन्होंने देखा कि स्वामीका देहान्त होगया है, श्रीचन्द्रगुप्त मुनि ... चरण-सेवा कर रहे हैं और उनेक बाल बहुत बड़े बड़े हो रहे हैं। विशाखाचार्य मुनिको देखकर बड़े सम्मानके साथ चन्द्रगुप्त मुनिने नमस्कार किया परन्तु यह विचार कर कि चन्द्रगुप्त मुनिने इस दुर्भिक्ष कालमें कन्द मूलादि खाकर अपना धर्म्म भ्रष्ट किया होगा अतएव उन्होंने चन्द्रगुप्तके नमस्कारका कुछ भी उत्तर न दिया किन्तु उनकी वन्दना स्वीकार कर उनसे अपने गुरु भद्रबाहु स्वामीके ...समय-समय की सारी बात पूछी और उस रोज सब मुनियोंने उपवास किया। दूसरे रोज यह समझ कर कि इस निर्जन देशमें हमारी भिक्षा-विधिका पालन दुर्लभ है इसलिये वहांसे यात्राका विचार किया परन्तु चन्द्रगुप्त मुनि उन सब संघको जङ्गलके निकटवर्त्ती एक वस्तीमें लेगये और वहां श्रावकोंने बड़ी भक्तिके साथ उन लोगोंको अत्युत्तम आहार दिया। जब सब मुनि आहार कर कर अपने अपने स्थान पर आये तो मालूम हुआ कि संघमेंसे एक मुनि अपना कमण्डलु उस ग्राममें छोड़ आये हैं इसीलिये वह मुनि उसको लानेको गये। जब वह मुनिमहाराज वहां पहुंचे तो उनको बड़ा विस्मय हुआ कि उस स्थानपर न तो कोई ग्रामही है और न कोई श्रावकोंके घरही हैं। केवल उनका कमण्डलु एक वृक्षकी डालमें लटक रहा है। उन्होंने आकर सब वृत्तान्त विशाखाचार्यको कह सुनाया। यह सुन कर उनको निश्चय हो गया कि चन्द्रगुप्तने विद्या-बलसे उनलोगोंको भोजन कराया है इसलिये यह बात अनुचित है। यह विचार कर चन्द्रगुप्तको केशलोंचन करनेका प्रायश्चित्त दिया और अपने सर्व संघको उस भोजन करनेका यथायोग्य प्रायश्चित्त करा उस स्थानसे विहार कर गये। इस घटनाके कुछ कालके बाद महाराज भास्कर अपर नाम अशोक महाराज सिंहसेन अपर नाम विन्दुसारके पुत्र अर्थात् चन्द्रगुप्तके पौत्र बड़े समारोहके साथ अपने गुरु भद्रबाहु और अपने पितामह चन्द्रगुप्तके चरणारविन्दकी वन्दना और पूजा करनेके लिये आयें और यहां कुछ काल रह कर कई चैत्यालय बन वाये जोकि आज तक चन्द्रगुप्त वस्तीके नामसे प्रसिद्ध है और एक नगर बसाया जिसका नाम अब श्रवणबेलगुल

है तथा इन्होंने ही यह शिला-लेख लिखवाया कि जिसका समय प्राय २६० बी॰ सी॰ अर्थात् (१) श्रीवीर-नि॰ सम्वत् २६६ का निश्चय होता है और हमारे इस कथनकी पुष्टि पाश्चात्यविद्वान् लुईसराईस साहेबने भी की है। यह शिलालेख श्रवणबेल गुलमें चन्द्रगिरि पर्वतपर चन्द्रगुप्त (२) बस्तीके मन्दिरके सामने एक १५ फीट ७ इंच लम्बे तथा ४ फीट ७ इंच चौड़े चट्टानपर हेल कनड़ीलिपिमें खुदा हुआ है और इसी शिलालेख(३)से मालूम होता है कि राजा चन्द्रगुप्तका दीक्षा-नाम प्रभाचन्द्र रक्खा गया था। इस विषयकी विशेष पुष्टि राजवलि-कथासे होती है। यह ग्रन्थ मैसूरकी रानी देवी रम्भाके लिये मस्सूरके देवचन्द्रजीने कनड़ी भाषामें लिखा था तथा भद्रबाहुचरित्र से भी इस विषयकी पूर्णतया पुष्टि होती है। इसके सिवाय जेम्स बार्गेस जौन थीट आदि पाश्चात्य विद्वानोंके मतमें भी मौर्यवंशी महाराज चन्द्रगुप्त और उनके पुत्र विन्दुसार जैन थे तथा महाराज अशोकने अपने राज्याभिषेकके १३ वें वर्ष पर्यन्त तो जैन धर्महो पालन किया। इसके बाद उन्होंने बौद्धधर्म धारण किया। इनके २५० बी॰ सी॰ अर्थात् विक्रम सम्वत् १९३ वर्ष पूर्वके अनेक शिलालेख जैनधर्म्म-सम्बन्धी मिलते हैं। अस्तु अब इसमें कोई सन्देह ही नहीं रहता कि महाराज चन्द्रगुप्त जैन थे। इन्होंने बौद्ध-धर्म्म कभी नहीं अङ्गीकार किया। आधुनिक विद्वानोंका जो यह कथन है कि चन्द्रगुप्त बौद्ध थे उनका मूल कारण यह मालूम होता है कि एक तो उन्होंने जैन और बौद्धको एक सा मान रक्खा है दूसरी बात यह कि उन लोगोंने जैन और बौद्धकी प्रतिमाओंमें भी जो भेद हैं उनको नहीं जाना है। यही कारण है कि अनेक स्थानों पर जैन-तीर्थ और जैन-तीर्थंकरोंको बौद्ध बताया गया है परन्तु अब यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि जैन और बौद्धमें बड़ा अन्तर है और उनको एक मानना बड़ी भ्रान्ति है।

क्रमशः

नोट—(१) बी॰ सी॰ अंग्रेजी सम्वत्से पूर्वको कहते हैं अर्थात् आजसे १९१२ + २६० = २१७२ वर्ष पूर्व।

नोट—(२) दक्षिण-देशमें मन्दिरोंके समूहको "बस्ती" कहते हैं।

नोट—(३) हम इस शिलालेखसे सम्बन्ध रखने वाले अनेक शिलालेखोंका जो वर्णन कर आये हैं वे तथा भद्रबाहु स्वामी और चन्द्रगुप्तका जीवन-चरित्र उनके समयका विचार आदि क्रमशः अन्यान्य अंकोंमें दिया जायगा।

चन्द्रगिरि पर्वतकी चन्द्रगुप्त वस्तीका शिलालेख ।

जितं भगवता श्रीमद्धर्म्मतीर्थविधायिना ।
वर्द्धमानेन सम्प्राप्त-सिद्धिसौख्यामृतात्मना ॥ १ ॥
लोकालोकद्वयाधारवस्तु स्थास्नु चरिष्णु च ।
सच्चिदालोकशक्तिः स्वा व्यश्नुते यस्य केवला ॥ २ ॥
जगत्यचिन्त्य-माहात्म्य-पूजातिशयमीयुषः ।
तीर्थकृन्नामपुण्यौघमहार्हन्त्यमुपेयुषः ॥ ३ ॥
तदनुश्रीविशालेयञ्जयत्यद्य जगद्धितम् ।
तस्य शासनमव्याजं प्रवादिमतशासनम् ॥ ४ ॥

अथ खलु सकलजगदुदयकरणोदितातिशयगुणास्पदीभूतपरमजिनशासनसरस्समभिवर्द्धितभव्यजनकमलविकशनवितिमिरगुणकिरणसहस्रमहोतिमहावीरसवितरि परिनिर्वृत्ते भगवत्परमर्षि-गौतमगणधर-साक्षाच्छिष्य-लोहार्य-जम्बु-विष्णुदेव-अपराजित-गोवर्द्धन-भद्रबाहु-विशाख-प्रोष्ठिल-क्षत्रिकार्य-जयनाम-सिद्धार्थ-धृतषेण-बुद्धिलादिगुरु-परम्परीण क्रमाभ्यागतमहापुरुषसन्तति समवद्योतितान्वय भद्रबाहु स्वामिना उज्जयिन्याम् अष्टाङ्गमहानिमित्त-तत्त्वज्ञेन त्रैकाल्यदर्शिना निमित्तेन द्वादशसम्वत्सरकालवैषम्यमुपलभ्य कथिते सर्वसङ्घ उत्तरापथात् दक्षिणापथं प्रस्थितः आर्येणैव जनपदं अनेकग्रामशतसंख्यमुदितजनधनकनकशस्यगोमहिषाजाविकलसमाकीर्णम् प्राप्तवान् अतः आचार्य्यप्रभाचन्द्रेणामावनितलललामभूतेऽथास्मिन् कटवप्रनामकोपलक्षिते विविधतरुवरकुसुमदलावलिविरचनशवलविपुलसजलजलदनिवहनीलोपलतले वराहद्वीपिव्याघ्रर्क्षतरक्षुव्यालमृगकुलोपचितोपत्यका कन्दर-दरी-महागुहा-गहनभोगवति समुत्तुङ्गशृङ्गे शिखरिणि जीवितशेषम् अल्पतरकालं अवबुध्याध्वनः सुचकितः तपःसमाधिम् आराधयितुम् आपृच्छ्य निरवशेषेण संघम् विसृज्य शिष्येणैकेन पृथुलकास्तीर्णतलासु शिलासु शीतलासु स्वदेहम् सन्यस्याराधितवान् क्रमेण सप्तशतम् ऋषीणाम् आराधितम् इति जयतु जिनशासनं इति ॥

संस्कृत शिलालेखका संक्षिप्त-भाषानुवाद ।

अन्तरंग अनन्त चतुष्टयादि (अनन्त ज्ञान, दर्शन सुख, वीर्य) बहिरंग समवशरणादि लक्ष्मीसे युक्त सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र रूपरत्नत्रय धर्मके कहने वाले और मोक्ष प्राप्त करने वाले श्रीवर्द्धमान भगवान् स्वामी अन्तिम

तीर्थंकर नित्य अनन्त-सुखपिण्डस्वरूप सर्वोत्कर्षको प्राप्त हुए हैं।

अनेक सुरेन्द्र नरेन्द्र सुर खगाधिपत्यादि शतेन्द्रोंद्वारा पूज्य तीर्थंकर श्रीवर्द्धमान स्वामीका केवलज्ञान सम्पूर्ण पदार्थोंको भूत, भविष्यत और वर्तमान त्रिकालवर्ती अनन्त पर्यायोंको प्रकाश कर रहा है।

उन वर्द्धमान (महावीर) स्वामी तीर्थंकरके पीछे यह नगरी लक्ष्मीसे शोभायमान है और आज उसमें जगतके हितकारी परवादियोंके मतको सुशासन करनेवाले, छल-कपट-रहित सत्य-स्वरूप उन वर्द्धमान स्वामीका शासन अर्थात् जिनशासन (जैनधर्म्म) सर्वोत्कृष्टतासे वर्तमान है। भावार्थ—इस नगरीमें जैनधर्म्म बड़े प्रभावसे वर्तमान है।

यह उपर्युक्त वस्ती समस्त संसारके कल्याण करने वाली और परमोत्तम जिनशासन (जैनधर्म्म)से शोभायमान है। भव्य-पुरुषोंके आनन्दकारक और अज्ञानान्धकार दूर करने वाले ऐसे श्रीमहावीर भगवानके मोक्ष होते भगवान् परम ऋषि गौतमगणधरके साक्षात् शिष्य श्रीलोहाचार्य, जम्बू स्वामी, विष्णुदेव अपराजित, गोवर्धन, भद्रबाहु, विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रियाचार्य, जयनाम, सिद्धार्थ, धृतसेन, बुद्धिल आदि गुरुपरम्परासे चली आई महापुरुषों की सन्तान उसीमें हुये भद्रबाहु स्वामी श्रुतकेवली उज्जयिनी नगरीमें अष्टांगमहा-निमित्त-शास्त्रकथिततत्वके ज्ञाता अर्थात् ज्योतिषशास्त्रके परमविद्वान् निमित्त-ज्ञान (ज्योतिष)से यह बात जानकर कि यहां १२ वर्षका महादुर्भिक्ष पड़ेगा इसलिये सङ्घके सब मुनियोंसे दक्षिणदिशाको प्रस्थान करनेको कहा और आप भी चलदिये। सर्व सङ्घके साथ बड़े बड़े देशोंमें होते हुए श्रीभद्रबाहु स्वामी आचार्य प्रभाचन्द्र(१)के साथ इस वस्तीमें आये और अत्यन्त रमणीय शोभायमान अनेक प्रकारके फूल फलोंसे भरा तथा अनेक सिंह व्याघ्रादिकोंसे भरी गुफाओं सहित कटवप्रनामक प्रसिद्ध पर्वतपर आयुकी स्थिति बहुत थोड़ी जानकर समाधि आराधनाके लिये (समाधिमरण करनेके लिये) समस्त सङ्घको बिदाकर एक शिष्यके साथ वहां रह चार आराधनाओं को आराधते भये। अर्थात् समाधिसहित मरण किया। सङ्घके ७०० मुनियोंने भी उचित उचित समय पर आराधना आराधी। इस प्रकार श्रीजिनशासन जय शाली रहे।

यह संस्कृत शिलालेखका संक्षिप्त भाषानुवाद है जिन महाशयोंको उक्त शिलालेखके प्रत्येक अक्षरका अर्थ समझना हो वे संस्कृत शिलालेखसे समझें।

नोट···(१)······येही प्रभाचन्द्र स्वामी महाराज चन्द्रगुप्त थे इनका दीक्षानाम प्रभाचन्द्र हो गया था।

"श्रीजैन-सिद्धान्त-भवन" आराके संरक्षित 'श्रीआदिपुराण' और 'उत्तरपुराण' जिनको लोग 'महापुराण' भी कहते हैं उनका संक्षिप्त परिचय।

आज हम अपने सुविज्ञ-पाठकोंको जैन-समाजके चिर-परिचित आचार्य और एक महान् ग्रन्थका परिचय कराना चाहते हैं। श्रीमहापुराणका स्वाध्याय प्रायः सभी जैनियोंने किया होगा और प्रायः सभी जैनी इसके नामसे परिचित होंगे। परन्तु हम नहीं कह सकते कि कितने महानुभावोंने इस महापुराणमें सन्निवेशित अनेक अपूर्व-रत्नोंका मर्म समझा हो। क्योंकि जहां तक देखा जाता है तो यही मालूम होता है कि श्रीआदिपुराणके स्वाध्यायके समय हम लोगोंकी दृष्टि उसके कथा-भागों पर विशेष रहती है और उसके मूलभावों से हम लोग कोसों दूर रहते हैं। जिन महानुभावोंने इस परमोत्कृष्ट ग्रन्थका स्वाध्याय विचारपूर्वक किया होगा उनको यह मालूम होगा कि कैसे महत्व तथा इतिहासों के अनेक अभावोंका पूर्तिकारक यह ग्रन्थ है। इतिहास केलिये जितनी सामग्रियों की जरूरत है हमारे आचार्य्य-प्रवरने प्रायः सभी विषयोंका समावेश इसकी रचनामें किया है।

यह भारतवर्षका एक सच्चा सर्वाङ्ग-पूर्ण इतिहास माना जाय तो इस में कुछ अत्युक्ति न होगी। आज तक बहुत से पाश्चात्य-विद्वानोंने भारतवर्षके अनेक इतिहास लिखे हैं। परन्तु वे भारतवासी विद्वानों की दृष्टि में सर्वाङ्ग-पूर्ण तथा प्रमाणित विश्वस्त-रूपसे परिगणित नहीं होते क्योंकि विदेशीय विद्वानों द्वारा रचित होने से उनमें अनेक त्रुटियां रहजाती हैं और जिन हमारे भारतवर्षीय विद्वानोंने भारतवर्षके इतिहास लिखे हैं, उन लोगोंने भारतवर्षके महान् महान् विद्वानों और आचार्य्योंके विरचित-अपूर्व-इतिहास-रत्न-ग्रन्थों की पर्य्यालोचना नहीं की इसलिये उनमें भूलोंकी भरमार है। परन्तु हमारे आचार्य्य-प्रवरने बड़ी योग्यता तथा विद्वत्ताके साथ उन त्रुटियों की पूर्त्ति पहलेही से कर रक्खी है और इस ग्रन्थमें अनेक ऐसे विषयोंका भी सन्निवेश किया है कि जिनका पता अभी तक बहुतसे विद्वानोंको नहीं मालूम है। इसलिये इनका न मालूम होनाही भारतवर्षके आधुनिक रचित-इतिहासमें त्रुटियोंका कारण है।

इसमें भरतचक्रवर्त्ती जिनके नामही से भारतवर्ष प्रसिद्ध है, उनका आद्योपान्त वृत्तान्त, वर्णाश्रमके स्थापनके कारण और समय, गृहस्थोंके छः प्रकारकी जीविकाओंकी विधि, वैवाहिक-प्रणालीका प्रचार, गर्भाधान से लेकर मरण पर्य्यन्त तक तिरपन क्रिया, भारतवासियोंकी रहन-सहन, देश, ग्राम, आहार, व्यवहार, वस्त्राभूषण, राजनीति, समाजिक-नीति आदि अनेक आवश्यक-विषयोंका सविस्तर उल्लेख बड़ीही प्राकृतिक और आनुभविक विद्वत्तासे हमारे चरित्र-नायकोंने किया है। इसके परिशीलन करनेसे उस समय की बहुतसी रीति और घटनाओंका अनुभव सहजहीमें होने लगता है। यह आदिपुराण कविता की सर्वोत्कृष्टताका एक उदाहरण-स्वरूप कहाजाय तो इसमें कुछ अत्युक्ति नहीं होगी। इसके प्रत्येक श्लोक, पद, वाक्य तथा अक्षरसे ग्रन्थ-कर्त्ताकी बहुज्ञता, उपदेश-प्रियता, कवित्वोत्कर्षता आदि गुण स्पष्ट विदित होते हैं। हमारे कवि-कुल-कमल-दिवाकर श्री १०८ जिनसेनस्वामीने और कवियोंकी भांति स्त्रियोंके स्तनपर हार ठुराने वाली ही कविताकी रचनामें अपने पाण्डित्यकी इतिश्री नहीं की। इन्होंने शृङ्गारवर्णन किया भी है तो धर्महीके रूपसे। और इस ग्रन्थसे यह बात भी निर्विवाद प्रमाणित हो जाती है कि धर्मोपदेश करते हुए धार्म्मिक-ग्रन्थोंमें भी पूर्णतया काव्य-सम्बन्धी नवरस, नायक नायिकाका समावेश और सभी अलङ्कारोंको ग्रन्थ-कर्त्ता प्रयुक्त कर सकते हैं।

हमारे आचार्य्य-प्रवरको केवल इतिहासही के अपूर्व-विषयोंका उल्लेख करनेसे सन्तुष्टि नहीं हुई किन्तु इन्होंने और भी अनेक अपूर्व प्रयोजनीय विषयोंका अच्छा समावेश किया है। आपने अपने मङ्गलाचरणमें कवियोंकी अच्छी समालोचना की है और कवियोंको हितकर तथा यशःप्रसारक अनेक उपदेश दिये हैं।

परेषां दूषणाज्जातु न बिभेति कवीश्वरः।
किमुलूकभयाद्धुन्वन् ध्वान्तं नोदेति भानुमान् ॥ ७५ ॥
परे तुष्यन्तु वा मामाः कविः स्वार्थं समीहताम्।
न पराराधनात् श्रेयः श्रेयः सन्मार्गदर्शनात् ॥ ७६ ॥

पाठ को! देखिये उल्लिखित-श्लोकोंमें हमारे आचार्य्य-प्रवरने कवि-निरङ्कुशता की परिपुष्टि बड़े मुक्तकण्ठसे की है। आप कहते हैं कि कवीश्वर दूसरोंके आक्षेपोंकी ओर दृष्टिपात नहीं करते। क्या कोई कहसकता है कि उलूकके भयसे सूर्य्य अन्धकारको नष्ट करता हुआ कभी उदित नहो।

और भी आप कहते हैं कि—कवियोंकी रचनासे दूसरे सन्तुष्ट हों वा न हों। वे अपने उद्देश्योंकी पूर्त्ति किये बिना नहीं रहते। क्योंकि दूसरोंकी शुश्रूषासे कभी मङ्गल नहीं होता, सत्य-मार्गका दिखाना ही मङ्गलका कारण है। आपका भावार्थ यह है कि दूसरेकी चाटुकारिता तथा हांमें हां मिलानेसे कुछ सिद्धि नहीं होती। कवियोंको किसीकी परवाह न कर सच्ची राह दिखानाही परम कर्त्तव्य है। आपका प्रत्येक वाक्य तथा श्लोक ऐसा श्रेयस्कर तथा सार-गर्भित है कि यह सुवर्णाक्षरोंमें लिखकर आदर्श-रूपसे रक्खा जा सकता है। आपकी कवि-समालोचनाके जो श्लोक हैं उनमें से कुछ भावार्थ-सहित नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

धर्म्मानुबन्धिनी या स्यात् कविता सैव शस्यते।
शेषा पापास्रवायैव सुप्रयुक्तापि जायते ॥ ६४ ॥
केचिन्मिथ्यादृशः काव्यं ग्रथ्नन्ति श्रुति-पेशलं।
तत्त्वाधर्म्मानुबन्धित्वान्न सतां प्रीणनक्षमम् ॥ ६५ ॥
अव्युत्पन्नतराः केचित् कवित्वाय कृतोद्यमाः।
प्रयान्ति हास्यतां लोके मूका इव विवक्षवः ॥ ६६ ॥
अनभ्यस्तमहाविद्याः कलाशास्त्र-वहिष्कृताः।
काव्यानि कर्त्तुं मीहन्ते केचित्पश्यत साहसं ॥ ७३ ॥
तस्मादभ्यस्य शास्त्रार्थानुपास्य च महाकवीन्।
धर्म्म्यं शस्यं यशस्यं च काव्यं कुर्वन्तु धीधनाः ॥ ७४ ॥

भावार्थ—धर्मानुबन्धिनी ही कविता प्रशंसित होती है। शेष तो योंही पाप बढ़ाने वाली है। कितने कवि केवल श्रवण-सुखद-कविता बनाते हैं। किन्तु उसमें धर्मका लेश नहीं रहनेसे सज्जन कभी उससे सन्तुष्ट नहीं होते। बहुतसे अधपढे कवि भी काव्य कर बैठते हैं। किन्तु उनकी हंसी ऐसी होती है जैसे गूंगा बोलना चाहे। भली भांति सारी विद्या नहीं पढ़ने वाले और कला शास्त्रको नहीं जानने वाले यदि काव्यरचना करना चाहें तो उनका दुस्साहस ही समझना चाहिये इसीलिये जो सब शास्त्रोंका भली भांति परिशीलन कर महाकवियोंकी सेवा करता है वही प्रशंसनीय, धार्मिक और यशस्कर कविता बनाता है।

उपर्युक्त वाक्योंसे यह बात स्पष्ट मालूम होती है कि हमारे महाकवि श्री जिनसेनाचार्य्यने इस ऐतिहासिक-ग्रन्थमें अपनी कवित्व-शक्तिका अतुलनीय

परिचय दिया है। हमारे कविश्रेष्ठने जब इस ग्रन्थको प्रारम्भ किया था तो उस समय उनका यही अभिप्राय था कि इसी आदिपुराणमें चौबीस तीर्थङ्कर और शलाका-पुरुषोंका पूर्णवृत्तान्त समावेश कर इसीको अद्वितीय ग्रन्थ बनावें। हम यह भी मुक्तकण्ठसे कह सकते हैं कि स्वामीजीने जिस प्रकारसे इस ग्रन्थ-की भूमिका बांधी है यदि इन्हींकी विद्वत्ता-पूर्ण लेखनीसे कहीं इसकी समाप्ति होती तो एक सर्वाङ्ग-सुन्दर और अपूर्व-रचना होती। परन्तु बड़े खेदके साथ कहना पड़ता है कि इस कुटिल-काल-राहुने हमारे अखिल-पदार्थ-प्रकाशक और अज्ञानान्धकार-विद्रावक आचार्य्य-मार्त्तण्डकी कीर्त्तिरश्मिकी प्रखरदीप्तिको सहन न कर मध्याह्न कालही में यानि बयालिस ही अध्याय तक लिखे जानेपर ग्रस लिया। अर्थात् श्री १००८ आदिनाथ स्वामीका चरित्र अधूराही छोड़ कर आपने अपनी मानव-लीलाका संवरण किया तथा अपने परम-पवित्र-पादपाथोज-परागसे स्वर्गधामको पवित्र किया। यद्यपि हम लोगोंके दुर्भाग्य-वश स्वामीजीकी सरसलेखनीसे इस अपूर्व ग्रन्थकी निष्पत्ति नहीं हुई तो भी उनकी लेखनी-प्रसूत जितनी रचना है वही भारतवर्षके इतिहासके सर्वाङ्ग की पूर्त्तिके लिये पर्याप्त है। महापुराणमें चौबीस तीर्थङ्कर और शलाका-पुरुषोंका चरित्र लिखने का जो सङ्कल्प श्री १०८ जिनसेन स्वामीका था उसकी पूर्त्ति उनके प्रिय शिष्य श्रीगुणभद्राचर्य्यने बड़ी विद्वत्तासे की है। प्रथमही आपने पांच अध्याय और रचकर आदिपुराणको समाप्ति की तत्पश्चात् उत्तरपुराण नामक एक नया पुराण रचकर शेष तीर्थङ्करोंका चरित्र भारतवर्षमें प्रसिद्ध किया। और अपने गुरु जिनसेन स्वामीके सङ्कल्पित उद्देश्योंकी पूर्त्ति बड़ी विद्वत्तासे की। इन्होंने अपने गुरुकी काव्य-रचना-प्रणाली का अनुसरण बड़ी योग्यतासे किया है। एकही पुराणमें तेईस तीर्थङ्करोंकी कथा स्पष्टतासे शृङ्खला-बद्ध करनी यह गुणभद्राचार्य्य ही का काम है। येही उपर्युक्त दोनों ग्रन्थ अर्थात् नं० १ श्रीआदिपुराण और नं० २ श्रीउत्तरपुराण मिला कर 'महापुराण' कहे जाते हैं।

इसी महापुराणके आधारपर हमने एक संक्षिप्त जैनधर्म्मसम्बन्धी भारतवर्षका इतिहास लिखा है, सम्भव है कि इसको सर्वसाधारण अच्छी तरह समझ सकेंगें। यह इतिहास इसी पत्रिकाके प्रत्येक अङ्कमें क्रमशः प्रकाशित होता रहेगा। नं० १ श्रीआदिपुराणकी भाषा टीका पण्डित दौलतरामजी कासलीवाल बसवानीने सम्वत् १८२४ में जयपुरमें की है।

नं० २ उत्तरपुराणकी भाषा वचनिका पं० खुशालचन्दजी सांगानेरीने

जहानाबादमें सम्वत् १७९८ में लिखी है । ये दोनों प्रतियां "भवन" में संरक्षित हैं । भाषा-प्रेमी इन्हें पढ़ सकते हैं ।

आदिपुराण ।

नं० १

विषय—ऐतिहासिक (प्रथमानुयोग)

ग्रन्थकार—श्रीजिनसेनाचार्य्य और गुणभद्राचार्य्य ।

भाषा—संस्कृत और हिन्दी ।

लिपि—नागरी, कनड़ी, द्राविड़ी ।

ग्रन्थ विवरण—अति प्राचीन, हस्तलिखित, शुद्धप्रति पत्र ३०५ श्लोक १२०००

अध्याय ४७, ग्रन्थकी प्रतिलिपि करनेका समय—सम्वत् १७३५

मङ्गलाचरण ।

ॐ नमो सिद्धेभ्यः ।

श्रीमते सकलज्ञान-साम्राज्य-पदवीयुषे ।
धर्मचक्रभृते भर्त्रे नमः संसारभीमुषे ॥ १ ॥
नमस्तमःपटच्छन्नजगदुद्योत-हेतवे ।
जिनेन्द्रांशुमते तत्व-प्रमा-भा-भार-भासिने ॥ २ ॥
जयत्यजय्यमाहात्म्यं विशासित-कुशासनम् ।
शासनं जैनमुद्भासि मुक्तिलक्ष्म्यैकशासनम् ॥ ३ ॥
रत्नत्रयमयं जैनं जैत्रमस्त्रं जयत्यदः ।
येनाव्याजं व्यजेष्टार्हन् दुरितारातिवाहिनीम् ॥ ४ ॥
यः साम्राज्यमधःस्थायि गीर्वाणाधिपवैभवम् ।
तृणाय मन्यमानः सन् प्राव्राजीद्वृषिमः पुमान् ॥ ५ ॥

*   *   *

कवयः सिद्धसेनाद्याः वयश्च कवयो मताः ।
मणयः पद्मरागाद्याः ननु काचोऽपि मेचकाः ॥ ३९ ॥

यद्वचोदर्पणे कृत्स्नं वाङ्मयं प्रतिबिम्बितम्।
तान् कवीन् वयं मन्येऽहं किमन्यैः कविमानिभिः ॥ ४० ॥
नमः पुराण-कारेभ्यो यद्वक्त्राब्जे सरस्वती।
येषामन्यकवित्वस्य सूत्रपातायितं वचः ॥ ४१ ॥
प्रवादिकरियूथानां केशरी नयकेशरः।
सिद्धसेनकवि र्जियाद्विकल्पनखराङ्कुरः ॥ ४२ ॥
नमः समन्तभद्राय महते कविवेधसे।
यद्वचोवज्रपातेन निर्भिन्ना कुमताद्रयः ॥ ४३ ॥
कवीनां गमकानाञ्च वादिनां वाग्मिनामपि।
यशः सामन्तभद्रीयं मूर्ध्नि चूडामणीयते ॥ ४४ ॥
श्रीदत्ताय नमस्तस्मै तपःश्रीदीप्तमूर्त्तये।
कण्ठीरवायितं येन प्रवादीभप्रभेदने ॥ ४५ ॥
विदुष्विणीषु संसत्सु यस्य नामापि कीर्त्तितं।
निखर्वयति तद्गर्वं यशोभद्रः स पातु नः ॥ ४६ ॥
चन्द्रांशुशुभ्रयशसं प्रभाचन्द्रकविं स्तुवे।
कृत्वा 'चन्द्रोदयं' येन शश्वदाह्लादितं जगत् ॥ ४७ ॥
चन्द्रोदयकृतस्तस्य यशः केन न शस्यते।
यदाकल्पमनाम्लानि सतां शेखरतां गतं ॥ ४८ ॥
शीतीभूतं जगद्यस्य वाचाराध्य चतुष्टयं।
मोक्षमार्गं स पायान्नः शिवकोटि मुनीश्वरः ॥ ४९ ॥
काव्यानुचिन्तने यस्य जटाः प्रबलवृत्तयः।
अर्थान् स्मानुवदन्तीव जटाचार्यः स नोऽवतात् ॥ ५० ॥
धर्मसूत्रानुगा हृद्या यस्य वाङ्मणयोऽमलाः।
कथालङ्कारतां भेजुः काणभिक्षु र्जयत्यसौ ॥ ५१ ॥
कवीनां तीर्थकृद्देवः कितरां तत्र वर्ण्यते।
विदुषां वाङ्मलध्वंसि तीर्थं यस्य वचोमयं ॥ ५२ ॥
भट्टाकलङ्क-श्रीपाल-पात्रकेशरिणां गुणाः।
विदुषां हृदयारूढ़ा हारायन्तेऽतिनिर्मलाः ॥ ५३ ॥
कवित्वस्य परासीमा वाग्मित्वस्य परं पदम्।

गमकत्वस्य पर्य्यन्तो वादिसिंहोऽर्च्यते न कैः ॥ ५४ ॥
श्रीवीरसेन इत्यात्तभट्टारकपृथुप्रथः।
स नः पुनातु पूतात्मा वादिवृन्दारको मुनिः ॥ ५५ ॥
लोकवित्वं कवित्वञ्च स्थितं भट्टारके द्वयम्।
वाग्मिता वाग्मिनो यस्य वाचा वाचस्पतेरपि ॥ ५६ ॥
सिद्धान्तोपनिबन्धानां विधातुर्मद्गुरो श्चिरम्।
मन्मनःसरसि स्थेया मृदुपादकुशेशयं ॥ ५७ ॥
धवलां भारतीं तस्य कीर्त्तिं च शुचिनिर्मलाम्।
धवलीकृतनिःशेषभुवनं तं नमाम्यहम् ॥ ५८ ॥
जन्मभूमिस्तपोलक्ष्म्याः श्रुतप्रशमयो र्निधिः।
जयसेन गुरुः पातु बुधवृन्दाग्रणीः स नः ॥ ५९ ॥
स पूज्यः कविभि र्लोके कवीनां परमेश्वरः।
वागर्थसंग्रहं कृत्स्नं पुराणं यः समग्रहीत् ॥ ६० ॥
कवयोऽन्येऽपि सन्त्येव कस्तानुद्देष्टु मप्यलम्।
सत्कृता ये जगत्पूज्यास्ते मया मङ्गलार्थिना ॥ ६१ ॥

श्रीआदिपुराणमें श्री१०८ गुणभद्राचार्य्यका उत्थान।

श्रियं तनोतु नः श्रीमान् वृषभो वृषभध्वजः।
यस्यैकस्य गतेर्मुक्तिमार्गश्चित्रं महानभूत् ॥ १ ॥
... ...
निर्मितोऽस्य पुराणस्य सर्वः सारो महात्मभिः।
तच्छेषे यतमानानां प्रासादस्येव नः श्रमः ॥ ११ ॥
पुराणे प्रौढशब्दार्थे सत्पक्षफलशालिनि।
वचांसि पल्लवानीव कर्णे कुर्वन्तु मे बुधाः ॥ १२ ॥
यदि गुरुभिरेवास्य पूर्वं निष्पादितं परैः ॥
परं निष्पाद्यमानं सच्छन्दोवर्णाभिसुन्दरम् ॥ १३ ॥
इक्षो रिवास्य पूर्वार्द्धमेवभावि रसावहम्।
यथा तथास्तु निष्पत्तिरिति प्रारभ्यते मया ॥ १४ ॥

... ...

अथवाग्रं भवेदस्य विरसं नेति निश्चयः।
धर्म्माग्रं ननु केनापि नादर्शि विरसं क्वचित् ॥ २० ॥
गुरूणामेव माहात्म्यं यदपि स्वादु मद्वचः
तरूणां हि स्वभावोऽसौ यत्फलं साधु दृश्यते ॥ २१ ॥
निर्यान्ति हृदयाद्वाचो हृदि मे गुरवः स्थिताः।
ते तत्र संस्करिष्यन्ति मम तत्र परिश्रमः ॥ २२ ॥

... ...

मतिर्मे केवलं सूते कृतिं राज्ञीव तत्सुताम्।
धियस्तां वर्त्तयिष्यन्ति धात्रीकल्पा कवीशिनाम् ॥ ३८ ॥
सत्कवेरर्जुनस्येव शराः शब्दास्तु योजिताः।
कर्णं दुस्संस्कृतं प्राप्य तुदन्ति हृदयं भृशम् ॥ ४० ॥

... ...

पुराणं मार्गमासाद्य जिनसेनानुगा ध्रुवम्।
भवाब्धेः पारमिच्छन्ति पुराणस्य किमुच्यते ॥ ४६ ॥

अन्तिमभाग।

योऽभूत् पञ्चदशो विभुः कुलभृतां तीर्थेशिनां चाग्रिमो
दृष्टो येन मनुष्यजीवनविधि र्मुक्तेश्च मार्गो महान्।
बोधोरोधविमुक्तवृत्तिरखिलो यस्योदयाद्युत्तमः
स श्रीमान् जनकोऽखिलावनिपतेराद्यः सदद्यात्क्रियं ॥ १११ ॥
साक्षात्कृतप्रथितसप्तपदार्थसारः, सद्धर्मतीर्थ-पथपालन-धर्म्महेतुः।
भव्यात्मनां भवभृतां सपरार्थसिद्धिमिक्ष्वाकुवंशवृषभो वृषभो विदध्यात् ॥११२॥
यो नाभेस्तनयोपि विश्वविदुषाम्पूज्यः स्वयम्भूरिति
त्यक्ताशेषपरिग्रहोऽपि सुधियां स्वामीति शब्दायते।
मध्यस्थोऽपि विनेयसत्वसमितेरेवोपकारीमितो
निर्द्दानोऽपिबुधै रुपास्यचरणो यः सोऽस्तु वः शान्तये ॥ ११३ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्य्य-प्रणीते त्रिषष्ठि-लक्षण-महापुराण-संग्रहे प्रथम तीर्थङ्कर-चक्रधर-निर्वाण-गमन-पुराण-परिसमाप्ति सप्तचत्वारिंशत्तमं पर्व: ॥ ४७ ॥

रुद्रेन्दुना स्थिता संख्या प्रमाख्या सुमनीषिभि:।
ज्ञेय मादिपुराणाब्धि गणितं सुसमाश्रितम् ॥

१२००० द्वादश सहस्र संख्या।

श्रीहरिकृष्ण अविनाशी ब्रह्म श्रीनिरूपण श्रीब्रह्मचक्रवर्त्तिराज्य-प्रवर्त्तमाने गैवदलबल-वाहन विश्वौघ-दुष्टघनघटा-विदारण साहसिकम्लेच्छनिवह-विध्वंसन महावली श्रीमहाकवीशी गैवीछत्रत्रय-मण्डित सिंहासन भ्रमर-मण्डली सेव्यमान सहस्रकिरणिवत् महातेजभासुरनृपमणि-मस्तक-मुकुट-सिद्दशारद परमेश्वर परमप्रीति उरप्राम ध्यानमण्डित सुरनरेश्वरा: श्रीहरिकृष्णसरोजराजिराजितपद-पङ्कज सेवत मधुकर सुभटवचन भाङ्कततनुसंभव। यह पूरण लिख्यौ पुराण तिन शुभाशुभ कीरतिके पठन कौ जगमगतु जगम निज सुभटका शिष्य सुगिरिधर परसराम कौ कथन कौ॥ शुभं भवतु मङ्गलम्

उत्तरपुराण।

नं० २

विषय—ऐतिहासिक (प्रथमानुयोग)

ग्रन्थकार—गुणभद्राचार्य्य।

भाषा—संस्कृत और हिन्दी।

लिपि—नागरी।

ग्रन्थ विवरण—अति प्राचीन, हस्तलिखित, शुद्धप्रति पत्र ३०८ श्लोक ८०००

ग्रन्थकी प्रतिलिपि करनेका समय—सम्वत् १८१५

मङ्गलाचरण।

ॐ नमो वीतरागाय।

श्रीमाजिनोऽजितो जीयाद्यद्वचांस्यमलान्यलम्।
क्षालयन्ति जलानीव विनेयानां मनोऽमलम् ॥ १ ॥
पुराणं तस्य वक्ष्येऽहं मोक्षलक्ष्मी-समागमम्।
श्रुतेन येन भव्यानाम् अव्याहत-महोदय: ॥ २ ॥

छिहत्तरवें अध्यायका कुछ भाग।

लोकालोकावलोकैका लोकमित्यवलोकनम्।
तन्निर्वाणक्षणे भावी, जम्बूनामान्त्यकेवली ॥ १५ ॥
पश्चात्केवलिना मस्मिन् भरते यः प्ररूप्यते।
नन्दीमुनिस्ततः श्रेष्ठो, नन्दिमित्रोऽपराजितः ॥ १६ ॥
गोवर्द्धनश्चतुर्थोऽनु, भद्रबाहु र्महातपाः।
नाना नय-विचित्रार्थ-समर्थः श्रुतपूर्वतः ॥ १७ ॥
एते क्रमेण पश्चापि प्राप्स्यन्त्यात्मविशुद्धयः।
ततोभावी विशाखार्य्यः प्रोष्ठिलः क्षत्रियांककः ॥ १८ ॥
जयनामानुगांकः स्यात्, सिद्धार्थो धृतषेणकः।
विजयो बुद्धिलो गङ्गदेवश्चक्रमशोमताः ॥ १९ ॥
एकादश सह श्रीमद्धर्म्मसेनेन धीमता।
द्वादशांगार्थ-कुशलाः दशपूर्वधराश्च ते ॥ २० ॥
भव्यानां कल्पवृक्षाः स्युः जैनधर्म्म-प्रकाशनात्।
ततो नक्षत्रनामाच यशःपालश्च पाण्डुना ॥ २१ ॥
ध्रुवसेनोऽनुकंसार्य्यो विदितैकादशांगकाः।
सुभद्रश्च यशोभद्रो भद्रबाहुः प्रकृष्टधीः। २२ ॥
लोहानामा चतुर्थः स्यादाचाराङ्गविद् त्त्वमी।
जिनेन्द्रवदनोद्गीर्णं पावनं पापलोपनं ॥ २३ ॥
श्रुतं तपोभृता मेषां प्राप्स्यति परम्परम्।
शेषैरपि श्रुतज्ञानस्यैकोदेशस्तपोधनैः ॥ २४ ॥
जिनसेनानुगैः प्रासवीरसेनैः महर्द्धिभिः।
समाप्ते दुःखमायाः प्राक् प्रायशो वर्त्तयिष्यति ॥ २५ ॥

अन्तिमभाग।

श्रीमूलसंघवाराशौ, मणीनामिवसार्चिषाम्।
महापुरुषरत्नानां स्थानं सेनान्वयोऽजनि ॥ १ ॥

तत्र वित्रासिताशेषप्रवादिमदवारणः।
वीरसेनाग्रणी वीरसेन भट्टारको बभौ ॥ ४ ॥

... ...

अभवदिव हिमाद्रेर्देवसिन्धुप्रवाहो-
ध्वनिरिव सकलज्ञात्सर्वशास्त्रैकमूर्त्तिः।
उदयगिरि-तटाद्वा भास्करो भासमानो
मुनिरनु जिनसेनो वीरसेनादमुष्मात् ॥ ८ ॥
यस्य प्रांशु-नखांशुजालविसरद्धारान्तराविर्भव-
त्पादाम्भोजरजः पिशङ्गमुकुटप्रत्यग्ररत्नद्युतिः।
संस्मर्त्ता स्वममोघवर्षनृपतिः पूतोऽहमद्येत्यलम्
स श्रीमाञ्जिनसेन-पूज्यभगवत्पादो जगन्मङ्गलम् ॥ १० ॥

... ...

दशरथगुरुरासीत्तस्य धीमान् सधर्मा
शशिन इव दिनेशो विश्वलोकैकचक्षुः।
निखिलमिदमदीपि व्यापि तद्वाङ्मयूखैः
प्रकटितनिजभावं निर्मलैर्धर्मसारैः ॥
सद्भावः सर्वशास्त्राणाम्, तद्भास्वद्वाक्यविस्तरे।
दर्पणार्पितबिम्बाभो, बालैरप्याशु बुध्यते ॥ १४ ॥
प्रत्यक्षीकृतलक्ष्यलक्षणविधि विश्वोपविद्यान्तरा-
त्सिद्धान्ताध्यवसान-यान-जनित-प्रागल्भ्य-वृद्धेद्धधीः।
नानानूननय-प्रमाण-निपुणो गण्यैर्गुणैर्भूषितः
शिष्यः श्रीगुणभद्रसूरिरनयो रासीज्जगद्विश्रुतः ॥ १५ ॥

... ...

कविपरमेश्वरनिगदित-गद्यकथामातृकं पुरोश्चरितं।
सकलच्छन्दोलङ्कृतिलक्ष्यं सूक्ष्मार्थ-गूढपदरचनं ॥ १८ ॥

... ...

जिनसेन-भगवतोक्तं मिथ्याकविदर्पदलन-मतिललितम्।
सिद्धान्तोपनिबन्धन-कर्त्ता भर्त्रा विनेयानाम् ॥ २० ॥
अतिविस्तरभीरुत्वा दवशिष्टं संगृहीत ममलधियाम्।
गुणभद्रसूरिणेदं प्रहीनकालानुरोधेन ॥ २१ ॥

... ...

विदितसकलशास्त्रो लोकसेनोमुनीश:
कविरविकलवृत्त स्तस्य शिष्येषुमुख्य: ।
सततमिह पुराणे प्राप्य साहाय्य मुच्चै:
गुरुविनय मनैषो मान्यतां स्वस्यसद्भि: ॥ २८ ॥
यस्योत्तुङ्गमतङ्गजा निजमदस्रोतस्विनी-संगमा-
द्गागं वारि कलङ्कितं कटुमुहु: पीत्वा प्यगच्छ तृष: ।
कौमारं घनचन्दनं वन मपां पत्युस्तरंगानिलै-
र्मन्दान्दोलितमस्तभास्करकरच्छायं समाश्रिश्रियन् ॥ ३० ॥
दुग्धाब्धौ गिरिणा हरौ हतसुखा गोपीकुचोद्घट्टनै:
पद्मे भानुकरै र्भिदेलिमदले रात्रौ च सङ्कोचिते ।
यस्योर: शरणे प्रथीयसि भुजस्तम्भान्तरोत्तम्भिते
स्थेये हारकलापतोरणगुणे श्री: सौख्य मागाच्चिरम् ॥ ३१ ॥
अकालवर्षभूपाले पालयत्यखिलामिलां ।
तस्मिन् विध्वस्तनि:शेषद्विषि वीध्रयशोजुषि ॥ ३२ ॥
पद्मालयमुकुलकुलप्रविकासकसत्प्रतापततमहसि ।
श्रीमति लोकादित्ये प्रध्वस्तविततशत्रुसन्तमसे ॥ ३३ ॥
चेल्लपताके चेल्लध्वजानुजे चेल्लकेतनतनूजे ।
जैनेन्द्रधर्मवृद्धिविधायिनि स्वविधुवीध्रपृथुयशसि ॥ ३४ ॥
वनवासदेशमखिलं भुञ्जति निष्कण्टकं सुखं सुचिरं ।
तत्पितृनिजनामकृते ख्याते बंकापुरे पुरेष्वधिके ॥ ३५ ॥
शकनृपकालाभ्यन्तरविंशत्यधिकाष्टशतमिताब्दान्ते ।
मङ्गलमहार्थकारिणि पिङ्गलनामनि समस्तजनसुखदे ॥ ३६ ॥
श्रीपञ्चम्यां बुधार्द्रायुजि दिवसवरे मन्त्रिवारे बुधांशे,
पूर्वायां सिंहलग्ने धनुषि धरणिजे वृश्चिकार्कौ तुलायाम् ।
सार्पे शुक्रे कुलीरे रविजसुरगुरौ निष्ठितं भव्यवर्यै:
प्राप्तेज्यं शास्त्रसारं जगति विजयते पुण्यमे तत् पुराणम् ॥
धर्म्मोऽत्र मुक्तिपदमत्र कवित्वमत्र तीर्थेशिनां चरितमत्र महापुराणे ।
यद्वा कवीन्द्रजिनसेनमुखारविन्दनिर्यद्वचांसि न मनांसि हरन्ति केषां ॥ १
कविवरजिनसेनाचार्य्यवर्य्यार्य्यमासौ मधुरिमणि न वाचो नाभिसूनो: पुराणे

तदनु च गुणभद्राचार्य्यवाचो विचित्राः सकलकविकरीन्द्रव्रातसिंहो जयन्ति ॥ ४० ॥
यदि सकलकवीन्द्रप्रोक्तसूक्तप्रचार-श्रवणसरसचेता स्तत्वमेवं सखेत्थाः ।
कविवरजिनसेनाचार्य्यवक्त्रारविन्दप्रणिगदितपुराणाकर्णनाभ्यर्णकर्णः ॥ ४१ ॥

धर्म्मः कश्चिदिहास्ति नैतदुचितं वक्तुं पुराणं महत्
श्रव्याः किन्तु कथास्त्रिषष्टिपुरुषाख्यानं चरित्रार्णवः ।
कोप्यस्मिन् कवितागुणोऽस्ति कवयो प्येतद्वचोप्यालयः
कोऽसावत्र कविः कवीन्द्रगुणभद्राचार्य्यवर्य्यः स्वयम् ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्य्यप्रणीते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे पुराणसमाप्तौ प्रशस्तिवर्णनं सप्तसप्ततितमं पर्वः ।

आदिपुराण और उत्तरपुराणके मङ्गलाचरण और प्रशस्तिका संक्षिप्त भाषानुवाद ।

केवलज्ञान-साम्राज्य की पदवी धारण करनेवाले, धर्म्म-चक्रको भी धारण करनेवाले और संसारके भयको हटानेवाले श्रीआदिनाथ तीर्थङ्करको मेरा नमस्कार है ॥ १ ॥

अज्ञानान्धकाररूपी वस्त्रसे ढंपेहुए संसारको प्रकाश करनेमें एकमात्र कारण और तत्व तथा प्रमाणके गौरवको प्रकाशित करनेवाले श्रीजिनेन्द्ररूपी सूर्य्य को नमस्कार है ॥ २ ॥

जिनका माहात्म्य नहीं जीतागया है, कुमार्ग (असदुपदेश) को हटानेवाले सुक्तिलक्ष्मीका एक शासन प्रकाशमय जैनशासनकी जय हो ॥ ३ ॥

जिससे अर्हन्त भगवान्ने पापरूपी सेनाको निष्कापथ्यपूर्वक जीता है । उस सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्ररूपी विजयशील जैनअस्त्रकी जय हो॥४

इन्द्रादिक देवताके सम्पत्तिशाली, पृथ्वीपर रहनेवाला चक्रवर्त्ती राज्यको तृणके समान मानते हुए आदिपुरुष श्रीऋषभनाथजीने दीक्षा धारण की ॥ ५ ॥

अन्तिम भाग ।

कवि नामको सार्थक करनेवाले श्रीसिंहसेनादि कवि थे । हम लोग कवि नहीं कहा सकते । क्योंकि पद्मरागादि मणि ही मणि कहला सकती ;

मेचकवर्णके (सांवले रङ्गके) कांच नहीं मणि कहला सकते ॥ ३९ ॥

जिनकी कवितामें समस्त द्वादशाङ्गश्रुत प्रतिबिम्बित होते हैं उन्हीं कवियोंको मैं बहुमानपूर्वक मानता हूं। झूठ मूठ अपनेको कवि कहनेवालोंसे हमें कुछ प्रयोजन नहीं ॥ ४० ॥

मैं उन पुराणकर्त्ताओंको नमस्कार करता हूं कि जिनके मुखकमलमें सरस्वती विराजमान रहती हैं। क्योंकि इन्हीं कवियोंकी उक्ति अन्य कविकेलिये सूत्रपात सी होती है ॥ ४१ ॥

प्रवादीरूप गजसमूहोंके लिये न्यायरूपी केशर (कन्धेका बाल) को धारण करनेवाले सिंहकेसे और नानार्थ विचार करनेमें तीक्ष्ण नख यानि प्रखरबुद्धिवाले श्रीसिंहसेन कविकी जय हो ॥ ४२ ॥

कविशिरोमणि श्रीसमन्तभद्राचार्य्यको नमस्कार है। क्योंकि जिनके वचनरूपी वज्रपातसे कुमतरूपी पर्वत टूक टूक होगये ॥ ४३ ॥

बड़े २ नैयायिकों, वादियों तथा वाचालों और कवियोंके शिरपर समन्तभद्रस्वामीका यश चूड़ामणिका सा समलङ्कृत करता रहता है ॥ ४४ ॥

देदीप्यमान मूर्त्तिवाले श्रीदत्त आचार्य्यको मेरा नमस्कार है। इन्होंने प्रवादीरूपी हाथीको विदलित करनेमें अपनेको सिंहके ऐसा दिखलाया ॥४५॥

विद्वन्मण्डलीमें जिनके नाम सुननेसे लोगोंका गर्व नष्ट होता था वह यशोभद्र हमारी रक्षा करें ॥ ४६ ॥

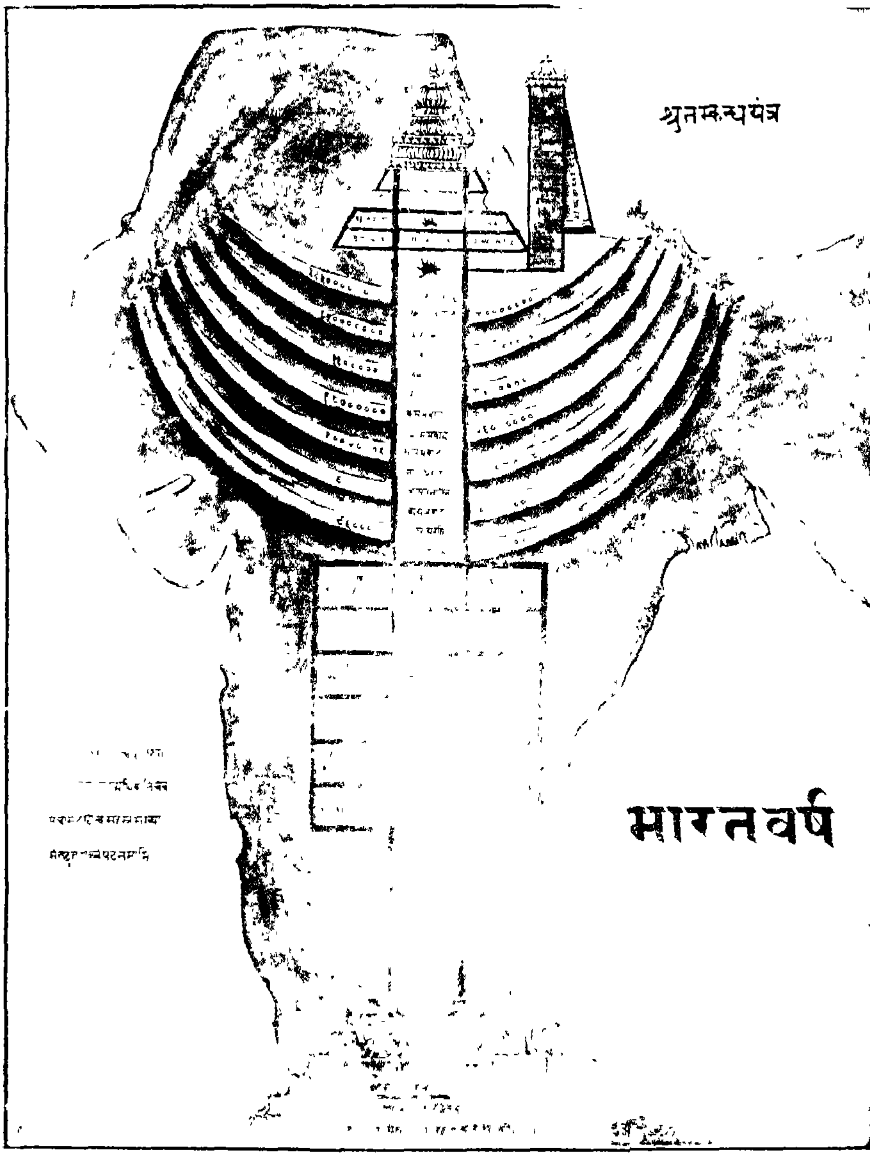
चन्द्रमाके ऐसा शुभ्रयश वाले प्रभाचन्द्र कविकी मैं स्तुति करता हूं क्योंकि इन्होंने चन्द्रोदय नामक काव्य बनाकर जगत को परमाह्लादित कर दिया ॥ ४७ ॥

भला कहिये तो 'चन्द्रोदय' बनानेसे जो इन्हें यश हुआ उसकी कौन नहीं प्रशंसा कर सकता है। क्योंकि इनका स्वच्छ यश कल्पपर्य्यन्त सज्जनोंसे शिरोधार्य्य था ॥ ४८ ॥

जिनके उपदेशसे चतुष्टय (सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चरित्र, सम्यग्दर्शन और तप) की आराधना करके संसार समुज्ज्वल होगया। वह शिवकोटि मुनीश्वर हमारे मोक्षमार्गकी रक्षा करें ॥ ४९ ॥

काव्य-परिशीलन करनेमें जिनकी जटारूपी प्रबल वृत्तियां (टीकाएँ अथवा श्लोक) काव्याभिप्रायको कहती हुई मालूम पड़ती हैं वह जटाचार्य्य हमारी रक्षा करें ॥ ५० ॥

श्रुतस्कन्ध यन्त्रका चित्र।



था हरा यह यन्त्र-द्रुम पठनादि पाठन कर्म्ममें।
थी सुवर्णसमा ये भारत-भूमि भी बहु-धर्म्ममें॥

धर्मसूत्रका पीछा करनेवाली और मनोहर जिनकी वाणीरूपिणी मणियोंने पुराणको सुशोभित किया, ऐसे काणभिक्षु की जय हो ॥ ५१ ॥

कवियोंमें कितने तीर्थङ्कर भी होगये हैं, किन किनका वर्णन किया जाय। इन लोगोंके बचनमय-तीर्थने विद्वानोंके वाङ्मलको नष्ट कर दिया ॥ ५२ ॥

श्रीअकलङ्क भट्ट और श्रीपाल आदि आचार्य्योंके शुद्ध गुण विद्वानोंके हृदयगत होकर हारके से दीख पड़ते हैं ॥ ५३ ॥

कविताकी अन्तिमसीमा, वक्तृताका परम-सुन्दर-स्थान और न्यायशास्त्रके अनन्य-ज्ञाता श्रीवादिसिंह को भला कौन नहीं पूजा करेगा। यानि सब विद्वद्गण इनको सम्मानित करेंगे ॥ ५४ ॥

माननीय भट्टारकोंमें यशस्वी श्रीवीरसेन जी हैं। इसलिये कविकदम्ब के मुनि और पवित्रात्मा यह वीरसेन हमे पवित्र करें ॥ ५५ ॥

इन भट्टारक महात्मामें लौकिकज्ञता और कविता दोनों टिकी हुई हैं और दूसरी बात यह है कि वाग्मी श्रीवृहस्पतिजीसे भी इनकी वाचालता बढ़ी चढ़ी है ॥ ५५ ॥

सिद्धान्तशास्त्र (जयधवल महाधवल) के बनानेवाले उपर्युक्त हमारे गुरु (श्रीवीरसेन) जीके कोमल चरणारबिन्द मेरे मनरूपी सरोवरमें चिरकाल तक रहें ॥ ५६ ॥

उक्त वीरसेनजीकी वाणी कैसी समुज्वल है और इनकी पवित्र तथा स्वच्छ कीर्त्ति भी चारो तरफ फैली हुई है। ऐसे सारे संसारको प्रकाशमय करनेवाले श्रीवीरसेन गुरुको मैं अनन्त प्रणाम करता हूं ॥ ५७ ॥

तपोलक्ष्मीके जन्मस्थान और पाण्डित्य तथा शान्ति परिणामिताके तो मानो निधि, पण्डितगणा-अगण्य श्रीजयसेन गुरु हमे रक्षा करें ॥ ५८ ॥

जिसने वाणी और अर्थभरे सब पुराणका संग्रह किया, वही कविपरमेश्वर संसारमें कवियोंसे पूज्य है ॥ ५८ ॥

और बहुतसे कवि हैं। इस समय उनकी चर्चा करनी व्यर्थ है। जो जगत्में पूज्य हैं वेही शुभ्र मंगलार्थीसे समाहृत हैं ॥ ६० ॥

आदिपुराणमें श्रीगुणभद्राचार्य्यकी उत्थानिका।

श्रीधर्मध्वज वृषभदेव स्वामी हम लोगोंको अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन,

अनन्त वीर्य्य, अनन्त सुख दें। क्योंकि इनका मुक्तिमार्ग बड़ा ही परिष्कृत है॥ १॥

महात्मा श्रीजिनसेनाचार्य्यने इस पुराणका सारा तत्व वर्णन कर दिया। इसके शेषभागको पूर्त्ति करनेके लिये मेरा उद्योग एक बड़े कोठेके बन जानेपर उसमें कुछ छुटे हुए कार्य्यकी पूर्त्तिका सा है॥ ३॥

सुन्दर पत्र तथा सत्परिणामरूपी फलसे शोभायुक्त और पौढ़ शब्दोंके अर्थसे भरे इस पुराणमें जो मेरी उक्ति है उसको पल्लवके ऐसा विद्वज्जन अपने श्रवणमें संलग्न करें यानि सुने॥ १२॥

मेरे पूज्यपाद श्रीगुरुजीने इसका पूर्वार्द्ध बनाया किन्तु परार्द्ध भी उन्हींका सा सदलंकार और सच्छन्दसे युक्त हो ऐसी मुझे आशा नहीं॥ १३॥

इसमें सन्देह नहीं कि ऊखके मूलगत रसके ऐसा पूर्वभाग बहुत ही सरस हुआ है, किन्तु मैंने किसी प्रकार इसकी समाप्तिके लिये प्रारम्भ किया है अर्थात् उतनी सरसता होनेकी आशा नहीं।

पर मुझे यह भी निश्चय है कि इसका शेषभाग भी विरस नहीं होगा, क्योंकि धर्म्म-सम्बन्धिनी बातें आजतक किसीने विरस कहीं ही नहीं॥ २०॥

यदि मेरा वचन सरस होतो वह मैं अपने गुरुही की महिमा समझता हूं क्योंकि सुस्वादु फल होनेका कारण वृक्षही होता है॥ २१॥

मेरे हृदयमें गुरुजी महाराज विराजमान हैं और वहीं से वाणी निकलेगी तो हमे चिन्ताही किस बातकी; क्योंकि वे वहां बैठे बैठे मेरी वाणीका संस्कार करें होंगे। इसलिये इसमें मेरा परिश्रम नहीं समझना चाहिये॥ २२॥

जैसे पटरानियां केवल सन्तान उत्पन्न करती हैं, उसका रक्षण उनकी दासियां करती हैं। उसी तरह मेरी बुद्धि इस कविता-कृतिको समुद्भूतकरती है। इसका प्रचार तथा रक्षा बुद्धिशाली कवीश्वरही की बुद्धि करेगी॥ २३॥

अर्ज्जुनरूपी सत्कविके बाणरूपी शब्द प्रयुक्त होकर कर्णरूपी दुष्ट मनुष्यको व्यथित करते हैं॥ २४॥

जिनसेन मतानुयायीजन उनके पुराणमार्गका अवलम्बनकर संसार-समुद्रसे पार होते हैं तो मेरेलिये भला पुराणका पार होना कौन बड़ी बात है॥ २५॥

प्रशस्ति।

कुलकरोंमें पन्द्रहवें कुलकर और तीर्थङ्करोंमें आदितीर्थङ्कर श्रीऋषभदेव स्वामीने कर्म्मभूमिके आदिमें प्रजाओंको जीवन-विधि और मोक्ष-मार्ग प्रकट किया। इनको नवक्षायिक-लब्धियोंमें उत्कृष्ट तथा निरावरण केवल-ज्ञान हुआ। वही समस्त पृथ्वीके पिता आदितीर्थङ्कर श्रीऋषभनाथ स्वामी मङ्गल करें।

सप्तपदार्थके तत्वोंको प्रत्यक्ष करनेवाले, समीचीन धर्म्मरूपी मार्गके पालक तथा धर्म्मके हेतु इक्ष्वाकु-कुल-तिलक श्रीऋषभनाथ स्वामी भव्य-प्राणियोंका उत्कृष्ट सिद्धि-साधन करें।

नाभिराजाके पुत्र होनेपर भी विद्वज्जनोंसे पूजनीय साक्षात् स्वयम्भू हुए। समस्त परिग्रहसे रहित होनेपर भी समस्त प्राणियोंके स्वामी कहे जाते थे। उदासीन होने पर भी प्राणि-गणोंके सच्चे उपकारी थे। दानरहित होनेपर भी विद्वज्जनोंसे पूज्यपाद थे। वे आपलोगोंको शान्तिके लिये हों।

उत्तरपुराण।

मङ्गलाचरण।

जिनके निर्मल-वचन शिष्ट-मनुष्योंका मनो-मालिन्य अशेष प्रक्षालित करते हैं, वह श्रीमान् अजित जिन जयशाली होवें ॥ १ ॥

उनको मोक्षलक्ष्मीकी सिद्धिका समागम करनेवाले पुराणको मैं कहता हूं, क्योंकि इसके श्रवणमात्रसे भविकोंको अप्रतिहत सिद्धि होती है ॥ २ ॥

छिहत्तरवें अध्यायका कुछ भाग।

इस भरतक्षेत्रमें अन्त्यकेवलियोंमें जम्बूनाम केवली अन्तमें हुए। इनका ज्ञान लोकालोकके प्रकाशित करनेमें एक प्रकाशमय है ॥ १५ ॥

इनके बाद अत्यन्त विशुद्ध परिणामके धारक नन्दीमुनि, नन्दीमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु ये पांच श्रुतकेवली हुए ॥ १६ ॥ १७ ॥

तत्पश्चात् विशाखाचार्य्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जयनाम, सिद्धार्थ, धृतषेण, विजय, बुद्धिल, गङ्गदेव और क्रमशः ये ग्यारह मुनिराज बुद्धिमान श्रीधर्म्मसेनके साथ साथ दशपूर्वके धारी हुए ॥ १८ ॥ १९ ॥

इसके उपरान्त नक्षत्राचार्य्य, यशःपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन और कंसाचार्य्य ये

पांच मुनि जैनधर्मके प्रकाशक, भव्योंके लिये कल्पवृक्षकी तरह ग्यारह अङ्गके पण्डित हुए ॥ २० ॥ २१ ॥

सुभद्र, यशोभद्र, प्रकृष्टज्ञानी भद्रबाहु और चौथे लोहाचार्य्य ये सब एकाचारांगके पाठी हुए ॥ २२ ॥

जिनेन्द्रके मुखसे निकला हुआ पवित्र तथा पापको नष्ट करनेवाला शास्त्र इन उपर्य्युक्त मुनियोंको परस्पर उज्जीवित करता रहा ॥ २२ ॥ २३ ॥

जिनसेन हैं शिष्य जिनके ऐसे महर्द्धिशाली तपोधन वीरसेनादि मुनियोंने श्रुतज्ञानका उपदेश दिया कि इस दुःखमय पञ्चम-कालमें संसारकी ऐसी ही व्यवस्था रहेगी ॥ २४ ॥ २५ ॥

अन्तिम भाग।

श्रीमूलसंघरूपी जलनिधिमें देदीप्यमान मणिकी तरह महापुरुषोंका स्थान सेनसंघ हुआ ॥ ३ ॥

इसी सेनसम्प्रदायमें अनेक प्रवादीरूप हस्तियोंको पराजित करनेवाले शूराग्रणी श्रीवीरसेन भट्टारक हुए ॥ ४ ॥

... ...

इन वीरसेनके शिष्य जिनसेन हिमालयसे गङ्गाकी नाईं, सर्वज्ञसे अखिल-शास्त्रकी एकमूर्त्ति दिव्यध्वनिकी तरह और उदयाचल पर्वतसे चमकते हुए सूर्य्यकी तरह हुए ॥ ५ ॥

जिन जिनसेनके उन्नत नखांशु-जालसे निकले हुए जलसे उत्पन्न होते हुए चरणकमल की धूलिसे धूसर होगयी है मुकुटाग्र-रत्नद्युति जिसकी ऐसे अपनेको परम पवित्र माननेवाले अमोघवर्ष हैं शिष्य जिनके वही श्रीमान् जिनसेनाचार्य्यके चरण-कमल संसारके मङ्गलकारी हो ॥ १० ॥

... ...

चन्द्रमाके सहवर्त्ती आकाशके एकमेव सूर्य्यके से दशरथगुरु श्रीजिनसेनाचार्य्यके सहधर्म्मी हुए। इनके स्वच्छ धर्मतत्व भरे ज्ञानोपदेशसे यह सार संसार प्रकाशमय हुआ ॥ १३ ॥

इनके प्रदीप्तवाक्य-समूहमें आयनेमें दिखते हुए बिम्बमण्डलके ऐसा, अखिल

इसमें सब शास्त्रोंका ऐसा सद्भाव भरा हुआ है कि एक लड़का भी उसको बहुत शीघ्र समझ सकता है ॥ १४ ॥

न्यायशास्त्रका तत्त्व प्रकट करनेवाले, सांसारिक तथा पारमार्थिक विद्याके सिद्धान्तोंको परिशीलन करनेसे परिवर्द्धित बुद्धिवाले, अनेक नय तथा प्रमाणमें निष्णात, और प्रशंसनीय गुणोंसे समलङ्कृत दशरथ गुरु और गुणभद्राचार्य्य जिनसेनाचार्य्यके प्रिय शिष्य हुए ॥ १५ ॥

... ...

सभीछन्द और अलङ्कारका लक्ष्य, सूक्ष्मार्थ तथा गूढ़पद की रचनावाली एक "गद्यकथा" कविपरमेश्वरने बनायी ॥ १८ ॥

... ...

जिनसेन भगवान् की उक्तिने कवियोंके मिथ्या अभिमान मर्दित कर दिये। जिनसेनाचार्य्य सिद्धान्तोंके रचयिता तथा शिष्योंके सदुपदेष्टा थे ॥ २० ॥

गुणभद्राचार्य्यने थोड़ा समय शेष रहनेकी वजहसे तथा बहुत बढ़ जानेके भयसे बुद्धिशाली श्रीजिनसेनाचार्य्यका शेषभाग संग्रह किया ॥ २१ ॥

... ...

सकल-शास्त्र-वेत्ता, सच्चारित्रधारी (निर्ग्रन्थचारित्रके धारक। ऐसे "लोकसेन" मुनीश, कविवर जिनसेनाचार्य्यके मुख्य शिष्योंमें थे, उनको इस पुराणमें बहुत सहायता पाकर सत्पुरुषोंके द्वारा अपने गुरुको विनयत था अपनी मान्यता दिखलायी ॥ २८ ॥

अकालवर्षके हाथियोंको प्यास जब अपने मदरूपी नदियोंके धारा-प्रवाहसे सराग तथा कड़ुए जल पीकर नहीं गयी तब इन्होंने कौमार नामक घने चन्दनवाले, समुद्रजल-कणोंसे ठंढी ठंढी हवासे कम्पित वृक्षवाले और सूर्यास्तहोनेसे छायाप्रधानवाले वनकी शरण ली ॥ ३० ॥

दुग्ध-समुद्रमें पर्वतके साथ रहनेसे, कृष्णकी छातीमें गोपियोंके कुचोद्घट्टनसे और पद्मको रात्रिमें सङ्कुचित होनेसे जो लक्ष्मी चिरदुःखिनी थी उन्होंने भुजास्तम्भसे जकड़ी हुई, मुक्तामालाके ढुरनेसे तोरणयुक्त और खूब चौड़ी अकालवर्षकी छातीमें बहुत कालों तक सुखपूर्वक निवास किया ॥ ३१ ॥

स्वच्छ यशके धारी, सारे शत्रुओंको ध्वस्त करनेवाले अकालवर्ष जब सारी पृथ्वीपर अपना अप्रतिहत शासन कररहे थे ॥ ३२ ॥

पद्मकी कलियोंके समूहको प्रकाश करनेवाले, सत्कीर्त्ति-श्रातसे प्रकाशित

और अखिल-शत्रु-समूहरूपी अन्धकारको नष्ट करनेवाले श्रीमान् लोकादित्यके रहते रहते ॥ ३३ ॥

चेल्लध्वजके छोटे भाई, "चेल्लकेतनके लड़के चन्द्रमाके ऐसे उज्ज्वल कीर्त्तिवाले "चेल्लकेतन" के जैनेन्द्रधर्म्मकी उन्नति करते समय ॥ ३४ ॥

सब वनवास देशको निष्कण्टक बहुत दिनों तक शासन करने पर, सब नगरोंमें श्रेष्ठ, अपने पुरुषोंसे नाम रक्खे हुए बँका पुरमें ॥ ३५ ॥

मङ्गल करनेवाले, सारे जनको सुख देनेवाले पिङ्गलनामके शक सम्वत् ८१० आषाढ़ कृष्ण पञ्चमी गुरुवारको सिंहलग्न, कर्कराशिस्थ सूर्य्य, पूर्वाभाद्रपदस्थ चन्द्र, धनुराशिस्थित मङ्गल, मिथुनका बुध, वृषराशिस्थित वृहस्पति, कर्कराशिस्थित शुक्र, वृश्चिकराशिस्थित शनि और तुलाराशिस्थित राहुके रहने पर यह उत्तरपुराण समाप्त हुआ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

इस पुराणमें धर्म्म, कविता, सुक्तिपद और तीर्थङ्करोंका चरित्र है। अथवा यों कहिये कि जिनसेनके मुखसे निकली हुई जो बात है वह किसका मन नहीं हरण कर सकती ॥ ३९ ॥

श्रीकवि-वर जिनसेनाचार्य्य-रचित ऋषभदेवजीके इस सुन्दरपुराणकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। विशेष बात तो यह है कि इसमें गुणभद्राचार्य्यकी उक्ति बड़ी ही विचित्र है। और कहांतक कहा जाय सभी कवि-करीन्द्रोंके लिये सिंहिनीकी सी गुणभद्राचार्य्यकी उक्ति है इसलिये उनकी जय हो ॥ ४० ॥

मित्रो ! यदि तुमलोग सभी कविरत्नोंकी समीचीन उक्तिके सुननेसे सरसचित्त होना चाहते हो तो केवल इस "महापुराण" त्रिषष्टिशलाका पुरुषोंके चरित्रार्णवकी कथा सुनो। इसमें कवितागुण तो श्लोक श्लोकमें भरा हुआ है। विशेष प्रशंसा कहां तक की जाय क्योंकि इस पुराण (उत्तरपुराण) के कवि स्वयं गुणभद्राचार्य्य ही तो हैं ॥ ४२ ॥

उपर्युक्त महापुराणके कर्त्ता श्री १०८भगवज्जिनसेनाचार्य्य और श्री१०८ भगवद्गुणभद्राचार्य्य की परिचय-पट्टावली।

वन्दे जिनवरम्।

पट्टावली: श्रीसेनगणस्य

स्रग्धरावृत्तम्।

श्रीमन्मेरवाचलोद्यच्छिखरिगतलसत्पाण्डुकासारपीठे
देवेन्द्रानूनवाहाभरणमितमहारत्नकुम्भैः प्रपूर्णैः।
दुग्धाम्भोराशिनीरैः सकलगुणनिधिं स्नापितस्तापलोपः
पायाद्भव्यानजस्रं वृषभ-जिनपतिः श्रीपतिं भूपतीशः॥

गद्य।

देव! स्वस्ति समस्तवस्तुविस्तारकशास्तोप्यतिप्रमुखचतुर्णिकायामरनिकरविधुलतरललितमौलितलकलित-माणिक्यमयूखमालालङ्कृतक्रमकमलयुगलस्य विंशतिसहस्रसोपानविराजमानधूलिशालाद्येकादशभूम्यभिरामधनदविरचितसमवसरण—विराजमानश्रीराजहंसावतारस्य श्रीमदादिपरमेश्वरस्य मुखकमलविनिर्गत 'पञ्चास्तिकाय' 'षड्द्रव्य' 'सप्ततत्व' 'नवपदार्थ' पारावारपरायणश्रीमूलसङ्घश्रीमद्वृषभसेनगणधरान्वयपारपर्यागते श्रीवृषभसेन—श्रीसिंहसेन-चारुसेन-वज्रनाभि-चामरबलदत्त-अनगार-कुन्थु-धर्ममन्दर-जय-अरिष्टसेन-वज्रायुध-स्वयम्भू--कुम्भ—विशाखमल्लि-सुप्रभ-वरदत्त-स्वयम्भूगौतमाश्चेति सभामुख्यगणधरदेवानाम्॥ १॥

श्रीमति श्रीमहावीरतीर्थङ्करपरमदेवमोक्षं गते द्वाषष्ठिवर्षपर्यन्तशुद्धधर्मोपदेशकर्त्तृणां, मिथ्यात्वान्धकारसमूहस्य समूलनाशकरपरमोद्योतदिनकरसमानानां, शिवकरगणधरपदधर—गौतमस्वामि--सुधर्माचार्य्य-तच्छिष्यजम्बूनामकेवलज्ञानलब्ध-शिवपदप्राप्तानाम्॥ २॥

तदनन्तरद्वादशाङ्गश्रुतसारासारविचारचतुरसज्जनजनमनोऽभिलषितपदार्थप्रकाशनशीलानां, गगनसङ्ख्यितदशवर्षपर्य्यन्तपरमागमघनवर्षणसन्तुष्टचित्तानां श्रीविष्णुयोगिनन्दिमपराजितगोवर्द्धनभद्रबाहुनामाङ्कित-पञ्चश्रुतकेवलिकेवलीकल्पानां, सामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्यातपञ्चविधचारित्रप्रतिभारधुरंधराणाम्, अयोत्यधिकाशतमर्य्यादस्तुतजनविवर्द्धनपूर्णप्रशिक्षाच्छनविभावि-

णाणाम्, दशपूर्वसमयसारसलिलनिकरपारदुःप्राप्यसुखतरप्राप्तानां, व्रतधर-प्रोष्ठिलाचार्य-क्षत्रियाचार्य-जयसेनाचार्य-(सेन) धृतिषेण-विजयनाम-बुद्धि-गङ्गदेव-धर्म्मसेनाचार्य्याणां ॥ ३ ॥

ततः एकादशाङ्गशास्त्रद्वाविंशत्यधिकद्विशतसंवत्सरपरिमितपरमपावनसमर्थानां, नक्षत्राचार्य-जयपाल-मुनीन्द्र-पाण्डुनामाचार्य्य-ध्रुवसेन-कंसनामयोगीश्वराणां ॥४॥

अतएव आचाराङ्गपूर्णपवित्रवसुशशिशशधरवर्षमात्रसद्धर्म्मश्रीविस्तारकाणां, युगलनेत्रपरिषद्दसद्दनसिंहपराक्रमसुभद्राचार्य्य-यशोभद्र-भद्रबाहु-लोहार्य्यजिनसेनपूज्यपूज्यानाम् ॥ ५ ॥

तत्सूत्राणां सार्द्धत्रिकोटित्रयग्रथितटीकाप्रकुन्ज्येष्ठशुक्लपञ्चमीदिने निर्मापकलक्ष्मीसेन-पदकमल-रविषेणाचार्य्याणाम् ॥ ६ ॥

कुमतान्धकारभानुशिवायनस्वामिनां, व्याकरणमहेश्वराणाम् तार्किकशिरोमणीनां, रामसेन-कनकसेन-बन्धुषेण-विष्णुषेण-मल्लिषेण भट्टारकाणाम् ॥ ७ ॥

गणितशास्त्रप्रवीणपूर्वकृतीसी-उत्तरकृतीसीअनेकवस्तु-संख्याकथकश्रीमहावीराचार्य्याणां ॥ ८ ॥

परमशब्दब्रह्मरूपत्रिविद्याधिपपरवादिपर्वतवज्रदण्डश्रीभावसेनभट्टारकाणाम् ॥ ९ ॥

न्यायविद्या-निपुण-वादीन्द्रचतुर्विंशतियक्षीदेवताप्रत्यक्षीभूतश्रीअरिष्टनेमिभट्टारकाणाम् ॥ १० ॥

सेनसङ्घनन्दिसङ्घादिदशसङ्घनिरूपकमहानिमित्तकुशलश्रीअर्हद्बल्या-चार्य्याणाम् ॥ ११ ॥

दक्षिणमथुरानगरनिवासिक्षत्रियवंशशिरोमणिदक्षिणतैलङ्गकर्णाटकदेशाधिपतिचामुण्डरायप्रतिबोधकबाहुबलिप्रतिबिम्बगोमटस्वामिप्रतिष्ठाचार्य्यश्रीअजितसेनभट्टारकाणाम् ॥ १२ ॥

चूलगिरिशिखरे पुरुषपाषाणदर्शनलब्धप्रमोदरावणश्रेष्ठिकृतवृषभनाथप्रतिबिम्बमहामहोत्सवकर्तृश्रीगुणसेनभट्टारकाणां ॥ १३ ॥

श्रीमदुज्जयिनीमहोकालसंस्थापनमहाकाललिङ्गमहीधरवाग्वज्रदण्डविष्याविष्कृतश्रीपार्श्वतीर्थेश्वरप्रतिद्वन्द्वश्रीसिद्धसेनभट्टारकाणाम् ॥ १४ ॥

नवतिलिङ्गदेशाभिरामद्राक्षाभिरामभीमलिङ्गस्वयंम्वादिस्तोटकोत्कीरणरुद्रसान्द्रचन्द्रिकाविशदयशः श्रीचन्द्रजिनेन्द्रसद्दर्शनसमुत्पन्नकौतूहलकलितशिवकोटिमहाराजतपोराज्यस्थापकाचार्य्यश्रीमत्समन्तभद्रस्वामिनाम् ॥ १५ ॥

सकलगुणमणिगणभरण-भूषित श्रीशिवकोटिभट्टारकाणाम् ॥ १६ ॥

यादवकुलकुमारदीक्षिताऽरिष्टनेमिक्रीडानिवासरैवतकपर्वतकाञ्चनगुहायाम् श्रीमज्जिनचक्रयक्षोद्धारभारधुरन्धरश्रीवीरसेनभट्टारकाणाम् ॥ १७ ॥

धवल महाधवलपुराणादिसकलग्रन्थकर्त्तारः श्रीजिनसेनाचार्य्याणां ॥ १८ ॥

उभयपरिग्रहपरित्यक्तोभयतपःकामिनीरूपावतारद्वादशाङ्गचतुर्दशपूर्वपञ्चप्रज्ञप्तिपञ्चविधवाङ्गादिसकलश्रुतपारावारपरायणसकलगुणमणियणाभरणभूषितश्रीगुणभद्राचार्य्याणाम् ॥ १९ ॥

संस्कृत सेनगणकी पट्टावलीका भाषानुवाद और उसकी संक्षिप्त नामावली।

श्री१००८ श्रीआदितीर्थंकरके गणधरोंके निम्नलिखित नाम हैं।

१०८ श्रीवृषभसेन स्वामी	१		श्री १०८ अरिष्टसेन	११
,, सिंहसेन	...	२	,, स्वयम्भू	१२
,, चारुसेन	...	३	,, कुम्भ	१३
,, वज्रनाभि	...	४	,, विशाख	१४
,, चामर	...	५	,, मल्लिषेण	१५
,, बलदत्त	...	६	,, सुप्रभ	१६
,, अनगार	...	७	,, वरदत्त	१७
,, कुन्थु	...	८	,, स्वयम्भू	१८
,, धर्मसन्दर	...	९	,, गौतम	१९
,, जय	...	१०		

श्री १००८ महावीर स्वामी (अन्तिम-तीर्थङ्कर)के मोक्ष पधारने पर ६२ वर्षतक निम्नलिखित महानुभाव आचार्य्योंने अपने उपदेशसे संसारका कल्याण किया।

गौतम स्वामी १ सुधर्म्माचार्य्य २ जम्बू स्वामी ३ (अन्तिम केवली)

इनके बाद १०१ वर्षपर्य्यन्त निम्नलिखित पांच श्रुतकेवलियोंने तत्वोपदेश किया।

श्रीविष्णुमुनि स्वामी १
श्रीनन्दिमित्र २
अपराजित ३

गोवर्द्धन	४
भद्रबाहु	५

इन पांच श्रुतकेवलियोंके बाद १०८ वर्षतक इनके निम्नलिखित शिष्य हुए।

श्रीव्रतधर स्वामी	१	विजयनामाचार्य्य	६
प्रौष्ठिलाचार्य्य	२	बुद्धिलाचार्य्य	७
क्षत्रियाचार्य्य	३	गङ्गदेव	८
जयसेनाचार्य्य	४	धर्म्मसेनाचार्य्य	९
धृतषेणाचार्य्य	५		

इनके बाद २२२ वर्षतक निम्नलिखित आचार्य्य एकादशाङ्गके धारी हुए।

नक्षत्राचार्य्य १ जयपालाचार्य्य २ मुनीन्द्र ३ पाण्डुनामाचार्य्य ४ ध्रुवसेनाचार्य्य ५ कंसाचार्य्य ६

इनके बाद ११८ वर्ष तक नीचे लिखे आचार्य्योंने धर्म्मप्रचार किया।

सुभद्राचार्य्य १ यशोभद्र २ भद्रबाहु ३ लोहाचार्य्य ४ जिनसेनाचार्य्य ५

यहींसे सेनसङ्घ प्रारम्भ हुआ अर्थात् यहींसे मूलसङ्घमें से सेनसङ्घ अलग हुआ और इस सङ्घमें क्रमशः निम्नलिखित आचार्य्य हुए।

रविषेणाचार्य्य १ शिवायन २ रामसेन ३ कनकसेन ४ बन्धुषेण ५ विष्णुसेन ६ मल्लिषेण ७ श्रीमहावीराचार्य्य ८ भावसेन ९

भट्टारकोंकी नामावली।

अरिष्टनेमी १० अर्हद्बली ११ अजितसेन १२ गुणसेन १३ सिद्धसेन १४ समन्तभद्र १५ शिवकोटि १६ वीरसेन १७ जिनसेन १८ गुणभद्र १९

क्रमशः।

वन्दे जिनवरम्।

जिन भगवान्‌ने लक्ष्मी वा देवकृत अनेक प्रकारकी चित्रकारीसे चित्रित अचल सुमेरु पर्वतके ऊंचे शिखरपर पाण्डुशिलाख्य श्रेष्ठ सिंहासनपर आरूढ होकर क्षीरसमुद्रके जलसे भरे अमूल्य रत्नोंके घडोंसे संसार-ताप दूर करनेके लिये स्नान किया। वह सकल-गुणोंके सूर्य, स्वर्ग मध्य पाताल तीन लोकके स्वामी, इन्द्रचक्रवर्ती धरणीन्द्रोंके स्वामी और अनन्तचतुष्टयादि अन्तः समवशरणादि बाह्य लक्ष्मीके स्वामी वृषभजिनपति श्रीऋषभतीर्थंकर दो भव्यजीवोंको निरन्तर जिसप्रकार हो उसप्रकार रक्षा करें।

पट्टावलीका भाषानुवाद।

हे देव आप्साय हो। समस्तवस्तुके स्वरूपको प्रकाश करनेवाले, इन्द्रादि चतुर्निकायके देवोंके मुकुटोंमें लगे हुए बड़े बड़े और अत्यन्त मनोहर माणिक्यादि रत्नोंकी किरणोंसे सुशोभित-चरणकमल वाले अथवा माणिक्यादि रत्नोंकी किरणोंको जिनके चरणकमलोंने सुशोभित किया है ऐसे श्रीमान् आदिपरमेश्वर श्रीऋषभदेव कुबेर-रचित बीस हजार सीढ़ियोंसे शोभायमान, धूलिशालादि कोट, ग्यारह भूमियोंसे रमणीय समवसरणमें विराजमान, नीरक्षीरवत् अनादि-कर्म-बद्धनिजात्म-स्वरूप क्षीरको कर्म-रूप नीरसे अत्यन्त पृथक कर क्षायिक केवलज्ञानादि अनन्तचतुष्टयरूप निजस्वरूप क्षीरके अनुभवी, अपूर्व राजहंसावतार श्रीआदिनाथ भगवान्‌के मुखसे निकला हुआ, पंचास्ति-काय, षट्द्रव्य, सप्ततत्व और नवपदार्थरूप जलसे भरे श्रुतरूप समुद्रमें तत्पर श्रीमूलसंघ श्रीमान् वृषभसेन गणधरकी वंशपरंपरामें श्रीवृषभसेन, श्रीसिंह-सेन, श्रीचारुसेन, वज्रनाभि, चामर, बलदत्त, अनगार, कुन्थु, धर्मसमन्दर, जय, अरिष्टसेन, वज्रायुध, स्वयम्भू और गौतम इस प्रकार सभामें प्रधान गणधर देव हुए।

अन्तरंग बहिरंग लक्ष्मीसे युक्त श्रीमान् परमदेव महावीरस्वामीके मोक्ष जानेपर ६२ वर्ष-पर्यन्त शुद्धधर्म यानि वीतरागधर्मके उपदेश करनेवाले मिथ्यात्वरूपी अन्धकारके समूहको मूलसे नाश करनेमें और सुन्दर उद्योत करनेमें सूर्यके समान, मोक्षके करनेवाले गणधर-पदके धारक गौतम स्वामी केवली और सुधर्माचार्य्य, उनके शिष्य जम्बूस्वामी केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष-पदको प्राप्त हुए।

३—उनके उपरान्त द्वादशाङ्ग-श्रुतकथित सार तथा असार पदार्थोंके विचारमें चतुर अर्थात् पदार्थोंके प्रकाश करनेवाले और १०० वर्ष तक जिन-सिद्धान्तरूप मेघ-वर्षासे सन्तुष्ट चित्तवाले श्रीविष्णुमुनि, नन्दिमित्र, अपराजित गोवर्द्धन, भद्रबाहु, पांच श्रुतकेवली—केवलीभगवान्‌के समान पांच चारित्रके धारक हुए।

४—१८० वर्षके भीतर ही कीर्त्तिको बढ़ानेके लिये चन्द्रमाके समान ऐसे शिष्य ११ अंग और १० पूर्वकेधारी तथा जिनसिद्धान्तके पाठी व्रतधर, प्रोष्ठिला-

चार्य, जयसेनाचार्य, धृतषेण, विजयनाम, बुद्धिल, गंगदेव और धर्म्मसेनाचार्य हुए।

५—उनके उपरान्त २२२ वर्षमें ११ अङ्गके पाठी, शुद्ध और वीतराग चारित्रके धारक नक्षत्राचार्य, जयपाल, मुनीन्द्र, पाण्डुनामाचार्य, ध्रुवसेन और कंसनाम मुनीश्वर हुए।

६—उन्हींके शिष्य-परम्परागत आचाराङ्गके पूर्ण पाठी ११८ वर्षमें २२ परिसहोंके सहन करनेवाले श्रीशुभद्राचार्य, यशोभद्र, भद्रबाहु, लोहाचार्य और जिनसेन ये परमपूज्य आचार्य हुए।

७—और इन पूर्वोक्त आचार्य-निर्मित-सूत्रोंको साढ़ेतीन करोड़ श्लोकरचना कर टीकाको करते हुए ज्येष्ठ शुक्ल पञ्चमीके दिन श्रीलक्ष्मीसेन आचार्यके चरणकमल निर्माण करानेवाले रविषेणाचार्य जी हुए।

८—मिथ्यात्व-रूप कुमत अन्धकारके दूर करनेमें सूर्य्यके समान शिवायन स्वामी हुए।

९—व्याकरण शास्त्रके पारगामी न्याय-विद्यामें निपुण रामसेन, कनकसेन, बन्धुषेण, विष्णुषेण और मल्लिषेण भट्टारक हुए।

१०—गणितशास्त्रमें चतुर पूर्वछत्तीसी और उत्तरछत्तीसी आदि शास्त्रोंके कर्ता और अनेक वस्तुसंख्याके कहनेवाले गणकाग्रणी श्रीमहावीराचार्य हुए।

११—परमविद्या, शब्दविद्या और ब्रह्मविद्या इन त्रिविद्याओंके वेत्ता, परवादीरूप पर्वतोंके भेदन करनेमें वज्रके समान श्रीभावसेन भट्टारक हुए।

१२—न्याय-विद्यामें निपुण समुद्रके समान धीर, और जिनके वंशमें चौवीस यक्षिणी देवता प्रत्यक्ष हुईं वही श्रीअरिष्टनेमी भट्टारक हुए।

१३—सेनसंघ नन्दिसंघादि १० संघ निरूपण करनेवाले महानिमित्त शास्त्र जो अष्टांगनिमित्त शास्त्र (ज्योतिष शास्त्र) है उसमें प्रवीण श्रीअर्हद्बली आचार्य हुए।

१४—दक्षिण मथुरानगरके रहनेवाले, क्षत्रियवंशके शिरोमणि दक्षिण तैलंग कर्णाटक देशोंके स्वामी राजा चामुण्डरायको प्रतिबोध करानेवाले बाहुबल स्वामीका प्रतिबिम्ब और गौमट्टस्वामीकी प्रतिष्ठा करानेमें प्रतिष्ठाचार्य श्रीअजितसेन भट्टारक हुए।

१५—चूलगिरि पर्वतके शिखरपर पुरुष-प्रमाण पाषाणके दर्शनसे पाया है आनन्द जिसने ऐसा वावनश्रेष्ठीका किया हुआ श्रीवृषभनाथस्वामीके प्रतिबिम्ब का महामहोत्सव, पंच कल्याणकके कर्त्ता श्रीगुणसेन भट्टारक हुए।

१६—श्रीउज्जयिनी नगरीमें श्रीपार्श्वनाथ तीर्थंकरके चैत्यालयपर कलश स्थापनाके समय महाकाललिङ्ग नामक राजाकी वज्रदण्डमयी वाणीसे भृत्यों द्वारा सामने मंगाया श्रीपार्श्वनाथ स्वामीका प्रतिबिम्ब उसका बदला लेनेवाले श्रीसिद्धसेन भट्टारक हुए।

१७—द्राक्षा फलोंसे रमणीय ऐसे नवीन तिलिङ्ग देशको सुशोभित करनेवाले तथा तिलिङ्ग देशस्थित द्राविड़ देशको भी आलङ्कृत करनेवाले भयानक शिवलिङ्गपर पैर रखकर सोते हुए वादियोंके लोहेकी शृङ्खलासे जकड़ी हुई महादेवकी पिण्डीको फोड़कर उज्ज्वल रजत-सदृश अपूर्व चन्द्र श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र अर्थात् श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्रका प्रतिबिम्ब प्रगटा। उनके दर्शनसे उत्पन्न हुए कौतुहलसे व्याप्त शिवकोटि नामक महाराजको तपोरूपी राज्यमें स्थापन करनेवाले आचार्य श्रीमान् समन्तभद्र स्वामी हुए।

१८—समस्त गुणरूपी मणि-रत्नादिकोंसे सुशोभित श्रीशिवकोटि भट्टारक हुए।

१९—यादव वंशमें उत्पन्न हुये। कुमार अवस्थाहीमें जिन-दीक्षा धारण करनेवाले श्रीअरिष्टनेमी बाईसवें तीर्थंकरदेव, उनकी क्रीडा करनेकास्थान, भूरैवसक पर्वतकी कांचन-गुफामें श्रीमत् सिद्धचक्र यन्त्रके उद्धार करनेका भार उठाने वाले श्रीवीरसेन स्वामी हुए।

२०—धवल महाधवलादिक ग्रन्थोंकी महती टीका तथा और कई ग्रन्थोंके कर्त्ता परम विद्वान् श्रीजिनसेनाचार्य्य हुए।

२१—१४ प्रकार अन्तरङ्ग और १० प्रकार वाह्य-परिग्रहसे रहित ६ प्रकार अन्तरंग और ६ प्रकार वाह्य तपके धारक सकल श्रुतके अध्ययनमें तत्पर सकल गुणोंसे सुशोभित कई पदवीके धारक श्रीगुणभद्राचार्य्यजी हुए।

(क्रमशः)

श्री १०८ भगवज्जिनसेनाचार्य्य और गुणभद्र स्वामीका पारमार्थिक वंशवृक्ष और इनका परिचय।

वीरसेन
- जिनसेन
  - गुणभद्र
  - अमोघवर्ष
- विनयसेन
- दशरथ

ये ही जिनसेन श्रीआदिपुराणके कर्त्ता हैं। प्यारे पाठको! यद्यपि हम भगवज्जिनसेनाचार्य्य और गुणभद्राचार्य्यका परिचय करानेका उद्योग करेंगे तौभी हमलोगोंको यह निर्विवाद स्वीकार करलेना पड़ेगा कि इनके समय आदि का निर्णय करना असम्भव नहीं तो महाकष्ट-साध्य अवश्य है। क्योंकि इन्होंने अपने ग्रन्थमें अथवा किसी काव्यमें अपने समयका कुछ वर्णन नहीं किया है। आपने अनेक महान् ग्रन्थोंकी रचना कर और अनेक सुन्दर काव्यका प्रणयन कर भारतवर्षके संस्कृत-साहित्यकी पूर्त्ति करनेके साथ साथ भारतीय दुर्द्धर्ष-विद्वन्मण्डलीमें सदा अपना स्थान सर्वोच्च रक्खा है तौभी अपने समयादिकोंका निर्णय कहीं नहीं किया और न अपनी पूरी पट्टावली ही किसी ग्रन्थमें दी। सम्भव है कि आपने अपने वंशका परिचय देनेमें अपनी आत्म-श्लाघा समझी हो और यही कारण है कि कुछ नहीं लिखा। परन्तु वर्त्तमान समयमें ऐतिहासिक दृष्टिसे एक ज्वलन्त आचार्य्य-प्रवरके समयादिके निर्णयकी सामग्रीका न होना यह पूरी त्रुटि रह जाती है। यदि वे अपना समय, जाति और कुलका कुछ भी परिचय दे जाते तो हम लोगोंको इतना कष्ट नहीं उठाना पड़ता। अस्तु आपकी सांसारिक जाति अथवा कुलका परिचय न मिलनेसे उतनी हानि नहीं है जितनी कि उनके पारमार्थिक-वंशके परिचय न मिलनेसे।

इसमें तो कुछ सन्देह ही नहीं कि इन्होंने किसी उच्च जाति अथवा उच्च कुलको अपने जन्मसे अलङ्कृत किया होगा। जहांतक अनुमान किया जाता है तो यही मालूम होता है कि आपने दक्षिण देशमें जन्मग्रहण किया था। इसमें तो कुछ सन्देह ही नहीं कि आपने विद्योपार्ज्जन करनेमें कहीं अच्छी सफलता प्राप्त की थी। इसके बाद इनके विद्या-वृक्षसे ऐसे सौरभपूर्ण पुष्प विकशित हुए कि जिसकी गन्धसे सारा भारतवर्ष आमोदमय हो गया। प्यारे पाठको! महाकवि कालिदाससे किसका परिचय न होगा। आप भारतवर्षके महाकवियोंमें आदर्शरूप माने जाते हैं। बड़े बड़े विद्वानोंका कथन है कि यदि महाकवि कालिदास और काव्य ग्रन्थोंको नहीं रचकर केवल "मेघदूत" ही रचते तो भी इनकी पाण्डित्य-प्रकर्षता तथा काव्यकुशलताका भाव भारतीय विद्वानोंपर वैसा ही रहता। यानि जितने काव्य इन्होंने रचे हैं उन सबोंका नमूना एक छोटेसे "मेघदूत" हीमें संयोजित कर दिया है। हमारे चरित्रनायक श्री १०८ जिनसेनस्वामीने उसी मेघदूत काव्यके प्रत्येक चरणकी पूर्त्ति "पार्श्वाभ्युदय" नामक काव्यमें बड़ी योग्यतासे की है। महाकवि कालिदास इस काव्य (मेघदूत) की रचना कर उस समयके प्रधान प्रधान राजाओंकी राज-सभामें जाकर सुनाने लगे। और जब उन्होंने महाराष्ट्राधिपति राठौरकुलतिलक महाराज अमोघवर्षकी सभामें गये और वहां कविकेशरी जिनसेनस्वामीकी कवितासे सम्पूर्ण राज-सभाको मुग्ध देखकर अपनी कविताकी उत्कृष्टता दिखानेके लिये बड़े अभिमानके साथ सभी विद्वानोंको तुच्छ-दृष्टिसे देखते हुए उस काव्यको सुनाया तब इसपर विनयसेनस्वामी जोकि श्रीजिनसेनस्वामीके सहपाठी यानि गुरुभाई थे इन्हीके अनुरोधसे मेघदूतका प्रत्येक चरण प्रत्येक श्लोकमें संयोजित कर जिनसेनस्वामीने एक अपूर्वही "पार्श्वाभ्युदय" नामक काव्य बनाया और सभामें कालिदाससे कहा कि यह तो पुराना प्रबन्धहै। चोरी करके तुमने इस काव्यका प्रणयन किया है। सुविज्ञ पाठको! इस बातको आप लोग समझ सकते हैं कि एक विरह-भाव-पूर्ण शृङ्गार काव्यका वैराग्य और पार्श्वनाथके चरित्र *भरे विषयमें परिणत कर देना कितना कठिन काम है। हम यह मुक्तकण्ठसे* कहेंगे कि ऐसे जटिल विषयकी पूर्त्ति करना विद्वच्छिरोमणि कवि-केशरी भगवज्जिनसेनस्वामीका ही काम था। यदि हो सकेगा तो "भास्कर" के अगले अंकमें कविवर कालिदास तथा भगवज्जिनसेनाचार्यकी समकालीनता पूरी

प्रमाणके साथ हम प्रकाशित करेंगे। "पार्श्वाभ्युदय" काव्यकी प्रशस्ति (१) में आपने कहा है कि "अमोघवर्ष राजा सदा पृथ्वीका शासन करता रहे"।

इससे मालूम होता है कि स्वामीजीने इस उत्तम काव्यकी रचना महाराज अमोघवर्षके राजत्वही कालमें की थी और महाराज अमोघवर्षका समय बहुतसे ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा शक ७३६ निश्चित होता है तथा यह स्वामीजीकी प्रथम कृति है इसलिये अनुमान किया जाता है कि इस काव्यकी भी पूर्त्ति लगभग शक सम्वत् ७३६ में हुई है।

१—पार्श्व० की प्रशस्ति—इति विरचितमेतत्काव्यमावेष्ट्य मेघं, बहुगुणमपदोषं कालिदासस्य काव्यम्। मलिनितपरकाव्यं तिष्ठतादाशशाङ्कम्, भुवनमवतु देवः सर्वदाऽमोघवर्षः॥१॥ श्रीवीरसेनमुनिपादपयोजभृङ्गः, श्रीमानभूद्विनयसेनमुनि र्गरीयान्। तच्चोदितेन जिनसेनमुनीश्वरेण, काव्यं व्यधायि परिवेष्टितमेघदूतम्॥ २ ॥

पार्श्व०का कथावतार—कालिदासाह्वयः कश्चित्कविः कृत्वा महौजसा। मेघदूताभिधं काव्यं श्रावयन् गणशो नृपान्॥ ५॥ अमोघवर्षराजस्य सभामेत्य मदोद्धुरः। विदुषोवगणय्यैष प्रभुमश्रावयत् कृतिम्॥ ६॥ तदा विनयसेनस्य सतीर्थस्योपरोधतः। तद्विद्याहंकृतिध्वस्त्यै सन्मार्गोद्दीप्तये परम्॥ ७॥ जिनसेनमुनिश्शानस्त्वै विद्याधीश्वराग्रणीः। विंशत्यग्रसतग्रन्थप्रबन्धश्रुतिमात्रतः॥ ८॥ एकसन्धित्वतत्सर्वं गृहीत्वा पद्यमर्थतः। भूभृद्विद्वत्सभामध्ये प्रोचे परिहसन्निति॥ ८॥ पुरातन-कृतिस्तेयात्काव्यं रम्यमभूदिदम्। तच्छ्रुत्वा सोऽब्रवीद्रुष्टः पठतात्कृतिरस्ति चेत्॥ १०॥ पुरान्तरे सुदूरेऽस्ति वासराष्टकमात्रतः। आनाय्य वाचयिष्यामीत्यवोच यमिकुञ्जरः॥ ११॥ इत्येतदवलोक्याथ सभापतिपुरोगमाः। तथैवास्त्विति मध्यस्थाः समयं चक्रिरे मिथः॥ १२॥ श्रीमत्पार्श्वार्हदीशस्य कथामाश्रित्य सोऽतनोत्। श्रीपार्श्वाभ्युदयं काव्यं तत्पादार्धवेष्टितम्॥ १३॥ सङ्केतदिवसे काव्यं वाचयित्वा स संसदि। तदुदन्तमुदीर्य्याशु कालिदास ममानयत्॥१४॥

भाषानुवाद—कालिदासके "मेघदूत" काव्यसे परिवेष्टित "पार्श्वाभ्युदय" नामक काव्य एक दोषरहित और दूसरे काव्योंके लिये कसौटीकी तरह रचा। जो चन्द्रमाके अस्तित्व काल तक रहे और महाराज अमोघवर्ष इस पृथ्वीका सदा शासन करें। ७०।

श्रीवीरसेन मुनिके चरण-कमलके भ्रमर श्रीमान् विनयसेन मुनिवर थे।

भगवज्जिनसेनाचार्य्यके पारमार्थिक वंशके परिचयके लिये "पट्टावली" ही एक मुख्य कारण है सो इसी अङ्कमें प्रकाशित है। इसको मनोयोग-पूर्वक पर्य्यालोचना करनेसे पाठकोंको बहुतसी बातें सहजहीमें मालूम हो जायंगी।

इन्हींके कहनेसे जिनसेन मुनीश्वरने "मेघदूत" को परिवेष्टितकर इस काव्यको बनाया। ७१।

श्रीजिन-धर्मका समुद्र मूलसङ्घाकाशका सूर्य्य आचार्य्य-प्रवर श्रीवीरसेन नामक आचार्य्य थे। १।

इनके शिष्य मुनिवर श्रीजिनसेनाचार्य्य थे। देखिये इनकी कीर्त्तिकौमुदी आजतक चतुर्दिशु फैली हुई है। २।

बङ्कापुरमें श्रीजिनेन्द्रचरण-कमलके भ्रमरके ऐसे भाग्यशाली महाराज अमोघवर्ष राजा थे। ३।

ये श्रीजिनसेन मुनिको अपना परम गुरु मानकर अपनी प्रजाको पुत्रकीसे पालते हुए और सच्चे धर्म्मका उद्योत करते हुए थे। ४।

कालिदास नामक कोई कवि "मेघदूत" नामक एक काव्य बनाकर प्रायः सभी राजाको सुनाया करते थे। ५।

अभिमानोन्मत्त होकर श्रीमहाराज अमोघवर्षकी सभामें जाकर सब विद्वानोंको अवमानित करते हुए अपना काव्य (मेघदूत) महाराजको सुनाया। ६।

उस समय सहधर्म्मी विनयसेनके अनुरोधसे कालिदासके कविता-मदको चूर्ण करनेके लिये और सच्चे मार्गका प्रकाश करनेके लिये त्रैविद्याधीश्वर श्रीजिनसेन मुनीश्वरने १२० श्लोकोंको सुनतेके साथ अर्थानुसार पद्योंका संग्रह कर राजाकी सभामें हंसी उड़ाते हुए कहा कि पुरानी कृतिके चुरानेसे यह काव्य सुन्दर हुआ है। ऐसा सुन रुष्ट होकर कालिदासने कहा कि यदि पुरानी कविता है तो सुनावो। मुनिवर जिनसेनस्वामीने उत्तर दिया कि मेरी कुटी यहांसे बहुत दूर है इसलिये आठ दिनके भीतर ही भीतर लाकर सुना दूंगा। इसपर सभाके सभासदोंने कहा कि ऐसा ही हो। पीछे श्रीपार्श्व भगवान्का चरित्र लेकर मेघदूतके श्लोकोंका प्रत्येक चरण देकर "पार्श्वाभ्युदय" नामक काव्य बनाया और सङ्केत-तिथिको उन्होंने राज-सभामें अपना काव्य बांच सुनाया तथा इसका पूर्ण सच्चा वृत्तान्त कालिदाससे कह दिया। इस विद्वत्ताको देखकर कालिदासको जिनसेनस्वामीका कहना मानना पड़ा। ७।८।९।१०।११।१२।१३।१४।

यह पट्टावली दक्षिण देशके शास्त्रभण्डारमें एक अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थमें बड़े परिश्रमसे मिली है। इसमें जो आचार्योंके नाम मिलते हैं उनमेंसे बहुत आदिपुराणके मंगलाचरण तथा उत्तरपुराणकी प्रशस्तिमें मिलते हैं।

श्री १००८ महावीरस्वामीके मोक्ष सिधारनेके कुछ दिनोंके बाद दिगम्बर सम्प्रदायमें चार सङ्घ स्थापित हुए। अर्थात् नन्दि, देव, सेन और सिंह ये चार विभाग जैन सम्प्रदायमें हुए। हमारे भगवज्जिनसेन और गुणभद्र-स्वामीने सेनसङ्घमें ही दीक्षा ग्रहण की थी। अन्यत्र प्रकाशित पट्टावलीसे पाठकोंको विदित हो जायगा कि हमारे परम पूज्य न्याय-विद्या-शिरोमणि श्री १०८ समन्तभद्रस्वामीने भी इसी सम्प्रदाय (सेनसङ्घ) को सुशोभित किया था। और श्रीजिनसेनस्वामीके गुरु श्रीवीरसेन स्वामी श्रीसमन्तस्वामीके शिष्यके शिष्य थे। अर्थात् समन्तभद्रके शिष्य शिवकोटि, शिवकोटिके वीरसेन, इनके जिनसेन और जिनसेनके गुणभद्र थे। "विक्रान्तकौरवीय" (१) नाटकमें हस्तिमल्ल कविने भी इनकी गुरु-परम्परा अपने ग्रन्थकी प्रशस्तिमें ऐसी ही दी है। अस्तु इस पट्टावलीमें कुछ सन्देह नहीं रहता किन्तु श्रीजिनस्वामीने आदिपुराणके मंगलाचरणमें "श्रीजयसेन स्वामी" को गुरु रूपसे नमस्कार किया है इससे जान पड़ता है कि इनके दो गुरु थे। इसके सिवा इन्होंने सेन-सङ्घके तथा अन्यान्य सङ्घके मुनियोंको भी नमस्कार किया है। आपने मंगलाचर-

१—वि० कौ० ना० की प्रशस्ति—

तत्त्वार्थसूत्रव्याख्यानं गन्धहस्तिप्रसादतः।
स्वामी समन्तभद्रोऽभूद्देवागम-निदर्शकः॥
अवटुतटमिति झटिति स्फुटपटुवाचाटधूर्जटेर्जिह्वा।
वादिनि समन्तभद्रे स्थितवति का कथान्येषाम्॥
शिष्यौ तदीयौ शिवकोटिनामा शिवायनः शास्त्रविदां वरीष्ठौ
कृत्स्नश्रुतश्रीगुरु-पाद-मूले ह्यधीतिमन्तौ भवतः कृतार्थौ।
तदन्वयाये विदुषां वरिष्ठः स्याद्वाद-निष्ठः सकलागमज्ञः
श्रीवीरसेनोऽजनि तार्किकश्रीः प्रध्वस्तरागादिसमस्तदोषः॥
यस्य वाचां प्रसादेन ह्यमेयं भुवनत्रयम्।
आसीदष्टांगनैमित्तज्ञानरूपं विदां वरम्॥
तच्छिष्यप्रवरो जातो जिनसेनमुनीश्वरः।
यद्वाङ्मयं पुरोरासीत् पुराणं प्रथमं भुवि॥

थमें बहुतसे प्राचीन पुराणकारोंका भी बड़े आदरके साथ उल्लेख किया है इससे स्पष्टतया निश्चय होता है कि आपके पूर्व भी अनेक पुराणकार थे। "चन्द्रोदय" के रचयिता श्रीप्रभाचन्द्र कविकी आपने बड़ी पूज्यश्रद्धा भरी स्तुति की है और इनकी बड़ी गौरवता दर्शायी है इससे मालूम होता है कि "चन्द्रोदय" काव्य उस समय सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। श्री आदिपुराणमें जिन जिन आचार्योंकी स्तुति की गयी है उनमें श्रीसिद्धसेन (*) समन्तभद्र, यशोभद्र, शिवकोटि और वीरसेन तो सेनसङ्घके हैं और शेष आचार्य अन्यान्य सङ्घोंके हैं। लोग कहा करते हैं कि वीरसेन और जिनसेनके बीचमें पद्मनन्दीने आचार्यपद सुशोभित किया था। परन्तु यह बात एकदम निर्मूल मालूम होती है क्योंकि न तो पट्टावली ही में आपका नाम आया और न मंगलाचरण प्रशस्तिही में जिनसेन स्वामीने इनका कहीं उल्लेख किया है। दूसरी बात यह है कि सेनसंघके आचार्योंके नाम

तदीयप्रियशिष्योऽभूत् गुणभद्र-मुनीश्वरः।
शलाका पुरुषा यस्य सूक्तिभि र्भूषिताः सदा॥
गुणभद्रगुरोस्तस्य माहात्म्यं केन वर्ण्यते।
यस्य वाक्सुधया भूमावभिषिक्ताः मुनीश्वराः॥

भाषानुवाद—तत्वार्थ सूत्रकी महाटीका जो गन्धहस्ती महाभाष्य है इसकी रचनाके आदिमें "देवागमस्तोत्र" के निदर्शक श्रीसमन्तभद्र स्वामी हुए।

इनके दो शिष्य शिवकोटी और शिवायन अच्छे विद्वान् थे। इन दोनोंने अपने गुरुके निकट सब श्रुत पढ़कर कृतार्थता पायी।

इनके शिष्य सप्तभङ्गी वाणीमें निष्ठा रखनेवाले, सकल शास्त्रके वेत्ता, वीतराग, और नैयायिकोंके भूषण श्रीवीरसेनाचार्य हुए।

इनके उपदेशके प्रसादसे तीनों लोक अपरिमित ज्योतिष-शास्त्रके ज्ञानसे परिपूर्ण थे।

इन्हीके शिष्य प्रवीण श्रीजिनसेनाचार्य हुए। जिनका आदर्शरूप पुराण (महापुराण) आज संसारमें प्रचलित है।

और इनके प्रिय शिष्य श्रीगुणभद्राचार्य हुए। जिनने तिरसठ शलाका पुरुषोंका चरित्र बड़े विशदतासे वर्णन किया है।

गुणभद्र गुरुका माहात्म्य कौन नहीं वर्णन कर सकता क्योंकि इनकी वाक्सुधासे सभी मुनीश्वर अभिषिक्त हुए।

(*)—सेनसंघकी पट्टावली १६ से १९ तक देखो।

'सेन' तथा 'भद्र' उपाधिसे अलङ्कृत रहते हैं। यह बात पाठकोंको पट्टावलीसे मालूम हो जायगी।

श्री हरिवंशपुराणके कर्त्ता भी एक जिनसेन हो गये हैं। कई विद्वानोंकी राय है और जैन-समाजमें भी प्रायः यह बात प्रचलित है कि 'आदिपुराण' और 'हरिवंशपुराण', के कर्त्ता एकही जिनसेन हैं। परन्तु यह बात प्रमाण-संगत नहीं मालूम होती क्योंकि प्रथम तो हरिवंशपुराणमें जो पट्टावली दी गयी है उसका कोई नाम आदिपुराणके मंगलाचरणमें जो आचार्यों की लिखित नामावली है उससे नहीं मिलता। दूसरा यह कि हरिवंशपुराणके कर्त्ता जिनसेन स्वामीने अपने पुराण (हरिवंश)के मंगलाचरणमें स्पष्टतया जिनसेन स्वामीको बड़े पूज्य-भावसे नमस्कार किया है। और कदाचित् भ्रम न रह जाय इसलिये इनके पूर्व श्रीवीरसेन स्वामीकी स्तुति कर इस बातको और दृढ़ कर दिया है कि यह वीरसेनके शिष्य जिनसेन जुदे ही हैं। और आप अपना परिचय देते समय कहते हैं कि "सद्गुरु जयसेन कर्म प्रकृतिश्रुतके पारगामी, प्रसिद्ध वैयाकरण और महापण्डित इनके शिष्य अमितसेन पवित्र पुन्नाटगणके अग्रणी सौ वर्षसे अधिक अवस्थावाले और पण्डितोंमें मुख्य इनके बड़े भाई

२—हरि० पु० का मंगलाचरण—

जितात्मपरलोकस्य कवीनां चक्रवर्त्तिनः।
वीरसेनगुरोः कीर्त्तिरकलङ्का वभासते ॥ ३९ ॥
यामिताऽभ्युदये यस्य जिनेन्द्रगुणसंस्तुता।
स्वामिनो जिनसेनस्य कीर्त्तिः संकीर्त्तयत्यसौ ॥ ४० ॥
वर्द्धमानपुराणोद्यदादित्योक्तिगभस्तयः।
प्रस्फुरन्ति गिरीशान्ता स्फुटस्फटिक-भित्तिषु ॥ ४१ ॥

भाषानुवाद:—

आत्मा और परआत्माको सर्वोत्कृष्टताको पहुंचाये हुए, कवियोंमें चक्रवर्त्ती श्रीवीरसेन गुरुकी अकलङ्क कीर्त्ति प्रदीप्त हो रही है। अभ्युदयावस्थामें वीरसेन स्वामीकी कीर्त्ति जिनेन्द्रगुणोंसे परिचित है यह बात तो श्रीजिनसेन स्वामीकी कीर्त्ति ही कह रही है। श्रीवर्द्धमान पुराणरूप प्रकाशमान सूर्यकी उक्तिरूप किरणें बड़े बड़े पर्वतोंकी अन्तर्वर्त्तिनी स्वच्छ स्फटिक भीत्तियोंमें आज्वल्यमान हो रही हैं।

कीर्त्तिसेनके मुख्य शिष्य श्रीनेमिनाथ स्वामीके भक्त जिनसेनने प्राचीन ग्रन्थोंके अनुसार इस हरिवंशपुराणकी रचना की"। हमारे पाठकोंको इन बातोंसे स्पष्ट-रूपसे विदित हो जायगा कि आदिपुराण और हरिवंशपुराणके कर्त्ता एक नहीं किन्तु भिन्न हैं। ऐसे ऐसे प्रबल प्रमाण रहते भी न जाने क्यों हमारे पिटर्सन और भण्डारकर ऐसे बहुदर्शी विद्वानोंने दोनों जिनसेनको एक लिख डाला है। हरिवंशपुराणके रचयिता जिनसेनने ग्रन्थनिर्माणका समय शक सम्वत् ७०५ लिखा है इससे यही मालूम होता है कि दोनों जिनसेन सम-कालीन थे न कि एकही थे। हरिवंशपुराणके जिनसेनने आपकी स्तुति करते समय आपको 'स्वामी' उपाधिसे समलङ्कृत किया है और बड़े गौरवके साथ स्तुति की है। इससे विदित होता है कि उस समय हमारे चरित्रनायक जिन-सेनस्वामी एक प्रसिद्ध आचार्य्य तथा कवि होगये थे। क्योंकि स्वामीपद आचार्य्य-पदका संसूचक है।

यद्यपि इनका जन्मस्थान आज तक निश्चित नहीं हो सका किन्तु इतना हम अवश्य कहेंगे कि इन्होंने मान्यखेत्र (मानखेट) की भूमि अपनी स्थिति-से पावनमय कर दी थी। आज कल यह स्थान निजाम बादशाहके आधीन हो कर मलखेड़ नामसे प्रसिद्ध है। राष्ट्रकूटवंशीय (१) जैन महाराज अमोघवर्षकी मुख्य राजधानी यहीं थी। और यहां बराबर आचार्योंका रहना सप्रमाण सिद्ध होता है। इन्होंने प्रायः अपने सभी ग्रन्थोंमें महाराज अमोघवर्षकी चर्चा की है इसलिये वहीं इनकी आचार्य्य अवस्थाका बहुतसा भाग अतिवाहित हुआ होगा।

श्री १०८ वीरसेनाचार्य्यने श्रीजयधवल सिद्धान्त-ग्रन्थकी टीका करनेका प्रण किया और उस टीकाके बीस ही हजार श्लोक लिखने पाये थे कि अचानक काल-ने आक्रमण किया और यह टीका अधूरी छोड़कर आप स्वर्गधामको सिधारे उनके सुयोग्य शिष्य हमारे चरित्रनायक श्रीजिनसेन स्वामीको अपने गुरुकी अधूरी कीर्त्ति असह्यसी हुई और उन्होंने ४० हजार श्लोक बनाकर शाका सम्वत् ७५९ में ६० हजार श्लोकोंमें इस महान् ग्रन्थकी टीकाकी पूर्त्ति की। इसके बाद आपने श्रीआदिपुराणका लिखना प्रारम्भ किया किन्तु संस्कृत-साहित्यके अभाग्य-वश इसकी समाप्ति नहीं कर सके। जब आपने 'आदिपुराण' लिखते लिखते समाधि-मरण-सहित स्वर्गधामका प्रयाण किया उससमय आपकी अवस्था लगभग १०० वर्ष अथवा एक सौ दो तीन वर्ष की होगी। क्योंकि 'हरिवंशपुराण' के

नोट—१ राष्ट्रकूटवंशका इतिहास इसी अङ्कमें अन्यत्र प्रकाशित है।

रचयिता जिनसेनने जो शक सम्वत् (१) ७०५ में आपको आचार्य्य-रूपसे नमस्कार किया है और वट्टकेर स्वामीने अपने "मूलाचार" सैद्धान्तिक-ग्रन्थमें साफ साफ लिखा है कि युवावस्थामें अचार्य्य पट्टाधिकारी कोई नहीं होता इस लिये यह बात ससिद्धान्त सिद्ध होती है कि उस समय आपकी अवस्था कमसे कम ४० या ४२ वर्षकी होगी। जयधवलकी प्रशस्ति (२) में इसकी समाप्तिका समय स्वयं इन्होंने शक सम्वत् ७५९ लिखा है। तत्पश्चात् आपने श्रीआदिपुराणका लिखना प्रारम्भ किया होगा। इसके वयालिस अध्यायतक आपने लिखा है। सम्भव है कि इतने अध्याय इन्होंने छः वर्षमें लिखे होंगे। तो स्वामीजीकी अवस्था १०२ वर्षकी होती है नहीं तो ४ वर्ष माननेसे १०० वर्षकी अवस्था इनकी होनी सर्वथा सम्भव है। अर्थात् शक सम्वत् ७६० से ७६३ अथवा ७६५ तक आपका अस्तित्व भारतवर्षमें था। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। शक सम्वत् ७०५ से ७५९ तक ५४ वर्ष हुए। आदिपुराणकी रचनामें छः वर्ष लगे तो ६० वर्ष हुए। हरिवंश

१—शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिशं पञ्चोत्तरेषूत्तराम्
पातीन्द्रायुधनाम्नि कृष्णनृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणाम्।
पूर्वां श्रीमदवन्तिभूभृति नृपे वत्साधिराजेऽपराम्
सौराणामधिमण्डलं जययुते वीरे वराहेऽवति॥

भाषा भावार्थः—

शाका सम्वत् ७०५ में जब कि उत्तर दिशाका श्रीइन्द्रायुध नामक राजा कृष्ण शासन कर रहे थे, श्रीवल्लभ राजा दक्षिण दिशाका पालन कर रहे थे, अवन्ती राजा पूर्वप्रान्तमें आधिपत्य कर रहे थे, वत्साधिराज पश्चिम दिशाकी रक्षा कर रहे थे और जयशाली वीरवराह नामक राजा जब सौर देशका मण्डल शासित कर रहे थे तब श्रीजिनसेनाचार्य्यने इस पुराण (हरिवंश) की समाप्ति की।

२—जयध० की प्रशस्ति—इति श्रीवीरसेनीया टीका सूत्रार्थ-दर्शिनी। मटग्रामपुरे श्रीमद्गुर्जरार्य्यानुपालिते॥ १॥ फाल्गुने मासि पूर्वाह्णे दशम्यां शुक्ल-पक्षके। प्रवर्द्धमान-पूजायां नन्दीश्वर-महोत्सवे॥ २॥ अमोघवर्षराजेन्द्रप्राज्य-राज्यगुणोदया। निष्ठितप्रचयं यायात् दाकल्पान्तमनल्पिका॥ ३॥ षष्ठिरेव सहस्राणि ग्रन्थानां परिमाणतः। श्लोकेनानुष्टुभेनात्र निर्दिष्टान्यनुपूर्वशः॥ ४॥ विभक्तिः प्रथमस्कन्धो द्वितीये संक्रमोदयः। उपयोगश्च शेषस्तु तृतीयस्कन्ध-

पुराणकी रचनाके पूर्व इनकी अवस्था ४२ वर्षके मिलानेसे १०२ वर्षकी होती है। अर्थात् (४२+५४+६=१०२) यानि आपका जन्म शक सम्वत् ६६३ के लगभग हुआ होगा और आपका स्वर्गारोहण ७६५ में हुआ। इसमें एक दो वर्षका हेरफेर हो जानेकी सम्भावना हो सकती है। विशेष भिन्नताका इसमें प्रमाण नहीं मिलता।

ये दोनों पुराण (महापुराण) महाराज अमोघवर्ष (१) और अकालवर्षके समयमें लिखे गये हैं।

इष्यते ॥ ५ ॥ एकोनषष्ठिसमधिकसप्तशताब्देषु शकनरेन्द्रस्य । समतीतेषु समाप्ता जयधवला प्राभृतव्याख्या ॥ ६ ॥ गाथासूत्राणि सूत्राणि चूर्णिसूत्रं तु वार्त्तिकम्। टीका श्रीवीरसेनीयाऽशेषापद्धति-पञ्चिका ॥ ७ ॥ श्रीवीरप्रभुभाषितार्थघटना निर्लोड़िताऽन्यागम-न्याया श्रीजिनसेनसन्मुनिवरै रादेशितार्थस्थितिः। टीका श्रीजयचिह्नितोरुधवला सूत्रार्थसम्बोधिनी, स्थेयादारविचन्द्रमुज्ज्वलतमा श्रीपाल-सम्पादिता ॥ ७ ॥

भाषानुवाद—श्रीगुर्जर आर्य्यपुरुषोंसे सुरक्षित मटग्रामपुरमें फाल्गुण शुक्ल दशमीके पूर्वाह्नमें जबकि अष्टाह्निका-पर्व नन्दीश्वर महोत्सवमें वर्द्धमान स्वामीकी पूजा होरही थी उसी समय सूत्रार्थ प्रतिपादन करनेवाली, महाराज अमोघवर्षके प्रभूत राज्य गुणोदयका कारणभूत, बड़ी वीरसेनरचित (प्रारम्भित) श्रीजयधवल सिद्धान्तशास्त्रकी प्राभृतव्याख्या टीका जो साठ हजार अनुष्टुप श्लोकोंमें सूत्रक्रमानुसार है वह शक सम्वत् ७५९ में समाप्त हुई। इसमें तीन स्कन्ध हैं— (१) विभक्ति (कर्म्मका विभाग) (२) संक्रमोदय (कर्म्मोंका संक्रम और उदय) (३) उपयोग (दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोगका वर्णन है) इसमें गाथारूपसे सूत्र हैं, चूर्णिकासूत्र-रूप वार्त्तिक है। श्रीजिनस्वामीने श्रीवीरसेनकी टीका होका अवशेष भाग पञ्चिका नामकी टीका करके पूर्ण किया। यानि श्रीवीरसेनकी अर्थ-घटनापर अन्य आगम और न्यायको मथनेवाली टीका मुनिवर जिनसेनने की। ऐसी सूत्रार्थ बतानेवाली श्रीपालसे सम्पादित यह उज्ज्वल टीका सूर्य्य और चन्द्रमाकी अवधि तक वर्त्तमान रहे तथा कल्पों तक परिवर्द्धित हुआ करे।

---

१ नोट—आगे अमोघवर्षका संक्षिप्त इतिहास दिया गया है।

दोनों आचार्य्यों के ग्रंथोंकी नामावली।

श्रीजिनसेनाचार्य्य।

१ पार्श्वाभ्युदय काव्य।

२ जयधवलकी टीका।

३ वर्द्धमान पुराण।

४ आदि पुराण।

श्रीगुणभद्राचार्य्य। (१)

१ उत्तरपुराण।

२ आत्मानुशासन।

१ नोट—इनके बनाये 'जिनदत्तचरित्र' तथा 'जीवन्धरचरित्र' भी हैं किन्तु ये आदिपुराण तथा उत्तर पुराणही के अन्तर्गत हैं इसलिये इनकी गणना अलग नहीं की गयी।

श्रुतस्कन्ध-यन्त्रका चित्र-परिचय।

(पद्य)

(१)

पाठको ! इस यन्त्रका विवरण सुनाता हूं सुनो।
जैनपूर्वाचार्य्यकी प्रतिभा दिखाता हूं सुनो॥

(२)

है श्रुतस्कन्धोंकी शाखाओंके विषयोंसे भरा।
और सम्यग्ज्ञान सत्पुष्पोंकी गन्धोंसे भरा॥

(३)

अङ्ग द्वादश अङ्ग पदका है परिक्रम भी यही।
पूर्वगत चौदह तथा है चूलिका भी पांच ही॥

(४)

है प्रकीर्णक अङ्ग वाह्यक सूत्रमें चौदह यहां।
एक शत अठ कोटि लख तिरासिकी संख्या जहां॥

(५)

अष्ट पंचाशत सहस्र व पांच पद भी अङ्ग का।
है सभी ब्यौरा यही इस यन्त्रके सर्वाङ्ग का॥

(६)

था हरा यह यन्त्रद्रुम पठनादि पाठन कर्म्मसे।
थी सुवर्ण-समा ये भारतभूमि भी बहु धर्म्मसे॥

(७)

आज पंचम-काल-वश सब लोग अन्धे हो चले।
पूर्वजोंकी कीर्त्तियोंको आपसे ही खो चले॥

(८)

सूखकर श्रुतयन्त्रद्रुम सबको चिताता है यही।
गर इसे रक्खा सुधासे सींच तो होऊं वही॥

(६)

है अभी जिनधर्म्म का अस्तित्व इसपर विज्ञवर!
अन्य साहित्योंसे भी समता दिखाता विज्ञवर! ॥

(१०)

बस यही कहना हमारा है सुनो तुम ध्यानसे।
अब न चेतोगे तो पछतावोगे तुम अज्ञानसे॥

श्रुतस्कन्धयन्त्रके चित्रका परिचय।

प्रिय सुहृत्पाठको! आज हम आपका ध्यान २४३८ वर्ष यानि २५ शताब्दिके पूर्वकी ओर आकर्षित करना चाहते हैं। जब श्री १००८ अन्तिम तीर्थङ्कर श्रीवर्द्ध-मान-स्वामी इस भारतभूमिको अपने उपदेश-द्वारा पवित्र कर रहे थे। श्रावण मासकी प्रतिपदाको सूर्य्यो-दयके समय रौद्र मुहूर्त्तमें जब कि चन्द्रमा अभि-जित नक्षत्र पर था, भगवान् महावीर-स्वामीने चिरदु:खित सांसारिक प्राणियोंके संसार-समुद्रसे पार होनेमें कारणभूत यथार्थ मोक्ष-मार्गका उपदेश दिया। श्रीइन्द्रभूति गौतम गणधरने भगवान्की इस हितकारिणी वाणीको उसी दिन सायंकालमें अङ्ग और पूर्वकी युगपत् (एक साथ) रचना की। अर्थात् भगवान्के कहे हुए तत्वोंको गणधर देवने ग्यारह अङ्ग और चौदह पूर्व रूपमें विभक्त कर दिया। अर्थात् अनेक भिन्न भिन्न विषयोंको इन ग्यारह अङ्ग, चौदह पूर्वोंके अन्तर्गत सन्निवेशित किया और अपने सहधर्मी सुधर्मा स्वामीको पढ़ाया, सुधर्मा स्वामीने जंबू स्वामीको और जंबू स्वामीने और अनेक ऋषि-मुनियोंको इस द्वादशाङ्ग-रचना-श्रुतको पढ़ाया। इसी प्रकार उस समयमें इसका प्रचार बहुलतासे होता रहा।

हमारे उपर्युक्त तीनों ऋषिराजोंने अर्थात् इन्द्रभूति, सुधर्मा और जंबू स्वामीने परम केवल विभूति (सर्वज्ञता) को पाया। उस समय तक इस भारतवर्षमें सर्वज्ञताकी अखण्ड ज्योति चारो तरफ देदीप्यमान होरही थी। इस वृत्तान्तके हुए आज २४३८ वर्ष हुए।

यह यन्त्र उसी द्वादशाङ्ग वाणीका है। इसमें ११ अङ्ग १४ पूर्व ५ प्रकी-र्णक और १४ अङ्ग बाह्य वाणीका वर्णन है। यह यन्त्र श्रवण वेलगुलाका बना हुआ अष्टधातुका "भवन" की वेदीपर विराजमान है। इसमें स्पष्ट तरहसे श्लोकोंकी संख्या अङ्कित है। सबसे नीचे प्रथम कोष्टमें (३३६ भेद-मतिज्ञानके हैं) दूसरे कोष्टमें (ज्ञानविकला २० ग्रन्थ अङ्ग १२ अङ्गबाह्य १४ हैं) तीसरे कोष्टमें (श्रुतज्ञानकी अक्षर-संख्या १८४४६७४४० ७३७०९५५१६-१५ हैं) इसके बाद चौथे कोष्टमें (एक पद वर्ण-संख्या १६३४८३०७८८८ है) पांचवें कोष्टमें (द्वादशाङ्ग नाम पद-संख्या ११२८३५८००५ है) छठवें कोष्टमें

(एकादशाङ्ग पदसंख्या ४१५०२००० है) इसके बाद श्लोकोंकी संख्याके साथ साथ ११ अङ्ग हैं। दहिनी ओरके कोष्टमें श्लोक-संख्याके साथ ५ प्रकीर्णक हैं। बाईं तरफके कोष्टमें श्लोकसंख्या-सहित ५ चूलिकाएं हैं। जहांसे श्रुत-स्कन्धकी शाखायें निकली हैं वहां चौदह पूर्व श्लोक-संख्याके साथ हैं। सबसे ऊपर ध्वज-दण्डके आकारमें अङ्गबाह्य १४ हैं और उसकी ध्वजामें अक्षर-संख्या है।

कोटीशतं द्वादशचैव कोट्यो, लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पञ्चाशदष्टौ च सहस्रसंख्या मेतच्छ्रुतं पञ्चपदं नमामि॥

इस प्रकार ऐहिक तथा आमुष्मिक समस्त शास्त्रीय विषयपूर्ण इस ग्यारह अङ्ग चौदह पूर्व-रूप श्रुतका पठन पाठन हमारे अन्तिम श्रुतकेवली श्री १००८ भद्रबाहु स्वामीकी स्थिति तक प्रचलित रहा। जिनका समय महावीर स्वामीके १६२ वर्ष बाद निश्चित होता है। इनके समयतक यह भारतवर्ष उस श्रुतज्ञानकी अमृतमय उपदेश-धारासे निरन्तर परिप्लावित रहा। इसके पश्चात् सुवर्णमय-धनधान्य-परिपूरित तथा चिरविद्या-रञ्जित इस भारतवर्षने अपनी भावी अव-नतिकी ओर पदार्पण किया। सहसा इसके विद्या-प्रभाकरकी किरणोंमें मन्द-ता पड़ गयी और भारतके भाग्य-ललाटपर भावी दौर्भाग्यकी रेखा चित्रित होगयी। क्रमशः पतनोन्मुख अङ्ग-ज्ञानकी प्रवृत्ति वीर-निर्वाण सम्वत् ६८३ वर्ष तक कुछ कुछ रही। इसके बाद कालदोषसे बची बचायी प्रवृत्ति भी लुप्तप्राया होगयी। कुछ ही कालके बाद श्रीअर्हद्बलि मुनि अवतीर्ण हुए। इन्हींके समयमें मुनियोंके सङ्घकी स्थापना हुई। अर्थात् दिगम्बराम्नायधारी मुनियोंके चार विभाग हुए।

अर्हद्बली स्वामीके कुछही दिन बाद धरसेनाचार्य्य हुए। इन्हें अग्रायणी पूर्वके अन्तर्गत पञ्चम वस्तुके चतुर्थ महाकर्म्म प्राभृतका ज्ञान था। अर्थात् उपर्युक्त श्रुतज्ञानके एक अंशके आप ज्ञाता थे। बाह्य शकुनों द्वारा आपको जब यह मालूम होगया कि अब मेरी आयु थोड़ी रह गयी है और मेरा यह सामान्यशास्त्र-ज्ञान भी संसारका एकमात्र अवलम्ब होगा। अर्थात् इससे अधिक शास्त्र-ज्ञान आगे नहीं होगा। यदि इस बची बचायी विद्याकी रक्षा का प्रयत्न न किया जायगा तो सम्भव है कि इस ज्ञानका विच्छेद हो जाय। यह विचार उन्होंने इसकी रक्षा करनेके लिये पुष्पदन्त और भूतबलि दो मुनियोंको इस विद्या-ग्रहणके पात्र समझकर पढ़ाया तथा आप स्वर्गधामको

सिधारे। श्री १०८ भूतवलि स्वामीने देखा कि विद्याकी अवनति प्रतिदिन हो रही है और जो मौखिक ज्ञान है उसका भी रहना असम्भवसा जान पड़ता है, ऐसा विचारकर तथा मनुष्यकी स्मरणशक्तिका ह्रास देखकर इन्होंने "षट-खण्डागम" नामका ग्रन्थ रचकर लिपिवद्ध किया और ज्येष्ठ शुक्ल पञ्चमीके दिन बड़े समारोहके साथ चतुर्विध संघके साथ वेष्टनादि उपकरणोंके द्वारा उसकी पूजा की। जो कि आजतक वह तिथि जैन-समाजमें "श्रुत पञ्चमी" के नामसे प्रसिद्ध है और आजकल भी जैन-धर्मावलम्बी विज्ञ उक्त तिथिके दिन अपने अपने शास्त्रोंकी बड़ी विधिके साथ पूजा करते हैं। इसके बाद अनेक जैनाचार्य्य हुए जिन्होंने आवश्यकतानुसार अनेक विषयोंके असंख्य ग्रन्थ रच रचकर संस्कृत-साहित्य-भण्डारकी पूर्त्ति की। यद्यपि अनेक आपत्तियां आचुकी थीं तो भी जैन-धर्मका प्रभाव संसारपर कुछ कम नहीं था। इसके थोड़े ही दिनोंके बाद नवाङ्कुरित बौद्ध-धर्म तरुणावस्थाको प्राप्त होगया और अनेक राजा महाराज नवीनताकी छटासे मुग्ध हो जैन-धर्मको छोड़कर बौद्धधर्म अङ्गीकार करने लगे। परन्तु ऐसे समयमें भी अनेक आचार्य्योंका अस्तित्व था और उन्होंने बड़े प्रभावके साथ बड़ी बड़ी राजसभाओंमें जा जा कर निर्भीकतासे अन्यमतका खण्डन तथा अपने मतका मण्डन किया। इसीका प्रभाव है कि जैनधर्म अभीतक अपने उद्देश्योंकी घोषणा डंकेकी चोटसे सब जगह उद्घोषित कर रहा है। जिस समय बौद्धोंका प्रताप-सूर्य्य मध्याह्नावस्थापर था। जिस समय बौद्धाचार्य्य जैन-धर्मके शास्त्रोंको जला जलाकर और नदियोंमें डुबोकर इसको नष्ट भ्रष्ट कर रहे थे। मन्दिर और मूर्त्तियोंको तोड़ फोड़कर अपनी मूर्त्तियोंकी स्थापना कर रहे थे ठीक उसी समय जैनधर्मके पुनरुद्धारक प्रधान-रक्षक तथा न्याय-मार्तण्ड हमारे श्रीमदकलङ्कका अवतार हुआ। आपको विद्याध्ययन तथा धर्म-रक्षा करनेमें कितना कष्ट हुआ है इसका पूर्ण वृत्तान्त हम इनके जीवन-चरित्र लिखतीवार देंगे। इन्होंने काञ्ची देशके रत्नसञ्चयपुर नगरके राज्य दरबारमें बौद्ध-धर्मके गुरु संघश्री और उनकी आराधिता तारादेवीके साथ छः महीनों तक अविरत शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित किया और राज्य-सभामें आपने सिंहनादके समान घोषणाकी कि यदि जैनधर्मके विषयमें किसीको कुछ शङ्का हो अथवा कुछ बात करना चाहें तो मैं उपस्थित हूं। आप जैनधर्म-मण्डन और अन्यमतके खण्डनके अनेक ग्रन्थ रचकर इस जैनधर्मको एक दुर्भेद्य-दुर्गमें रक्षित कर गये। धीरे धीरे बौद्ध-धर्म-

रूपी सूर्य भी जब अस्ताचलको जा रहा था कि ठीक इसी बीचमें हिन्दूधर्मके नेता श्रीशङ्कराचार्य्य हुए। इन्होंने भी जैनधर्मकी अनेक मूर्त्तियां तथा ग्रन्थोंको बड़ी बड़ी नावोंमें भरकर समुद्रमें डुबो दिया तथा अनेक बड़े बड़े शास्त्र-भण्डारोंमें आग लगा दी कि जिससे जैनधर्मकी बड़ी भारी हानि हुई। किन्तु ऐसे दुर्दमनीय भयानक समयमें भी हमारे आचार्य्योंके उद्दीप्त प्रचण्ड तपोबल-से जैनधर्मकी आकृति बनी रही। इसके बादही मुसलमानोंके भी भाग्यो-दय का चिराग़ टिम टिमा उठा। इनके समयमें जैनधर्महो पर क्या बल्कि हिन्दू धर्मपर भी जिस निष्ठुरताके साथ कुठाराघात किया गया उसको लिखते हमारी लेखनी कांप उठती है। वर्षों तक मुगलराज-वाहिनीके सिपाहियोंकी रसोई हमारे धर्म-ग्रन्थोंसे ही बनती रही। इससे असंख्य अलभ्य, और अपरि-मित ग्रन्थ-भण्डारोंका अस्तित्वही संसारसे उठ गया तथा अगणित मन्दिर और मूर्त्तियाँ तोड़ी गयीं। अनेक जैनमन्दिरोंके स्थानमें मसजीदें बनायी गयीं। उसी समय फिरोजशाह तोगलकने लगभग सम्वत् १४०३ में दिल्लीके साम्राज्य-सिंहासनाधिरूढ़ हो भारतवर्षको भाग्यडोरको अपने हाथमें लिया। वह अपने राज्यशासन-कालमें भारतवर्षके सभी धर्मोंकी परीक्षा करने लगा। अन्यान्य धर्मोंके साथ साथ जैनियोंको भी अपने धर्मकी परीक्षा देनेकी आज्ञा मिली। परन्तु उस समय उत्तर भारतमें जैनियोंके गुरु अथवा विद्वान् न थे जो उनसे शास्त्रार्थ कर सकते इसलिये बादशाहसे छः महीनेका अवकाश मांग कर दुःखितहृदय जैनी गुरुको खोजमें दक्षिण देशको गये। भद्दिलपुर भूपालके नजदीक जोकि आजकल भेलसा नामसे प्रसिद्ध है वहीं सब लोग आये। वहींसे 'महासेन' नामके आचार्य्यको वहां लेगये। महासेन स्वामीने दिल्लीके बादशाहके दरबारमें आकर 'राघो' और 'चेतन' नामक विख्यात दो राजमान्य विद्वानोंको शास्त्रार्थ और मन्त्रवादमें पराजित कर वहां बड़े प्रभावके साथ जैनधर्मको ध्वजा फहरायी। उस समयकी बादशाही सनदें (१) अभीतक कोल्हापुरके भण्डारमें हैं। उसी समयसे भट्टारकोंकी गद्दी वहां स्थापित हुई और ये लोग राजगुरु माने गये। इन लोगोंको बादशाहने वस्त्र-धारण कराया और अनेक बादशाही खिल्लत छत्र चमरादि और पट्टस्थकी बत्तीस उपाधियां दे बड़े सम्मानके साथ इनका गौरव बढ़ाया। इस समयमें भी हमारे

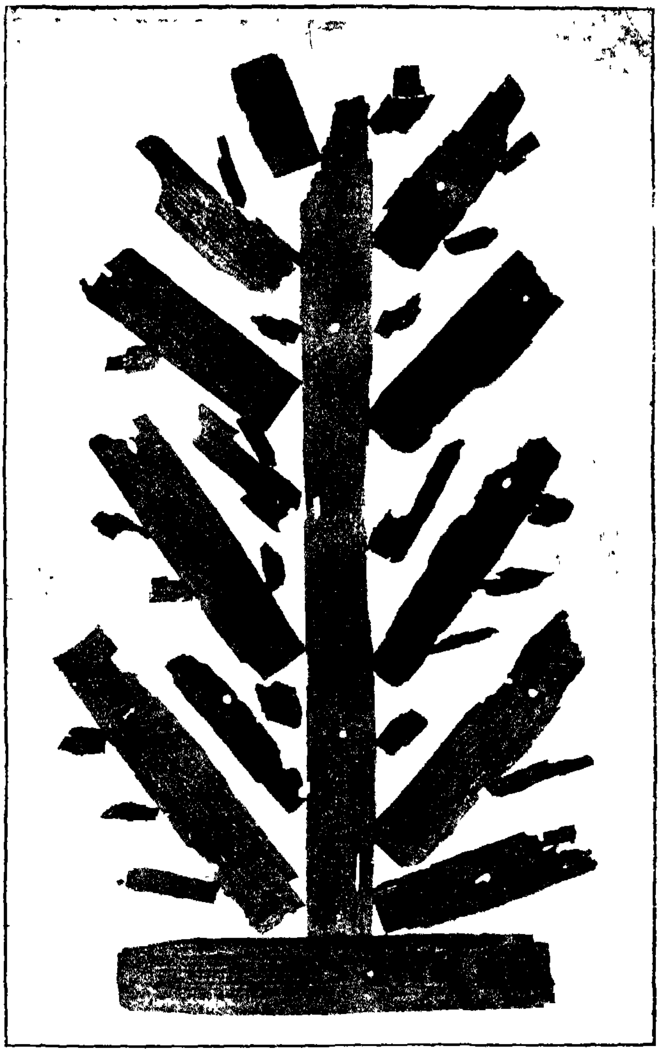
नोट—(१) इस सनदके चित्रके साथ साथ इसका विशेष हाल अगले किसी अङ्कमें देनेकी चेष्टा की जायगी।

आचार्य्योंने अनेक ग्रन्थ रचकर धर्म्म-रक्षा की। परन्तु इसके बाद रक्षा करनेमें जब आचार्य्योंको अत्यन्त कठिनाई जान पड़ने लगी तब उन्होंने इन धर्म्म-ग्रन्थोंकी रक्षा करनेहीको धर्म्म-रक्षाका एक मात्र उपाय समझा और उन लोगोंने बड़े परिश्रमके साथ जहां जैनियोंका समूह था वहां उनके घरोंकी कोठरियोंमें और जहां भट्टारकोंका मठ था वहां तहखानोंमें रखकर सुरक्षित किया और लोगोंको यहां तक मना कर दिया कि किसीको इसकी ज़रासी भी सूचना न मिलने पावे नहीं तो यह भी बची बचायी धर्म्मिक तथा ऐतिहासिक सामग्रियां नष्ट हो जायँगी।

उपर्य्युक्त समयमें जब जैनधर्म्म-विद्वेषी अन्यधर्म्मावलम्बी राजा तथा विद्वानोंके कारण लाखों ग्रन्थका नाश हुआ तब हमारे महर्षियों ने तथा पूर्वपुरुषोंने धर्म्मकी हानि होती हुई देख अपनी जानपर खेलकर जैनधर्म्मको ग्रन्थरचना-द्वारा बचाया, किन्तु अब हमारी न्यायशीला गवर्नमेन्टके शासनकालमें तथा सबोंकी स्वाधीनधर्म्म-जाग्रतिके समयमें भी मूर्खतासे जैन-धर्म्मावलम्बी उसी परम्परा को निबाहते हुए यानि शास्त्रों को तहखानेमें सड़ाते हुए संसार हितैषिणी भावी धार्म्मिकउन्नति तथा पवित्र श्रीजिनवाणी माताके प्रचारका मार्ग रोक रहे हैं।

शास्त्रोंके जीर्णपत्र वृक्षका चित्र।

भास्कर —



२

हा! वे ही शास्त्र-पर्ण प्रशिथिलित हुए और भी जीर्ण शीर्ण।
होते हैं देखके हा! ऋषि-मुनियोंके चित्त चिन्ता-विदीर्ण॥
लाखों ही ग्रन्थ होते जिनमतके यों नित्य कीटादिभक्ष्य।
क्या तूने हा! किया है निज-मनसे भी एतद्दृश्यलक्ष्य?

शास्त्रोंके जीर्ण-पत्र-वृक्षका चित्र-परिचय।

(स्रग्धरा)

(१)

देखो है चित्र कैसा भविक-मन सदा देखके दुःख पूर्ण
होती ऐसी व्यवस्था अबुधजनोंकी और भी नाश तूर्ण।
आचार्य्योंके जो सर्वस्व प्रतिपल रहे और धर्म्माभिमान
सत्कृत्योंके प्रणेता प्रकटितमहिमा उच्चताके निदान॥

(२)

हा! वेही शास्त्रपर्ण प्रशिथिलित हुए और भी जीर्ण शीर्ण
होते हैं देखके हा! ऋषि-मुनियोंके चित्त चिन्ता-विदीर्ण।
लाखो ही ग्रन्थ होते जिन मतके यों नित्य कीटादि-भक्ष्य
क्या तूने हा! किया है निज मनसे भी एतदुद्दिश्य लक्ष्य?

(३)

रक्षा हैं लोग करते वसन-अशनकी जो मिले नित्य नव्य
होगी जन्मान्तरोंमें नहीं नयन-गता वस्तु खोते भी भव्य।
ऐसी ही जो विरक्ति प्रबल रहेगी शास्त्रसे जैनियोंकी
होवेगी धर्म्म-लुप्ति प्रकटित होगी नीचता जैनियोंकी॥

(४)

होती शास्त्रीय-रक्षा जिन सदनोंमें और सत्कीर्त्ति-रक्षा
सिद्धान्तोंकी समीक्षा जिन-मतकी हो उच्च-शिक्षा सुरक्षा।
होनी ही चाहिये वाँ सुबुधजनोंकी कार्य्य-कर्त्तव्य-निष्ठा
होती है भ्रष्ट लोगोंकी रुचि कभी नहीं और सत्कर्म-निष्ठा॥

(५)

ऐसी शास्त्रीय बातें प्रविदित करके चित्त चोरी करोगे
तो सारा दोष तेरे शिर मढ़ता ही आयगा क्या करोगे?
जो तेरी पूर्ण प्रीति निज मतसे हो छोड़ आलस्य शीघ्र
हो तू उद्धार-कर्त्ता सतत तव करें श्रेय अर्हन्त शीघ्र॥

शास्त्रोंके जीर्ण-पत्र-चित्रका पूर्ण परिचय।

प्रिय पाठक! हम लोगोंको इस जीर्णग्रन्थके पत्रहयका चित्र देखकर अपनी असावधानता तथा धर्म्मविमुखताका चित्र अपने मस्तिष्कमें सहसा खिंच जाता है। हाय! हमारे पूर्व ऋषि महर्षियोंने जिन-ग्रन्थोंको अपने सारे जीवनका लक्ष्य समझ कर तथा अनेक कष्टोंको सहकर रचा था वे आज लाखों हम लोगों के हाथसे नष्ट हो रहे हैं। बड़े शोकके साथ कहना पड़ता है कि जिस जैन-साहित्यकी सर्व-श्रेष्ठताकी प्रसिद्धि सर्वत्र व्याप्त थी और जिन सूक्ष्मदर्शी आचार्य्योंके विचारपूर्ण तथा सार-गर्भित विषयोंको देखकर सब किसीको आश्चर्य्यित होना पड़ता था सो आज उसी जैन-साहित्यमें अनेक विषयोंकी कमी दिखलायी जा रही है? ठीक है जब हमलोगोंने अपने पूर्वाचार्य्योंकी कीर्त्तियोंको तथा जीवन-सर्वस्वधनको कीटों और चूहोंको आहार-दान देना ही पसन्द किया है तो भला शास्त्रकी कमीकी बात कौन कहे? भाइयो! यदि ऐसी ही लापरवाही आप लोगोंने कुछ दिनोंतक जारी रक्खी तो सम्भव है कि थोड़े ही दिनोंमें हमलोग जैन-धर्म्मसे हाथ धो बैठें। विशेषतर तो हमें व्यवहार-व्यस्त धनिक भाइयों ही को चिताना है कि आप सब किसके भरोसे अपने सर्वमान्य-ऋषि-प्रणीत शास्त्रोंकी रक्षासे मुंह मोड़े बैठे हैं। हाय! शास्त्रोंकी जीर्ण-शीर्ण अवस्थाका यह चित्र आप लोगोंके कर्ण-कुहरपर सचेत होनेके लिये ज़ोर शोरसे नक्कारा पीट रहा है पर आप लोग न जाने किस गहरी नींदमें खर्राटा मार रहे हैं कि ज़रासी भी उसकी आवाज सुनते ही नहीं।

प्रिय पाठक भाइयो! यदि हमलोग अबसे शास्त्रोंकी रक्षा करने लगें तथा रक्षा करनेवाली संस्थाओंसे सहानुभूति रक्खें तो अब भी हम लोग इन बची बचायी प्राचीन सामग्रियोंसे बहुत कुछ अपने धर्म्मको बना सकेंगे।

हमें लिखते हृदय विदीर्ण होता है कि एक जैनशास्त्र-भण्डार जिसका अभी हम नाम प्रकाशित नहीं करना चाहते, कुछ ही दिन पहले जिसमें भिन्न भिन्न विषयके लाख ग्रन्थों की सूची मौजूद थी किन्तु हाय! आज उनकी सूची दस हजार ग्रन्थकी है। भाइयो! हमारे जैन ग्रन्थ-रक्षकोंने अपनी उदारता तथा बहु-वदान्यतासे चूहों तथा दीमकोंके आहार-दानके लिये जैन-साहित्य की जगमगाती ज्योति, आचार्य्यों तथा महर्षियोंका चिर-रक्षित-प्रतिभा-विकाश, और पण्डित-मण्डलीके कण्ठ-भूषण नब्बे हजार ग्रंथोंको भी कुछ

नहीं समझा। आप लोग इसीसे जैन धर्मकी भावी उन्नति तथा अवनतिका अन्दाज कर सकते हैं। वर्त्तमान समयमें भी धनिक जैन-धर्मावलम्बियोंकी दृष्टि सच्ची और स्वाभाविक प्रभावनाको छोड़कर केवल कृत्रिम प्रभावना ही की ओर जा रही है। वे क्षणभरके लिये भी इस बातका विचार नहीं करते कि हमारी अज्ञानता ही अर्थात् जैन शास्त्र-भण्डारोंकी रक्षा न करनी ही इस परम-पवित्र जैन-धर्मके मूलोच्छेदका कारण हो जायगी। यद्यपि हम-लोगोंने प्रमाद-पयोनिधिमें असंख्य डुब्बियां लगाकर अपने सर्वाङ्गपूर्ण जैन-साहित्यके अनेक रत्नोंको घोंघा समझकर तिरस्कृत कर दिया किन्तु अबसे भी यदि हम लोग चेतनावस्थापन्न होकर और जैन-साहित्यके महत्व समझकर इनकी रक्षा करने लग जांय तो सम्भव है कि यह अपनी बची खुची सामग्रियोंसे एकबार फिर इस भारतवर्षको प्रकाशमय कर दे। किन्तु भाइयो! अब भी हम यदि उसी चिर परिचित धर्म-विद्रावक प्रमादकी दासत्व-शृङ्खलासे परिबद्ध हुए रहेंगे तो फिर सदाके लिये हमें पश्चात्ताप की अविश्रान्त अश्रुधारा बहानी पड़ेगी।

श्रीजिनवाणीकी वर्त्तमान हीनावस्थाका चित्र-परिचय।

(मालिनी)

(१)

यह जिन-जननी श्रीभारतीका है चित्र।
करुण रस भरा है दृश्य मानो विचित्र॥

(२)

सब जिनमत-धारीकी निराली प्रवृत्ति।
मतिगति सब भी तो भिन्नही और वृत्ति॥

(३)

गृह-निहित-महर्द्धि लूट ले और कोई।
निज मत-गत वृद्धि रोकले और कोई॥

(४)

पर कुछ न विचारें क्या है कर्तव्य मेरा।
प्रतिदिन बढ़ता है मूर्खताका अन्धेरा॥

(५)

सब जिनमत शास्त्रोंकी दशा क्या हुई है?
निजगत पुरुषोंकी सद्गति क्या हुई है?

(६)

नहीं तनिक विचारा कार्य्य सारा बिगाड़ा।
चिर-रचित-प्रतिष्ठा-मण्डपोंको उजाड़ा॥

(७)

रविशशिअनिलोंका गम्य है हो नहीं है।
मूषिक-शलभ-कीटोंका अड़ंगा वहीं है॥

(८)

इक निपट अंधेरी कोठरी क्षुद्रसी है।
प्रकृति कुजन लोगोंकी यथा क्षुद्रसी है॥

(९)

अब जिनवरवाणी हा! पड़ी हैं वहां हीं।
निज समय विताती कष्ट पातीं वहां हीं॥

(१०)

इकदिन बरसों पै शास्त्र-भण्डार-स्वामी।
निज नियति सुधारे आगये वामगामी॥

(११)

झटपट सब शास्त्रोंको वहांसे निकाला।
प्रकृत सुजिनवाणीका दिवाला निकाला॥

(१२)

कुछ इत उत फेंका और टकेसेर बेंचा।
निज ऋषि मुनियोंका मूल सर्वस्व बेंचा॥

(१३)

इन विविध अनर्थोंको अभी देखके वे।
विचलितमन होके और उदास हो वे॥

(१४)

ऋषि-मुनि कहते हैं धर्म्म-प्रेमी-जनोंसे।
तुम निजमत-रक्षा हा! करो वाङ्मनोंसे॥

(१५)

अब समय नहीं है नींदका शीघ्र जागो।
प्रतिपल सत्कीर्त्ति-रक्षण-प्रेम पागो॥

(१६)

यदि ऋषि-मुनियोंकी उक्तिमें हो प्रतीति।
अविरत अबसे भी धर्म पालो सप्रीति॥

श्रीजिनवाणीकी वर्त्तमान हीनावस्थाका चित्र।



मब जिनमत-शास्त्रोंकी दशा क्या हुई है? नहीं तनिक बिचारा कार्य्य सारा बिगाड़ा।
निजगत पुरुषोंकी मतक्रान्ति क्या हुई है? चिर-रचित प्रतिष्ठा-मण्डपोंको उजाड़ा॥ १

जिनवाणीकी वर्त्तमान हीनावस्थाके चित्रका परिचय।

प्रिय पाठकगण! आगेके पृष्ठमें जो आपलोग चित्र देख रहे हैं यह श्रीजिनवाणीकी वर्त्तमान हीनावस्थाका चित्र है। इनकी क्या अवस्था है यह बात तो आपको प्रत्यक्षही दीख पड़ती है कि अंधेरे घरकी टूटी फूटी कोठरीमें जहां धूप और हवाका गम्य नहीं, बिना किवाड़की आलमारी तथा सन्दूकोंमें सारे शास्त्र भरे पड़े चूहों तथा दीमकोंके आहार बन रहे हैं। भण्डारके स्वामी कहीं वर्षोंपर भूले भटके आकर कटे फटे ग्रंथोंको कूड़ों में फेंक रहे हैं। हाय! कहांतक कहा जाय जिनके एक पदके पसँघे पर सारे त्रिभुवनकी भी सम्पत्तियां नहीं तुल सकती थीं तथा दूसरी विद्यासे एकविद्या बदली जानेपर भी जो विद्या दिन दिन बढ़ती थी वेही ग्रंथ अब बनियोंके हाथ टके सेर बेचे जारहे हैं और सदाके लिये हल्दी धनियापर बदले जा रहे हैं। देखिये अब शास्त्रों को बनिया टोकरीमें रख रहा है और उन जीर्ण शीर्ण शास्त्रोंको अंग्रेज सब संग्रह करके प्रकाशित कर अपनी असीम गुण-ग्राहकता तथा सौभाग्यशालिताका परिचय दे रहे हैं। बल्कि सब प्रान्तोंके नेता लोग असावधानीसे उसकी ओर पीठ देकर बैठे हुए हैं। अब यह "मूलं नास्ति कुतः शाखा" वाली अवस्था देखकर हमारे स्वर्गवासी देवताओंका आसन एकबार डोल उठा है। और घबराये हुए आप सब धर्म्मात्माओंसे उनकी रक्षाके लिये प्रेरणा कर रहे हैं। देवताओंके पास ही महाराज गायकवाड़ बड़ोदानरेश जो आधुनिक राजाओंमें विद्वान् तथा धार्म्मिक समझे जाते हैं वह भी आप भाइयों से शास्त्र-रक्षाके लिये कह रहे हैं।

राजकीय ओरियंटल लायब्रेरीका परिचय।

अङ्गरेज लोग भारतवर्षकी विद्या तथा कलाकुशलताकी प्रशंसा बहुत दिनोंसे सुनते आते थे। इससे सबसे पहले उनको यह उत्कण्ठा हुई कि जिन ग्रन्थोंको भारतवर्षके आचार्य्योंने अपने सारे जीवन समर्पण कर बड़े परिश्रमसे अपनी सन्तानके लाभके लिये लिखा है उनका संग्रह करना चाहिये। ऐसा विचार कर लाखों रुपयोंकी लागतसे पूना, बम्बई, मद्रास तथा कलकत्ता आदि प्रान्तोंमें "ओरियंटल एसियाटिक" नामकी लायब्रेरियां खोलीं। जिनमें प्रत्येक देशसे प्रत्येक भाषाके प्राचीन शास्त्रोंके संग्रह करनेके लिये

बड़े बड़े वेतनोंपर उच्च हिन्दुस्तानी तथा अंग्रेज विद्वान् नियुक्त किये गये हैं। वे लोग नगर नगर गांव गांव घूमकर शास्त्रोंका पता लगा लगा कर संग्रह कर रहे हैं। जिनको आपके भण्डारके रक्षक रद्दी समझकर बेचते हैं या कूड़ेमें फेंक देते हैं उन्हें अंग्रेज महोदय रक्षापूर्वक अपनी लायब्रेरियोंमें रखकर तथा उनका पर्य्यालोचन कर और भाषान्तरोंमें अनुवाद कर अपूर्व ऐतिहासिक सामग्री आपलोगोंके सामने उपस्थित करते हैं। उल्लिखित विभागोंने ऐसे ऐसे ग्रन्थ तथा शिला-लेखोंका संग्रह भारतवर्षसे किया है कि जिससे अब उन्हीं भारतवासियोंको अपनी मूर्खता तथा अज्ञानतासे उन्हें देखकर आश्चर्य्यित होना पड़ता है।

पुरातत्व संग्रह विभाग।

इस विभागमें भी सैकड़ों विद्वान् नियुक्त हैं जो प्राचीन राजाओंके शिला लेख, ताम्रपत्र, पदक और टूटे फूटे मन्दिरोंके नकाशीदार पत्थरोंके टुकड़े आदि प्राचीन ऐतिहासिक सामग्रियोंका संग्रह कर रहे हैं। इन लोगोंको जैनी ऋषि महर्षि तथा आचार्य्योंके अनेक शिला-लेख ऐसे महत्वपूर्ण मिले हैं कि जिनका तत्व समझ कर पाश्चात्य विद्वान् जैनधर्म्मके बड़े जिज्ञासु हो रहे हैं।

कहिये भाइयो ! जो जाति पांच छः सौ वर्ष पहले जबकि भारतवर्ष उन्नति अवस्थासे गिरकर अवनतावस्थाका अग्रसर हो रहा था जिनको आप जंगली तथा पशु समझते थे, अब उन्हींकी विद्या बुद्धि तथा कला-कौशलकी प्रकर्षता सीमाके बाहर समझी जाती है। कहिये भला इसका क्या कारण है ? तो इसका उत्तर सभीको मुक्तकण्ठसे यही देना होगा कि हमी लोगोंके महर्षियों तथा पूर्वपुरुषोंकी कीर्त्तिकी रक्षाका यह फल है और इन्हीं कीर्त्तियोंकी अवज्ञा तथा नष्ट करनेका यह फल है कि हम लोगोंकी प्रतिदिन हीनावस्था हो रही है।

भ्रातृ-वर्गो ! यह बात आप लोग निश्चय समझिये कि किसी धर्म्मकी हानि तथा वृद्धि धर्म्मग्रन्थोंहीकी हानि और वृद्धिपर निर्भर है। जिन वाणीकी वर्त्तमानावस्थाका प्रत्यक्ष उदाहरण आप लोगोंको इस चित्र-द्वारा प्रकटित हो जायगा।

राष्ट्रकूटवंशीय-महाराज अमोघवर्ष और उनके समयके जैनाचार्य्यों का परिचय।

प्रिय सुहृद्पाठको! आप लोगोंको विदित होगा कि इस भारतवर्षीय इतिहासका प्रारम्भ हमारे ऋषियोंने चौदहवें कुलकर जिनको चौदहवें मनु भी कह सकते हैं उनके समयसे किया है। इन्हीं चौदहवें कुलकर श्रीनाभिराजाके गृहमें श्रीमती मरुदेवीसे जगत्पूज्य भगवान् श्री १००८ आदि तीर्थङ्कर ऋषभदेव स्वामीका जन्म हुआ। और उनके समयमें ही कर्म्मभूमिकी रचनाका प्रारम्भ हुआ। इसीसे आदितीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव स्वामी जगत्के कर्त्ता कहलाये। इन्होंने अपने वंशका नाम इक्ष्वाकु रक्खा। और आपके समयमें अनेक वंश प्रकट हुए। उन महावंशोंमें जन्म ले लेकर अनेक महानुभावोंने इस भारतभूमिको पवित्र किया। परन्तु आज हम उतनी दूर न जाकर अपने पाठकोंका ध्यान छठवीं शक शताब्दिकी ओर आकर्षित करते हैं, जिससे कि इस इतिहासके भागका विशेष सम्बन्ध है।

महाराष्ट्र शब्दका सार्थक्य।

उस समयमें भारतवर्षके शासनाधिपति राजाओंके नामके पूर्व राजकवि लोग 'महा' यह उपाधि लगाकर अपने राजाओंका गौरव बढ़ाया करते थे और राजा लोग भी इस उपाधिसे अपने गौरवकी अधिकता समझते थे। क्योंकि भोजवंशीय राजाओंने तथा उनके समयके बहुतसे कवियोंने कई शिला लेखोंमें भोजके पूर्व 'महा' यह उपाधि देकर इनका गौरव-प्रकर्ष दिखलाया है। इसी तरह रट्टा, राठा, राठौर, या राष्ट्रके पूर्व 'महा' लगाकर महाराष्ट्र आदि नाम प्रचारित किये गये हैं।

महाराज इन्द्र तृतीयके ८३७ शकके नौसारीके दानपत्रमें लिखा है कि राष्ट्रकूटवंश सोमवंशके यदुवंशी है और इनका गोत्र सात्यकी है। इसके बाद भी कई शिला-लेखोंमें राष्ट्रकूटवंशियोंको सोमवंश लिखा है। इतिहासखोजी रामकृष्ण भण्डारकर और वर्णल साहब राष्ट्र शब्दको रट्टा या रेड्डीका बिक-

ल्पित शब्द मान राष्ट्रकूटवंशियोंको द्राविड़ी कहते हैं। इनका कथन है कि "रड्डा शब्द रेड़ो शब्दका तद्रूप है और यह शब्द कनड़ी अथवा तेलगूका है। जिसका अर्थ कोषोंमें एक 'कृषक जाति' दूसरा 'ग्रामाधीश' है। राष्ट्रकूटोंका आदि निवास मध्य हिन्दुस्तान या बम्बई हातेका उत्तरीय भाग है। परन्तु राष्ट्रकूट शब्दको रड्डा या रेडोका कल्पित शब्द मानना अनुचित मालूम पड़ता है। क्योंकि प्रायः प्राचीन लेखोंमें तो राष्ट्रकूट शब्दही मिलता है। अभिमन्युके दानपत्र, नन्दराज्यके मलटाईके दानपत्र तथा दन्तिदुर्गके सामङ्गदके दानपत्रमें स्पष्टतया राष्ट्रकूट शब्दका प्रयोग किया गया है। रट्ट शब्दका प्रयोग छन्दोबद्ध सौदत्तीके सरदारोंके लिखे हुए थोड़ेसे दानपत्रोंमें मिलता है। जो छन्दरचनाके कारणही इस शब्दका प्रयोग किया हुआ मालूम पड़ता है। दूसरी बात यह है कि बम्बईके उत्तरीय भागोंमें रेड़ी नामकी कोई जाति देख ही नहीं पड़ती। इससे निश्चय होता है कि राष्ट्रकूट शब्द आदिशब्द है या राठौरका संस्कृतरूप है।

राठौरोंका आदिवास राजपुताना कन्नौज पश्चिमोत्तरादि स्थानोंहीको मानना ठीक होगा। यह भी निस्सन्देह सिद्ध होता है कि राष्ट्रकूटवंशीय राजगण क्षत्रिय थे क्योंकि गोविन्द तृतीयकी पुत्रीका व्याह वंगनरेश धर्मपालसे हुआ था और महाराज अकालवर्षका व्याह सर्वोच्च हैहयवंशीय क्षत्रिय चेदीनरेशकी लड़कीसे हुआ था।

राष्ट्रकूट राजाओंकी उपाधि लाटानुराधीश अनेक स्थानोंमें लिखी गयी है जिससे मालूम होता है कि इनका आदि वास लाटानुर होगा किन्तु वर्त्तमान समयमें लाटानुरका पता नहीं लगता। परन्तु विलासपुर जिलान्तर्गत रत्नपुर बस्तीको यदि लाटनुरका वर्तमानरूप कहा जाय तो हो सकता है। इसमें कोई सन्देह ही नहीं है कि राष्ट्रकूट उस समय एक सर्वमान्य और सर्वोच्च क्षत्रियवंश था। क्योंकि और राजाओंकी अपेक्षा इनकी प्रसिद्धि सर्वत्र व्याप्त थी। इनके सौभाग्यकी इयत्ता सीमासे बाहर थी। इनके वंश-वृक्षमें जितने राजाएं हैं उनमें यही जैन इतिहासके उन्नायक कहे जा सकते हैं। प्रायः ऐसा कोई नहीं जैनइतिहास है जिसमें इनकी कुछ चर्चा न हो।

राष्ट्रकूटवंशका वंशवृक्ष ।

दन्तिवर्मा (प्रथम)
- इन्द्र (प्रथम)
  - गोविन्द (प्रथम)
    - कर्क या कक्क (प्रथम)
      - इन्द्र (द्वितीय)
        - खड्गावलोक दन्तिदुर्ग या दन्तिवर्म्मा (द्वितीय) शाका ६७४
      - अकालवर्ष, सभातुङ्ग, कृष्ण (प्रथम) शाका ६७५-८७
        - गोविन्द (द्वितीय) शाका ६८७–७०५
        - धारावर्ष, निरूपम, कलिवल्लभ, ध्रुव शाका ७०५-१६
          - गोविन्द (तृतीय) शाका ७१६-७३६
            - सर्व या अमोघवर्ष शाका ७३६-७९८
              - अकालवर्ष शाका ८००-४१
                - इन्द्र (तृतीय) शाका ८३७-८३८ या ८३९
                - वड्डिग, अमोघवर्ष (तृतीय)
                  - कृष्ण (तृतीय) शाका ८६२-८७८
                    - इन्द्र (चतुर्थ) शाका ९०४ ।
                  - खोटिका
                  - निरूपम
                    - कर्क द्वितीय या अमोघवर्ष चतुर्थ शाका ८९४ और ८९५ ।
          - इन्द्र
            - कर्क
            - गोविन्द

              गुजरातके राजा

यदि इस महाराष्ट्र-वंशका पूर्ण ऐतिहासिक विवरण लिखा जाय तो एक बड़ा भारी स्वतन्त्र इतिहासका ग्रन्थ तयार होजाय इसलिये हम इस वंशका पूर्ण विवरण न लिख कर जिनके राजत्व-कालमें अनेक दिग्गज जैनाचार्य्य होगये हैं उन्हींका यथोपलब्धित ऐतिहासिक सामग्रीसे कुछ वर्णन करेंगे। क्योंकि

हमारा मुख्योद्देश्य जैनाचार्य्योंहीका समय निश्चित करना है।

शक सम्वत् १५० के लगभग भारतवर्षकी बागडोर अन्ध्रवंशीय राजाओंके हाथमें थी। इन्होंने करीब तीन सौ वर्ष तक राज्य किया। इसके बाद प्रायः २२५ वर्ष तक चालुक्यवंशीय राजाओंने इस पवित्र भूमिका शासन किया था। चालुक्यवंश उत्तरीय राजपूत वंशका एक अंश है। जिन्होंने मध्य दक्षिण और द्राविड़ देशपर अपना आधिपत्य जमाया था। इस वंशके प्रथम स्थापनकर्त्ता वीरोंमें प्रसिद्ध वीर और अपने समयके एक बड़े भारी प्रतापी राजा महाराज पुलकेशी थे। जिन्होंने शक सम्वत् ४७२ के लगभग बड़े पराक्रमके साथ वातापी नगरीमें अपनी राजधानी स्थापित की। जो कि आजतक दक्षिण प्रदेशमें बीजापुर जिलान्तर्गत बदामी नाम (गुजरात) से प्रसिद्ध है। इनके बाद इस वंशमें और भी अनेक पराक्रमी राजा हुए। शक सम्वत् ६६२के लगभग में विक्रमादित्य द्वितीय हुए। इनके पुत्र कीर्त्तिवर्म्मा द्वितीय इस वंशके अन्तिम राजा हुए। इन्होंसे राष्ट्रकूट-वंशके प्रधान और संस्थापक वीर-श्रेष्ठ महाराज दन्तिदुर्ग जिनकी उपाधि वल्लभराज, पृथ्वीवल्लभ, महाराजाधिराज परमेश्वर और परमभट्टारक थी। इन्होंने शक सम्वत् ६७५ के लगभग बड़ी वीरताके साथ भारतवर्षीय दक्षिण राष्ट्रमें घोर विप्लव उपस्थित कर उस प्रदेशका शासन-भार अपने हस्तगत कर लिया। वल्कि दन्तिदुर्गने कर्नाटक, चोल, काञ्ची, पाण्ड्य हर्ष और वज्रट देशके राजाओंको भी जीता। इनके समयके एक दान-पत्र रियासत कोल्हापुरके सामङ्गदमें लिखा है कि शक सम्वत् ६७४ माघ शुक्ल सप्तमीको ब्राह्मणोंको दान दिया। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि इनके राजत्वकालका आरम्भ शक सं० ६७५ में हुआ। इन्होंने वातापी नगरीमें चालुक्यवंशीय राजाओंको सिंहासन-च्युत कर अपनी राजधानी स्थापित की। और चालुक्य राजाओंके आधीनस्थ अन्य अन्य देशोंपर भी अपना प्रभुत्व प्रचार-करनेकी कोशिश की परन्तु उनका राजत्व प्रजा-प्रिय न होनेके कारण उनके चचा कृष्ण प्रथम-द्वारा वे सिंहासन-च्युत कर दिये गये। इनकी उपाधि 'अकालवर्ष' और 'सभा तुङ्ग' है। इन्होंने चालुक्यवंशीय राजाओंके आधीनस्थ सब प्रदेशोंपर अपना राजत्व किया और इन्होंकी वंशधरोंने गुजरातमें राजधानी स्थापित की और बहुत दिनों तक वहां राज्य-शासन किया। महाराज कृष्ण (१) प्रथमने वर्त्तमान निजामराज्य-स्थित एलुरामें

नोट-(१) इनका नाम अकालवर्ष और सभातुङ्ग भी था।

बहुत बड़े बड़े और प्रसिद्ध उस समयके भारतवर्षकी शिल्पचातुरीके आदर्श-भूत अनेक जैन-मन्दिर बनवाये और गुफाएं खुदवायीं। जो आजतक भारत-वर्षकी आश्चर्य-जनक चीजोंमें एक प्रसिद्ध रूपसे परिगणित हो रही हैं।

इनके दो पुत्र हुए। एकका नाम गोविन्द द्वितीय और दूसरेके नाम धारावर्ष, निरूपम कलिवल्लभ और ध्रुव थे। इनके बाद गोविन्द द्वितीयने राज्य भार ग्रहण किया। यद्यपि गोविन्द द्वितीयके राजत्व कालका कुछ विशेष परिचय नहीं मिलता और न इनके समयमें कुछ ऐतिहासिक घटनाही हुई है तो भी हरिवंश पुराणके रचयिता जिनसेनने हरिवंश पुराणकी प्रशस्तिमें लिखा है कि कृष्णके पुत्र श्रीवल्लभके राजत्व कालमें शक सम्वत् ७०५ में यह 'हरिवंश' पुराण समाप्त हुआ। महाराज गोविन्दकी उपाधि श्रीवल्लभ थी। परन्तु ये पूर्ण-रूपसे राज्यको शृङ्खलाबद्ध भी न करने पाये थे तथा राज्य लक्ष्मीके सुखका आस्वादन भी न किया था कि इनके भाई महापराक्रमी युद्धप्रेमी महाराज ध्रुवने घोर युद्ध कर लगभग शक्र सम्वत् ७०५ में उनसे सिंहासनाधिपत्य छीन लिया। क्योंकि इस प्रमाणकी पुष्टि वाणी डिंटोरी और राधनपुरके दान पत्रसे भी होती है। और उन्होंने बड़े पराक्रमके साथ गुज-रात प्रदेशस्थ भिन्न-मल्लदेशीय राजवंशको पराजित कर उनके बंगाल देशके जय चिन्ह स्वरूप लाये। ए दो श्वेत छत्र छीन लिये और काञ्ची कौशाम्बी तथा कोशल देशके राजाओंको भी पराजित किया। इनके राजत्वकालका कुछ विशेष परिचय नहीं मिलता तो भी यह स्पष्टतया विदित होता है कि इन्होंने बहुत दिनों तक राज्य नहीं किया क्योंकि इनके पूर्वाधिकारी इनके भाई गोविन्द द्वितीयका समय शक सम्वत् ७०५ निश्चय होता है और उनके उत्तरा-धिकारी इनके पुत्र गोविन्द तृतीय का राजत्व-समय शक सम्वत् ७१६ निश्चित होता है। इससे अनुमान होता है कि आपने लगभग दस या ग्यारह वर्ष राज्य किया होगा। आप बड़े युद्धप्रेमी थे और आपने इस थोड़ेसे राजत्व-समयमें भी कई घोर युद्ध किये। केवल युद्धही तक नहीं वल्कि सब जगह विजय भी प्राप्त की। उनके पराक्रमकी :प्रकर्षताहीसे उनको 'निरूपम' 'महाराजाधिराज' 'परमेश्वर' और 'भट्टारक' आदि उपाधियां मिली थीं। इन्होंने अपना गौरव बहुत बढ़ाया। इनके पुत्र गोविन्द तृतीयने शक सम्वत् ७१६ के लगभग पैतृक-राज्य-भार ग्रहण किया। ये महाराज इस प्रबल वंशके एक प्रधान और प्रतापी राजा और प्रसिद्ध वीररूपसे परिगणित हुए थे। इन्होंने अपने राजत्वकी सीमा

दक्षिण देशमें काञ्ची-पर्य्यन्त उत्तरमें विन्ध्यपर्वत तथा मालवा-पर्य्यन्त परिवर्द्धित की थी और अपने अधीनस्थ भिन्न भिन्न देशोंमें अनेक राज्य स्थापित किये थे। और कहांतक कहा जाय इनकी विजयवैजयन्ती तुङ्गभद्रा नदी तक बड़े प्रभावके साथ फहराया करती थी। इन्होंने अपने भाई इन्द्रको दक्षिण गुजरात देशपर शासन करनेके लिये प्रतिनिधि-स्वरूपसे नियत किया। इनके समयमें इस जैन-धर्म्मका उदयाभिमुख सूर्य्यकी लालिमा उदयाचलपर छिटक रही थी। बौद्ध धर्म्मावलम्बियोंका प्रभाव दिन दिन घट रहा था। इन्होंने शक सम्बत् ७३० में राधनपुर, वाणी और डिण्डोरीमें दानपत्र लिखवाये।

उन दानपत्रोंसे आपकी दान-वीरताका अच्छा परिचय मिलता है। आप बड़े पितृ-भक्त थे। आपके पिता महाराज ध्रुवने अपने जीवितकालमें ही इनको राज-सिंहासन देनेकी इच्छा प्रकटित की थी। परन्तु इन्होंने पिताकी उपस्थितिमें राजत्वको स्वीकार न कर युवराजत्व ही से सन्तोष किया। जब आप सिंहासनपर बैठे तब उनके अधीनस्थ बारह राजाओंने एकत्रित होकर गुजरात प्रदेशस्थ एकस्तम्भ नामक राजाको मुखिया बनाकर स्वराज्य स्थापन करनेके लिये राजाज्ञा भङ्गकर घोर राजद्रोह उपस्थित कर दिया। यानि उस शान्तिमय राष्ट्रकी चिरवासिनी शान्ति भङ्ग कर दी। परन्तु महाराज गोविन्द तृतीय इससे कुछ भी विचलित नहीं हुए और उन्होंने बड़े पराक्रमके साथ उन सम्मिलित प्रतिपक्षी राजाओंके पराक्रमका विध्वंस कर बड़ी वीरता दिखलायी और वेङ्गी नरेश जिनका नरेन्द्र, मृगराज और विजयादित्य द्वितीय होना सम्भव है। जिन्होंने १०८ बार राष्ट्रकूट और गंगावंशीय राजाओंसे बड़े बड़े युद्ध किये थे सो इनको भी महाराज गोविन्द तृतीयने अपने अधीन कर लिया।

इन घोर युद्धोंसे छुट्टी पा महाराजने अपनी राजधानी मयूरखण्डी जो नासिक मोरखण्ड मालूम होता है उससे बदलनेकी इच्छा प्रकटित की और वेङ्गी नरेश को बुलवा कर मान्यखेट (१) की प्राकार (चहार दिवारी) से घिरवाने की आज्ञा दी। उन्होंने महाराजकी आज्ञा शिरोधार्य्य कर शक सम्बत् ७२८ में वर्षा ऋतुके थोड़े ही दिन पहले इस कार्य्यको प्रारम्भ कर दिया। इधर महाराज गोविन्द अगणित सैन्यको सजाकर केरल, मालव, सौत, गुर्जर और चित्रकूट आदि अनेक देशोंपर आक्रमण कर सबको अपने

नोट—१ यह मान्यखेट सोलापुरसे ८० माइलपर अग्निकोणमें निजामराज्यमें है और वर्त्तमान समयमें उसको मलखेड कहते हैं।

अधीनस्थ कर आप लौट आये। इनका राज्य पश्चिमी उपकूलसे लेकर पूर्व उपकूल तक और उत्तरमें विन्ध्य पर्वतसे लेकर मालवा तक और दक्षिणमें तुङ्ग नदी तक विस्तृत था। इन्होंने अपने भाई गुजरातके राजा इन्द्रको लाटा प्रदेश प्रदान किया। महाराज गोविन्द तृतीयको एक पुत्री थी। इसका नाम राणा देवी था। इसीका व्याह बंगालके महाराज धर्म्मपालसे हुआ था। इनकी उपाधियां प्रभूतवर्ष, श्रीवल्लभ, जगत्तुङ्ग, जनवल्लभ, कीर्त्तिनारायण, प्रबल, पृथ्वीवल्लभ, श्रीपृथ्वीवल्लभ, श्रीवल्लभ, नरेन्द्र, महाराजाधिराज, भट्टारक और परम भट्टारक थीं। इनके राज्यका अन्तिमकाल शक सम्वत् ७३६ के लगभग मालूम पड़ता है। इनके समयमें जैनधर्मकी बड़ी उन्नति हुई है। इनके समयका एक दानपत्र मैसोरमें शक सम्वत् ७३५ का लिखा हुआ मिलता है। जिसमें गोविन्द तृतीयके राज्यकालका तथा चालुक्य वंशीय राजा बलवर्म्मा इनके पुत्र यशोवर्म्मा यशोवर्म्माके पुत्र कुनुङ्गिल देशमें राज्य करता था इत्यादि उल्लेख है। यह दानपत्र ताम्रपत्रपर संस्कृत भाषामें कनड़ी लिपिमें खुदा हुआ है। इस दानपत्रका सारांश यह है कि विमलादित्य नामक एक जैन राजपुत्र कांजोलिन (१) प्रदेशके शासनकर्त्ता थे। इनके पिताका नाम यशोवर्म्मा और इनकी माता गंगा मण्डलके शासनकर्त्ता चाकी राजाकी भगिनी थीं। उक्त विमलादित्यके ऊपर शनिग्रहका पूर्ण प्रकोप था। इस प्रकोपके निवारणार्थ इनके मामाने चाकीराजके अनुरोधसे बल्लभ नरेन्द्र प्रभूतवर्ष गोविन्द तृतीय जब मयूरखंडीमें थे, जैन-शिक्षक गुप्त गुप्ताचार्य्योंके समूहसे पूज्यमान आचार्य्य, कीर्त्तिकी परम्परामें नन्दिसङ्घ, पुन्नागवृक्ष मूलगणके आचार्य्य कविके शिष्य अर्ककीर्त्तिको मान्यपुर (२) में एक जैन-मन्दिर बनानेके लिये इदीगुर देशमें जलमंगल नामक एक ग्राम दिया। इसका समय शक सम्वत् ७३५ ज्येष्ठ शुक्ल दशमी सोमवार है। इससे महाराज गोविन्द तृतीयका अन्तिम राजत्व-समय शक सम्वत् ७३५ निश्चित होता है। इसके बाद शक सम्वत् ७३६ अर्थात् ईस्वी सन् ८१४ या ८१५ में गोविन्द तृतीयके उत्तराधिकारी इनके पुत्र महाराज अमोघवर्षने भारतवर्षका शासन-भार ग्रहण किया। आप बड़ेप्रतापी और विद्वान् राजा थे इसीसे उस समयके कवियोंने आपको अनेक उपाधियों से विभूषित किया है। आपकी मुख्य मुख्य उपाधि नृपतुङ्ग, महाराजाधिराज, सर्व, अतिधवल, परमे-

नोट=१ कांजोलिन आधुनिक दक्षिण प्रदेशस्थ काशिमाल हो सकता है।

नोट=२ यह मान्यपुर आजकल मन्निपुर नामसे प्रसिद्ध है।

श्वर, भट्टारक, परमभट्टारक, श्रीवल्लभ, पृथ्वीवल्लभ और दुर्लभ आदि है। वास्तवमें आपकी प्रत्येक उपाधिने पद पदमें अपनी सार्थकता दिखलायी थी। अनेक राजाओंने अनेक दानपत्रोंमें महाराज अमोघवर्षको कई नामसे सम्बोधन किया है। शक सम्वत् ८३७ अर्थात् ९१५ ई० में नौसारीके दानपत्रमें इन्द्र तृतीयने आपको "श्रीवल्लभ" की उपाधिसे विभूषित किया है। इसी प्रकार कङ्कण देशके शिलाहार वंशके राजाने अपने शक सम्वत् ९१९ के भदेना दानपत्रमें आपको "दुर्लभ" नामसे सम्बोधित किया है। महाराज अमोघ-वर्षके लेखोंमें "महाराजाधिराज" "भट्टारक" "परमभट्टारक" "परमेश्वर" इत्यादि पदवियोंका विशेषरूपसे व्यवहार किया गया है।

शक सम्वत् ७३६ के लगभग जब महाराज गोविन्द तृतीयका स्वर्गारोहण हो चुका था और महाराज अमोघवर्ष राज्य-शासन-भार ग्रहण कर चुके थे तब उनके अधीनस्थ राजाओंने अधीनताकी शृङ्खलाको तोड़ स्वतन्त्रता धारण करली। उस समय उन्होंने अपने चचेरे भाई गुजरातातधिपति महाराज कृष्णसे सहायता मांगी और उनको साथ ले दुर्दमनीय पराक्रमके साथ पहले वेंगीराज पर आक्रमण किया तथा उस राज्यको छार खार कर डाला। इसी युद्धका सम्बन्ध लेकर उल्लिखित नौसारीके दान पत्रमें आपको लेखकोंने "वीर नारायण" उपाधिसे विभूषित किया है। उसकी व्याख्या इस प्रकार की है कि जैसे नारायणने महासमुद्रमें डूबी हुई पृथ्वीका उद्धार किया उसी प्रकार चालुक्य महासागरमें निमग्न हुई अपनी पैतृक-राज्य-लक्ष्मीका उद्धार किया। शक सम्वत् ८८५ के कारड़ा दानपत्रमें चालु-क्योंके नाश करनेके लिये आपको अग्निकी उपमा दी गयी है। आपने चालुक्यवंशीय राजाओं पर आक्रमण कर वेंगीके चालुक्योंको वंशावलीमें भया-नकरूपसे पराजित किया और इनके बहुतसे नगरोंको आग लगाकर जला डाला। आप पैतृक-राज्यको पूर्णरूपसे उद्धार कर बड़े प्रतापके साथ राज्य करने लगे। आपका बहुतसा समय इन चालुक्य राजाओंके साथ तुमुल युद्ध करनेमें ही व्यतीत हुआ। इनके पिता गोविन्द तृतीयकी राजधानी परिवर्त्तन करनेकी जो अत्युत्कट इच्छा और उद्योग था उसकी पूर्त्ति आपने बड़े उत्साह और पूज्य-पितृभक्तिसे की। आपने मयूरखण्ड नासिकसे अपनी राजधानी उठा मान्यखेत वर्त्तमान मलखेड़में स्थापित की। इसी मान्यखेतकी परिखा आपके पूज्य पिताकी आज्ञानुसार वेंगीनरेशने बड़ी चतुरताके साथ

निर्म्माण कराई थी। आपहीके समयमें राष्ट्रकूटवंशियोंकी राजधानी मान्य-खेत्रमें स्थापित हुई थी। इसका प्रमाण 'करड़ा' 'देवली' और 'वर्द्ध' दानपत्रों में मिलता है। वर्द्ध दानपत्रमें लिखा है कि जगत्तुङ्ग (गोविन्द तृतीय) के लड़के नृपत्तुङ्ग (अमोघवर्ष) ने मान्यखेत्र बसाया। अङ्ग, बङ्ग, मगध, मालव और बेंगी नरेशगण बड़ी भक्तिके साथ आपकी आज्ञाका प्रतिपालन किया करते थे। जिसका प्रमाण आजतक भी सुरूर शिला-लेखमें खुदा हुआ है। मलखेड़में राजधानी स्थापन करने के बाद आपने बड़े पराक्रमके साथ दिगन्त-व्यापिनी प्रसिद्धि कर ली थी। यदि यह कहा जाय कि उस समय सारे भारतवर्षमें आपका एक-छत्र राज्य था तो हमारी समझमें कुछ अत्युक्ति न होगी। आप बड़े विद्या-प्रेमी थे। आपके समयमें संस्कृतसाहित्य-भण्डारकी पूर्त्ति खूब बढ़ी चढ़ी थी। आपकी सभाको बड़े बड़े दिग्गज ध्वजाधारी पण्डित और कवि सदैव अपनी अपनी विद्या और कविताकी चमत्कृतिसे सुशोभित किया करते थे। आप जैनधर्म्मावलम्बी थे। स्वयं भी आप बड़े भारी पण्डित और कवि थे। आपको कवित्वोत्कर्षताका नमूना आपकी बनायी हुई है "प्रश्नोत्तर-रत्नमाला" से सहजहीमें मालूम होता है। बल्कि इसकी काव्य-चातुरी और विषय-सौन्दर्य्यने लोगोंको यहां तक मुग्ध किया कि सनातनधर्म्मावलम्बियोंने श्रीशङ्कराचार्य्य-रचित और श्वेताम्बरसम्प्रादायोंने उसके मङ्गलाचरण और प्रशस्तिके श्लोक बदल कर अपने आचार्य्यके नामसे प्रसिद्ध कर दिया। परन्तु बहुत प्राचीन हस्त-लिखित ग्रन्थोंमें जो मंगलाचरण (१) और प्रशस्ति(२) मिलती हैं उनसे निश्चित होता है कि महाराज अमोघवर्षहीकी यह बनायी है। आपके समयकी बहुतसी सत्य घटनाएं वर्तमानसमयमें महाराज भोजकी किम्वदन्तियांकी सी परिणत हो गयी हैं। इनके महादानी होनेका पूर्ण प्रमाण अनेक प्राचीन दानपत्रों द्वारा प्रमाणित होता है। इनके समयमें जैन-धर्म्मकी और जैन-साहित्यकी अद्वितीय उन्नति हुई है और इनके समयमें बड़े प्रसिद्ध प्रसिद्ध जैनाचार्य्य हुए तथा अनेक महत्व-शाली

नोट—१ प्रणिपत्य वर्द्धमानं प्रश्नोत्तररत्नमालिकां वक्ष्ये। नागनरामरवन्द्यं देवं देवाधिपं वीरम्॥ १॥

भावार्थ—देव और मनुष्योंसे वन्दनीय देवाधिदेव वर्द्धमान श्रीमहावीर स्वामीको नमस्कार कर मैं इस प्रश्नोत्तररत्नमालाको रचता हूं।

नोट—२ विवेकात्यक्तराज्येन राज्ञेयं रत्नमालिका। रचितामोघवर्षेण सुधियां सदलङ्कृतिः।

भावार्थ—विवेकसे राज्य छोड़े हुए महाराज अमोघवर्षने यह प्रश्नोत्तररत्नमाला विद्वानोंके लिये सद-लङ्कारकी सी रची।

ग्रन्थोंकी रचना हुई। इनके समयमें श्री १०८ भवगज्जिनसेनाचार्य्य और स्वामी गुणभद्राचार्य्यकी बड़ी प्रसिद्धि हुई है। इन्होंने बौद्ध-धर्म्मको तो बड़ी प्रबलताके साथ घटाया। जिसका फल यह हुआ नवमी शक शताब्दिके प्रारम्भमें ही दक्षिण भारतमें बौद्ध-धर्म्मका अस्तित्व उठ गया।

क्षत्रियकुलचूड़ामणि राठौरकुल-सूर्य्य महाराज अमोघवर्ष हमारे परम-पूज्य श्री १०८ भगवज्जिनसेनाचार्य्यके प्रिय शिष्य थे। जिसका उल्लेख स्वामीजीने भी अनेक स्थानोंपर किया है। गुणभद्रस्वामीने भी अपने उत्तर-पुराणकी प्रशस्ति में महाराज अमोघवर्षकी गुरुभक्तिका अच्छा उत्कर्ष दिखलाया है। इन्हीके राजत्वकालमें श्रीवीरसेनाचार्य्यने एक परमोत्कृष्ट सारसंग्रह (१) नामक गणित-शास्त्रकी रचना की है। यही वीरसेन स्वामी जिनसेनाचार्य्यके गुरु थे। इन्होंने भी इसी सारसंग्रह ग्रन्थमें महाराज अमोघ-वर्षका उल्लेख किया है।

---

(१) सारसंग्रहका मंगलाचरण :—

प्रीणित: प्राणिसस्यौघो निरीति निरवग्रह: ।
श्रीमतामोघवर्षेण येन स्वेष्टहितैषिणा ॥ १ ॥
पापरूपा परा यस्य चित्तवृत्ति र्हविर्भुजि ।
भस्मसात् भावमीयुस्ते वन्ध्यकोपो भवेत्तत: ॥ २ ॥
वशीकुर्वन् जगत्सर्वं योऽयं नानुवश: परै: ।
नाभिभूत: प्रभुस्तस्मादपूर्वमकरध्वज: ॥ ३ ॥
यो विक्रमक्रमाक्रान्तचक्रीशक्रशतक्रिय: ।
चक्रिकाभञ्जनो नाम्ना चक्रिकाभञ्जनोऽञ्जसा ॥ ४ ॥
यो विद्यानद्यधिष्ठातो मर्य्यादा वज्रवेदिका ।
रत्नगर्भो यथा ख्यात श्चारित्रजलधिर्महान् ॥ ५ ॥
विध्वस्तैकान्तपक्षस्य स्याद्वादन्यायवादिन: ।
देवस्य नृपतुङ्गस्य वर्द्धतां तस्य शासनम् ॥ ६ ॥

भावार्थ—जिन श्रेष्ठ हितैषी अमोघवर्षसे जीवधारी रूपी धानके समूह निरुपद्रव और बिना प्रतिरोधके प्रसन्न किये गये। जिनके ध्यानरूप अनलमें पापरूप शत्रु भस्म हुए। इसके बाद इन्होंने अपने क्रोधादि कषायोंको रोका। जिन्होंने सारे संसारको वश किया पर आप किसीके वश नहीं हुए और जिनको

परन्तु इस सार्वसंग्रह ग्रन्थका त्रैराशिक अध्याय तक ही लब्ध है। इसकी प्रशस्ति नहीं मिलती जिससे कि इस ग्रन्थके समयका पूर्ण निश्चय किया जाय परन्तु इसमें तो कुछ सन्देह ही नहीं कि इस ग्रन्थकी रचना महाराज अमोघवर्षके राजत्वकालमें हुई है। क्यों कि मंगलाचरणके श्लोक इसके लिये अकाट्य प्रमाण हैं। श्रीवीरसेन स्वामीने जयधवलकी टीका लिखना प्रारम्भ किया था किन्तु वे उसको पूर्ण न कर सके। केवल बीस हजार श्लोकोंको ही लिखकर स्वर्गको पधारे। इस अधूरे ग्रन्थको भी जिनसेन स्वामीने शक सम्वत् ७५९ में चालीस हजार श्लोकोंको और लिखकर साठ हजार श्लोकोंमें पूर्ण किया। इन्होंने "सिद्धभूपद्धति" की भी टीका लिखी है। वीरसेनके तीन शिष्य थे १ जिनसेन २ विनयसेन ३ दसरथगुरु। इन्हीं विनयसेनके अनुरोधसे कालिदासके अभिमान दमनार्थ जिनसेनने "मेघदूत" के श्लोकोंसे परिवेष्टित करते हुए "पार्श्वाभ्युदय" रचा। जिनसेन स्वामी अपने समयके एक अद्वितीय कवि तथा बड़े भारी सैद्धान्तिक-मर्मज्ञ थे। कई स्थानोंमें इन्होंने बौद्धोंको पराजित कर विजय-डंका बजायी थी और इनके समयमें जैन धर्मका महत्व बहुत बढ़ा चढ़ा था। यही कारण है कि आपके समयका सुवर्णमय चमकता हुआ दृष्टान्त आजतक भारतवर्षके इतिहास ललाटमें जैनधर्मावलम्बियोंके लिये खुदा हुआ है। महाराज अमोघवर्ष अपने गुरु जिनसेनाचार्यके वैराग्यमय उपदेशसे इस भूमण्डल-व्यापिनी राजलक्ष्मीसे विरक्त हो जिनदीक्षा धारण करली और इन्होंने अपना अन्तिम समय मुनि अवस्थामें ही व्यतीत किया। इसबातकी साक्षिता इनकी रचित "प्रश्नोत्तर रत्नमालिका"का अन्तिम श्लोक ही पूर्णरूपसे दे रहा है। महाराज अमोघवर्षके शासनकालका अन्तिम समय कान्हेरी दान पत्रोंमें शक सम्वत् ७९९ लिखा हुआ है। जो इनके राज्यकालसे तिरसठवां अथवा चौसठवां वर्ष होता है। परन्तु यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि उस समयतक इन्होंने जिनदीक्षा लेली थी। पर इनके विद्यमान रहते इनके पुत्रकी प्रधानताकी ओर कुछ ध्यान न देकर करड़ा

अवनति कभी नहीं हुई अतः आप अपूर्व कामदेव हैं। जो अपने पराक्रमसे नारायण तथा इन्द्रकी क्रियाओं पर भी आक्रमण करने वाले हैं और जो रत्नगर्भ समुद्रके ऐसा विद्या-रूपिणी नदियोंके आश्रय हैं। और कहां तक कहा जाय मर्यादाकी तो वे रत्न-वेदिका हैं। इन्होंने एकान्तवादियोंको विध्वस्त कर अपने स्याद्वादकी डंका बजायी। ऐसे नृपतुंग अमोघवर्षका शासन सदा वर्तमान रहे।

दानपत्रमें लेखकोंने इन्हींका नाम लिख दिया होगा। क्योंकि उस समय तक इनको जिन-दीक्षा लेनेका सुदृढ़ प्रमाण एक और मिलता है कि शक सम्वत् ७८७ के सौदत्ती लेखमें राजाके स्थानमें अकालही वर्षका नाम लिखा हुआ है। इससे इस बातका भी निश्चय होता है कि शक सम्वत् ७८७ के पूर्वही महाराज अकालवर्ष सिंहासनारूढ़ हो चुके थे।

अमोघवर्ष प्रथमके बाद उनके पुत्र अकालवर्ष वा कृष्ण द्वितीय सिंहासन पर बैठे। इनका विरुद सभातुङ्ग और उपाधियां महाराज, परमेश्वर और परम भट्टारक थीं। आपने हैहयवंशी शङ्कुककी बहन यानि चेदीनरेशकी लड़कीसे विवाह किया था। इसका विवरण शक सम्वत् ८८६ के कारड़ा दान-पत्रमें लिखा हुआ है। लेखमें इनका सबसे प्रथम समय शक सम्वत् ८१० मिलता है परन्तु ये करीब शक ७८७ में अवश्य सिंहासन पर बैठे होगें। क्यों कि उस समय तक उनके पिता अमोघवर्षको राज्य करते साठ एकसठ वर्ष हो गये थे। इनका अन्तिम समय शक सम्वत् ८३३ या ८३४ के करीब होता है। गुणभद्राचार्य्य-रचित 'आत्मानुशासन'की टीकामें लिखा हुआ है कि गुण भद्राचार्य्य अकालवर्ष वा कृष्ण द्वितीयके गुरु थे।

जिस समय इस ग्रन्थकी रचना हुई है उस समय अकालवर्ष युवराज थे। इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि सिंहासन पर बैठनेके पूर्वही अकाल-वर्ष राज्य-कार्य्यमें पूर्ण दक्ष हो गये थे और राज्यशासनमें अपने पिताकी सहा-यता किया करते थे। दूसरा यह कि "आत्मानुशासन" का समय लगभग शक सम्वत् ७८६ या ७८७ निश्चित होता है। इन्हीं महाराज अकालवर्षके राज्यकालमें श्री आदिपुराणकी पूर्त्ति और उत्तरपुराणकी रचना हुई थी। उत्तरपुराणकी प्रशस्तिमें लिखा है कि शक समवत् ८२० के पिङ्गल नामक सम्बत् में यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ हैं। उस समय चेल्लध्वज या चेल्लकेतन वंशका एक लोकादित्य नामक राजा महाराज अकालवर्षके आधीनमें बनवास प्रदेश के बंकापुरमें राज्य करते थे। इसी बंकापुरमें यह उत्तरपुराण पूर्ण हुआ है। यह लोकादित्य महाराज अमोघवर्षके अधीनमें सूबेदारके अधिकारसे उक्त प्रदेशको शासन करते थे। इनके समयमें उस प्रदेशमें जैन-धर्म्मकी अच्छी उन्नति हुई थी। इन्होंने जैन-धर्म्मकी उन्नति बड़े उत्साहसे की थी। गुणभद्र स्वामीने उत्तर पुराणकी प्रशस्ति(१)में महाराज अकाल वर्षके हाथियोंके विषयमें

नोट—१ इस अङ्कके २८ वें पत्रमें उत्तर पुराणकी प्रशस्तिका तीसवां श्लोक देखिये।

अच्छा वर्णन किया है। इससे विदित होता है कि महाराज अकालवर्ष भी अपने पिताकी तरह बड़े भारी प्रतापी राजा थे। इनके आधिपत्य और प्रचण्ड प्रभुत्व का साक्षित्व वर्द्ध और नौसारीके दानपत्र भी मुक्तकण्ठसे दे रहे हैं। लिखा है कि इन्होंने गुर्जरके राजाको भय दिखलाया, लाटा नरेशका दर्प्प-दलन किया, गौड़ निवासियोंकी नम्रताकी शिक्षा दी तथा सागरोपकूल-निवासियोंकी शान्ति हरली। यह महाराज अकालवर्षहीका प्रताप था कि इन्होंने अन्ध्र, गंग तथा मगधके राजाओंसे अपनी आज्ञाका पालन कराया। इनके समयमें जैनधर्म्म-सम्बन्धी दो दान पत्रोंका पता लगता है। पहला धार-वाड़ ज़िलाके मलगुंडेमें एक शिलालेख है जिसमें लिखा है कि "शक सम्वत ८२४ में अरसार्य्य नामक एक जैनने अपने पिता चिकार्य्यके बनाये हुए मलगुंडेके जैनमन्दिरके लिये दान दिया"। पर दानकी वस्तुका कुछ उल्लेख नहीं मिलता। दूसरा लेख सौदन्तीमें है जिसका काल शक सम्वत् ७८७ है। उसमें लिखा है कि "अकालवर्षके किसी एक सूबेके मालिक पृथ्वीरामने जैनमन्दिरके लिये पृथ्वी-दान किया"। महाराज अकालवर्षका अन्तिमकाल शक सम्वत् ८३४ निश्चित होता है।

इन राष्ट्र वंशीय राजाओंके समयमें बौद्धधर्म्मका भी निर्वाणोन्मुख प्रदीप झिलमिला रहा था। परन्तु जिनसेन और गुणभद्र आदि आचार्य्यों की धर्म्म-तत्परतासे जैनधर्म्मका सूर्य्य पुन: प्रचण्डकिरणोंके साथ उदित होआया। इन आचार्य्योंने भी इस धर्म्मकी वैसी उन्नति की जैसी कि इनकी वंशपरम्परामें समन्तभद्र आदि आचार्य्योंने की थी। ये सब दिगम्बर सम्प्रदायके थे।

इन राष्ट्रकूटवंशी राजाओंकी ध्वजाका नाम "पालीध्वज" और "ओकाकेतु" था। ये लोग गरुड़लाञ्छन और लाटानुराधीश कहे जाते थे। त्रिवली नाम के एक बाजेसे इनके आगमनकी सूचना हुआ करती थी। इनकी मोहर और सिक्कोंपर गंगा यमुना और पालीध्वजका चित्र रहा करता था। इन लोगोंके आधीन राज्यका नाम रट्टापट्टी था। जिसमें साढ़े सात लाख ग्राम थे। इनके गरुड़लाञ्छनका चिन्ह शक सम्वत् ७१६ के गोविन्द तृतीयके पैथेन दान-पत्रमें, दन्तिदुर्गके शक सम्वत् ७४६ के सामङ्गद दानपत्रमें, गोविन्द तृतीयके शक सम्वत् ७२६ और ७२८ के वाणीके दानपत्रमें और गुजरातके राजा कक्क सुवर्णवर्षके बड़ोदा दानपत्रमें मिलता है। परन्तु कक्क द्वितीयके शक सम्वत् ८८५ के करड़ा दानपत्रकी मुहरमें किसी एक बड़े भारी वृषभका चित्र है।

इस वंशके आदिके चार राजा दन्तिवर्म्मा, इन्द्र, गोविन्द और कक्कका केवल लेखही मात्र मिलता है और इन्द्र द्वितीयके बारेमें शिर्फ इतनाही पता लगता है कि इनकी स्त्री सोमवंशी चालुक्य राजाकी लड़की थी। राष्ट्रकूट वंशियों के पूर्ण इतिहासका प्रारम्भ महाराज दन्तिदुर्गसे होता है जैसा कि हम पीछे वर्णन कर आये हैं।

चालुक्य और राष्ट्र वंशियोंका परस्पर सम्बन्ध।

यद्यपि महाराज दन्तदुर्गने चालुक्योंको पूर्ण पराभव कर राज्य-लक्ष्मीपर अपना पर्य्याप्त अधिकार प्रचारित किया था तौ भी चालुक्य वँशीय राजालोग उक्त दक्षिण देशके बहुतसे भागोंमें शासन किया करते थे। इतिहाससे इसबातका भी पता लगता है कि चालुक्य और राष्ट्रकूटमें परस्पर घरेलू सम्बन्ध था। यह भी निश्चय होता है महाराज गोविन्द तृतीयके समयसे चालुक्य वँशीयोंसे बराबर युद्ध छिड़ा करता था। और इन दोनों वंशोंमेंसे जहां किसीने मौका पाया कि एक दूसरेको धर दबाया। परन्तु उल्लिखित समय तक जहांतक प्रमाण मिलता उससे यही मालूम होता है कि राष्ट्रकूटवंशीय राजाओंकी ही सदा प्रधानता थी।

आवश्यक सूचना और समाचार।

निवेदन। हम लोगोंने निश्चय किया था कि "भवन" के संगृहीत शास्त्रोंकी सूची रिपोर्टहीमें प्रकाशित हो जाय किन्तु रिपोर्ट बड़ी हो जाने तथा विलम्बके कारण उसमें हम लोग प्रकाशित नहीं कर सकें। इसके बाद "भास्कर" में प्रकाशित करना हम लोगोंको सर्वथा निश्चय हो चुका था। परन्तु हम सबोंको ग्रन्थोंकि केवल नाम ही और संख्या देनेका अभिप्राय न था। हम लोग चाहते हैं कि सूची ऐसी बने जिससे ग्रन्थोंकी बाहरी बातें पाठकोंको दर्पणके ऐसा प्रतिबिम्बत हो जाय। ऐतिहासिक विषयोंसे सुसज्जित सूची बनानेमें हमलोगोंने बड़ी शीघ्रता की किन्तु आप सब जानते ही हैं कि "भवन" में अधिकांश पुस्तकें कनड़ी और द्राविड़ी लिपिमें हैं। यद्यपि सूची तयार करनेमें दो कर्मचारी "भवन"में अनवरत काम कर रहे हैं तौभी ग्रन्थोंकी जीर्णशीर्णता तथा अक्षर-वैचित्र्यसे अभीतक सर्वाङ्ग-पूर्ण सूची तयार नहीं हो सकी। इसलिये "भास्कर"की इस किरणमें भी पाठकोंके समक्ष "भवन"के ग्रन्थोंकी विवृति प्रकाशित करनेमें हमे वञ्चित रहना पड़ा। अतः हम अपने गुण-ग्राहक ग्राहक महोदयोंसे निवेदन कर आशा करते हैं कि "भवन" के सुरक्षित-शास्त्रोंकी तालिका बहुत शीघ्र आप महोदयोंकी सेवामें समुपस्थित होगी।

* * *

"भास्कर"के छपनेमें विलम्बका कारण—यद्यपि हम लोगोंने "भास्कर" को समाप्तीकी सुशृङ्खलतासे इसको सबसे पहले निकालदेनेकी घोषणा तथा चेष्टा कीथी। किन्तु सर्कारी डिक्लेरेशन और प्रेसकर्म्मचारियोंकी अस्वस्थता आदि अड़चनोंसे हम लोगोंकी चेष्टा निष्फल हुई इस लिये हम अपने "भास्कर" के प्रकाशन-विलम्बके जिज्ञासु हितैषी ग्राहक महोदयोंसे निवेदन करते हैं कि वे विलम्बका कारण अनिवार्य्य समझ कर तथा इस कार्य्यकी प्रारम्भावस्था जानकर "भास्कर" को अपनी अनुग्रहभरी सुधामयी दृष्टिसे सदा सींचनेकी कृपा करेंगे। "भास्कर" को अग्रिम किरणके लिये हमने अभीसे छपनेके लिये प्रेसको सब सामग्री दे दी है अतः अग्रिम किरणें ठीक समय पर पाठकोंकी सेवामें पहुंचा करेंगी।

* * *

भवनकी कार्य्यवाही—आजकल "श्रीजैनसिद्धान्तभवन" आरामें अंग्रेजी और संस्कृतके ज्ञाता तीन पुस्तकालयाध्यक्ष हैं। ये लोग बाहरकी आई हुई शास्त्रोंकी सूचियोंको अक्षरानुसार लिखने के साथ साथ भवनके आवश्यक अन्यान्य कार्य्य भी कर रहे हैं। मद्रास तथा बम्बई प्रान्तमें दो सुविज्ञ पुरातत्वान्वेषी जैनऐतिहासिक वस्तुओंकी खोज कर रहे हैं। भवनके चार सुलेखक मूडविद्री और कारकलमें कनड़ी संस्कृत शास्त्रों को बालबोधी अक्षरोंमें प्रतिलिपि कर रहे हैं। कलकत्तेमें एक ग्रेजुएट बंगाली महाशय महीनोंसे इम्पीरियल लायब्रेरीमें अंग्रेजी ऐतिहासिक पुस्तकोंसे जैनपुरातत्व सम्बन्धी इतिहासकी खोज कर रहे हैं।

* * *

स्वागत—मैं नवोद्गत खंडेलवालोंके सौभाग्यसूर्य्य अपने सहयोगी "सत्यवादी" का बड़े स्निग्ध भावसे स्वागत करता हूं। यह "महाराष्ट्रीय खंडेलवाल दिगम्बर जैन पञ्च महासभाका" मुखपत्र है। इसके सर्वाङ्ग-सुन्दर होनेमें सर्वथा सम्भव है क्योंकि इसके मुख्य संचालक पण्डित पन्नालालजी हैं। इसकी भाषा परिमार्जित तथा आकार प्रकार प्रशंसनीय है। हमे पूर्ण प्रतीति है कि जैनसिद्धान्तके रहस्योंको प्रकाशित कर सहयोगी "सत्यवादी" जैनसमाजको कृतज्ञभाजन करेगा।

* * *

ग्राहकोंसे सूचना—जिन महोदयोंको "भास्कर" के ग्राहक होना हो वे इसकी पहली ही किरणसे हमे शीघ्र सूचना दें। नहीं तो "भास्कर" की पहली किरणकी प्रतियाँ बहुत कम छपी हैं। विलम्बसे ग्राहक होनेकी सूचना मिलनेसे भास्कर की पहली किरण हम नये ग्राहकोंको नहीं दे सकेंगे।

* * *

अशुद्धि की सम्भावना—शीघ्रतासे छपनेके कारण सम्भव है कि कहीं अशुद्धियां रह गयी हों। पाठकगण उन्हें सुधारकर पढ़नेका कष्ट उठायेंगे।

* * *

पत्र सम्पादकोंसे प्रार्थना—सभी हिन्दीपत्र-सम्पादकोंसे हमारी प्रार्थना है कि वे "भास्कर" के परिवर्त्तनमें अपने पत्र भेजकर तथा अपनी शुभ सम्मतिसे हमे अनुगृहीत करें।

* * *

पाठकोंकी सम्मति—अपने प्रिय पाठकोंसे हमारा निवेदन है कि भास्करके विषयमें उनका जैसा विचार हो वे उससे निस्सङ्कोचतासे शीघ्र सूचित कर हमे कृतज्ञभाजन बनावें। क्योंकि यदि किसी प्रकार की त्रुटि हमलोगोंको मालूम पड़ेगी तो उसको अगली किरणसे सुधारने की चेष्टा करेगें।

* * *

भवन-द्वारा एक नवीन पुरातत्वका अविष्कार—कलिङ्गदेश वर्त्तमानमें कटकके निकट भुवनेश्वरसे चारपांच माइल चलकर श्री उदयगिरि खण्डगिरि नामके एक अत्यन्त प्रचीन तथा जैनधर्म्मका प्राचीनता-प्रदर्शक दो पहाड़ोंका पता लगा है। जिनमें अशोक तथा उनसे भी प्राचीन अनेक राजा महा-राजाओं तथा आचार्य्योंके शिलालेख हैं। कहा जाता है कि इन दोनों पहाड़ों में सात सौ गुफाएं हैं। खण्डगिरि पर्वतपर कटकनिवासी परवारोंके पूर्वजों का एक बड़ा[illegible]री जैनमन्दिर बनाया हुआ है। परन्तु कालके प्रभावसे वह अत्यन्त जीर्ण शीर्ण हो रहा है। उसका जीर्णोद्धार करने तथा धर्म्मशाला आदि बनानेका पूर्ण प्रबन्ध हो रहा है। इसके विषयमें जिसको जो कुछ पूछना हो वे हमसे पूछ सकते हैं।

* * *

भारतवर्षीय दिगम्बर जैनधर्म्म-प्रबोधिनी सभाका वार्षिकोत्सव—इस सभाके स्थापित हुए आज एक वर्ष पूर्ण हो गया। वास्तवमें यह अपने रूपको एकही सभा है। वर्त्तमान समयमें प्राय: ऐसीही चरित्रसुधारिणी और सन्मार्ग-प्रदर्शिनी सभाओंकी आवश्यकता है। इस सभाके आज तक अट्ठारह अधिवेशन हो चुके हैं। इसने और सभाओंकी तरह कोरे प्रस्ताव (पश्चात्ताप) पास न कर बहुत कुछ सफलता प्राप्त की है। अभीतक इसके साढ़े तीन सौ मेम्बर हो चुके। इसके सच्चरित्रधारी मेम्बरोंमें बड़ा ही उत्साह है। और मैं हृदयसे इस सभाकी वृद्धि चाहता हूं। जिसको नियमावली अथवा फार्म मंगाना हो वे हमसे मंगा सकते हैं। हम श्रीजिनवाणीसे प्रार्थना करते हैं कि इस सभाके उत्साहकी ऐसीही वृद्धि हुआ करे।

* * *

शास्त्रभण्डाराधिपतियोंसे प्रार्थना—जिन विज्ञोंके पास किसी भाषा तथा किसी लिपिके जीर्ण शीर्ण शास्त्र हों वे कृपा करके "श्रीजैनसिद्धान्त भवन आरा"

श्रीजैनसिद्धान्त-भास्करके नियम।

१। यह पत्र तीन तीन महीनेपर प्रकाशित हुआ करेगा।

२। सर्वसाधारणके लिये डाक व्यय-सहित इसका वार्षिक मूल्य ३) रु० है किन्तु राजा महाराजाओंके सम्मानार्थ १००) रु० रहेगा। प्रति किरणका मूल्य १) रु० है। बिना अग्रिम मूल्यके यह पत्र नहीं भेजा जा सकता। इसकी पुरानी प्रतियां देनेके लिये "भवन" बाध्य नहीं होगा। यदि पुरानी प्रति मिलेगी भी तो उसका मूल्य कुछ विशेष लिया जायगा।

३। यदि किसीको पता बदलवाना हो तो वे सम्पादक-कार्यालय कलकत्तेसे पत्र व्यवहार कर ठीक कर लें।

४। यदि नियमित तिथिपर पाठकोंके यहां "भास्कर" नहीं पहुंचे तो वे हमें सूचना देंगे। हम डाकखानेमें इसकी पूरी खोज करेंगे।

५। लेख, समालोचनार्थ लिये पुस्तक, बदलेके पत्र, मूल्य और प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र सम्पादक "श्रीजैन-सिद्धान्त-भास्कर" नं० ८ जगमोहन मल्लिक ष्ट्रीट कलकत्तेके पतेसे आना चाहिये। किन्तु "भवन" के सहायतार्थ शास्त्र और पुरातत्व-सम्बन्धी शिलालेखादि सम्बन्धी "श्रीजैनसिद्धान्त-भवन आरा" के पतेसे भेजना चाहिये।

६। किसी ऐतिहासिक अथवा सैद्धान्तिक-लेख प्रकाशित करने वा न करनेका तथा लौटाने वा नहीं लौटानेका पूर्ण अधिकार सम्पादकको है। यदि कोई लेख सम्पादक लौटाना चाहें तो उनका डाक व्यय और रजिष्टरीका खर्च लेखकको देना पड़ेगा। अन्यथा नहीं लौटाया जा सकता।

७। अधूरे लेख नहीं छापे जायंगे। स्थानके अनुसार लेख एक वा अधिक किरणोंमें प्रकाशित होते रहेंगे।

८। इस पत्रमें ऐतिहासिक अथवा सैद्धान्तिक लेखोंके सिवा राजनैतिक आदि विषयोंकी चर्चा तक नहीं की जायगी।

चित्र-सूची।

१ स्वर्गीय बाबू देवकुमारजी
२ चन्द्रगिरि पर्वत पर श्री १०८ भद्रबाहु स्वामीका शिलालेख
३ चन्द्रगिरि पर्वतके शिलालेख की [illegible] प्रतिलिपि
४ [illegible]
५ [illegible]
६ [illegible]

विज्ञप्ति।

[illegible] निवेदन है कि [illegible] निवेदन है कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कृपा कीजिये।

विनीत-निवेदक
सम्पादक— पद्मराज रानीवाला
[illegible]
कलकत्ता।


श्री जैन सिद्धान्त
भास्कर

जुगलकिशोर मुख्तार
देवबन्द जि. सहारनपुर

भास्कर

ऐतिहासिकपत्र।

भाग १] अक्टोबर से मार्चतक १९१३ आश्विन से फाल्गुन वीर नि० २४३९ [किरण २-३

प्रार्थना-चतुष्टय

सर्वज्ञ! अज्ञताकी विषलतिका बढ़ती। भारतद्रुमपर यह फैल फैल कर चढ़ती॥
ढकती विद्याविनयादिगुणोंकी ज्योति। अवनतिसब उच्चविषयकी दिन दिनहोती॥

यह 'भास्कर' 'भवन' भुवनमें ज्योति जगावे। अज्ञान-लता मुरझाय ज्ञान दरसावे॥
इतिवृत्त-कोशकी अँधियारी हटजावे। सद्वृत्त-कमल संसृति-सरमें खिल जावे॥२॥

मत-भेद-कुमुदिनी मुद्रित हो सुखजावे। ईर्षा-उलूककी कभी नहीं बन आवे।
हो चक्रवाक संयोगी ऐक्य सभीमें। धर्माभिमान सज्जनता शान्ति सभीमें॥३॥

सर्वेश! यही है विनय हमारी तुमसे। है छिपी नहीं कुछ बात जगतकी तुमसे॥
करुणाकर! करुणावरुणालय! भारतमें। महिमा-मरीचि छावे शुभ हो भारतमें॥४॥

पण्डित हरनाथ द्विवेदी

[illegible]

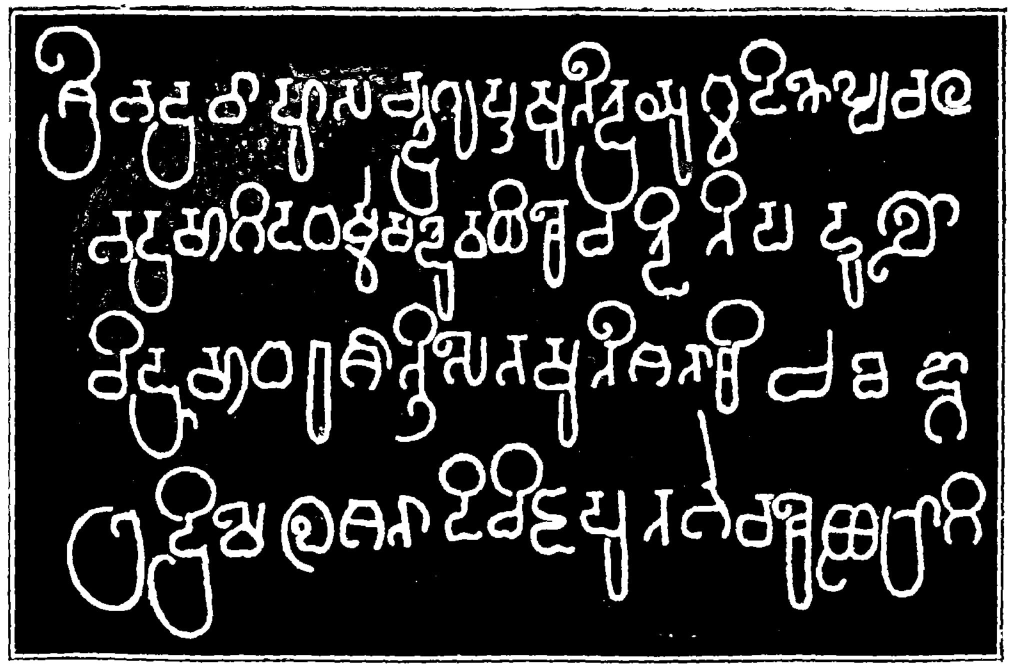
पण्डित हरनाथ द्विवेदी

अन्तिम श्रुतकेवली श्री१०८ भद्रबाहु स्वामी और उनके शिष्य मगधाधिपति महाराज चन्द्रगुप्तका इतिहास.

(२)

प्यारे पठको! यद्यपि हम "भास्कर" की गत किरणमें श्री १०८ भद्रबाहु स्वामी और मगधाधिपति महाराज चन्द्रगुप्तके समयादि तथा उनके जीवनचरित्र लिखनेकी प्रतिज्ञा कर आये हैं, तौभी हम आप लोगोंका अमूल्य समय विशेष कारण वश चन्द्रगुप्तके जैन होनेका प्रमाण, इसपर अनेक विद्वानोंकी सम्मति, गत किरणमें प्रकाशित शिलालेख नं. १ में भद्रबाहुस्वामीके शिष्य-रूपसे जिस प्रभाचन्द्रका वर्णन हो चुका है वे प्रभाचन्द्र यही चन्द्रगुप्त थे, ग्रीक इतिहास-लेखकोके मान्य सन्ड्रकोटस, मेगस्थनिजद्वारा वर्णित जन्ड्मस ऐन्ड्रूकोटस, मुद्राराक्षसके प्रधान नायक, मसिडोनियन अलेकजेन्डरके करालग्राससे भारतवर्षके मुख्य उद्धारकर्त्ता, अलेकजेन्डरके सेनापतिको पूर्णरूपसे परास्त कर उसके अधीनस्थ अनेक प्रदेशोंको भेंटस्वरूपसे लेनेवाले, भारतीय इतिहासके प्रथम वीर, श्री १०८ भद्रबाहुस्वामीके मुख्य शिष्य और गत किरणके शिलालेख नं. १ में वर्णित प्रभाचन्द्र यही चन्द्रगुप्त थे; इसका प्रमाण वर्त्तमान इतिहासकी मुख्य आधारभूत सामग्री प्राचीन शिलालेख, पुरातत्त्ववेत्ता इतिहासलेखकोंकी सम्मतिद्वारा आप लोगोंके सम्मुख उपस्थित कर सदुपयुक्त करना चाहते हैं। वर्तमान समयमें पाश्चात्य विद्वानोंने भारतवर्षका गौरव-शाली प्राचीन इतिहास मुख्यतया शिलालेख और ताम्रपत्रादिकों ही पर निर्भर कियाहै। अपने पास ऋषि-प्रणीत शास्त्रीय और पौराणिक अनेक प्रमाण रहते भी उपर्युक्त पद्धति-द्वारा ही चन्द्रगुप्तके जैन होनेका प्रमाण पाठकोंके सामने हमे प्रमाणित करना है।

वर्तमान समय तक इतिहास-लेखकोंने जितने भारतीय वीर, राजा महाराजा और भारतविजेताओंके समय निश्चित कियेहैं, उनसबोंमें प्राचीनतम निर्णीत समय अलेकजेन्डर (सिकंदर) का और इसके उद्दण्ड भुजदण्डसे बिलोड़ित भारतवर्षका उद्धार करनेवाले महाराज चन्द्रगुप्तका ही है। आजपर्यन्त हमारी न्यायप्रिय गवर्नमेन्टने तथा इतिहास पुरातत्ववेत्ताओंने जितने सर्व-प्राचीन शिलालेख एकत्रित किये हैं, उनसबोंमें भी प्राचीनतम स्थानका सौभाग्य महाराज चन्द्रगुप्तके "भास्कर" की गत किरणमें



चन्द्रगिरि पर्वतका शिलालेख नं० २

प्रकाशित शिलालेखको ही है । हम यह भी यहाँ कहदेना अनुचित नहीं समझते कि महाराज चन्द्रगुप्तके जैन होनेके कारण **भारतवर्षके प्रथम उद्धारका यश जैनियोंको ही प्राप्त है ।**

गत किरणमें शिला-लेख नं. १ में श्री १०८ भद्रबाहु स्वामीके साथ साथ आचार्य **प्रभाचन्द्र** के कटवप्रनामक पर्वतपर ठहरनेका जो हमने उल्लेख किया था उसपर हमारे कई जैन तथा अजैन मित्रोंने चन्द्रगुप्तके जैन होने तथा प्रभाचन्द्रके चन्द्रगुप्त होनेमें शङ्का उपस्थित की है। हमारी तो इच्छा थी कि अपने जैनी भाइयोंकी शंका जैन शास्त्रों तथा पुराणोंहीसे दूर करें किन्तु हमें अजैन मित्रोंके भी चन्द्रगुप्त-विषयक सन्देहको निरसन करना है । इसलिये सर्वमान्य शिलालेखादि ऐतिहासिक प्रमाण ही द्वारा हम अपने सभी मित्रोंकी सन्देह-राशि दूर करना उचित समझते हैं । प्रथम शिलालेख-द्वारा यह बात तो स्पष्ट हो ही चुकी है कि कटवप्रपर्वतपर जब भद्रबाहुस्वामीने समाधिमरण किया (स्वर्ग-धामको प्रयाण किया) तो उस समय उनके साथ एक शिष्य था और उस शिष्यका नाम **प्रभाचन्द्र** था[१]।।

अब विचारणीय विषय यह है कि भद्रबाहुस्वामीके साथ जो शिष्य थे, वह वास्तवमें कौन थे । सुविज्ञ पाठको ! आइये इस विषयके प्रसिद्ध प्रमाणकी खोजके लिये हम आपसबोंको मैसोर राज्यान्तर्गत श्रवणबेलगोल गाँवके चन्द्रगिरि पर्वतकी ओर परिभ्रमण करावें और कर्नाटकके दो महाकवियोंके कर्नाटक साहित्यकी अपूर्व छटाके दर्शनके साथ साथ चन्द्रगुप्तविषयक-शङ्का-समूह निरसन करावें । विज्ञ पाठकोंसे हमारा सानुनय अनुरोध है कि वे निम्नोद्धृत शिलालेखोंका मनोयोग-पूर्वक पर्यालोचन करें.

शिलालेख नं २. कनडी भाषाकी

नागराक्षरमें प्रतिलिपि

श्री **भद्रबाहु सचन्द्रगुप्त** मुनीन्द्र युग्मादी नोप्पोवल भद्रभाग इदाधर्म्मअन्दुवाळिकेवन्द इनिपलकुलो....विद्रुमधरे शान्तिसेनमुनीशनाक्कि एचेलगो........राआद्रि मेल अशनादि विट्टुपुनर्भवकिर........गी ।

भावार्थ—

शान्तिसेनकी धर्मपत्नी यह कहती हुई पहाड़पर चली गयीं कि **श्रीभद्रबाहु** तथा महामुनि **चन्द्रगुप्त**के अनुकूल चलना ही परम सद्धर्म है। बल्कि वह भोजनादि छोड़कर अनेक परिसहोंको सहन कर मुक्ति पदको प्राप्त हुई।

१—भास्करकी प्रथम किरणका १५ वाँ पृष्ठ देखो ।

शिलालेख नं. ३

....

श्री भद्रस्सर्वतोयोहि भद्रबाहुरितिश्रुतः ।
श्रुतकेवलिनाथेषु चरमः परमो मुनिः ॥
चन्द्रप्रकाशोज्ज्वल-सान्द्रकीर्त्तिः
श्रीचन्द्रगुप्तोऽजनि तस्य शिष्यः ।
यस्य प्रभावाद्वनदेवताभि–
राराधितः स्वस्य गणो मुनीनाम् ॥

....

भावार्थ—चारोतरफ भद्र यानि कल्याणकी परिवृद्धि होनेसे इनका नाम **भद्रबाहु** पड़ा। यह श्रुतकेवलियोंमें अन्तिम मुनि हुए। चन्द्रमाकीसी उज्वलकीर्त्तिवाले चन्द्रगुप्त नामके इनके शिष्य हुए कि जिनके प्रभावसे वनदेवताओंने मुनि-संघोंकी आराधना की।

शिलालेख नं. ४

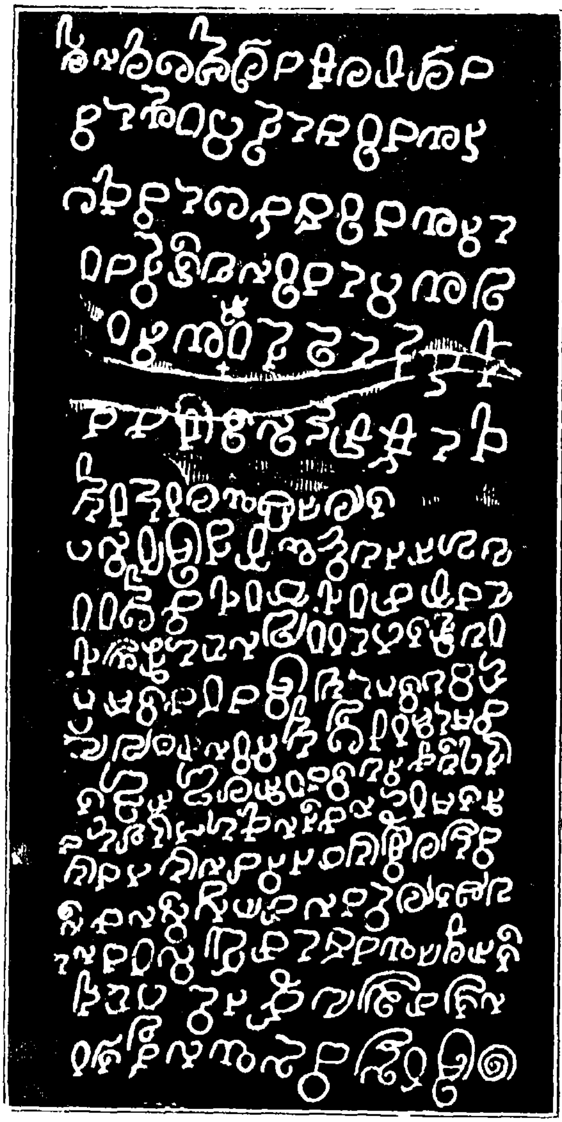
वर्ण्यः कथन्नु महिमा भण भद्रबाहोः
मोहोरुमल्लमदमर्दन-वृत्तबाहोः ।
यच्छिष्यताप्तसुकृतेन च चन्द्रगुप्तः
शुश्रूषतेस्म सुचिरं वनदेवताभिः ॥

भावार्थ—भला कहो तो मोहरूपी बड़ेभारी मल्लके मदको मर्द्दन करनेवाले भद्रबाहु-स्वामीकी महिमा कौन नही वर्णित करसकता है। इन्हीके शिष्य होनेके पुण्यसे वन-देवताओंने चन्द्रगुप्तकी शुश्रूषा की।

शिलालेख नं. ५

तदन्वये शुद्धमतिप्रतीते समग्रशीलामलरत्नजाले ।
अभूद्यतीन्द्रो भुवि भद्रबाहुः पयःपयोधाविव पूर्णचन्द्रः ॥
भद्रबाहुराग्रिमस्समग्रबुद्धिसम्पदा शुद्धसिद्धशासनः [१]शब्दबन्धसुन्दरम् ।
इद्धवृत्तिशुद्धिरत्र बद्धकर्मभित्तपोऋद्धिवर्द्धितप्रकीर्तिरुद्धधीर्महर्द्धिकः ॥
यो भद्रबाहुः श्रुतकेवलीनां मुनीश्वराणामिहपश्चिमोऽपि ।

१—पूर्ण शिला-लेख परिशिष्ट भागमें देखो ।



सिगरां गोड़ांके खतका शिलालेख नं० ३

अपश्चिमोऽभूद्विदुषां विनेता, सर्वश्रुतार्थप्रतिपादनेन ॥
यदीय शिष्योऽजनि चन्द्रगुप्तस्समग्रशीलानतदेववृद्धः ।
विवेश यत्तीव्रतपःप्रभावात्प्रभूतकीर्तिर्भुवनान्तराणि ॥

भावार्थ—१ जिसमें सभी शीलरूपी रत्न-समूह भरे हुए हैं और शुद्ध बुद्धिसे परिपूर्ण उस वंशमें क्षीरसमुद्रसे परिपूर्ण चन्द्रमाकेसे **श्रीभद्रबाहु** स्वामी हुए।

२—अखिल बुद्धिशालियोंमें **भद्रबाहुस्वामी** अग्रगण्य थे। शुद्ध—सिद्ध-शासन और सुन्दर प्रबन्धसे शोभा-पूर्वक बढ़ी हुई है व्रतकी सिद्धि जिनकी और बद्ध कर्म्मको छेदन करनेवाले तपसे भरी हुई है कीर्ति जिसकी ऐसे महान् मतिमान् महर्द्धि-शाली श्री**भद्रबाहुस्वामी** थे। जो भद्रबाहुस्वामी श्रुतकेवलियोंमें अन्तिम थे तौभी बिल्कुल शास्त्रके प्रतिपादयिता होनेसे विद्वद्वरोंमें श्रेष्ठ थे। आपके शिष्य **चन्द्रगुप्त**ने अपने शीलसे बड़े बड़े देवताओंको भी नम्रीभूत करदिया है। इनकी तपश्चर्याके प्रभावसे आज तक इनकी कीर्तियां भुवनान्तरमें व्याप्त हो रही हैं

इन उपर्युक्त चार और गत किरणमें प्रकाशित एक शिलालेख (पांच शिलालेखों) से इस प्रश्नका उत्तर तो उचित रीतिसे होजाता है कि **भद्रबाहुस्वामीके** साथ रहने वाले शिष्य महाराज **चन्द्रगुप्त** ही थे। चन्द्रगुप्तका जैन होना तो इससे स्वयं सिद्ध होही जाता है।

अब हम पाठकोंके हृदयमें यह प्रश्न—कि, ये सब शिला-लेख चन्द्रगिरि पर्वतपर ही क्यों मिलते हैं?—उपस्थित होनेके पूर्वही इनके अतिरिक्त गौतमक्षेत्रके अपरभागवाहिनी कावेरी नदीके पश्चिमभागमें जो रामपुर नामक ग्राम है, उसी ग्रामके अधिपति सिंगरी गौड़ाके खेतमें प्राप्त दो शिलालेख यहां उद्धृत किये देते हैं।

शिलालेख नं. ६

श्री राज्यविजय सम्बत्सर सत्यवाक्य परमानदि गळु आळुत्त नाल्किनेय वर्षात् मार्गशीर मासद पेरतले दिवास भागे स्वस्ति समस्त विद्यालक्ष्मी प्रधाननिवास प्रभव—प्रणत सकल सामन्त--समूह **भद्रबाहु चन्द्रगुप्त** मुनिपति चरणलाञ्छनाञ्चित बिशाल सिरकल वप्पु गिरिसनाथ बेलगुळाधिपति गणधा श्रीवर मतिसागर पण्डित भट्टार बेसदोल अन्नयनुं देवकुमारनुं धोरनुं इलदुर आरण्णे बाणपल्लिय कोण्ड श्रीके सिग............ तळे नेरिपुल कट्टन कट्टु सुडरके कोट्टस्थिति क्रमवएन्तुव यन्दोदे बंडर नियनीर वयगिय गिड़ वरिस पेत्तेन्दि ऐरदनेय वरिसमेड़ अलविमुरने यवरिस दन्दिगे यडलवीयेळाकलाकं यहं इल्द युलळु सळ्गु।

भावार्थ—सम्पूर्ण लक्ष्मी सरस्वतीका निवासस्थान बेलगोलाधिपति और समस्त सामन्तोंद्वारा नमस्कृत श्रीमान् **भद्रबाहु** और **चन्द्रगुप्त** महामुनियोंके चरणोंसे मण्डित कटवप्रनामक पर्वत सदा विजयशील रहे।

सत्यवाक्य परमानदी महाराजके राज्यके चौथे वर्षमें मार्गशीर्ष शुक्लाष्टमीको श्रीमति-सागर पण्डित भट्टारककी आज्ञानुसार अन्नय्या, देवकुमार और घोरा इन तीनोंने बेनपल्लीके खरीददार केशीके लिये तेल्लुरमें सेतु—निर्म्माणके बदलमें निम्न—लिखित दान दिया है:—

सम्पूर्ण ग्रामवासियोंनें खेतीके लिये इस सेतुसे जलाहरणका प्रयोग किया। प्रथमवर्षमें बिना कुछ दिये ही जलका उपयोग करना, द्वितीयवर्षमें कुछ देकर उपयोग करना और तृतीयवर्षमें जो कुछ दियाजायगा वही निश्चितरूपसे निर्द्धारित कर समझा जाय।

शिला—लेख[१] नं. ७

शिलालेख लिखनेका समय नवम शताब्दि।

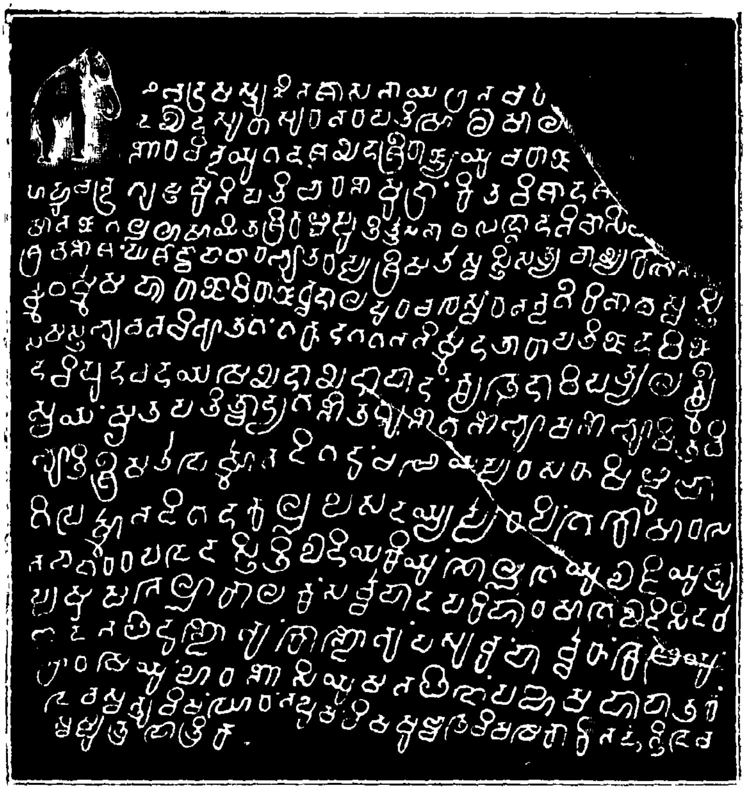
भद्रमस्तु जिनशासनाय। अनवरत........अखिल सुरासुर नरपति मौलिमाला.... चरणारबिन्द युगल सकल श्रीराज्य युवराज्य **भद्रबाहु चन्द्रगुप्त** मुनिपतिचरण मुद्रणाङ्कित विशाल........ मान जगल ललामायित श्री कलवप्पु तीर्थसनाथ वेल्गुल-निवासि....श्रव (म) णसंघ स्याद्वादाधारभूतरप्पा श्रीमत्स्वस्ति सत्यवाक्योङ्गुणि वर्म्मा धर्म्म महाराजाधिराज कुबलाल पुरवरेश्वर नन्दि गिरिनाथ स्वातिसमस्तभुवनविनुत-गङ्गकुलगगनंनिर्मलतारापति जलधिजलविपुलविलयमेखलाकलापालङ्कृतैलाधिपत्य लक्ष्मीस्वय-म्वृतपतितवद्य अगणितगुणगणभूषणभूषितविभूतिश्रीमत्परमानदि गडु येरेयप्पसरं इल्डुचगि परमनदि गल कलावसाद आय्यरप्पा परपिङ्गे कुमारसेन भट्टारकपदे स्थिति-विलय अक्कियं सोल्लगेयु विट्टिउनट्टपरमन यल्लाकलकम् सर्वबाधा परिहरं आगे विदिसिदार इदन लिड् अडोनं कोंडन पशुवं परवरं केरेयं अमेयं बर्नासियुनं अलिडं पञ्चमहापातकं।

देवस्वं तु विषं घोरं न विषं विषमुच्यते।
विषमेकाकिनं हन्ति देवस्वं पुत्रपौत्रकं॥

उल्लिखित शिला-लेख क्यातन हल्ली ग्रामके दक्षिणभागमें जो वस्ती है वहीं है।

भावार्थ—सम्पूर्ण देव राक्षस तथा राजा लोगोंके मस्तक नत होनेसे मुकुटमणिकी चमकसे प्रकाशमय चरणकमलवाले श्रीमान् **भद्रबाहु** स्वामीको नमस्कार करो।

नोट—१ एपिग्राफिका कर्नाटिकाकी दूसरी जिल्द (वाल्युम २) का १४८ वां शिलालेख देखो।



सिंगरी गौड़ाके खेतका शिलालेख नं० ७

मोक्षराज्यके युवराज, स्याद्वाद-संरक्षक, वेलगोलस्थश्रमणसंघाधिपति अपने चरणकमलसे जगद्भूषण कटवप्र (कलवप्पू) नामक पर्वतको पवित्र करनेवाले श्रीमान् **भद्रबाहु** और **चन्द्रगुप्त** मुनि हमारा संरक्षण करें। गङ्गराजकुलाकाशके निष्कलङ्क-चन्द्रमा और कुवलयपुर तथा नन्दिगिरिके स्वामी **श्रीसत्यवाकोङ्गुणि वर्म्मा** धर्म्म-महाराजाधिराजकी स्तुति सभी संसारने कीहै। समुद्र-मेखलासे परिवेष्टित तथा पृथ्वीके स्वयम्बरित पति सकलगुणालङ्कृत श्रीपरमानदिएरेयप्पसरप्पाने जिनेन्द्रभवनके लिये श्रीमान् कुमारसेन भट्टारकको निम्नलिखित दान दिया है: —

एक ग्राम-स्वच्छ चावल-बेगार-घी इन दानकी सामग्रियोंके अपहरण करनेवालों को हिंसा और पंच महापापका पातक लगेगा।

केवल विषही विष नहीं कहलाता किन्तु देवधनको भी घोर विष समझना चाहिये। क्योंकि विष एकको मारता है पर देवद्रव्य विष सपरिवार समूल विनष्ट करता है।

अब इन शिला-लेखोंद्वारा निश्चित किये हुए **भद्रबाहु** स्वामीके साथमें रहनेवाले शिष्य **चन्द्रगुप्त** ही थे इसमें कोई सन्देह नहीं रहता। क्योंकि गत किरणके शिला-लेख नं. १ में यह स्पष्ट लिखा हुआ है कि जब **भद्रबाहु** स्वामीको अपनी मृत्युकी निकटता जानपड़ी तो उन्होने **प्रभाचन्द्र** (चन्द्रगुप्त) को अपने साथ में रखकर अन्य संघको चोलपाण्डदेशमे भेजदिया। अन्य शिलालेखोंमें **भद्रबाहु** स्वामीके शिष्य **महामुनि चन्द्रगुप्त** ऐसा उल्लेख मिलता है इसलिये सिद्ध होता है कि प्रथम शिला-लेख के **प्रभाचन्द्र** और अन्य शिला-लेखोंमे उल्लिखित **चन्द्रगुप्त** दोनो एकही थे। दूसरी बात यह है कि भारतवर्षकी प्रचलित प्रथाके अनुसार व्यावहारिक नाम दीक्षा लेनेपर परिवर्तित हो जाते है और वे पारमार्थिक नाम कहे जाते है। यहां पाठकोंको केवल यह प्रथा स्मरण करादी है। इसके उदाहरण असंख्य है। यहां उनसे इस पृष्ठ का भरना हम कोई महत्वकी बात नही समझते। हमारे चरित्रनायक महाराज **चन्द्रगुप्त**का भी दीक्षित नाम **प्रभाचन्द्र** पड़गया था जो प्रथम शिला-लेखमें है तीसरी बात यह है कि प्रथम शिला-लेखके बादके जो पूर्वलिखित शिला-लेखोंमे **चन्द्रगुप्त** यह नाम आया है उसका कारण यह है कि महाराज **चन्द्रगुप्त** अपने समयके एक सर्व-प्रसिद्ध राजा होगये हैं। इन का नाम **चन्द्रगुप्त** ही सब जगह प्रचलित था। दीक्षाके नाम **प्रभाचन्द्र** का उतना प्रसार नहीं था। इसलिये पीछेसे लोगोंने इनका चन्द्रगुप्त ही नामसे उल्लेख किया है। चौथी बात यह कि दूसरे शिलालेखमें **मुनीन्द्र चन्द्रगुप्त**, तीसरे शिला–लेखमें **चन्द्रप्रकाशोज्ज्वलसान्द्रकीर्त्ति**

१—हिंसा करना झूठ बोलना, चोरी करना, व्यभिचार करना, और विशेष परिग्रह करना पंचमहापाप है।

चन्द्रगुप्त और कावेरी शिलालेखमें **मुनिपति चन्द्रगुप्त** ऐसे उल्लेख मिलते हैं। इस लिये यह निश्चय होता है कि शिला-लेखोंमें जिस **चंद्रगुप्त** का नाम आया है वह एक बड़े प्रभाव-शाली मनुष्य थे। उल्लिखित शिलालेखोंमें लिखित **मुनीन्द्र** आदि गौरव-सूचक विशेषण इनके महत्वका सूचन कर रहे है। इससे भी स्पष्ट हो जाता है कि **चन्दगुप्त** नामक किसी बड़े प्रभावशाली मनुष्यने ही **कटवप्र** नामक पर्वतपर रहकर **भद्रबाहु** स्वामीकी निरन्तर चरण-सेवा कीथी। वह **चन्द्रगुप्त** के सिवा दूसरा होही नहीं सकता। क्योंकि जैनग्रन्थ और जैन-पट्टावलियोंके द्वारा जिस समय भद्रबाहु स्वामीका अस्तित्व माना गया है वह समय मौर्य्यवंशीय महाराज चन्द्र-गुप्तके समयसे बडी अभिन्नता-पूर्वक मिलता है। अर्थात् मौर्य महाराज चन्द्रगुप्त और भद्रबाहु स्वामीकी समकालिकतामें किसी प्रकारका सन्देह नहीं होता।

इन उपर्युक्त प्रमाणों द्वारा हम पाठकोंके सम्मुख प्रकटित कर चुके कि **भद्रबाहु** स्वामीके साथ जो **प्रभाचन्द्र** थे वह **चन्द्रगुप्त ही** थे, **चन्द्रगुप्त** निस्सन्देह **जैन** थे और यह **भद्रबाहु** स्वामीके समसामयिक शिष्य थे। किन्तु अब इसके विषयमें निरपेक्ष इतिहासमर्मज्ञ विद्वानोंकी क्या राय है? वह मै नीचे निवेदन किये देता हूं।

१—जब अलेकजेन्डर (सिकंदर) के भूतपूर्व सेनाध्यक्ष और ग्रीकसेनाधिपति सल्यूकसने मेगस्थनिज (Magasthenes) को प्रधान दूत वा राजकीय प्राड्विपाक (वकील) रूपसे भारतवर्षमें महाराज चन्द्रगुप्तकी सभामें भेजाथा तब महाराज **चन्द्रगुप्त** के राज्यशासनकी बहुतसी बाते जानकर अपने इतिहासमें उसका बड़ा विस्तृत वर्णन कियाहै। उस वर्णनमें जहां भारतवर्षीय ऋषियोंका उल्लेख कियाहै वहां श्रमणोका भी वर्णन आयाहै। दूसरी जगह जहां उन्होंने भारतीय दार्शनिकों (Philosophers) की चर्चा कीहै वहा श्रमणों(जैनमुनि) काभी उल्लेख किया है। उनका कथन है कि ये श्रमण, ब्राम्हणों तथा बौद्धोंसे भिन्न थे। इनका घनिष्ट संबन्ध महाराज चंद्रगुप्तसे था। वे अपने राजनीतिक विषयमें जहां तहां दूतोंको भेजकर उन श्रमणोंकी सम्मति लिया करते थे। वे स्वयं अथवा दूतों-द्वारा बड़ी विनय और भक्तिके साथ उन श्रमणोंकी पूजा किया करते थे। उन्हें बडे महार्द्धिशाली जानकर महाराज चंद्रगुप्त सदा उनके कृपाभिलाषी रहा करते थे और उन्हें बड़ी पूज्य दृष्टिसे सम्मानित कर प्रायः देवताओंकी पूजा और आराधना उन्हींसे कराया करते थे[1]।

२—जब सिकंदरने भारतवर्षपर आक्रमण कियाथा, उससमय उनको अनेक साधु और जैनाचार्योंका साक्षात्कार हुआ था। कहा जाता है कि सूर्यकी प्रखर धूपमें खड़े हुए दिगंबर (नग्न) साधुओंसे आलेकजन्डरनें पूछा कि आप लोग क्या चाहते है; उन्होंने

१ नोट देखो—(Magasthenes Indica by Mac Crindle)

उत्तर दिया कि, आप अपने साथियोंके साथ कहीं छायाका आश्रय लें। बस हमको यही चाहिये।

हम समझते हैं कि, दयादाक्षिण्यादि गुणयुक्त साधुओंने उन्हे सूर्यके तापके असहिष्णु समझकर शीतल प्रदेशके उपभोगका उपदेश दिया होगा। और इससे यहभी निश्चित होता है कि, हमारे तपमें किसी प्रकारकी बाधा न हो ऐसा समझकर भी श्रमणोंने उन्हे अन्यत्र जानेको इंगित किया हो।

जब अलेक्जंडर तक्षशिलामें पहुंचा तो भारतवर्षीय दार्शनिक नग्न साधुओंका एक संघ देखा। उनकी सहिष्णुता, तार्किकशक्ति और भविष्यद्वक्तृत्वको देखकर वह यहां तक मुग्ध हो गया था कि, उसने संघाधिपतिसे बड़े विनीत भावसे प्रार्थना की कि, आपमेंसे कोई महात्मा हमारे साथ चलें। किन्तु हमारे संघनायकने उसकी प्रार्थनाको स्पष्टवादितापूर्वक अस्वीकृत किया और अपने किसी साधुको जानेकी अनुमति नहीं दी। बल्कि उससे आपने बड़ी निर्भीकतासे कहा कि, आपही कीसी हमारी भी शक्ति है। तथा उन्होंने यह भी कहा कि, आपसे हमें किसी वस्तुकी प्राप्तिकी आशा नहीं। हमारे पास जो शक्ति है वही हमारी ऐहिक तथा पारलौकिक मनष्कामना पूरी करनेके लिये पर्याप्त है। तुम अपने कर्म-चारियोंके साथ साथ जो स्थल तथा समुद्रमें अविरत परिभ्रमण कर रहे हो यह बिल्कुल निरर्थक है। इस **परिभ्रमणका कभी अन्त होनेवाला नहीं**। हमारे आहारके लिये भारतवर्षीय फलादि ही यथेष्ट है। जब हमारी मृत्यु हो जायगी तो **इस शरीर और आत्माका जा अस्वाभाविक मिलन है वह संबंध छूट जायगा**। यद्यपि संघाधिपतिने किसी महात्माको उनके साथ जानेकी अनुमति नहीं दी तौभी संघके एक महात्मा अलेकजंडरके साथ चले गये*। ग्रीक इतिहासकारोंनें इनका नाम **कॅलोनस** (Calanus) लिखा है। अलेकजंडरके भारत वर्षमें आनेपर उनका कई श्रमणों तथा जिम्नासोफिस्टों (Gymnosophist †) से बहुत दिनोंतक संबंध रहा।

३—मि. **ई. थॅामस** कहते हैं कि :—महाराज चंद्रगुप्त जैनधर्मके एक नेता थे। जैनियोंने कई शास्त्रीय और ऐतिहासिक प्रमाणद्वारा इस बातको प्रमाणित किया है। और आपका यहभी कथन है कि **चंद्रगुप्त** के जैन होनेमें शंकोपशंका करना व्यर्थ है। क्योंकि इस बातका साक्ष्य कई प्राचीन प्रमाणपत्रोंमें मिलता है और वे प्रमाणपत्र (शिलालेख) निःसंशय अत्यन्त प्राचीन हैं। महाराज चंद्रगुप्तका पौत्र **अशोक** जो

* इस घटनाका पूर्ण उल्लेख हम सिकंदर तथा **चन्द्रगुप्त**के जीवन-चरित्र लिखती बार करेंगे।

† जिम्नासोफिस्ट शब्दको ग्रीक विद्वानोंनें दिगंबर मुनिके अर्थमें व्यवहृत किया है। इस विषय पर एक लेख भी अन्यत्र इस किरण में प्रकाशित किया है।

एक प्रबल सार्वभौम नृपति था। वह यदि अपने पितामहके धर्मका परिवर्तन नहीं करता, अर्थात् बौद्ध धर्मका अंगीकार नहीं करता तो उसको जैनधर्मका आश्रयदाता कहनेमें किसी प्रकारकी अत्युक्ति नहीं होती। मेगास्थिनिजका कथन है कि ब्राह्मणके विरुद्ध जो जैनमत (श्रमणमत) प्रचलित था उसीको **चन्द्रगुप्त**ने स्वीकार किया था।

४—मि. **थॉमस** 'अशोकका प्रारंभिक धर्म' (The Early faith of Asoka) नामक निबंधमें फिरभी कहते हैं कि:—अकबर बादशहाको अबुलफजल नामक एक सर्व गुणालंकृत मंत्री थे। इन्होंने जैनसाधु और जैनसम्प्रदायकी बहुतसी बातें ज्ञात की थीं, क्योंकि भूतकाल-संबंधिनी ऐतिहासिक घटनाके आप अच्छे मर्मज्ञ थे। इसके अतिरिक्त राज्यभूमि जमाबन्दी और भिन्न भिन्न जातियोंकी गूढ गूढ बातें सरलतासे जाननेमें आप बड़े सिध्दहस्त थे। आपका आ.इ-ने-अकबरी नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ बड़े महत्वका है। इसमें आपने लिखा है कि, 'अशोकने काश्मीरमें पहले पहल जैनधर्म्मका प्रचार किया'। इससे ज्ञात होता है कि, अशोक कुछकालो तक जैनधर्मावलम्बी था[1]।

५—मि **बिलसन** साहेब कहते हैं कि:-यदि मुझे जैनधर्मावलम्बियोंकी समालोचना करनी होगी तो भारतवर्षपर आक्रमणकर्ता मसीडोनियन अलेक्जंडर तककी ऐतिहासिक बातें खोज करनी पड़ेगी। अर्थात् मगस्थनिजने जैनियोंका वर्णन किया है। जिसका 'एरियन' 'स्ट्रेबो' इन प्रसिद्ध ग्रंथकारोंने पूर्ण उल्लेख किया है और मेगेस्थनिज लगभग उसी समयमें (आलेक्जंडरके समयमें) भारतवर्षमें आयाथा।

६—प्रसिद्ध इतिहासज्ञ और पुरातत्ववेत्ता मि. बी. लुईस राइस साहेब कहते हैं कि:-**चन्द्रगुप्त** के जैन होनेमें कोई संदेह नही है। और ये यहभी मुक्त कण्ठसे कहते हैं कि, निस्संदेह **चद्रगुप्त** भद्रबाहु स्वामीके समसामयिक शिष्य थे[2]।

७—एन्सायक्लोपीडिआ ऑफ रिलिजनमें लिखा हुआ है कि, बी. सी. २९७ में संसारसे विरक्त होकर **चन्द्रगुप्त** मैसोर प्रान्तस्थ श्रवण बेलगुलमें बारह वर्षतक जैन दीक्षासे दीक्षित होकर तपस्या की और अन्तमें तप करते हुए स्वर्ग धामको सिधारे।

८—मि. जॉर्ज सी. एम् बर्डऊड लिखते हैं कि:—**चद्रगुप्त** और बिन्दुसार ये दोनों बौद्ध धर्मावलंबी नहीं थे। किन्तु **चंद्रगुप्त**के पौत्र अशोकने जैनधर्मको * छोड़कर

१ नोट- -अशोकका विस्तृत वृत्तान्त लिखनेके समय हम निश्चयपूर्वक लिखेगे कि, अशोक कबतक जैनधर्म ग्रहण किए हु आथा।

२ नोट—एपिग्राफिका कर्नाटिका, मैसूर और कूर्ग शिलालेख तथा मैसोर गजेटिअर देखो.

* नोट—देखो—Industrial Art of India

बौद्धधर्म स्वीकार किया। पीछे इस धर्मकी इतनी उन्नति की कि, प्रायः इसको राष्ट्रीय धर्म बना दिया।

९–मि. जे. टालवाइस व्हिलर्स लिखते है कि:–चंद्रगुप्त बौद्ध‡ नहीं था।

१०–हमारे श्रीरत्ननन्द्याचार्य्य कहतेहैं किः–

चन्द्रावदातसत्कीर्तिश्चन्द्रवन्मोदकर्त्तृणाम्। **चन्द्रगुप्ति** नृपस्तत्राचकचारुगुणोदयः ॥ ७ ॥
राजंस्त्वदीयपुण्येन **भद्रबाहुः** गणाग्रणीः। आजगाम तदुद्याने मुनिसन्दोह-संयुतः ॥२१॥
चन्द्रगुप्तिस्तदावादी द्विनयान्नवदीक्षितः। द्वादशाब्दं गुरोः पादौ पर्य्युपासेऽतिभक्तितः॥८॥
भयसप्तपरित्यक्तो **भद्रबाहु**र्महामुनिः। अशनाय पिपासोत्थं जिगाय श्रममुल्वणम् ॥ ३७ ॥
समाधिना परित्यज्य देहं गेहं रुजांमुनिः। नाकिलोकं परिप्राप्तो देव-देवी-नमस्कृतः ॥३९॥
चन्द्रगुप्ति र्मुनिस्तत्र चश्चच्चारित्रिभूपणः। आलिख्य चरणौचारू गुरोःसंसेवते सदा ॥४०॥

भावार्थ—चन्द्रमाके सदृश कीर्तिवाले और चन्द्रवत् संसारको समाल्हादित करनेवाले सुगुणी महाराज **चन्द्रगुप्त** अवन्तीमें हुए। हे राजन्! तुम्हारे पुण्य-बलसे संघाधिपति **श्रीभद्रबाहु** स्वामी संघोंके साथ उस उद्यानमे विराजमान हुए है। इसके बाद नव-दीक्षित विनयी **चन्द्रगुप्त** बोले कि मैं बारह वर्षसे अपने गुरु (श्री १०८ **भद्रबाहु** स्वामी) के चरणों की बड़ी भक्ति के साथ पूजा करताहूं। इसके बाद भय सप्तको छोड़कर **महामुनि भद्रबाहु** स्वामीने बलवती क्षुधा और पिपासा को रोका। पश्चात् स्वामीजीने सांसारिक देह और गेहको छोड़कर देवाभिनन्दित स्वर्गधामको विभूषित किया। सच्चरित्र गुणधारी **चन्द्रगुप्त** मुनि वहांपर अपने गुरु **भद्रबाहु** स्वामीका चरण अङ्कित कर उसकी सदा पूजा करने लगे।

११—श्रीहरिषेण आचार्य्य-कृत "वृहत्कथाकोश" और देवचन्द्रकृत "राजबली-कथा"में उपर्युक्तकथन अर्थात् **चन्द्रगुप्त**को भद्रबाहु स्वामीके शिष्य होने और जैन होनेके मत की पुष्टि बड़े युक्ति-युक्त कथनसे की गयी है[२]।

सुहृत्पाठको! उपर्युध्दृत छ: शिला-लेख और ग्यारह पुरातत्ववेत्ता विद्वानोंकी सम्मतिद्वारा मौर्य्यवंशीय महाराज **चन्द्रगुप्तका** जैन होना हमने प्रमाणित किया है। हमे पूर्ण

‡ नोट-देखो-J. Telboys Wheelers Ancient India.

१– देखो– "भद्रबाहु-चरित्र"

२– उपर्युक्त जिन तीन आचार्यों की सम्मति हमने उल्लिखित कीहै उनमें "वृहत्कथाकोशके' कर्ता हरिषेणाचार्य्यका समय ९३१ A. D, "भद्रबाहु चरित्र"के कर्त्ता रत्ननन्द्याचार्यका समय १४५० A.D. और "राजबली"के कर्त्ता देवचन्द्रका समय लगभग १८०० A. D. निश्चित होता है। यदि पाठकोंको इसमें सन्देह होगा तो हम फिर कभी समय-निश्चायक प्रमाण उपस्थित करेंगे।

आशा है कि हमारे पाठकों तथा मित्रों को जो चन्द्रगुप्तके जैन करनेके लिये सुदृढ प्रमाणकी चाह थी, वह इन शिलालेखादि प्रमाणों द्वारा पूर्ण होजायगी। यद्यपि इन उपर्युक्त विद्वानों की सम्मतिपर कुछ लिखना " पिष्ट-पेषण " मात्र है।

तौभी उन सम्मतियोंमें वाक्यगत कुछ भिन्नता आजानेसे संभव है कि, पाठकोंके मनमें इससे कुछ सन्देह बीज अङ्कुरित हो जाय, अत: उस भिन्नताको अभेद रूपमें लानेके लिये यहां कुछ लिखना मैं अपना कर्तव्य समझता हूं। प्रथमही जो हम ऊपर लिख आये है कि अलेकजेंडर जब भारतवर्षमें आयाथा तो श्रमणोंने (दिगंबर मुनियोंने) उनसे कहाथा कि, " इस परिभ्रमणका कभी अन्त नहीं होगा " इस वाक्यमें मुनिने जैनसिद्धान्तका मर्म आंकित कर दिया है। क्योंकि जैनधर्मका यह सिद्धान्त है कि, जबतक प्राणी मुक्त नहीं होते तब तक उनका सांसारिक भ्रमण पीछा नही छोड़ता। मुनियोंका दूसरा सैद्धान्तिक बात यह है कि, " शरीर और आत्माका जो अस्वाभाविक सम्बन्ध है वह मरनेके बाद छूट जायगा " ठीक है, इसमें कैसा जैन सिद्धान्तका सार भरा हुआ है। क्योंकि जैनसिद्धान्तका यह मत है कि, शरीर और आत्माका अस्वाभाविक संबंध है। अर्थात् आत्मा चेतन और शरीर जड़ है। इन वाक्योंसे यह बात स्वयं सिद्ध हो जाती है कि वे श्रमण दिगम्बर मुनि थे बल्कि अलेकजेंडरने साफ साफ लिखही दिया है कि, वे जैनमुनि थे। इससे यहभी ज्ञात होता है कि, महाराज **चंद्रगुप्त** के समयमें जैन धर्मकी परिवृद्धि ' दिनदूनी रात चौगुनी ' थी और जैन ऋषिके रोमरोमसे जैनसिद्धान्तकी दीप्ति छिटिकती थी। अतएव एक विदेशीय वीरसे साधारण बातचितमें भी ऋषियोंके मुखसे जैनसिद्धान्तकी अंप्रतिहंतवेगा पवित्रमयी वाग्धारा प्रवाहित हुई है। दूसरा यह कि, ऊपर एक विद्वान्की सम्मतिमें **नग्नदार्शनिक** और **जिम्नासॉफिस्ट** ये दो शब्द इस बातको और प्रमाणित कर देते हैं कि, वे श्रमण दिगंबर जैनमुनि थे और इन्ही मुनियोंसे महाराज चन्द्रगुप्त राज्य संबंधिनी कार्यवाहियोंमें मंत्रणा लिया करते थे।

तिसरी बात यह है कि 'आइने आकबरी' नामक इतिहास पुस्तकमें जो लिखा है कि, महाराजा चन्द्रगुप्तके पौत्र अशोकने काश्मीरमें जैन धर्मका प्रचार किया। निरपेक्ष इतिहास-ज्ञाता अबुल फजलकी इस उक्तिसे यह बात स्वयं निश्चित हो जाती है कि, जब महाराजा चन्द्रगुप्तके पूर्वपुरुष तथा परपुरुष जैन थे तो चंद्रगुप्त अवश्य

१ नोट– कलिंग देशके खंडगिरि और उदयगिरिकी हाथीगुफाके शिलालेखद्वारा महाराजा चंद्रगुप्तके पूर्वपुरुषके जैनत्वका प्रमाण मिलता है। खंडगिरि और उदयगिरिके इतिहास लिखती वार हम उसे प्रकाशित करेंगे।

जैन थे। इन प्रमाणोंके रहते यदि किन्ही विज्ञोंको मौर्यवंशीय महाराज चन्द्रगुप्तके जैनत्वमें किसी प्रकारकी शंका होतो उसको एक विनोदमात्र समझना ठीक है।

समय निर्णय.

अभीतक हमने चंद्रगुप्तको भद्रबाहुके शिष्य होने, चंद्रगुप्तका दीक्षानाम प्रभाचंद्र होने और चंद्रगुप्तके जैन होनेहीके प्रख्यात प्रमाण पाठकोंके सम्मुख उपस्थित किये है। किन्तु अब मैं इनके समयकाभी कुछ उल्लेख करदेना उचित समझताहूं। जैनाचार्योंकी पट्टावली[1] तथा अन्यान्य जैन-ग्रंथोंमें श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामीका समय अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामीके लगभग १६२ वर्ष पीछे[2] माना गया है। अर्थात् इनका समय ईस्वी सनके ३६४ वर्ष पूर्व निश्चित होता है, और मौर्यवंशीय महाराज चंद्रगुप्तके राजत्वका समय प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मि. बी. ल्युई. राईस साहेब, विन्सेंट स्मीथ और आर. सी. दत्त आदि महोदयोंने लगभग ३२० बी. सी. से लेकर २९० बी. सी. तक माना है। इसके बाद महाराज चंद्रगुप्तने लगभग १० वर्ष तक भद्रबाहुके साथ तथा पीछे एकाकी होकर तप कियाथा। इससे यह बात सिद्ध होती है कि, २९.० बी. सी. तक इस संसारमें महाराज चंद्रगुप्तका अस्तित्व था।

इन उपर्युक्त कथनोंसे यह बात निश्चित होजाती है कि, मौर्य्य महाराज **चंद्रगुप्त** श्रुतकेवली **भद्रबाहु** स्वामीके शिष्य और समकालीन थे। क्योंकि जैन-पट्टावलीमें दूसरे भद्रबाहुका समय लगभग बी. सी. १० से १३ ए. डी. तक मानागया है, किन्तु यह भद्रबाहु श्रुतकेवली नहीं थे तथा उससमय चन्द्रगुप्तका भी अस्तित्व नहीं था। मि. विन्सेन्टस्मीथने अपनी इतिहास-पुस्तकमें गुप्तवंशीय प्रथम चन्द्रगुप्तका समय ३०८ और द्वितीयका ३७५ ए. डी. लिखा है। किन्तु उस समय **भद्रबाहुका** अस्तित्व नहीं मिलता। अर्थात् जब दूसरे भद्रबाहुका अस्तित्व पायाजाता है तो उस समय किसी चन्द्रगुप्तका अस्तित्व नहीं मिलता और जब गुप्तवंशीय दूसरे **चन्द्रगुप्तका** अस्तित्व पाया जाता है तो उस समय भद्रबाहुका ही अस्तित्व नहीं मिलता। अर्थात् मौर्य्यवंशीय महाराज चन्द्रगुप्त श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामीके शिष्य थे। और इनका अस्तित्व २८० बी. सी. निश्चित हो जाता है। इन उपर्युक्त दो परस्पर विरोधी वाक्योंसे चन्द्रगुप्तका निश्चित समय कहाँ तक प्रमाणित हो सकता है, यह विचार हम अपने विज्ञ-पाठकोंकी मीमांसा ही पर निर्भर करते हैं। दूसरी बात यह है कि जो नं. १ का

---

१ नोट - गत किरणमें प्रकाशित ४१ वें पृष्ठमें सेनगणकी पट्टावली देखिये।

२ नोट-श्वेताम्बरी लोगोंने १७० वर्षबाद चंद्रगुप्तका समय मानाहै देखो-परिशिष्ट पुराण.।

शिला-लेख हम गत किरणमें उद्धृत कर आयेहैं; वह तथा और अनेक शिला-लेख महाराज **अशोकके** श्रवणबेलगुलमें तथा मलकमुरु तालुक मैसोर राज्यमें आनेका और शिला-लेख लिखवानेका निश्चय कर रहे हैं। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि चन्द्रगुप्तका अस्तित्व **अशोकके** पहले होना चाहिये और इनके पहले होनेवाले **चन्द्रगुप्त** इनके पितामह हीं हो सकते हैं।

प्रथम शिलालेखमें जो **उज्जयिनी** शब्द आया है इससे हमारे पाठकोंके मनमें यह संदेह–तरंग उमडी होगी कि चंद्रगुप्तकी राजधानी तो पाटलीपुत्र थी फिर यहां उज्जयनीका उल्लेख क्यों तो इसका हम यही यथेष्ट उत्तर समझते हैं कि महाराज चंद्रगुप्तकी राज्यसीमा बंगाल सागरोपकूलसे अरेबिअन समुद्र तक विस्तृत थी। ऐसे बड़े राज्यके सुप्रबंधके लिये यदि दो राजधानी नियत की जाय तो यह बात असंभावित नहीं मालूम होती। दूसरी बात यह है कि महाराज अशोकके समयमें तो दो राजधानी अलग अलग स्थापित होनेका कारण साफ साफ दीख पडता है। क्योंकि, इस बातका उल्लेख अनेक स्थलोंमें पाया जाता है। तीसरी बात यह है कि, महाराज अशोक राज्यके सुप्रबंधके लिये कुछ दिनों तक उज्जयिनीमें थे ऐसा आर. सी. दत्तने लिखा है। इन कथनोंसे हमारा उपर्युक्त कथन स्वयंही सिद्ध हो जाती हैं तथा यहभी लिखनेमें हम संकोच नहीं समझते कि, मौर्यवंशीय महाराज चंद्रगुप्तकी दो राजधानी थी। एक पाटली पुत्र और दूसरी उज्जयिनी।

उपस्थित सामग्रियोंसे हमने नं १ के शिलालेखके–प्रभाचंद्रका चंद्रगुप्त होना तथा चंद्रगुप्तका जैन होना सिद्ध किया है। ईर्ष्यावशसे चंद्रगुप्तको लोगोंने जहां तहां वृषल लिखाहै। इन प्रमाणोंके रहते यदि कोई महोदय चन्द्रगुप्त जैन नहीं था। ऐसे निर्मूळ दो चार वाक्य लिखनेकी हठ करें तो उस दुराग्रहका हमारे पास उत्तर नहीं। किन्तु जो विज्ञ इस लेखको सम्बन्धक्रमसे सांगोपांग पढ़कर युक्तियुक्त शंका करेंगे तो उनके समाधानार्थ यह "भास्कर" अवश्य अपनी यथोपस्थित ऐतिहासिक सामग्रीसे निवेदन करेगा।

नोट—१ अशोकके जीवन–चरित्र लिखनेके समय इनके सब शिला-लेख उद्धृत करेंगे।



चन्द्रगिरि (पर्वत)

चंद्रगिरिका परिचय.

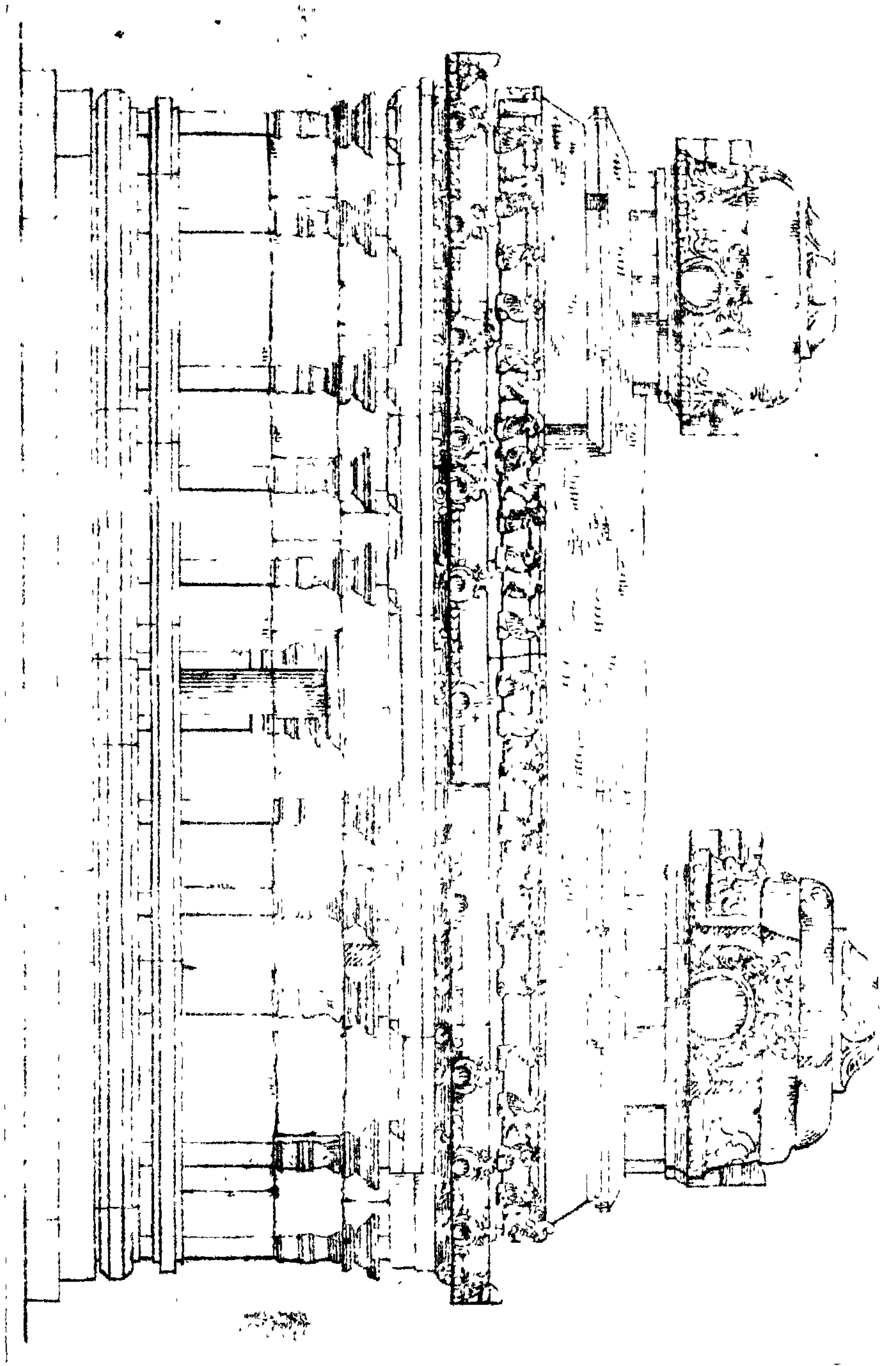
मैसोर राज्यान्तर्गत हासन जिलेमें एम्. एस्. एम्. रेलवेके आरसीकेरे स्टेशनसे४२ माइलपर ‘ श्रवणबेलगुल ’ नामक एक बहुत सुप्रसिद्ध धार्मिक स्थान चिरकालसे विद्यमान है। इसके उत्तरओर **चन्द्रगिरि** तथा दक्षिणओर **विन्ध्यगिरि** पर्वत है। दोनों पर्वतोंके बीचमें श्रवणबेलगुल ग्राम वसाया गया है। ‘ श्रवणबेलगुल ’ शब्द हल्लीकन्नड (प्राचीन कर्नाटकी) भाषाका है। संस्कृतमें इस शब्दका अनुवाद ‘ धवल-सरोवर ’ होता है। इस ग्रामके नाममें सरोवर शब्द संयोजित करनेका कारण यह है कि, यहां एक भूदेवीमंगलादर्शकल्याणी नाम्नी सरसी है। यह बड़ी लम्बी चौड़ी है। समुद्रकीनाई इसमें अथाह जल है। इसका जल कभी सूखता नहीं। जब देशमें अवर्षण होता है तो तृषाशांतिके लिये बहुत दूर दूरसे लोग आकर इसके आश्रित होते है। इसको श्रवणबेलगुलका कटिभूषण समझना चाहिये। इस सरोवरके विशेष प्रसिद्धिंगत होनेसे ही महाराज **अशोकने** इस ग्रामके नाममेंभी ‘ सरोवर ’ शब्द संवलितकर दिया। यह स्थान चन्द्रायपट्टण तालुकमें १२°५१' उत्तर अक्षांश और ७६°३३' उत्तर रेखांशपर है। श्रवणबेलगुलमें जैनाचार्योंका मठ, ताड़-पत्रांकित अलभ्य जैनग्रन्थ और अनेक प्राचीन जैनमान्दिर हैं। यह स्थान जैन-ब्राह्मणोंकी तपोभूमि है तथा इस स्थानको बड़े बड़े जैनाचार्यों और जैन-ग्रंथ-कर्ताओंने विभूषित किया है। विन्ध्यगिरिकी उंचास भूपृष्ठसे ३३४७ फूट है और चन्द्रगिरि पर्वतकी उंचास ३०५२ फूट हैं। कन्नड भाषामें विन्ध्यगिरिको दोड्डबेट्ट और चन्द्रगिरिको चिकबेट्ट कहते हैं। विन्ध्य और चन्द्रगिरिकी सार्थकता लोगोंने इस प्रकारकी है:—विम् (आत्मा) ध्या (ध्यान) अर्थात् आत्मध्यान करनेका स्थान। इसका निष्कर्ष यह हुआ कि, इस पर्वतपर अनेक ऋषि मुनियोंने आत्मध्यान कर अपना जीवन उत्सर्ग किया है। इसलिये इसका नाम विन्ध्यपर्वत रक्खा गया। दूसरे पर्वतपर चन्द्रगुप्त मुनिने अपने गुरु भद्रबाहु स्वामीकी चरण-पादुकाकी निरन्तर सेवा कर ऐहिक लीला परि समाप्त की है इसलिये इनके चिरस्मरणार्थही इस पर्वतके नाममें ‘ चन्द्र ’ जोड दिया गया है। जिस विन्ध्यगिरि पर्वतपर **श्री १००८ बाहुबलिस्वामीकी** सुरम्य मूर्ति लगभग ७० फूट ऊंची है, इसका **सविस्तर** परिचय हम अगली किसी किरणमें करायगें। सम्प्रति हम चंद्रगिरिका **परिचय पाठकोंके सम्मुख उपास्थित करते हैं।**

चंद्रगिरि एक वहुतही रमणीय पर्वत है। इसपर चढ़नेमें कुछभी कठिनाई नहीं होती। भारतीय आदर्शभूत शिल्पकलासे रचित अनेक जैन मंदिर, विकसितकमल-सुशोभित सुन्दर सरोवर तथा आध्यात्मिकचिंतनोपयुक्त सुरम्य स्थान इसकी विशेष रमणीयताको परिवर्द्धित कर रहे हैं। इसका सृष्टिसौंदर्य दर्शकोंके चित्तको बलात् आकार्षित करने लग जाता है। इसके गगनचुम्बित शिखरकी छटातो देखतेही बनती है

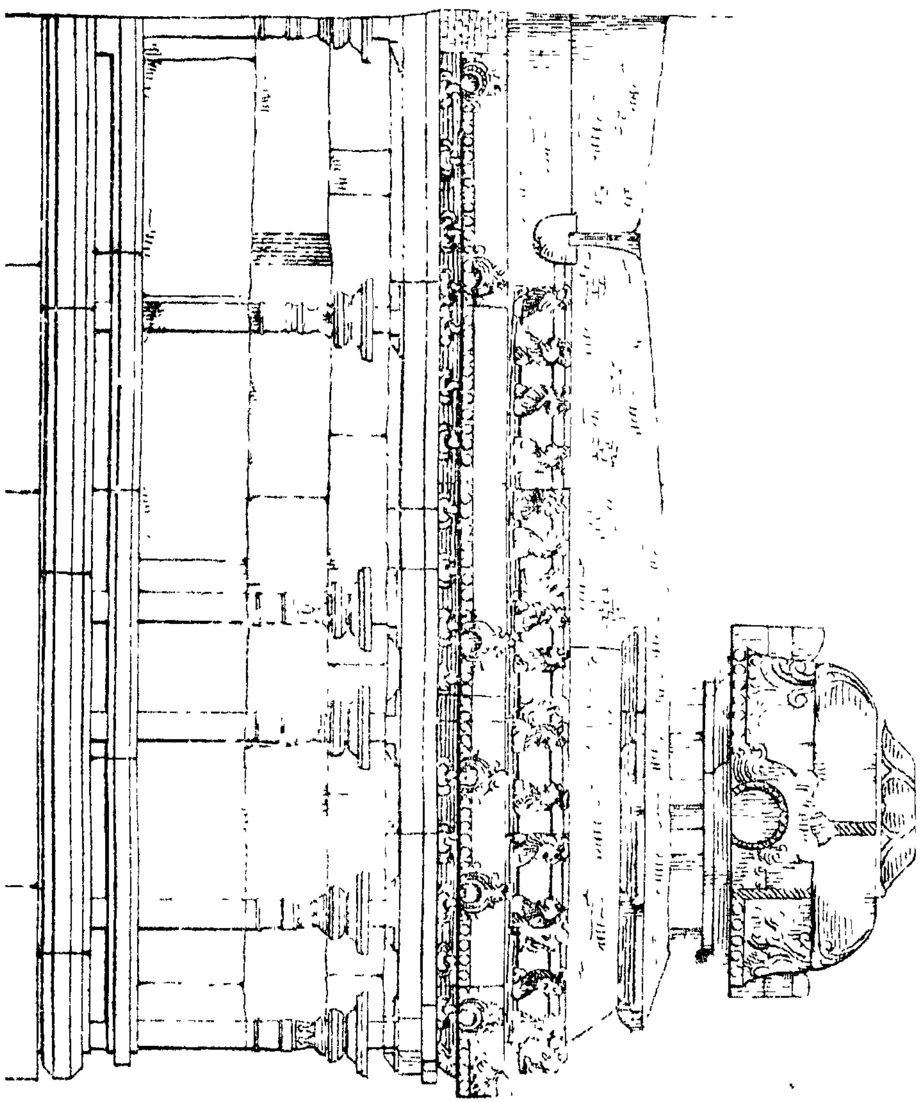
दक्षिणद्वारसे ढाई सौ सीढ़ी चढ़कर दो राहें मिलती हैं, एक तो भद्रबाहुकी गुफाकी ओर जाती हैं और दूसरी प्राकारकी ओर जाती है। वहांपर निम्न लिखित मंदिर हैं। भद्रबाहुकी गुफा पश्चिमाभिमुखी है। उसमें घुसनेपर पूरबकी ओर भद्रबाहु स्वामिके दो विशाल चरण पादुका मिलती है। गुफा बहुतही एकान्त-स्थानमें है। योगियोंके अध्यात्म-विचारके लिये यह गुफा बहुतही उपयुक्त है। इसमें प्रविष्ट होनेके साथ श्री भद्रबाहुस्वामीकी तपस्या, **चन्द्रगुप्तका** संघ छोड़के श्री १०८ गुरुश्री भद्रबाहुजीके साथ रहना, प्राचीनकालकी पुराणकारोंसे वर्णित हुई कर्नाटककी सुभिक्षता, आध्यात्म विचार और जैनियोंकी प्राचीन धार्म्मिक उन्नतिका चित्र दर्शकोंके चित्तपर सहसा खिंच जाता है।

इसी गुफामें श्री १०८ भद्रबाहुस्वामीने मुनि-संघोंको चोल पांड्य देशमें भेजकर आप कठिन तपस्याकर समाधि-मरणसहित इस असार संसारको छोड़ा और यहीपर अपने गुरु भद्रबाहुस्वामीके मुक्त होनेपर चन्द्रगुप्त मुनिने जैन धर्म्मकी चिरस्थायी नीव डालकर जैन महत्वका प्राचीनता-सूचक एक प्राकाम्य प्रशस्त प्रासाद बनाया। भाइयों! यह ऐसा स्थान है कि, यहांके दृश्य देखनेपर यही माळूम होता है कि, आजभी वहीं जैनधर्मका विस्तृत क्षेत्र है, स्याद्वाददेवीकी वेही शुद्ध धर्म्मोपदेशकी ध्वनि गूंज रही है तथा **अहिंसा परमो धर्मः** कीभी वही शुभ्रवैजयंती फहैरा रही है। इन बोंताका अनु-भव कर दर्शकोंके नेत्रोंसे आनंदाश्रुकी धारा बहने लगती है। ठीक है अपनी सम्पत्ति, अपनी ज़मीन्दारी तथा अपने धर्मकी सुरक्षित मूलभित्ति देखकर भला कौन नहीं प्रसन्न होगा?

प्रियपाठको! अन्तिम श्रुतकेवली श्री १०८ भद्रबाहुस्वामी और उनके शिष्य मुनि चंद्रगुप्तके संन्यस्त मरणके स्थानको देख कर स्वधर्म्माभिमान उत्तेजित होकर प्रज्वलित हो आता है और ऐतिहासिक-घटनाके परिचय होनेसे एक क्षणभी वहांसे हटनेका जी नहीं चहता। अस्तु! उल्लिखित गुफाके चारोतरफ कई बड़ी बड़ी शिलाएं हैं। इनपर अ-नेक जैनमुनियोंने संन्यस्त-मरण किया है। इसबातकी शाक्षिता उन शिलाओंपरके अने-क चरण-चिन्ह ही काफी है।



उत्तरभागकी चन्द्रगुप्तबस्तीका चित्र.



पूर्वभागकी चन्द्रगुप्तवस्तीका चित्र.

इस गुफाके दर्शन करनेके बाद दूसरी राहसे प्राकार (चहार दिवाली) की ओर आनेपर एक छोटासा रमणीय तालाव मिलता है । इसका स्वच्छ जल और भ्रमरानुरंजित विकसित कमल इसकी शोभा दूनी बढा रहे हैं। यात्रि-गण इसमें अष्टक धोकर दर्शन करने जाते हैं । पर्वतके मंदिरोंके चारो तरफसे किलेकीसी चहारदिवाली दौड़ायी गयीहै । दक्षिण द्वारसे इस प्राकारमें घुसनेपर अनेक मंदिरोंका दर्शन होकर अंतःकरण आनंदित होजाता है । प्रथम ही मानस्तंभ तथा इसके समीप मैसोरनरेश--द्वारा सु-संरक्षित और प्रस्तर-प्राचीरावगुण्ठित एक शिलालेख है, जो आजतक भारतवासियोंको यह बता रहा है कि, जब बारह वर्षका दुर्भिक्ष पड़ाथा तो **भद्रबाहुस्वामी** और इनके शिष्य **चंद्रगुप्तने** मुनिसंघोंके साथ रह कर समाधि-मरणसहित इसी पर्वतपर अपनी विनश्वर देहको छोड़ा है । यह शिलालेख बहुत दिनोंतक किसीसे परिचित नहीं था और लोग इसके महत्वसे बहुत दिनोंतक वञ्चित रहें; किन्तु पुरातत्ववेत्ता मि. ल्युईस राइस साहेबने अपरिमेय परिश्रम कर इसको प्रकाशित कर भारतवासियोंको और विशेषकर जैनियोंको एक प्राचीनतम ऐतिहासिक घटनासे परिचय कराया ।

मन्दिरोंका क्रम.

१---उपर्युक्त प्राचीन शिला-लेखके उत्तर भागमें श्री १००८ पार्श्वनाथ तीर्थंकरका पूर्वाभिमुख एक विशाल चैत्यालय है । इसमें एक अन्तर्मन्दिर तथा शिला-लेख--सहित एक सभा-मण्डप है । इस मंदिरमें श्री १००८ पार्श्वनाथ तीर्थंकरकी लगभग ढाई पुरुष प्रमाणकी एक खड़ी सप्त फणामण्डपमण्डित मनोज्ञ कृष्णवर्णकी मूर्ति है । इस मंदिरके सामने एक विस्तृत चबूतरेके साथ ऊंचा मानस्तंभ है ।

चंद्रगुप्त वस्ती.

२-३. इस मन्दिरके उत्तर तरफ पासही में महाराज अशोकद्वारानिर्मित चंद्रगुप्त वस्ती (चैत्यालय) है । यह वस्ती बहुत विस्तृत होनेकी वजहसे अन्धकारमय है । इसीलिये कन्नडमें लोग इसे 'कत्तलवस्ती' भी कहते है । इस वस्तीमें दो दालान हैं । इन दोनों दालानोमेंभी प्रतिमा विराजमान की गयी है । ऊपरका दालान बहुत लम्बा चौड़ा है । इसमें बीस खंभे लगे हुए हैं । भीतरका कुछ भाग प्राचीन शिल्पकलाका नमूना दिखा रहा है । अन्तर्मंदिरमें सिंहासनपर श्री १००८ भगवान् आदिनाथ तीर्थंकरकी प्रतिमा विराजमान है । प्रतिमाके पीछेका भामण्डल आजभी प्राचीन शिल्पकलाका आदर्श हो रहा है । प्रतिमाके आगे यक्ष और यक्षिणीकी बड़ीही मनोज्ञ मूर्ति है ।

१ नोट---यह शिलालेख "भास्कर" की गत किरणमें प्रकाशित है ।

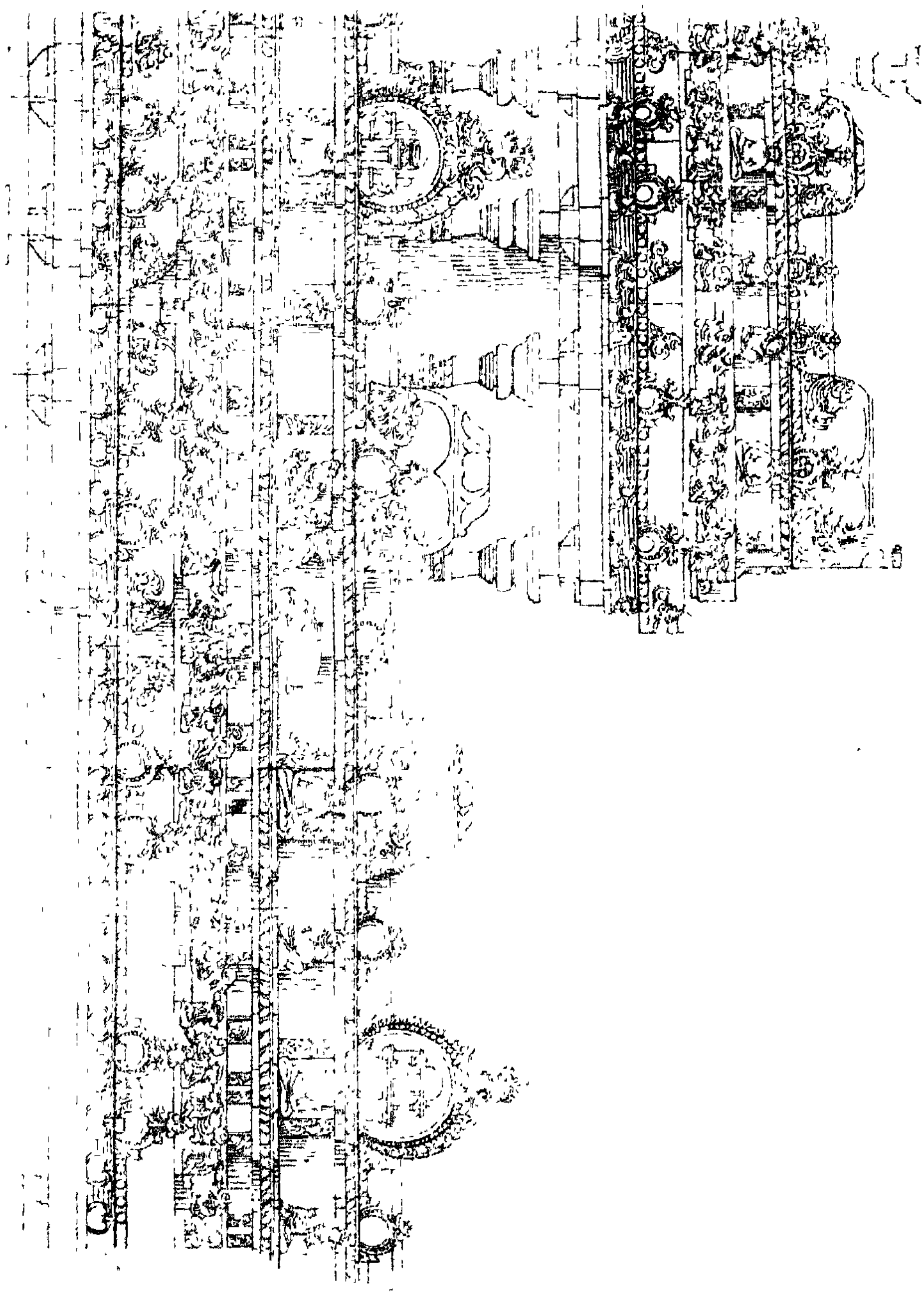
नीचेके दालानका मन्दिर दक्षिणाभिमुख है। इस मन्दिरके तीन भाग हैं। मध्य भागमें कायोत्सर्गस्थ श्री पार्श्वनाथ स्वामीकी एक प्रतिमा है। इसके दक्षिण ओरमें पद्मावती देवीकी मूर्ति, सामने धरणेन्द्र यक्ष, वाम-भागमें कुष्मांडिनि देवीकी मूर्ति और सामेन सर्वाण्हय यक्ष हैं। इस त्रैविभागिक वस्तीके आसपासमे दोनों तरफके अत्यन्त मसृण प्रस्तरपट्टपर पैंतालिस पैंतालिस ऐतिहासिक चित्र खुदे हुए हैं। इन चित्रोंसे यह मालूम होता है कि, ये श्री १०८ भद्रबाहुस्वामी और महाराज चंद्रगुप्तके समयके शिल्प-कला-संबंधी चित्र हैं; किन्तु अभी हमे इन चित्रोंका यथार्थ भाव नहीं ज्ञात हुआ है। 'भवन' इनके आशय समझनेकी कोशिस कर रहा है। ज्ञात होजानेपर पूरी विवृतिके साथ चित्रोंको हम 'भास्कर' में प्रकाशित करेंगे। मन्दिरका बाह्य दृश्य और शिखर पुरानी द्राविडी-पद्धतिसे बना है। मन्दिरके ऊपरके भागमें छोटे छोटे सिंह खुदे हुए हैं। इस मान्दिरका पूर्ण चित्र इस किरणमें सन्निविष्ट किया गया है। पाठक-गण बड़ी निश्चलतासे सब बातोंका अनुभव कर सकते है।

४—प्राकारके नैऋत्य कोणमें पूर्वाभिमुखका एक मन्दिर है। इसमें लगभग डेढ़ पुरुष ऊंची एक कायोत्सर्गस्थ सुरम्य श्री १००८ शान्तिनाथजीकी प्रतिमा है। इसके आगे एक मानस्तंभ है। इसके बगलमें एक धर्मशाला है, जिसमें यात्रिगण ठहरा करते हैं और पूजाकी सामग्रीभी यहींपर सुसम्पन्न करते हैं। इसके पासहीमें श्वेत चम्पकवृक्षके नीचे लगभग डेढ़ पुरुष ऊंची एक बाहुबली स्वामीकी खण्डित प्रतिमा है। कहा जाता है कि, सांगोपांग सुसाजित नहीं होनेसे इसकी स्थापना नहीं की गयी।

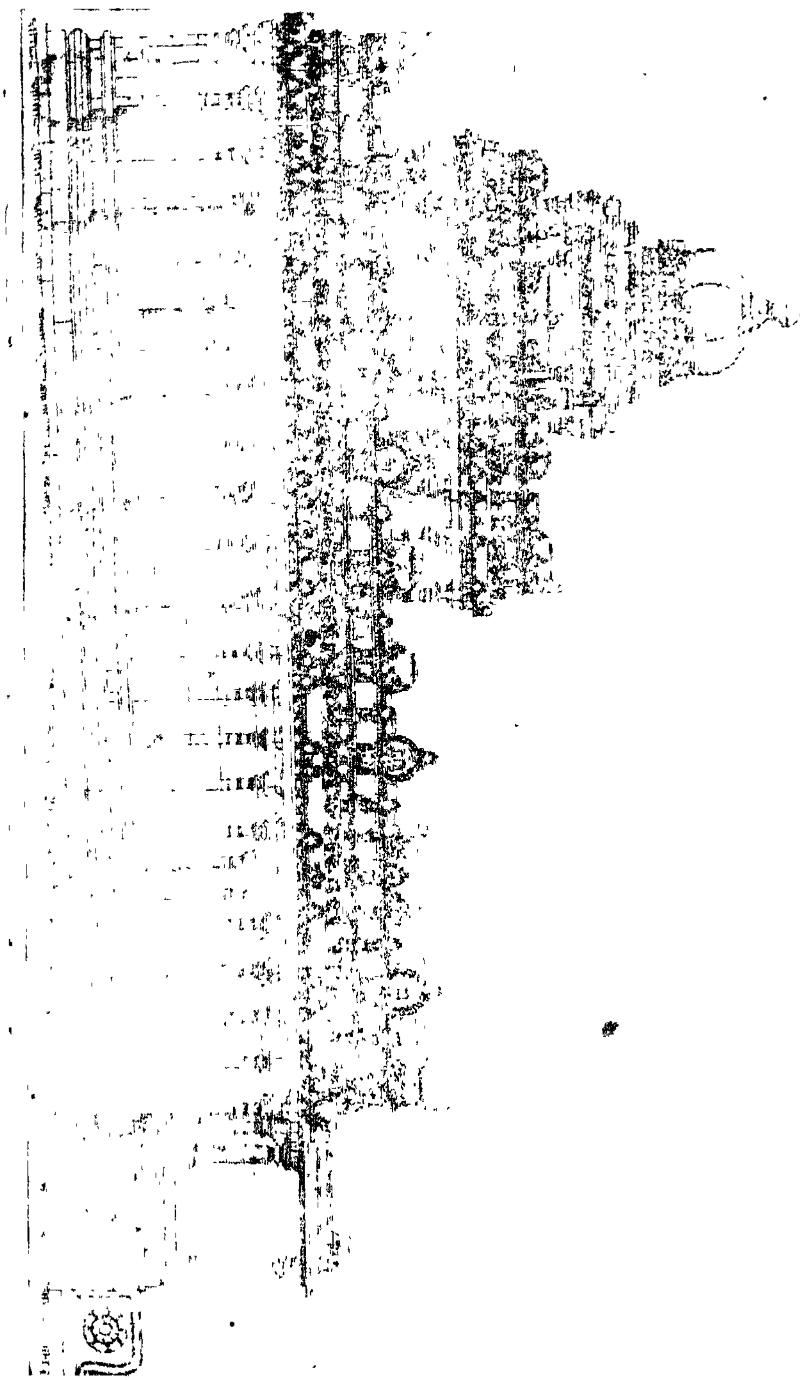
५--६—वायव्य कोणमें पूर्वाभिमुख दो जिनमान्दिर हैं। एक मन्दिरमें श्री १००८ सुपार्श्वनाथजीकी प्रतिमा विराजमान है और प्रतिमाके दोनो ओरसे दो इन्द्र चँवर ढुला रहे हैं। दूसरेमें श्री १००८ चंद्रप्रभु तीर्थंकरकी प्रतिमा है। बाह्य भागमें यहां यक्ष और यक्षिणीकी मूर्तियां हैं।

नंबर ४-५-६ वाले मन्दिरोंके सामने चारोतरफसे खुले हुए कई छोटे छोटे मन्दिर हैं। उनमें बहुतसे शिलालेख खुदे हुए रक्षापूर्वक रखे गये हैं। इन शिलालेखोंमें प्राचीन जैनाचार्योंके महत्वसूचक कई लेख हैं।

७—नंबर ५-६ वाली वस्तीके सामने **चामुण्डरायकी** स्थापित एक अत्यन्त रमणीय भारतीय शिल्पकलाकी अत्युच्च प्रतिष्ठा रखनेवाली वस्ती है। इसमे श्री १००८ नेमिनाथ तीर्थंकरकी मनोज्ञ प्रतिमा विराजमान है। प्रतिमाके दोनों बगलमें दो



दीवारपर नक्काशी कीहुई और खोदित मूर्तिवाली चामुण्डराय वस्ती (मन्दिर) की लम्बाईका चित्र.



दक्षिणभागकी चामुण्डरायवस्तीका चित्र.

इंद्र चँवर ढुला रहे हैं। इंद्रोंकी देहपर आभूषण तथा वस्त्रादि इस कलाचातुरीसे खुदे हुए हैं कि, इनके सामने सच्चे गहने और कपडेभी फीके पड़जाते हैं। पीछेका भामण्डलभी एक बड़े चिकने कृष्ण प्रस्तरपर अंकित है। यह शिल्पीय उत्कृष्टताकी नमूना क्षणक्षण दृग्गोचर कराता है। इसके पार्श्वमें यक्ष-यक्षिणी की प्रतिमा विराजमान है। इस मन्दिरकी प्रतिष्ठा श्रीमान् १०८ **नेमिचंद्र सिद्धान्त-चक्रवर्ति** द्वारा की गयी है।

इस मन्दिरका सभा-मण्डप बहुत बड़ा है। इसके ऊपरका भाग (कोठा) चामुण्डरायके लडकोंने बनवाया है। ऊपरके मन्दिरमें श्री १००८ पार्श्वनाथकी प्रतिमाभी चामुण्डरायके पुत्रोंनेही विराजमान कराई है। लोग कहते हैं कि, पिताके स्मरणार्थही इस मन्दिरकी स्थापना इन्होंने की है। इसका समय लगभग ई. स. ९९५ है। दर्शनके लिये तथा प्राचीन जैन-शिल्पसाहित्यका नमूना बतलानेके लिये इस मन्दिरका चित्रभी इसी किरणमें हमने प्रकाशित किया है। मन्दिरका बाह्य दृश्यभी प्राचीन चित्रकलाकी अच्छी छटा बता रहाहै।

कहा जाता है कि, इसी महाराज **चामुण्डरायने** विन्ध्यपर्वतपर श्री १००८ **बाहुबली स्वामीकी** प्रतिमाकी प्रतिष्ठा **भगवन्नेमिचंद्र सिद्धान्त चक्रवर्ति**-द्वारा की है। श्री १००८ बाहुबली स्वामीकी प्रतिमा उत्तराभिमुखी और लगभग ७० फीट ऊंची है। प्रतिमाकी शिल्पकलाकी घटना इतनी अपूर्व और मनोहर है कि, हजारोंबार प्रतिमाका दर्शन करने परभी नेत्रकी आनिमेष–दर्शनेच्छा नहीं तृप्त होती। प्रतिमाका विशाल स्वरूप, मधुर लावण्य, शिल्पकारीगरीकी सांगोपांग पूर्णता और परमशांत गंभीर ध्यान दर्शकोंके हृदयपर बहुतही असर करते हैं। कहा जाता है कि दुनियामें जो आज बड़ेबड़े तीन मूर्तियां विद्यमान है; उन सबोंमें यहांकीसी मूर्ती अन्यत्र कहींभी नहीं हैं। इस विशाल प्रतिमाके दोनोंतरफ चरणके नजदीक दो शिला-लेख पत्थरपर खुदे हुए हैं। वे शिलालेख मराठी और कन्नड भाषामें; तथा देवनागरी और कन्नड लिपिमें हैं।

श्री चामुण्डराजें करवीयलें।

अर्थात् इसका निर्माण चामुण्डराजाने करवाया है दूसरा शिलालेखः—

श्री गंगाराजें सुत्तालें करवीयलें।

जिसका अर्थ–महाराज गंगाराजने इधरका चैत्यालय बनवायाहै, ऐसा है। यह गंगकुलोत्पन्न परम **जैनधर्माभिमानी महाराज गंगराज, चामुण्डराजके दोसौ बरस पीछे**

हुए हैं, ऐसा ज्ञात होता है। इन दोनो तरफके शिला लेखोंकाभी चित्र पाठकोंको परिचय करानेके लिये इसमें सामिल किया गया है। विन्ध्यपर्वतका वृत्तान्त हम किसी आगली। किरणमें सादर प्रस्तुत करेंगे। अस्तु!

८- नंबर ७ के मन्दिरके पासहीमें श्री १००८ आदिनाथ तीर्थंकरका मन्दिर है। इसमे सिंहासनपर श्री १००८ आदिनाथ तीर्थंकरकी मूर्ति तथा सव्य और वाम भागमें चमर लिये हुए इंद्रकी दो प्रतिमा स्थापित है। दोनो इंद्रोंके आसपासमें यक्ष और यक्षि॰ णीकी मनोज्ञ मूर्ति विद्यमान है। इस पूर्वाभिमुख मंदिरको 'शासन वस्ती' भी कहते हैं।

९—उपरिनिर्दिष्ट मंदिरके सामने दक्षिणाभिमुखी 'मर्जीगण' नामकी वस्ती है। इसमें भी यक्ष-याक्षिणीके साथ श्रीं १००८ अनंतनाथ तीर्थंकरकी परम गंभीर और शांत-ध्यानकी मूर्ति है।

१०——यह 'एरडूकट्टे' नामक उत्तराभिमुखका चैत्यालय है। इसमें यक्ष यक्षिणी तथा इंद्र इंद्राणीके साथ श्री १००८ आदिनाथ तीर्थंकरकी प्रतिमा है।

११—उपर्युक्त मंदिरके पार्श्वहीमें 'सती गंधवर्ण' नामक उत्तराभिमुखी वस्ती है; जिसमें श्री १००८ नेमिनाथ स्वामीकी एक बडी मनोज्ञ प्रतिमा है।

१२——यह 'गोमटेश्वर स्वामी' नामक वस्ती उपर्युक्त वस्तीकी दाहिनी ओर है। इसमें श्री १००८ बाहुबलीस्वामीकी प्रतिमा यक्ष यक्षिणीके साथ विराजमान है।

१३——यह अन्तिम उत्तराभिमुख मन्दिर बिल्कुल ईशान कोणमें है। इसमें श्री १००८ शान्तिनाथ स्वामीकी सुंदर मूर्ति है।

श्री १०८ भद्रबाहुस्वामीकी गुंफामे लेकर चंद्रगिरिपर्वततक सब मिलकर १५ मन्दिर हैं। बीच बीचमे प्रबंधके साथ छोटेसे पाषाणके चबूतरेपर स्थापित कियेहुए 'मल्लिषेण प्रशस्ति' आदि लगभग १०० शिलालेख बडेही महत्वके हैं। प्राकारपरिवेष्टित इस चंद्रगिरिपर्वतके ईशान कोणसे 'जिननाथपुरी' को जानेका एक मार्ग है। जिननाथ-पुरीमें प्रवेश करनेके पहलेही एक सुरम्य सरोवर मिलता है। इसके तटपर श्री १००८ पार्श्वनाथ भगवानके उत्तराभिमुख दो मन्दिर है। जिननाथपुरीमें प्राचीन द्राविडीयशि-ल्पकलाकी सर्व सुंदर समृद्धि-शाली श्री १००८ महावीरस्वामीका एक मन्दिर है। किन्तु शोक है कि, यह मन्दिर बहुतही जीर्णावस्थामें है। तीर्थ-संरक्षकोंको इसकी ओर ध्यान देना चहिये।

प्रिय पाठक महोदयो! यहां थोडासा चंद्रगिरिका दृश्य आपलोगोके सम्मुख प्रदर्शित किया। समयानुसार इसका और-विशेष परिचय हम भास्करमें देनेका प्रयत्न करेंगें।



[illegible]के समीपवाला चामुण्डरायका शिलालेख.

1



चामुण्डरायके शिलालेखसहित श्री १००८ बाहुबलीके चरणाधारका पहाड़.

दिगंबर मतपर एक विदेशी विद्वानका विचार.

यद्यपि बुद्ध-धर्म्मका महत्व, बुद्धधर्म्मका उदय तथा बौधर्म्मके अन्यान्य धर्म्मोंसे संबंधकी विशेषता किसीको ज्ञात नहीं है तौभी आजकल बडेबड़े विद्वानोंने इस धर्म्मके रहस्य जाननेके लिये आकाश पाताल एक कर डाला है तथा जैसे तैसे अपने मन माने मन्तव्य सब किसिके कर्ण-कुहरतक उद्घोषित कर रक्खे हैं। डा. बर्नाफने जो बौद्धधर्म्मका इतिहास लिखा है, उसमें उन्होंने. मि. हाक्सनेका नेपालमें मिले हुए बौद्धधर्म्म-संबंधी कुछ लेखका उल्लेख किया है, इससे और मि. हार्डीको सिलोनमें उपलब्ध हुए बौद्धधर्म्मसंबन्धीय लेखसे यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि, लगभग ईस्वी सन्के ५०० वर्ष पूर्व, जब बुद्धधर्म्मका उदय हुआ था तो उस-समय संसारमें विशेषतया ब्राह्मण-संस्थाकाही आधिपत्य था। यद्यपि लोगोंका यह कथन है कि, ब्राह्मण धर्मके विरुद्ध पहले बौद्धोंने अपना धार्म्मिक मन्तव्य प्रचारित किया किन्तु मेरी रायमें तो बौद्धोंके स्थानपर जैनियोंका ही कहना प्रमाण-संगत माल्रूम होता है। ब्राह्मण-समाजमेंभी ब्राह्मणधर्म्मके विरुद्ध मन्तव्य प्रकाशित करनेवाले और अन्यान्य उदात्त तथा ओजस्वी मतके अन्वेषण करनेवाले बहुतसे पण्डित हो गये हैं तथा प्रस्तुत-समयमें भी कई हैं।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि, **ऋषभनाथ** स्वामीने जो प्राचीन धर्म्मकी सुधारणा की है; इस बातमें जैनधर्म्म और ब्राह्मणधर्म की एकवाक्यता है। ऋषभनाथस्वामी क्षत्रियोंमें आदि क्षत्रिय थे। आपके पुत्र महाराज **भरतके** चिरस्मरणार्थ ही इस ' आर्य-खण्ड ' का नाम **भारतवर्ष** पड़ा। ब्राम्हणोंके प्रमुख पुराण **भागवतमें** ऋषभनाथस्वामीके विषयमें निम्नलिखित उल्लेख मिलता हैं।

" अपने सो पुत्रोंमेंसे ज्येष्ठ भरतहीको आर्यखण्डाधिपत्यके उपयुक्त समझकर और उन्हें राज्यभार सौंपकर (राज्याभिषिक्त कर) ईश्वरभक्त, मनुष्यहितकारी और सुगुणी महाराज **ऋषभदेव** ईश्वराराधनमें निमग्न हुए और सकल परिग्रह-रहित नग्न होकर भिक्षुरूपसे ब्रह्मपदको प्राप्त हुए। यही ऋषभनाथस्वामी प्रथम राजा, प्रथम भिक्षु (श्रमण) और प्रथम तीर्थंकर हुए हैं। ऋषभनाथसे लेकर महावीर तीर्थंकर तक अचेलक्य (दिगम्बरत्व) का उल्लेख जैनशास्त्रोंमें मिलता है।

उस समय इस प्राचीन धर्म-विधि-विरुद्ध कोई संघटित अथवा शाश्वतिक हलचल था या नहीं इसका कुछ पता नहीं मिलता। पहले जमानेमें आचार-धर्म और अभिमत-तत्वज्ञानकी कोई विशेष घटना नहीं हुई थी। उस समयकी परस्परागत दन्तकथासे यह बात माल्म होती है कि, वैदिक धर्म्मके विरोधी **ऋषभदेवके** पश्चात् एक **कपिल** नामके विद्वान् हो गये हैं। इनका तत्वज्ञान यद्यपि वैदिकधर्म्मसे विरुद्ध था किन्तु ये ब्राह्मण-संस्थासे कभी अलग नहीं हुए। **कपिलका** बुद्धिवैभव इतना जबरदस्त था कि, इनको समाजसे बहिष्कृत करनेका साहस किसीको हुआही नहीं। " प्रकृतिसे सृष्टि होती है, सृष्टि करनेमें ईश्वरका कुछ प्रयोजन नहीं " ऐसा **कपिलका** मत है। किन्तु इसके विरुद्ध वैदिकधर्मावलबियोंने कई ग्रंथ लिखे तथा इनको **नास्तिक** कहा। प्राचीन समयमें जो जैनधर्म और बौद्धधर्मकी लोकप्रियता थी, वह इसी कपिलानुमोदित तत्वके समकक्षकी थी। कपिलकी ईश्वरकी असृष्टि-कर्तृतामें पीछेसे वैदिकमत-प्रवर्तकोंने ईश्वरसृष्टि-कर्तृत्वकी* ध्वनि गुंजा दी है। किन्तु इन लोगोंने यह नहीं सोचा कि, ऐसा करनेसे ईश्वरकी समदर्शिता कहांतक निष्कलंक रह सकती है। कपिलके बसाये हुए ग्रामका नाम **कपिलवस्तु** प्राचीन कालमें सुप्रसिद्ध था। यद्यपि इनके समयका निर्णय निश्चयपूर्वक नहीं किया जा सकता तौभी हिन्दू परम्परागत जनश्रुतिसे बी. सी. के एक हजार वर्ष पहिले अनुमान किया जाता है।

कपिलके बाद भारतवर्षपर जिनके धार्मिक साम्राज्यका डंका बज गया था वह जैनियोंके तत्ववेत्ता प्रातःस्मरणीय तीर्थंकर श्री १००८ **पार्श्वनाथ** स्वामी थे। इनका समय लगभग ईस्वीके साढ़े आठसौ वर्ष पहिले निश्चित होता है। जैन मतानुसार यह काशीके राजपुत्र थे। इनकी आयु सौ बरसूतक थी और इनका मृत्यु-समय बी. सी. के ८२८ वर्ष पहले माना जाता हैं। यह तेईसवे तीर्थंकर थे। **ऋषभनाथ** और **महावीरकी** ऐसी इनकीभी जैनियोंमें बड़ी प्रतिष्ठा है **पार्श्वनाथ** जैनियोंके तीर्थंकर हैं ऐसी हिंदूधर्मियोंमें और जैनतीर्थंकरोंकी अपेक्षा इनकी बड़ी प्रसिद्धि है। कल्पसूत्रकी प्रस्तावनामें भी प्रायः इनका वर्णन किया गया है। इसलिये और लोगोंका खयाल है कि, जैनधर्मका प्रथम संस्थापक **पार्श्वनाथ**ही हैं।

इसके पीछे जो जैनधर्म्मके मुख्य प्रचारक हुए वे श्री १००८ महावीर स्वामी (बर्द्धमान) (सम्मति) अन्तिम तीर्थंकर हैं। बंगाल प्रान्तीय कुण्डिनपुराधिपति राजा सिद्धार्थके ये

* **स हि सर्ववित्सर्वकर्त्ता** (३।५६) **ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा** (३।५७) इन दो और अन्यान्य कपिल सूत्रोंसे ईश्वरकी सृष्टिकर्तृता लोग कायम रखते हैं, किन्तु हम समझते हैं कि, इनका मुख्य अभिप्राय नहीं समझकर लोगोंने ईश्वरको सृष्टिकर्त्ता मान लिया है। हम फिर कभी **सांख्यदर्शनका निरीश्वरत्व** दिखलावेंगे **सम्पादक.**

लड़के थे। सत्तर वर्षकी अवस्थामें अर्थात् बी. सी. ५६९ में यह निर्वाणको प्राप्त हुएं। इन्हींके शिष्य **गौतम** [इंद्रभूति] नामके एक दिग्विजयी विद्वान् हो गये हैं। यही पीछे **बुद्ध** नामसे प्रसिद्ध हुएं । इन्होंने लौकिक तथा पारलौकिक दोनों विषयोंका अविश्रान्त प्रसार **एशियाखंडमें** बहुत दूर प्रदेशतक किया। श्री **महावीरने** संसारमें पूर्वकी पद्धतिमें बहुत सुधारणा की और मानसिक वासनासे अपनी अलिप्तता सूचित करनेके लिये वस्त्रादि परिग्रहको छोड़कर निर्ग्रंथित्व मार्गका आश्रय लिया। इनके निर्वाणके बाद जैनधर्ममें दो मत भेद हुएं। उनमें बहुतेरे तो **सुधर्माचार्य** के नायकत्वमें अपने गुरु महावीर स्वामीके दर्शित मार्गके अनुयायी हुएं और कुछ लोगोंने गौतमके आधिपत्यमें शिष्टाचार पद्धतिकी मात्रा किसी प्रकार अवनत नहीं होने दी तथा वस्त्रादि परिग्रहको स्वीकार कर पार्श्वनाथका उपक्रम चलाया।

महावीर स्वामीके शिष्योंका परम्परागत परिचय आजतक बड़ी सरलतासे विश्वसनीय प्राप्त हो सकती है। कल्पसूत्रकी पट्टावली ही विश्वसनीयताका साक्ष्य दे रही है। जैनधर्मके उदयके पश्चात् बौद्धधर्मकीभी एकवार खूब ज्योति जगमगायी, किन्तु तौभी जैनधर्म निस्तेजावस्थामें अपना अस्तित्व रखकर केवल नाममात्रसे जीवित रहा।

जैन लोगोंके मतानुसार **गौतम** प्रारंभमें ब्राह्मण थे, लेकिन बौद्ध कहते हैं कि वह कपिलवस्तुके छोटे राजा शुद्धोदन को पुत्र थे। इनकी जाति निश्चित करनेका आग्रह हमे कुछ नहीं है किन्तु यहां विचारणीय विषय यह है कि, जिस ओजस्वी धर्मका इन्होंने प्रसार किया है उसके मूल संस्थापककी प्रधानता इन्हे प्राप्त होना हमे युक्तियुक्त तथा प्रमाण-संगत नहीं माल्रम पड़ता। गौतमको बुद्ध पदवीके प्राप्त होनेके पहिले जो इनके साथ पांच मुनिथे उनका उल्लेख बौद्धोंने अपने इतिहासमें किया है। गौतम बुद्धने थोड़े समयके लिये अपने साथी जैनमुनियोंका संघ छोड़ा था किन्तु पीछे फिर उन सबोंसे गौतमबुद्धको साक्षात्कार हो गया तथा बौद्ध धर्मके प्रचारके लिये उन्हे बिना परिश्रमके ये साधक मिल गयें। बौद्धधर्मका तत्व कुछ तो जैनियोंके और कुछ कपिलके तत्वसे सम्मिलित था। जैन और कपिलने प्रकृतिहीको ईश्वर माना है । दोनों धर्ममें जड़ और चैतन्ययुक्त सृष्टिही देवता माने गये हैं और संसारकी जितनी विभूति हैं वह अपनेही कर्तव्यसे सर्वज्ञताको प्राप्त होती है, इसी असामान्य विभूतीको बौद्ध लोग **बुद्ध** तथा जैनी लोग **तीर्थंकर** कहते हैं। बहुत विवेचना करनेपर हमे जैन इतिहासही महत्त्वपूर्ण

माळूम हुआ। क्योंकि जैन इतिहासके समयादि निर्णय करनेके लिये तिथि वगैरह बी. सी. ८२८ तक क्रमबद्ध मिलती है। किन्तु बहुत खोज ढूंढ करने परभी बौद्धोंकी इतिहास–सामग्री बी. सी. ५४३ के पहिलेकी नहीं मिलती। **जैनियोंका एक जुदाही धर्म-मार्ग था** ऐसा उल्लेख बौद्ध–धर्म--ग्रंथमें मिलता है।

मि. **बर्नाफके** संगृहीत किये हुए बौद्ध लेख और सिंघली भाषासे मि. **हार्डीद्वारा** भाषान्तर किये हुए लेखसे माळूम होता है कि, **तिथ्य** तथा **तीर्थ** नामक बौद्धोंका एक प्रतिस्पर्धी वर्ग था। ये दोनों शब्द तीर्थंकरके समानार्थी माळूम पड़ते है। जैन लोगोंने जिसको देवता स्वरूप माना है वे येही तत्ववेत्ता हैं। बौद्धोंके इतिहास–ग्रंथोंमेंभी **तिथ्यका** अलगही उल्लेख किया गया है। जैसे:—" रताक्ष नामक तीर्थक श्रमण, ब्राह्मण, यति और भिक्षुक जहां थे वहां गया" उल्लिखित वाक्यमें पहिला **श्रवण** निर्विवाद जैन सिद्ध होता है। **ललितविस्तार** ग्रंथमेंभी बौद्धके श्रोतृवर्गका उल्लेख करते समय **ब्राह्मण** और **तीर्थकका** अलगही उल्लेख किया गया है। यहां भी **तीर्थक** जैनही होना चाहिए। मि. **टर्नर**-द्वारा संगृहीत 'पाली बुद्धिस्ट् अनल्स' नामक ग्रंथमें तिथ्योंका पाखंडी कह कर उल्लेख किया गया है। बौद्ध ग्रंथोंमें ब्राम्हणोंकाभी यथा योग्य वर्णन किया गया है। बुद्धकी शिष्य-मण्डलीको एकबार वेदत्रय-पारंगत एक ब्राह्मण यतिसे साक्षात्कार हुआ। किन्तु बौद्ध-ग्रंथमे इस साक्षात्कारकी घटनामे कहीं तिथ्य अथवा तीर्थंकर ऐसा शब्द नहीं प्रयुक्त किया गया है। बुद्धधर्म्मके समर्थन करनेवाले एक व्यक्तिने तीर्थककी निम्न लिखित रूपसे निंदा की हैं:–

लोग उसके लिये बहुतसे वस्त्र लाये किन्तु उनका उसने स्वीकार नहीं किया। उसने यही सोचा कि, यदि मैं वस्त्र स्वीकार करता हूं तो संसारमे मेरी उतनी प्रतिष्ठा नहीं होगी। वह कहने लगा कि, लज्जा रक्षणके लिये ही वस्त्र धारण किया जाता है और लज्जाही पापका कारण है। हम **अर्हत** हैं इसलिये विषय वासनासे अलिप्त होनेसे हमे बाह्य लज्जाकी कुछभी परवाह नहीं। इसका ऐसा कथन सुनकर बड़ी प्रसन्नतासे वहां इसके पांचसौ शिष्य बन गये बल्कि जंबूद्वीपमें इसीको लोक **सच्चे बुद्ध** कहने लगे। बुद्धका एक प्रतिस्पर्धी तीर्थक था तथा वह वस्त्र परिधान नहीं करता; ऐसाभी बहुत ग्रंथोंमें उल्लेख मिलता है। तीसरे तीर्थकके बारेमें यह लिखा हुआ है कि, एक नग्न तीर्थक खानेके समय गरम पानी पीता था और चौथा-नग्न तीर्थक मांसाशनका निषेध करता था, ऐसे उल्लेख उल्लिखित ग्रंथोंमें पाये जाते हैं।

उपर्युक्त ये कथन **जैनधर्मका दिगम्बरत्व** और **मांसाहार–निषेधत्व** सूचनके साथ साथ इसकी प्राचीनताकाभी पूर्ण प्रमाण सूचित करते हैं, किन्तु ब्राह्मण

तथा बौद्धोंने मांसहार निषेधकी और नग्नकी प्रसिद्धि नहीं प्रकटित की है। ब्राह्मणके धर्म्मग्रंथोंमें **ऋषभदेवके** दिगम्बर होनेके सिवाय और किसी वेदानुयायीका दिगम्बर होना नहीं लिखा है. बल्कि **ऋषभदेव** स्वामीके दिगम्बर होनेके विषयमें भागवतमें यह साफ साफ लिखा हुआ है कि, कलिकालमें नग्न होनेकी प्रथा ठीक नहीं होगी और जो नग्न रहेंगे उन्हे कलिकालका प्रभाव मोहरूपसे ग्रसित करेगा. विष्णुपुराणमें लिखा है कि, जब विष्णु संसारमें मोह उत्पन्न करनेके लिये अवतार धारण करते हैं तब वह हाथमें मयूरपिच्छ लिये हुए नग्न और शिरोमुंडित वेषसे अवतरित होते हैं।

हिन्दू-ग्रंथकारोंने ठीक समय निर्णीत नहीं करनेसे जैनों और बौद्धोंके सैद्धान्तिक बातोंमें तथा नामोंमें बड़ी उलझन कर दी है। मनुस्मृतिमें लिखा है कि, वानप्रस्थको वल्कल तथा कृष्णहरिणचर्म और संन्यासियोंको गेरुवा वस्त्र धारण करना चाहिये। नेपालमें गूढ़ और तांत्रिक नामकी एक बुद्धधर्म्मकी शाखा है. मि० **हाग्सनने** लिखा है कि, इस शाखामें नग्न यति रहा करते हैं, किन्तु आधुनिक बौद्धोंका कथन है कि, ऐसे यति हमारे मतानुयायी कभी होही नहीं सकते। **हाग्सनने** बौद्धोंके विषयमें जो एक लेख लिखा है उसमें साफ साफ लिख दिया है कि, दिगम्बर रहना बुद्ध-तत्त्वके विरुद्ध है, क्योंकि नग्नत्वही की वजहसे बौद्धोंने तीर्थंकरकी निंदा की है।

मांसाहारनिवृत्ति-विषयक बातका बिचार किया जाय तो यह स्पष्टतया ज्ञात हो जाता है कि पहले पहल जैनियोंहीने मांसनिषेधका प्रचार किया. अहिंसाधर्म बौद्धोंकोभी मान्य है किन्तु दूसरोंके द्वारा हिंसित मांस खानेमें वे लोग कुछ अधर्म नही समझते. क्योंकि बुद्धने अंतिम समयमें सूकरका मांस भोजन किया और यह भोजन इनके किसी शिष्यद्वारा संपादित था.

मनुस्मृतिमें ऐसा उल्लेख मिलता है कि, पितरोंका श्राद्ध बिना मांसका सुसंपन्न नहीं हो सकता. प्राचीन ब्राह्मण तथा यहूदियोंमें अतिथिसत्कारार्थ परिपुष्ट गोवत्सरी मारनेका रिवाज था.

उल्लिखित प्रमाण जो दिग्दर्शित कराये गये हैं उनसे यह बात ज्ञात होती है कि बौद्धोंने जो तिर्थिक ऐसा जहां तहां उल्लेख किया है वह दिगम्बर जैनके सिवाय दूसरा कोई नही था. इसी विचार-सरणीके अनुसार ग्रीक लोगोंकाभी **जिम्नासोफिस्ट** दिगम्बर जैनियोंही की श्रेणीका था. यह निःसंदेह निश्चित होता है कि जिम्नासोफिस्ट बौद्ध तथा ब्राह्मण धर्मसे कुछ संबंध नहीं रखताथा. बल्कि कल्पसूत्र और जैन ग्रंथोंमें

१ देखो. बंगाल रायल एशियाटिक सोसैटी म्यूजियम-लंदन. मि. बर्नाफ और हार्वेनभी यह बात उल्लिखित की है.

जिनका उल्लेख आया है और जिनके अनुयायी आबूपर्वतपर तथा उसके आसपासके प्रदेशोंमें पाये जाते थे वे **दिगंबर जैनही** थे. प्रसिद्ध ग्रीक इतिहास लेखक मि० आलेक्झँड्रिया क्लिमेंटने बौद्ध तथा दिगम्बर मुनियोंका भिन्न भिन्न रीतिसे अपने इतिहासमें उल्लेख किया है. इतिहासकारोंने बौद्ध और जैनकी भिन्नता के विषयमें अनेक प्रमाण प्रकाशित करनेपरभी अंग्रेजोंमें और हिन्दुओंमें कई अपूर्व चामत्कारिक कल्पनाओंकी उपस्थित कर दोनोंके तथ्य विचारमें बड़ी गड़बड़ी मचादी है.

हिंदू–धर्ममें नग्न रहनेवाले कापालिक लोग अभीतक कितने वर्तमान हैं. बल्कि उन्हें लोग नग्नका अपभ्रंश नागा कहा करते हैं. ब्राह्मणलोग इन्हें शिवमतानुयायी कहते हैं. नागा लोक प्रायः हिन्दुस्थानके पूर्व और दक्षिण देशमें उपलब्ध होते हैं. किन्तु ग्रीक लोगोंके खोजनेपर ये पश्चिम प्रांतमें नहीं मिले. दंतकथा तथा लैखिक प्रमाणद्वारा यह बात सिद्ध होती है कि जब तक ग्रीक लोगोंको हिन्दूस्तानके साथ सम्बन्ध था, तब तक इन नागाओंका नाम निशान किसीको कुछ ज्ञात नहीं था। किन्तु उस समय जैन लोगोंकीही धार्मिक जागृतिकी कई विश्वसनीय बातों तका उल्लेख मिलता था.

बौद्ध तथा हिन्दूधर्मावलंम्बियोंने जैन–दिगम्बर–वृत्तिकी सहस्र मुखसे अपने सैद्धान्तिक, धार्मिक तथा आख्यायिका ग्रंथोंमें निन्दा की है. लेकिन संपूर्ण जैन-ग्रंथोंमें ऐसा उल्लेख पाया जाता है, कि प्रथम तीर्थंकरसे लेकर अन्तिम तीर्थंकर तक अपने शुद्ध जैन–दिगम्बर–धर्मके प्रचार करते आये हैं.

प्रिय पाठको ! इतने प्राचीन कालसे दिगम्बर–जैनधर्मकी परम्परा चली आती है। इन उपर्युक्त कथनका सारांश यही है कि, पश्चिम हिन्दुस्थानमें जहां दिगम्बर आम्नायकी प्रथा प्रचलित है वहां जो ग्रीक लोगोंसे जैन दिगम्बरोंका साक्षात्कार हुआ उस समय ग्रीकोंने इन्हें जिम्नासोफिस्ट नामसे उल्लेख किया. वे एकदम ब्राह्मण तथा बौद्धसे भीन्न थे और तक्षशिलापर अलेक्जंडरसे जिस जिम्नासोफिस्टका संघ मिला वह दिगम्बर जैनियोंकाही संघ था. बल्कि उसी संघका एक **क्यालानस्** (**कल्याण**) नामक जैन मुनि अलेक्जंडरके साथ इरानको चला गया.*

---

* रेव्हरन्ड जे स्टीव्हन्सनके 'जिम्न, बौद्धोंके जिम्नक और ग्रीकोंके जिम्नासोफिस्ट तथा दिगंबर जैन' नामक लेखका यह आशयानुवाद है। *संपादक.

विक्रमादित्य सम्वत्.

विज्ञ महोदयो ! यह विषय बड़ाही कठिन है और इस विषयका आंदोलन बड़े बड़े भारतीय तथा विदेशीय विद्वानोंने पांडित्यपूर्ण युक्तियोंसे किया है और कर रहे हैं; तो फिर मुझसे क्षुद्रव्यक्तिद्वारा इस विषयकी चर्चा करना ज़रा कठिन है । किन्तु मैंने इतिहास–मर्मज्ञोंकेही विचार–वैभवकी आशासे इस जटिल विषयको छेड़ा है और मैं इसकी मीमांसाका भारभी उन्ही लोगोंपर छोड़ता हूं ।

जैन ग्रंथादिकोंसे मालूम होता है कि ३१२ बी. सी. के. पूर्व चन्द्रगुप्तने महाराजाधिराजकी उपाधि ग्रहण की थी । इसके बाद मौर्य्य वंशने १०८ वर्षतक इस भारतवर्षका शासन किया था । २०४ बी. सी. में पुष्यमित्र या पुष्पमित्रने मौर्य बृहद्रथ राजाको विनष्टकर मौर्य्य सिंहासनका अधिकार लिया था । वे बड़े प्रतापशाली राजा थे । पंजाबसे लेकर मगधतक इनका आधिपत्य था । वें शैव थे । इनका सौर धर्म्मसेभी बड़ा प्रेम था । बौद्ध–धर्म्मके ये कट्टर द्वेषी थे । और इन्होंने बहुतसी बौद्धकीर्तियोंको विनष्ट किया । पुष्पमित्रके लड़के अग्निमित्रने मालव विदर्भ और विदिशा प्रान्तको जीता था । विदर्भराजने यज्ञसेनको पराजित कर विदर्भराज्यको दो भागोंमें बाँटा था और माधवसेनको एक विभागका शासनकर्ता बनाया । उन्होंने तो स्वयं विदिशा राज्यके सिंहासनको सुशोभित किया । इस घटनाका विशेष उल्लेख कालिदासके ' मालविकाग्निमित्रमें ' है । पुष्पमित्रके पहले दिमेत्रियस वा देवमित्रने पंजाब और सिंधुदेशपर अपना अधिकार किया था । पुष्पमित्रके समयमें यवनलोग सिन्धुदेशका शासन करते थे । यवन मिनंदर वा मिलिन्द पुष्पमित्र अथवा अग्निमित्रके समकालीन थे । संभवतः सुकुर[१] इन लोगोंकी राजधानी थी । नागसेनद्वारा ये बौद्ध-धर्म्मसे दीक्षित हुए । इन्ही यवनोंने अयोध्या नगरीपर आक्रमण किया था, तथा माध्यमिक (बौद्ध सांप्रदायिकों) के साथ युद्ध किया था । क्योंकि, पतंजलिके महाभाष्यमें लिखा है कि:—

अरुणद् यवनः साकेतं अरुणद् यवनः माध्यमिकान् ।

---

१ [illegible] सम्पादक.

निस्सन्देह यह बात सर्व-मान्य हो चुकी है कि मिलिन्द राजाने शुंग§ राज्याधिपति महाराज पुष्यमित्रकी अधीनता स्वीकार की थी। पुष्यमित्रने ३० वर्षतक राज्य करके देहत्याग किया। इनकी मृत्युके अव्यवहित पूर्व यानि अनुमानतः १२२ बी. सी. में यूतिगण हूणों अर्थात् हूण जातीसे आक्रांत होकर पश्चिमाभिमुख ताड़ित हुए। वे यूसून* जातिको पराजित कर उनके स्वामीको विनष्टकर चुके। कुछ कालकेबाद चीनलोगोंने हूण, यूशून, आर्कच्छोद (Ugarit) प्रभृति जातियोंकी सहायतासे यूतियोंको विताड़ित किया और वे पश्चिमकी ओर जाकर 'से' अथवा 'स्यू' जातिके वासस्थानपर अधिकार करने लगे। यह घटना १७८ बी. सी. की है, कालक्रमसे 'श्यू'× स्थानसे ताड़ित होकर 'ताहि' राज्यपर इन्होंनें अधिकार जमाया। यही 'ताहि' राज्य टॉलेमीका लिखा हुआ Daei संभवतः हो सकता है। यह पार्थिआ अर्थात् पारदके पूर्व-दक्षिण एवं 'एरिआ' अर्थात् 'हिरात' अंचलके उत्तर-पश्चिममें विद्यमान था। इसका समय अनुमानतः १६५ बी. सी. है। ताहिर राज्यको कुछ कालतक अधिकार करनेपर 'यूति' जाति पराक्रान्त हो उठी। 'यूमी' वा 'ह्यूमी' 'संगमाई' 'कुशंग,' वा 'कुशन' 'यातून' वा 'ह्रितून' एवं 'स्यूमि' ये एक एक जाति उनके साथ सम्मिलित होती है और सब जातियां (उल्लिखित जातियां) 'यूति'† नामसे प्रख्यात हुई।

§ पंजाबमें जो आजकल एक झंग ज़िला है वह इसी शुंगकी स्मृति करा रहा है। क्योंकि शुंग, चंग, झंग, ये एक जातीय शब्द हैं। चीन इतिहास-पुस्तकमें जो संगमाई लिखा है वह चकमा जातिका-वाचक हो सकता है। शुंग सक चंग चक ये समानार्थवाची शब्द हैं, इसलिये हमारा अनुमान है कि शुंग जाति जो है वह शक जातिकी एक शाखा है।

* यह यूशून जाति टाल्मकी लिखी हुई (Asioni) एशी ओनाई जाति है। शाखिन उपत्यकाहीके नामके सदृश यह एशिओनाई है। संस्कृत ग्रंथादिकोंमें ये अर्जुनायन नामसे प्रसिद्ध है। महाभारतमें आर्जानक और उज्ज्ञान ये दो शब्द मिलते हैं। झेंदावेस्ता नामक ग्रंथमेंभी इसीको 'एज्ञनवेजू' लिखा है। इससे उज्जयनी भोजभी इसीका शब्दान्तर ज्ञात होता है।

× श्यू जातियोंका जो वासस्थान है वही Seisthan अब प्रख्यात है।

† यू-मि जाति युमोड्स (Emodus) वा हिमवत् प्रदेशवासिनी है। पुराणमें यह कम्बोज नामसे प्रसिद्ध है। संगमाई जाति 'सोम' है। सोम-चम्-जम् यह अभिन्नार्थक शब्द है। इनका वासस्थान जम्बूद्वीप है। कुशंग (कुशन) जातिभी वर्तमान खस जाति समझनी चाहिये। यही गुशन (गुशंग) भी कही जा सकती है। इसीके नामानुसार काश्मीर एक देशका नाम पड़ा है। क्योंकि काश्मीरका दूसरा शब्द 'कश्यपूर' वा 'खसपूर' हो सकता है। कौशाम्बी भी इसी शब्दसे बना है, इनका अधिष्ठित स्थान 'कुशावर्त' है। कौशाम्ब और कुशावर्त जो प्राचीन पौराणिक नाम हैं वे कुशन जातिके नामानुसार रक्खे गये हैं। ये तो नई जाति हैं। या-तूनका वासस्थान संभवतः काफिस्तान उल्लिखित स्थान हो सकता है। और यह जाति राजपुतानेकी रहनेवाली थी नहीं

यूथी, डिमस, डिमेट्रिअस, एवं युक्रेटैडिसके समयमें यूतिगणोंने उनकी अधीनता स्वीकृत की थी। युक्रेटैडिसकी मृत्युके बाद उनके वीर पुत्र एपोलोरोडस एवं हिल्यूकी-लिसके बीचमें गृहविवाद उपस्थित हुआ। इसी सुयोगमें पार्थिआ राजा (पारद राजा) प्रथम मिजिटेड्सने (मित्रदत्त प्रथमने) बाल्हिक वा व्याक्ट्रिआ (बगध) पर आक्रमण किया और उक्त राज्यका उपभोग किया। उन्होंने एरिया Arákosia Drangiana गान्धार, पंजाबपर्यंत राज्य विस्तार किया था। अनुमानतः १४५ बी. सी. इस घटनाका समय निश्चित किया जा सकता है। इसके बाद हेल्यूकालिस सिंधप्रदेशमें भाग गया। पश्चात् तक्करगण यूथिजातिके साथ मिल गये और वे यूथिजातिके शाखान्तर्गतसे परिगणित होने लगे। राजपूत राजतरंगिणीसे माल्रुम होता है कि, अनुमानतः १३५ बी. सी. में यूथिगणोंने काश्मीरपर आक्रमण किया था। १२८ या १२७ बी. सी. में मिथ्रिडेटिसके पुत्र फ्रैटिस यूतिगणोंके साथ युद्धके लिये उद्युक्त हुआ। फ्रौटिसका चचा आर्तवान् संभवतः उदयन तोखर वा तक्कर लोगोंके साथ युद्ध में आसक्त हुआ और अनुमानतः १२४ बी. सी. में वह माराभी गया।

इकके बाद यूतिगणोंने बाल्हिक राज्यको विध्वस्त किया। किन्तु मित्रिडेटिस द्वितीयने उनको पराजित कर पंजाबतक पारद राज्यका शासन किया। उस समय शुंगराजगण पाटलिपुत्रका शासन कर रहे थे। किन्तु गांधार प्रभृति प्रदेशके छत्रप-गणोंने शुंगराजाकी अधीनता स्वीकार की थी। जब पारद राज्यकी क्षमता कुछ कम हो चली तो यूतिगण सिंध और गुजराततक बढ़ चले। ११४ बी. सी. में नरवाहन वा नभवाहन उज्जयनी सिंहासनपर अधिरूढ हुए। जैनग्रंथानुसार* ज्ञात होता है कि, उन्होंने ७४ बी. सी. तक राज्य किया था। अनुमानतः ७८ बी. सी. तक कुजूल कदफिसने पारद राजाओंको पराजित कर काश्मीरके उत्तर-पूर्व सब प्रदेशोंपर अधिकार जमा लिया।

चीन इतिहासग्रंथोंमें लिखा है कि, युशन जातिसे यूति जातिके पराभवके सौ बरसके बाद कुदुल्कदफिसने इस प्रदेशको हस्तगत किया। इसीसे प्रमाणित होता है कि, १७८ − १०० = ७८ में यह घटना हुई है। जैनग्रंथोंसे माल्रुम होता है कि, गर्दभिल्ल वा गदल्प (Kotulphus) ने उज्जयनीको हस्तगत किया। गर्दभिल्लने तेरह वर्षतक मालवका शासन किया। जैन कालकाचार्यकी भगिनी सरस्वती देवीके

है। त्यू-मी हुस वा हुम हीचकता है। इनका वासस्थान हार्व है। यह हुम जाति आज कल दारदके शाखान्तर्गत मानी जाती है। यह जाति प्राचीनमें 'दोमर' वा 'तोमर' नामसे परिचित थी।

* मेरुतुंगाचार्यकी अंथावलीमें यह बात विस्तृत लिखी है।

ऊपर बल प्रकाश करके गर्दभिल्ल उसको ले गया। किन्तु कालकाचार्यने शकराज्यकी साहाय्यतासे उसको सिंहासनच्युत करके शकको अधिकारी बनाया। शकराजाने चार बरसों तक मालवका राज्य किया। गर्भभिल्लके पुत्र विक्रमादित्यने उनको पराजित करके मालव सिंहासनका आधिपत्य ग्रहण किया। इसी लिये सर्व साधारण विक्रमादित्यको **शकारि विक्रमादित्य** कहते हैं। इस विक्रमादित्यने ५७ बी. सी. में अपना सम्वत् प्रचालित किया। इन्होंने साठ वर्ष राज्य करके इस असार संसारको छोड़ा। जैन ग्रंथोंसे यह मालूम होता है कि, विक्रमादित्यके पुत्र विक्रमचरित्र वा धर्मादित्यने चालीस वर्षोंतक मालवप्रान्तका शासन किया। धर्मादित्यके पुत्र भैल्यने ११ वर्षतक राज्य किया, इसके बाद नैल्यने १४ बर्षतक राज्य किया। एवं नहड़ वा नहद (Nahada) ने दश वर्ष राज्य किया। नहदके समयमें सुवर्णगिरि—शिखरपर श्री १००८ **महावीर** स्वामीका एक बड़ा मंदिर निर्माण हुआ। विक्रमादित्यका जैनधर्ममें पक्षपात था इसी लिये उनका जैनग्रंथोंमें उल्लेख है। बहुतसे लोगोंको विक्रमादित्यके अस्तित्वमें संदेह है किन्तु संदेहका कुछ विशेष कारण नहीं ज्ञात होता। दो हजारवर्ष पूर्व जिनका अस्तित्व माना गया है और जिनका उल्लेख बड़े बड़े जैन-ग्रंथोंमे विशद भावसे किया गया है, सो आज उन्हींके अस्तित्वमें संदेह हो? यह विषय हमसे क्षुद्र व्यक्तिके सर्वथा अगोचर है। विक्रमादित्यके नामसे कई उपाख्यान प्रचलित होनेहीसे इनका नाम इतिहास ग्रंथोंसे निकालना यह बात हमे युक्तियुक्त तथा प्रमाणसंगत नहीं मालूम पड़ती। विदेशी विद्वानोंमेंभी अनेक विद्वानोंकी सम्मति यही है कि, विक्रमादित्य अवश्य पहले थे। इनमेंसे कोई कोई महाराज कनिष्कको ही विक्रमादित्यके नामसे प्रख्यात करते हैं। सम्वत् प्रतिष्ठाता कनिष्क हैं कि नहीं इसी बातकी आलोचना करनी परमावश्यक है। "किन्तु सम्वत् प्रतिष्ठाता विक्रमादित्य हैं ऐसा विश्वास करनेसे सत्यका अपलाप होता है" इस वाक्यसे मैं कदापि सहमत नहीं।

सौराष्ट्रके क्षत्रप नहपानकी खोदितलिपिमें ४१, ४२, ४५, ४६, बर्षका उल्लेख मिलता है। नहपान खगरात वा खहरात वंशीय थे बहुतसे लोग इन चार वर्षोंको शक वर्ष मानते हैं। किन्तु मेरी समझमें इन चार वर्षोंको संबत्‌ही रूपसें परिगणित करना ठीक है। शक बर्षके माननेसे नहपान (नभवाहन) १२४ वर्षतक जीवित थे, ऐसा अनुमान होने लग जाता है। किन्तु जयदाम (जयधर्म) के पुत्र रुद्रदाम (रुद्रधर्म) ७२ शकाब्दिके पूर्व अर्थात् १५० ए. डी. के. पूर्व विद्यमान थे। रुद्रदामके पिता जयदाम, एवं पितामह चष्टन टॉलेमीका (Tiastanes) वा थोड़ा सौराष्ट्रका शासन करते थे। ये चष्टन शक वंशीय थे। इसलिये १५०—१२४=२६

वर्षके बीचमें दो राजाओंका राज्यत्व–काल-शेष होना, यह संभवपर नहीं मालूम होता। इस विषयमें बाबू राखालदास बन्धोपाध्यायकी युक्ति हमे सारगर्भित मालूम पड़ती है। हमारी समझमें नहपानके वर्ष ४१, ४२, ४६, ४८, सम्वत् माननेमें कोई आपत्ति नहीं देख पड़ती। किन्तु राखालबाबू इसको विक्रम संवत् नहीं मानकर एक तीसरे संबत्‌की कल्पना करते हैं। किन्तु इस अंचलमें तीसरे सम्बत्‌के नाम निशान नहीं मिलनेसे इस कल्पनाके माननेमें हम सर्वथा असमर्थ हैं। इसे विक्रमसंवत्‌ही मानना उचित है।

विक्रमादित्यकी वृद्धावस्थामें नहपान (नभवाहन) एवं इनके जामाता ऋषदत्तद्वारा मालवकी पराजय संघटित होना कुछ असंभव नहीं। विक्रमादित्यके वंशधरोंने संभवतः नहपानके वंशधरोंकी अधीनता स्वीकार की थी। इसके बाद इन लोगोंने चष्टन (चांटन) की भी वशता स्वीकृत की थी। गौतमीपुत्र सातकर्णीने खगरात एवं शकोंका पराभूत कर दक्षिणदेशमें आंध्र नगरकी प्रतिष्ठा की थी। इन्होंनेही शकाब्दका प्रचार किया है, ऐसा अनुमान होता है। अनुमानतः ८० ए. डी. में चष्टनने मालवको अपने अधिकारमें किया था। आंध्र राजाओंके साथ इनके वंशधरोंको हमेशः युद्ध होता था। आखीरमें रुद्रदामने सातकर्णीके वंशसे विवाहसंबंध शृंखलित किया।

शकाब्दके प्रचारके पूर्व संपूर्ण भारतमें केवल विक्रम–सम्वत् प्रचलित था, यह अनुमान हमे युक्तियुक्त जचता है। मथुराके महाक्षत्रप रज्जबुल वा राजुलके पुत्र सुदास नहपानके समसामयिक था। मथुराके एक शिलालेखसे उनका राज्यकाल ४२ वर्ष तक होता है और दूसरे शिलालेखसे ७२ संवत्सर ज्ञात होता है। ये दोनों संवत्सर विक्रमवर्षानुसारसे परिगणित करना उचित है। ऐसा होनेसे 'सुदासने' १५ खिस्ताब्द बी. सी. से १६ ए. डी. तक अर्थात् ३० वर्षसे कुछ विशेष काल तक राज्यत्व किया होगा।

डॉ. भोगेलने लिखा है कि, सुदास और कनिष्क प्रायः समसामयिक थे। राखालबाबूने लिखा है कि, सुदासका अभिषेक-काल ३० बी. सी. से २८ ए. डी. के मध्यवर्ती मानना चाहिए। सुतराम् इन दोनोंकी उक्तिसे मेरे अनुमानका सामंजस्य सुलभतया हो जाता है। सुदास तक्षशिलाके क्षत्रप, लियकुसुलक-पुत्र पतिके समसामयिक थे। पतिकी ताम्रलिपिमें ७८ संवत्सर अर्थात् २१ ए. डी. लिखा हुआ है। सुदास और पति दोनो कनिष्कके आधीनस्थ थे।

(शेष आगे.)

सेनगण-पट्टावली।

(२)

बद्धाष्टकर्मनिर्घाटनपटुशुद्धेद्धराद्धान्तप्रभाबोधितनवखण्डमण्डनश्रीनेमिसेनासिद्धान्तीनाम् ॥ २० ॥

अतीवघोरतरतरांतपनसंतप्तत्रैलोक्यप्राणिगणतापनिवारणकारणच्छत्रायमानश्रीमच्छ्रीछत्रसेनाचार्याणाम् ॥ २१ ॥

उग्रदीप्ततप्तमहातपोयुक्तार्यसेनानाम् ॥ २२ ॥

संयमसंपन्नश्रीलोहसेनभट्टारकाणाम् ॥ २३ ॥

नवविधवालब्रह्मचर्यव्रतपूर्वकपरब्रह्मध्यानाधीनश्रीब्रह्मसेनतपोधनानाम् ॥ २४ ॥

भव्यजनकमलसूरसेनभट्टारकाणाम् ॥ २५ ॥

दारुसङ्घसंशयतमोनिमग्नाशाधरश्रीमूलसंघोपदेशापितृवनस्वर्यातककमलभद्रभट्टारकाणाम् ॥ २६ ॥

सारत्रयसंपन्नश्रीदेवेन्द्रसेनमुनिमुख्यानाम् ॥ २७ ॥

विहारनगरीप्रवेशसमयसारस्कन्धाष्टकथनाल्पाख्यानबाणबाधाहरणगंगामध्यपट्टाभिषेकनिरूपकत्रैविद्यकुमारसेनयोगीश्वराणाम् ॥ २८ ॥

अंगवादिवाङ्गशीलकडि(लि)ङ्गवादिकालानलकाश्मीरवादिकल्पान्तग्रीष्म-नैपालवादिस्वापानुग्रहसमर्थगौडवादिब्रह्मराक्षस-वालेवादिकोलाहलद्राविडवादित्राटनशीलतिलिङ्गवादिकलङ्ककारीदुस्तरवादिमस्तकशूल-उड्डीयदेशेऽश्वगजपतिसभासन्निविष्टप्रचण्डयमदण्डसुण्डालसुण्डादण्डखण्डनकालदण्डमण्डलदोर्दण्डमण्डितश्रीदुर्लभसेनाचार्याणाम् ॥ २९ ॥

तपःश्रीकर्णावतंसश्रीषेणभट्टारकाणाम् ॥ ३० ॥

दुर्वारदुर्वादिगर्वखर्वपर्वतचूर्णीकृतकुलिशायमानदक्षपरिराजलक्ष्मीसेनभट्टारकाणाम् ॥ ३१ ॥

नवलक्षधनुराधीशदशसप्तलक्षदक्षिणकर्णाटकराजेन्द्रचूडामौक्तिकमालाप्रभामधूनी (?) जलप्रवाहप्रक्षालितचरणनखबिम्बश्रीसोमसेनभट्टारकाणाम् ॥ ३२ ॥

जलकेश्वरपुराङ्गरवच्छनगरेराजाधिराजपरमेश्वरयवनरायशिरोमणिमहम्मदपातशाहसुरत्राणसमस्यापूर्णादाखिलदृष्टिनिपातेनाष्टादशवर्षप्रायप्राप्तदेवलोकश्रीश्रुतवीरस्वामिनाम् ॥ ३३ ॥

भंभेरीपुरघनेश्वरभट्टभ्रष्टीकृतानलनिहितयज्ञोपवीतादिविजितसिंहभद्रदेवसधर्म्मशर्मकर्मनिर्मलान्तःकरणश्रीमच्छ्रीधारसेनाचार्याणाम् ॥ ३४ ॥

हावभावविभ्रमविलासविलासाविभ्रमश्रृङ्गारभृङ्गीसमालिङ्गितबालसुग्धयौवनाविदग्धौखिलाङ्गनामनोवाक्कायनवविधबालब्रह्मचर्यव्रतोपेतश्रीदेवसेनभट्टारकाणाम् ३५

अनेकभव्यजनचातकनिकरतृषाधिकारकरणमधुरवाग्धारासारसयुक्तनूतनतनपिहृसदृशश्रीदेवसेनभट्टारकाणाम् ॥ ३६ ॥

तत्पट्टोदयाचलप्रभाकरनित्याद्येकान्तवादिप्रथमवचनखण्डनप्रचण्डवचनाडम्बरषट्दर्शनस्थापनाचार्यषट्तर्कचक्रेश्वरढिल्लि (Delhi) सिंहासनाधीश्वरसार्वभौमसाभिमानवादीभसिंहाभिनवत्रैविद्यश्रीमच्छ्रीसोमसेनभट्टारकाणाम् ॥ ३७ ॥

तत्पट्टवार्द्धिवर्द्धनैकपूर्णचन्द्रायमानाभिनववादिसंस्कृतसर्वज्ञप्राकृतसंस्कृतपरमेश्वरवज्रपंजरसमानानाम् अंगबंगकलिंगकाश्मीरकाम्भोजकर्णाटकमगधपालतुरलचेरल (मलह्) केरभाटजितविद्वज्जनसेवितचरणारविन्दानां श्रीमूलसंघवृषभसेनान्वयपुष्करगच्छबिरुदावलिविराजमानश्रीमद्गुणभद्रभट्टारकाणाम् ॥ ३८ ॥

तत्पट्टोदयाद्रिदिवाकरायमाणश्रीमत्कर्णाटकदेशस्थापितधर्मामृतवर्षणजलदायमानधीरतपश्चरणाचरणप्रवीणश्रीवीरसेनभट्टारकाणाम् ॥ ३९ ॥

विगताभिमानतपगतकषायांगादिविविधग्रन्थकरणैककुशलताभिमानश्रीयुक्तवीरभट्टारकाणां ॥ ४० ॥

तत्पट्टे सर्वज्ञवचनामृतस्वादकृतात्मकायसद्धर्मोदाधिवर्द्धनैकचन्द्रायमाणतर्ककर्कशपुष्करायमाणमन्मथमथनसमुद्भूतत्रिविधवैराग्यभावितभागधेयजनजनितसपर्या-श्रीमाणिकसेनभट्टारकाणाम् ॥ ४१ ॥

तत्पट्टोदयाचलादिवाकरायमाणानेकशब्दार्थान्वयनिश्चयकरणविद्वज्जनसरोजविकाशनैकपटुतरायमानश्रीगुणसेनभट्टारकाणाम् ॥ ४२ ॥

तदनुसकलविद्वज्जनपूजितचरणकमल–भव्यजनचित्तसरोजानिवासलक्ष्मीसदृशलक्ष्मीसेनभट्टारकाणाम् ॥ ४३ ॥

विबुधविविधजनमनइन्दीवरविकाशनपूर्णशशिसमानानां, कविगमिकवादवाग्मित्वचातुर्विधपाण्डित्यकलाविराजमानानां, नयनियमतपोबलसाधितधर्मभारधुरंधराणां, अखिलसुखकरणसोमसेनभट्टारकाणाम् ॥ ४४ ॥

मिथ्यामततपोनिवारणमाणिक्यरत्नसमदिव्यरूपश्रीमाणिक्यसेनभट्टारकाणाम् ४५

आशीविषदुष्टकर्कशमहारोगमदगजकेसरिसिंहसमानानां,अनेकनरपतिसेवितपादपद्मश्रीगुणभद्रभट्टारकाणाम् ॥ ४६ ॥

तत्पट्टे कुमुदवनविकाशनैकपूर्णचन्द्रोदयायमानललितविलासविनोदितात्रिभुवनोदरस्थविबुधकदम्बकचन्द्रकरनिकरसन्निभयशोधरधवलितादिङ्मंडलानां, श्रीमदभिनवसोमसेनभट्टारकणाम् ॥ ४७ ॥

तत्पट्टे महामोहान्धकारतमसोपगूढभुवनभवलग्नजनताभिदुस्तरकैवल्यमार्गप्रकाशनदीपकानां, कर्कशतार्किककणादवैयाकरणबृहत्कुम्भीकुम्भपाटनलंपटधियां, निजस्वस्याचरणकणख्यायितचरणयुगाद्रेकाणां, श्रीमद्भट्टारकवर्यसूर्यश्रीजिनसेनभट्टारकाणाम् ॥ ४८ ॥

तत्पट्टोदयाचलप्रकाशकरदिवाकरायमाण-श्रीमज्जिनवरवदनविनिर्गतसप्तभङ्गीनवनयोपमनयात्मकद्वादशांगाब्धिवर्द्धनैकषोडशकलापरिपूर्णचन्द्रायमानाज्ञानजाड्यमुद्रितभव्यजनचित्तसरसरसीरुहप्रबोधकस्ववचनरचनाडम्बरचारुचातुरीचमत्कृतसुरगुरुप्रख्यायमाणस्वगणामावलिसिंचनधारायमाणकोटिमुकुटमहावादिराजराजेश्वरकाव्यचक्रवर्तिश्रीमच्छ्रीसमन्तभद्रभट्टारकाणाम् ॥ ४९ ॥

श्रीमद्रायराजगुरुवसुन्धराचार्यवर्यमहावादवादीपितामहविद्वज्जनचक्रवर्तिकडिकाडिमाणपरिमहविक्रमादित्यमध्याह्नकल्पवृक्षसेनगणाग्रगण्यपुष्करगच्छबिरुदावलिविराजमानदिल्ली (Delhi) सिंहासनाधीश्वरछत्रसेनतपोऽभ्युदयसमृद्धिसिध्यर्थं भव्यजनैः क्रियमाणैः जिनेश्वराभिषेकमवधारयन्तु सर्वे जनाः ॥ इति सेनपट्टावली।

सेनगणकी पट्टावलीका भाषानुवाद.

बन्धकारक अष्ट कर्मोंसे छुड़ानेमें चतुर, बने हुए शुद्ध और वर्द्धित सिद्धान्तकी शोभासे बोधित नव खण्डोंकी शोभा श्रीमान् नेमिसेन सिद्ध हुएं ॥ २० ॥

बहुत भयंकर तापसे तप्त, तीनों लोकोंके प्राणियोंके तापको हटानेवाले बल्कि उस तापके हटानेके लिये छत्रकेसे श्री छत्रसेनाचार्य हुएं ॥ २१ ॥

बहुत प्रकाशमान तथा तेज महातपसे युक्त श्री आर्यसेन आचार्य हुएं ॥ २२ ॥

बड़े संयमी श्री लोहाचार्य भट्टारक हुएं ॥ २३ ॥

नव प्रकारके ब्रह्मचर्यव्रतके साथ परमेश्वरके ध्यानमें लीन श्रीब्रह्मसेन महातपस्वी हुएं ॥ २४ ॥

कमलरूपी भविक जनोंके लिये सूर्यके समान श्रीसुरसेन भट्टारक हुएं ॥ २५ ॥

काष्ठासंघके संशयरूपी अन्धकारमें डूबे हुएको आशा देनेवाले श्रीमूलसंघके उपदेशसे पितृलोकके वनरूपी स्वर्गसे उत्पन्न श्रीकमलभद्र भट्टारक हुएं ॥ २६ ॥

सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यग्दर्शनरूप रत्नत्रयसे युक्त श्री मुनीश्वर देवेंद्रजी हुएं ॥ २७ ॥

विहारनगरमें प्रवेशके समय सारस्कन्धाष्टकके कथनका अनल्पाख्यान बाणबाधाका हरण और गंगाके बीचमें पट्टाभिषेक करनेवाले श्री योगीश्वर कुमारसेन हुएं ॥ २८ ॥

अंगवादियोंके लिये भंगशील, कलिङ्गवादियोंके लिये कालाग्नि, काश्मीर वादियोंके लिये प्रलयकालकी उष्णता, नैपाल वादियोंके लिये शाप-क्षमा करनेमें समर्थ, द्राविड़वालोंके लिये त्रोटनशील, गौड़ वादियोंके लिये ब्रह्मराक्षस, केवल वादियोंके लिये कोलाहल, तैलंग वादियोंके लिये शिरोव्यथा, उड्डीय देशमें गजाश्वादिके स्वामी सभामें प्रविष्ट उग्र यम-दण्ड, बड़े भारी गजराजकेभी सुण्डादण्डको छिन्न भिन्न करनेवाले, कालदण्डसे शोभित बाहुवाले श्री दुर्लभसेनाचार्य हुएं ॥ २९ ॥

सूर्य और भगवतीसम्बन्धी कापालिक, पार्विक मीमांसक, वेदान्ती और वैशेषिक शास्त्रके जाननेवाले भट्ट प्रभाकर और कणाद गणेशके पूजकोंके सुखे हुए तर्कका उग्रबोध, बत्तीश घटवादियोंको उद्घाटन करनेमें समर्थ श्रीमान् धरसेनाचार्य हुएं ॥३०॥

तपस्याहीको कर्णभूषण माननेवाले ऐसे श्रीमान् श्रीषेण भट्टारक हुएं ॥ ३१ ॥

दुर्वार्य जो दुर्वादियोंके पर्वत हैं उनके चूर्ण करनेके लिये वज्रके समान, दक्ष पक्षिराज श्रीलक्ष्मीसेन भट्टारक हुएं ॥ ३२ ॥

नवलक्ष धनुर्धरोंके स्वामी, दक्षिण कर्नाटकीय सत्रह लाख राजाओंके मस्तकोंकी मणिमालाकी प्रभासे उद्भासित, मधुजलकी धारामें धुले हुए चरणनखबिम्बवाले श्री सोमसेन भट्टारक हुएं ॥ ३३ ॥

अलकेश्वरपुरके भरोच नगरमें राजेश्वर स्वामी यवनराजाओंमें श्रेष्ठ महम्मद बादशाहके त्राण समस्याकी पूर्तिसे तथा दृष्ट होनेसे अट्ठारह वर्षकी आवस्थामें स्वर्ग गए हुए श्री श्रुतवीर स्वामी हुएं ॥ ३४ ॥

भंभेरीपुरमें धनेश्वर भट्टसे भ्रष्टकर्म हुए अग्निमें फेंके हुए यज्ञोपवीतादिके द्वारा जीते हुए ब्रह्मदेवके धर्म्मके सुखसे शुद्धान्तःकरण श्रीमान् श्रीधरसेनाचार्य हुएं ॥ ३५ ॥

हाव, भाव, विभ्रम और विलासकी शोभाके शृंगाररूपी भृङ्गी आलिंगन किये हुए बाल्यावस्था और युवती नागरिक स्त्रियोंसे मनवचनकायसे मुक्त तथा नवप्रकारके ब्रह्मचर्यसे युक्त श्री देवसेन भट्टारक हुएं ॥ ३६ ॥

उनके पट्टके उदयाचलका सूर्य्य नित्यादि एकान्तवादीके प्रथम वचनके खंडनकारक उग्र विस्तारवाले छहो दर्शनके स्थापनके आचार्य, छः तर्कशास्त्रके स्वामी दिल्ली सिंहासनाधि पति, सार्वभौम अभिमानयुक्त वादीरूप हाथीके लिये सिंहकेसे त्रिकालज्ञ श्री सोमसेन आचार्य हुएं ॥ ३७ ॥

उनके पट्टकी वृद्धिसे पूर्ण चन्द्रमाके सदृश, अभिनववादी, संस्कृत जाननेवाले, प्राकृत और संस्कृत भाषाके स्वामी वज्रपंजरके तुल्य अंग, वंग, कलिंग, काश्मीर, कम्भोज, कर्नाटक, मगध, पाल, तुरल, चेरल और केरलके जीते हुए विद्वानोंसे सेवित चरणवाले श्रीमूलसेन वृषभवंश पुष्कर गच्छ विरुदावलीमें विराजमान गुणभद्र भट्टारक हुएं ॥ ३८ ॥

अनेक शुभचिन्तक मनुष्यरूपी चातकके समूहको प्रसन्न करनेवाले मधुवातकी धारासे मुक्त नये शरीर बनानेवाले श्री देवसेन भट्टारक हुएं ॥ ३९ ॥

उनके पट्टरूपी उदयाचलका सूर्य, कर्नाटक देशमें स्थापित किये हुए धर्मकी अमृतवर्षासे मेघके ऐसे, कठोर तपस्या करनेमें निपुण श्री वीरसेन भट्टारक हुएं ॥४०॥

अभिमानरहित तपस्यासे नष्ट रागवाले अंगादि विविध ग्रन्थ रचनेसे पाण्डित्य गर्वसे युक्त श्रीयुत वीर भट्टारक हुएं ॥ ४१ ॥

उनके पट्टमें सर्वज्ञ देवके वचनामृत स्वादसे तथा सच्चे धर्मरूपी समुद्रको बढ़ानेके लिये चंद्रमाके ऐसे, अपने शरीरको बनानेवाले, मदनको मथन करनेसे त्रिविध वैराग्यको प्रगट करनेवाले, भावी भाग्यशली जनोंसे पूजित श्री माणिकसेन भट्टारक हुएं ॥ ४२ ॥

इनके पट्टरूपी उदयाचलपर सूर्यकेसे अनेक शब्दार्थान्वयको निश्चय करनेवाले, विद्वज्जन--सरोजके प्रस्फुटित करनेमें अत्यन्त पटु श्रीगुणसेन भट्टारक हुएं॥ ४३ ॥

इसके बाद सभी पण्तिजनोंसे पूजित पाद--पद्मवाले और भविकजनोंके चित्तसरोजमें लक्ष्मीके ऐसे निवास करनेवाले श्री लक्ष्मीसेन भट्टारक हुएं ॥ ४४ ॥

देवता तथा विविध जनोंके मनकुमुदके प्रकाश करनेमें पूर्ण चन्द्रमाके तुल्य, काव्य, न्याय, शास्त्रार्थ तथा वाग्मिता, चतुर्विध पाण्डित्य कलासे विराजमान, यम, नियम और तपोबलसे सानित धर्मके भारको धारण करनेवाले और सभी को सुखसंपन्न करनेवाले श्रीसोमसेन भट्टारक हुए ॥ ४५ ॥

मिथ्यामतकी तपस्याका निवारण करनेवाले, माणिक्यरत्न तथा रत्नत्रयसे युक्त श्रीमाणिक्यसेन भट्टारक हुएं ॥ ४६ ॥

सर्पके लिये दुष्ट कर्कश महोरगके ऐसा, और मत्त हस्तीके लिये सिंहके समान, अनेक राजाओंसे चरणकमल पूजे जानेवाले श्रीगुणभद्र भट्टारक हुएं ॥ ४७ ॥

उन्हीके पट्टमें जनरूपी कुमुदवन विकाश करनेमें पूर्ण चन्द्रोदयके ऐसे सुन्दर विलाससे विनोदित किये गये त्रिभुवनोदरस्थ विबुधकदम्ब और चन्द्रकिरणके सदृश यशोधरसे दिङ्मण्डलकोभी उज्ज्वल करनेवाले श्रीमान् अभिनव सोमसेन भट्टारक हुएं ॥४८॥

उनके पट्टमें महामोहान्धकारसे ढके हुए संसारके जनसमूहोंसे दुस्तर कैवल्यमार्गको प्रकाश करनेमें दीपकके ऐसे, बड़े दुर्द्धर्ष नैयायिक, कणाद, वैयाकरणोंके बृहत्कुम्भोत्पाटन करनेमें लम्पट बुद्धिवाले................श्रीमद्भट्टारकवर्योंमें सूर्य श्री जिनसेन भट्टारक हुएं ॥ ४९ ॥

अज्ञान और जड़तासे मुद्रित, भविक जनोंके चित्तसरोजको खिलानेवाले, अपने वचनकी रचनाचातुरीके आडम्बरसे बृहस्पतिकोभी चमत्कृत करनेवाले, अपने गणाग्र बल्लीको सींचनेके लिये धाराके ऐसे, करोडों मुकुटवादियोंके राजराजेश्वर काव्य सार्वभोम श्री समन्तभद्र भट्टारक हुएं ॥ ५० ॥

श्रीमान् राजेश्वर गुरु वसुंधराचार्य महावादियोंके पितामह, विद्वानोंमें चक्रवर्ति कड़ि काड़ि (?) वाण परिग्रह विक्रमादित्य मध्याह्नके समय, कल्पवृक्षके ऐसे सेनगणाग्रण्य पुष्करगच्छ बिरुदावलीसे विराजमान दिल्ली सिंहासनाधीश्वर छत्रसेन् तपस्याके अभ्युदय करनेवाले समृद्धिकी सिद्धिके लिये भाविकजनोंसे जिनेश्वराभिषेकको सब कोई आवधारण करे।

सेनगणपट्टावली समाप्त।

पद्मपुराण.

अनुक्रम—संख्या ४

विषय—ऐतिहासिक (प्रथमानुयोग)

ग्रन्थकार—रविषेणाचार्य

भाषा—संस्कृत और हिन्दी

लिपि—नागरी

ग्रन्थविवरण—प्राचीन, हस्तलिखित, शुद्धप्रति, पत्र संख्या ४८७, श्लोक-संख्या १८०२३, अध्याय १२३.

ग्रन्थकी प्रतिलिपि करनेका समय सम्वत १८८५.

मंगलाचरण.

श्रीवीतरागाय नमः ॥ श्री पद्मपुराणजी लिख्यते ॥

सिद्धं सम्पूर्णभव्यार्थं सिद्धेः कारणमुत्तमम् ।
प्रशस्तदर्शनज्ञानचारित्रप्रतिपादनम् ॥ १ ॥

सुरेन्द्रमुकुटाश्लिष्टपादपद्मांशुकेसरम् ।
प्रणमामि महावीरं लोकत्रितयमंगलम् ॥ २ ॥

प्रथमं चावसर्पिण्यां ऋषभं जिनपुंगवम् ।
योगिनं सर्वविद्यानां विधातारं स्वयंभुवम् ॥ ३ ॥

अजितं विजिताशेषबाह्यशारीरशात्रवम् ।
सम्भवं संभवत्यस्मादित्यभिख्यामुपागतम् ॥ ४ ॥

अभिनन्दितनिःशेषभुवनं चाभिनन्दनं ।
सुमतिं सुमतिं नाथं मतान्तरविनाशनम् ॥ ५ ॥

× × × × ×

मादृशोऽपि वदत्येव चरितं तस्य यत्नवान् ।
न तच्चित्रं क्रमायात परसंवेदसंगमात् ॥ १८ ॥

मत्तवारणसंक्षुण्णे व्रजन्ति हरिणाः पथि ।
प्रविशन्ति भटा युद्धं महाभटपुरस्सराः ॥ १९ ॥

भास्वता भासितानर्थान्सुखेनालोकते जनः ।
सूचीमुखविनिर्भिन्नं मणिं विशति सूत्रकम् ॥ २०

बुधपङ्क्ति-क्रमायात्तं चरितं रामगोचरम् ।
भक्त्या प्रचोदिता बुद्धिः स्रष्टुं मम समुद्यता ॥ २१ ॥

विशिष्टचिन्तयायात्तं यच्च श्रेयः क्षणान्महत् ।
तेनैव रक्षिता याता चारुतां मम भारती ॥ २२ ॥

व्यक्ताकारादिवर्णा वाग्लक्षिता या न सत्कथा ।
सा तस्य निष्फला जन्तोः पायादानाय केवलम् ॥ २३ ॥

वृद्धिं व्रजति विज्ञानं यशश्चरति निर्म्मलम् ।
प्रयाति दुरितं दूरं महापुरुषकीर्तनात् ॥ २४ ॥

अल्पकालमिदं जन्तोः शरीरं रोगनिर्भरम् ।
यशस्तु सत्कथाजन्म यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ २५ ॥

× × × × ×

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पुरुषेणात्मवेदिना ।
शरीरं स्थाष्णु कर्तव्यं महापुरुषकीर्तनात् ॥ २६ ॥

लोकद्वयफलं तेन लब्धं भवति जन्तुना ।
यो विधत्ते कथां रम्यां सज्जनानन्ददायिनीम् ॥ २७ ॥

सत्कथाश्रवणौ यौ च श्रवणौ तौ मतौ मम ।
अन्यौ विदूषकस्येव श्रवणाकारधारिणौ ॥ २८

सच्चेष्टा-वर्णनावर्णा घूर्णन्ते यत्रमूर्द्धनि ।
अयं मूर्द्धान्य मूर्धास्तुनाडिकेरकरंकवत् ॥ २९ ॥

सत्कीर्तनसुधास्वादसंकुचद्रसनं स्मृतम् ।
अन्यत्तु दुर्वचोधारं कृपाण-दुहितुः फलम् ॥ ३० ॥

श्रेष्ठावोष्ठौ च तावेव यौ सुकीर्त्तनवर्त्तिनौ ॥
न शम्बुकास्यसंसुप्तजलौका पृष्टसन्निभौ ॥ ३१ ॥

दन्तास्त एव ये शान्तकथासंगमरंजिताः ।
शेषाः श्लेष्म-विनिर्जाणद्वारबन्धाय केवलम् ॥ ३२ ॥

मुख्यं श्रेयः परिप्राप्ते मुखं मुख्यकथारतम् ।
अन्यत्तु मलसम्पूर्णं दन्तकीटाकुलं बिलम् ॥ ३३ ॥

वक्ता योऽथवा श्रोता श्रेयसां वचसां नरः ।
पुमान् स एव शेषस्तु शिल्पिकल्पितकायवत् ॥ ३४ ॥

गुणदोषसमाहारे गुणान्गृह्णन्ति साधवः ।
क्षीरवारि-समाहारे हंसाः क्षीरमिवाखिलम् ॥ ३५ ॥

गुणदोष-समाहारे दोषान्गृह्णन्त्यसाधवः ।
मुक्ताफलानि संत्यज्य काका मांसमिव द्विपात् ॥ ३६ ॥

अदोषामपि दोषाक्तां पश्यन्ति रचनां खलाः ।
रविमूर्तिमिवोलूकास्तमालदलकालिकाम् ॥ ३७ ॥

सरोजलाभमद्वार-जालकानीव दुर्जनाः ।
धारयन्ति सदा दोषान्गुणबन्धनवर्जिताः ॥ ३८ ॥

स्वभावमिति संचिन्त्य सज्जनस्येतरस्य च ।
प्रवर्त्तन्ते कथाबन्धे स्वार्थमुद्दिश्य साधवः ॥ ३९ ॥

× × × × ×

संक्षिप्त सूत्र.

पद्मचेष्टितसंबन्धकारणं तावदत्र च ।
त्रैशलादिगतं वक्ष्ये सूत्रं संक्षेपि तद्यथा ॥ ४५ ॥

वीरस्य समवस्थानं कुशाग्रगिरिमूर्द्धनि ।
श्रेणिकस्य परिप्रश्नमिन्द्रभूतेर्महात्मनः ॥ ४६ ॥

तत्र प्रश्ने युगे यत्नामुत्पत्तिं कुलकारिणाम् ।
भीतिश्च जगतो दुःखकारणाकस्मिकेक्षणात् ॥ ४७ ॥

ऋषभस्य समुत्पत्तिमभिषेकं नगाधिपे ।
उपदेशं च विविधं लोकस्यार्तिविनाशनम् ॥ ४८ ॥

श्रामण्यं केवलोत्पत्तिमैश्वर्यं विष्टपातिगं ।
सर्वामराधिपयानं निर्वाणसुखसंगमम् ॥ ४९ ॥

प्रधनं बाहुबलिनो भरतेन समं महत् ।
समुद्भवं द्विजातीनां कुतीर्थकगणस्य च ॥ ५० ॥

इक्ष्वाकुप्रभृतीनाञ्च वंशानां परिकीर्तनम् ।
विद्याधर-समुद्भूतिं विद्युद्दंष्ट्रस्य सम्भ्रमम् ॥ ५१ ॥

उपसर्गे जयन्तस्य केवलज्ञानसम्पदम् ।
नागराजस्य संक्षोभं विद्याहरणसर्जने ॥ ५२ ॥

अजितस्यावतरणं पूर्णाम्बुदसुतासुखम् ।
विद्याधरकुमारस्य शरणं प्रतिसंश्रयं ॥ ५३ ॥
रक्षोनाथपरिप्राप्तिं रक्षोद्वीपसमाश्रयम् ।
सगरस्य समुद्भूतिं दुःखदीक्षणनिर्वृतिः ॥ ५४ ॥
अतिक्रान्तमहारक्षोजन्मनः परिकीर्तनम् ।
शाखामृगध्वजानाञ्च प्रज्ञप्तिमतिविस्तरात् ॥ ५५ ॥
तडित्केशस्य चरितमुदधेरमरस्य च ।
किष्किन्धान्धखगोत्पादं श्रीमालाखेचरागमम् ॥ ५६ ॥
वधाद्विजयसिंहस्य कोपं चाशानिवेगजम् ।
अंध्रकान्तमरिप्राप्तिं पुरसुन्दरवेशनम् ॥ ५७ ॥
किष्किन्धपुराविन्यासं मधुपर्वतमूर्द्धनि
सुकेशनन्दनादीनां लङ्काप्राप्तिनिरूपणम् ॥ ५८ ॥
निर्घातवधहेतुं च मालिनः सम्पदं परम् ।
दक्षिणे विजयार्द्धस्य भागे च रथनूपुरे ॥ ५९ ॥
पुरे जननमिन्द्रस्य सर्वविद्याभृतां विभोः ।
मालिनः पञ्चतावाप्तिं जन्म वैश्रवणस्य च ॥ ६० ॥
पुष्पान्तक–समावेशं तनयस्य सुमालिनः ।
कैकयस्या सह योगं चारु स्वप्नावलोकनम् ॥ ६१ ॥
दशाननस्य प्रजनं विद्यानां समुपाशनम् ।
अनावृतस्य संक्षोभमागमं च सुमालिनः ॥ ६२ ॥
मन्दोदर्याः परिप्राप्तिं कन्यकानां निरीक्षणम् ।
चेष्टितं भानुकर्णस्य कोपं वैश्रवणोद्भवम् ॥ ६३ ॥
यक्षराक्षससंग्रामं धनदस्य तपस्यनम् ।
लङ्कागमं दशास्यस्य प्रभचैत्यावलोकनम् ॥ ६४ ॥
श्रीमतो हरिणेशस्य माहात्म्यं पापनाशनम् ।
त्रिजगद्भूषणाभिख्याद्विरदेन्द्राविलोकनम् ॥ ६५ ॥
यमस्थानच्युतिं चार्करजःकिष्किधसंगमं ।
चोरणं कैकसेयाभ्वखरालंकारसंश्रयम् ॥ ६६ ॥
अनुराधामहादुःखं चन्द्रोदरवियोगतः ।
विराधितपुरभ्रंशं सुग्रीवश्रीसमागमम् ॥
बालेः प्रव्रजनं क्षोभमष्टापदमहीभृतः ॥ ६७ ॥
सुग्रीवस्य सुतारायाः लाभं साहसगामिनः ।
सन्तापं विजयार्द्धाद्रिगमनं रावणस्य च ॥ ६८ ॥
अनरण्य (?) सहस्रांशु वैराग्यं ज्ञाननाशनम् ।
मधुपूर्वभवाख्यानमुपरंभाभिलाषणम् ॥ ६९ ॥

विद्यालाभं महेन्द्रस्य राज्यलक्ष्मीपरिक्षयम् ।
दशास्यमेरुगमनं पुनश्च विनिवर्त्तनम् ॥ ७० ॥
अनन्तवीर्यसंप्रश्नं दशास्यनियमग्रहम् ।
हनूमतः समुत्पत्तिं कपिकेतोर्म्महात्मनः ॥ ७१ ॥
अष्टापदे महेन्द्रेण प्रल्हादस्याभिलाषणम् ।
वायोः कोपं प्रसादं च तज्जायाप्रजनोज्झने ॥ ७२ ॥
दिगम्बरेण कथनं हनुमत्पूर्वजन्मनः ।
सूतिं हनुसहप्राप्तिं प्रतिसूर्येण कारिताम् ॥ ७३ ॥
भूताटवीं प्रविष्टस्य वायोरिभविलोकने ।
विद्याधरसमायोगमंजनादर्शनोत्सवम् ॥ ७४ ॥
वायुपुत्रसहायत्वं दारुणं परमं रणम् ।
रावणस्य महाराज्यं जैनमुत्सेधमन्तरम् ॥ ७५ ॥
रामकेशव तच्छत्रुं षट्खण्डपरिचेष्टितम् ।
दशस्यन्दनसंभूतिं कैकयावरसम्पदम् ॥ ७६ ॥
पद्मलक्ष्मणशत्रुघ्नभरतानां समुद्भवम् ।
सीतोत्पत्तिं प्रभाचक्र-हृतिं तन्मात्रशोचनम् ॥ ७७ ॥
नारदालिखितां सीतां दृष्ट्वा मातुर्विमूढताम् ।
स्वयम्वराय वृत्तान्तं चापरत्नस्य चोद्भवम् ॥ ७८ ॥
सर्वभूतशरण्यस्य दशस्यन्दनदीक्षणम् ।
भाचक्रान्यभवज्ञानं विदेहायाश्च दर्शनम् ॥ ७९ ॥
कैकयावरतो राज्यं प्रयाणं भरतस्य च ।
वैदेहीपद्मसौमित्रिगमनं दक्षिणाशया ॥ ८० ॥
चेष्टितं वज्रकर्णस्य लाभं कल्याणयोषितम् ।
रुद्रभूतिवशीकारं वालिखिल्यविमोचनम् ॥ ८१ ॥
निकारमरुणग्रामे रामपुर्य्याभिवेशनम् ।
संगमं वनमालाया अनिवीर्यसमुन्नतिम् ॥ ८२ ॥
प्राप्तिं च जितपद्मायाः कौलदेवविभूषणम् ।
चरितं कारणं रामचैत्यानां वंशपर्व्वते ॥ ८३ ॥
जटायुनियमप्राप्तिं पात्रदानफलोदयम् ।
महानागरथारोहं शम्बूकविनिपातनम् ॥ ८४ ॥
कैकसेयाश्च वृत्तान्तं खरदूषणविग्रहम् ।
सीताहरणशोकं च शोकं रामस्य दुर्द्धरम् ॥ ८५ ॥
विराधितस्यागमनं खरदूषणपश्चता ।
विद्यानां रत्नजटिन इवेदं सुग्रीवसंगमम् ॥ ८६ ॥
निधनं साहसगतेः सीतोदन्तं विहाय सा ।

यानं बिभीषणां यानं विद्याप्तिं हरिपक्षयोः ॥ ८७ ॥
इन्द्राजित्कुम्भकर्णाद्द्वस्वरपत्रपवन्धनम् । (?)
सौमित्रिशक्तिनिर्भेदविशाल्याशल्यताकृतिम् ॥ ८८ ॥
रावणस्य प्रवेशं च जिनशान्तिगृहे स्तुतिम् ।
लङ्काभिभवनं प्रातिहार्य्यं देवैः प्रकल्पितम् ॥ ८९ ॥
चक्रोत्पत्तिं च सौमित्रेः कैकसेयस्य हिंसनम् ।
विलापं तस्य नारीणां कैवल्यागमनं ततः ॥ ९० ॥
दीक्षामिन्द्रजितादीनां सीतया सह संगमम् ।
नारदस्य च सम्प्राप्तिमयोध्यायां निवेशनम् ॥ ९१ ॥
पूर्वजन्मानुचरितं गजस्य भरतस्य च ।
तत्प्रव्रज्यां महाराज्यं सीरचक्रप्रहारिणोः ॥ ९२ ॥
लाभं मनोरमायास्तु लक्ष्म्यालिङ्गितवक्षसः ।
संयुगे मरणप्राप्तिं सुमेधोर्लवणस्य च ॥ ९३ ॥
मथरायां सदेशायामुपसर्गविनाशनम् ।
सप्तर्षिसंश्रयात्सीता निर्वासपरिदेवने ॥ ९४ ॥
वज्रजंघपरित्राणं लवणांकुशसंभवम् ।
अन्यराज्यपराभूतिं पित्रा सह महाहवम् ॥ ९५ ॥
सर्वभूषणकैवल्यसम्प्राप्तावमरागमम् ।
प्रातिहार्यं च वैदेह्याः बिभीषणभवान्तरम् ॥ ९६ ॥
तपःकृतान्तवक्त्रस्य परीक्षोभं स्वयम्वरे ।
श्रमणं तु कुमाराणां प्रभामण्डलदुर्म्मृतिम् ॥ ९७ ॥
दीक्षां पवनपुत्रस्य नारायणपरासुताम् ।
रामात्मजतपःप्राप्तिं पद्मशोकं सुदारुणम् ॥ ९८ ॥
पूर्वाप्त देवजनिता द्बोधाप्तिप्रथिताश्रयम् ।
केवलज्ञानसम्प्राप्तिं निर्व्वाणपदसंगतिम् ॥ ९९ ॥

अन्तिम भाग.

यदि तावदसौ नभश्चरेन्द्र व्यसनं प्राप परांगताहिताशः ।
निधनं गतवाननंगयोगः किमुतान्यो रतिरंगनासु भावः ॥ २९ ॥
सततं सुखसेवितोऽप्यसौ यद्दशवक्त्रो वरकामिनीसहस्रैः ।
अवितृप्तमतिर्विनाशमागादितरस्तृप्तिमुपैष्यतीति मोहः ॥ ३० ॥
स्वकलत्रसुखं हितं रहित्वा (?) परकान्ताभिरतिं करोति यावत् ।
व्यसनार्णवमत्युदारमेष प्रविशत्येव विशुष्कदारुकल्पः ॥ ३१ ॥
सुव्रत (ताः) त्वरिता (तं) जन(नाः)भवन्तो बलदेवप्रमुखाः पदं गता यत् ।
जिनशासनभक्तिरामरक्ताः सुदृढं प्राप्य यथाबलं सुवृत्तम् ॥ ३२ ॥

सुकृतस्य फलेन जन्तुरुच्चैः पदमाप्नोति सुसम्पदां निधानम् ।
दुरितस्य फलेन जन्तुदुःखं कुगतिस्थं समुपेत्ययं स्वभावः ॥ ३३ ॥
दुष्कृतं (?) प्रथमं सुदीर्घरोषः परपीडाभिरतिर्वचश्च रूक्षम् ।
सुकृतं विनयःश्रुतं च शीलं सदयो वाक्यममत्सरं समश्च ॥ ३४ ॥
न हि कश्चिदहो ददाति किंचित्
द्रविणारोग्यसुखादिकं जनानाम् ।
अपिनाम यदित्सुराददत्ते
बहवः किन्तु विदुःखितास्तदेते ॥ ३५ ॥
बहुधा गदितेन किन्त्वनेन
पदमेकं सुबुधा निबुध्य यस्मात्
बहुभेदविपाककर्मसूक्तं
तदुपायाग्निविधौ सदा रमध्वम् ॥ ३६ ॥
उपायाः परमार्थस्य कथितास्तत्त्वतो बुधाः ।
सेव्यन्तां शक्तितो येन निष्क्रामथ भवार्णवात् ॥ ३७ ॥
इति जीवविशुद्धिदानदक्षं परितः शास्त्रमिदं नितान्तरम्यम् ।
सकले भुवने रविप्रकाशः स्थितमुद्योतितसर्ववस्तुजातं ॥ ३८ ॥
द्विशताभ्याधिके समासहस्रे समवेतर्द्धे (?) चतुर्वर्षयुक्ते (?) ॥
जिनभास्करवर्द्धमानासिद्धेश्चरितं पद्ममुनेरिदं निबन्धम् ॥ ३९ ॥
कुर्वन्त्वथात्र साम्निध्यं सर्वाः समयदेवताः ।
कुर्वाणाः सकलालोकं जिनभक्तिपरायणं ॥ ४० ॥
कुर्वन्तु वचनैः रक्षां समये सर्ववस्तुषु ।
सर्वादरसमायुक्ता भव्यालोकसुवत्सलाः ॥ ४१ ॥
व्यंजनान्तं स्वरान्तं वा किञ्चिन्नामेह कीर्तितम् ।
अर्थस्य वाचकः शब्दः शब्दो वाक्यमितिस्थितं ॥ ४२ ॥
लक्षणालंकृतिवाच्यं प्रमाणद्वयमागमं ।
सर्वश्चामलचित्तेन ज्ञेयमात्र सुखागतम् ॥ ४३ ॥
इदमष्टादशप्रोक्तं सहस्राणि प्रमाणतः ।
शास्त्रमानुष्टुपश्लोकैः त्रयोविंशति संगतः ॥ ४४ ॥

इति प्रशस्तिः ।

इति श्री पद्मचरिते रविषेणाचार्य प्रोक्तं बलदेव निर्वाण-
गमनाभिधानं नाम पर्वः ॥ १२३ ॥

इति श्री रामायणं सम्पूर्णम् ।

पद्मपुराणके मंगलाचरण और प्रशस्तिका आशयानुवाद.

मंगलाचरण.

समस्त सिद्ध अर्थके साधक, सिद्धिके प्रधान कारण, सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र्यके प्रतिपादक, सुरेंद्रके मुकुटसे आश्लिष्ट पादपद्मवाले, तीनों लोकोंको मंगलप्रद **महावीर** स्वामीको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १–२–॥

प्रथम अवसर्पिणीकालमें होनेवाले जिनपुङ्गव **ऋषभदेव** योगी, संपूर्ण विद्याके जनक स्वयम्भु **अजितनाथ,** बाह्य शरीरके शत्रुओंको जीतनवाले (संभवति अस्मात्) होता है, जिससे इस व्युत्पत्तिसे अन्वर्थ नामवाले **संभवनाथ,** सारे भुवनको आनंदित करनेवाले **अभिनंदन,** मतान्तरको विनष्ट करनेवाले सुबुद्धिशाली **सुमतिनाथको** नमस्कार करता हूं ॥ ३–५ ॥

+ + + + +

मुझसे क्षुद्र मनुष्यभी–यदि उनका चरित्र वर्णन करे, तो इसमे आश्चर्य नहीं। क्योंकि, इनका चरित्रवर्णन करना मानों दूसरेका संदेशा सूचित करना है। मदवाले हाथीसे जिस जंगलकी राह बनी हुई है उसमें हरिण अनायास पर्यटन करते है। तथा योद्धा लोग महायोद्धाके पिछे पिछे युद्धमें प्रविष्ट होते हैं ॥ १८–१९ ॥

औरभी सूर्यदेवतासे प्रकाशित वस्तुओंको शक्तिरहित मनुष्यभी सुखसे देख सकता है तथा सूचीसे छिद्र किये हुए मोतीमें सूत्रभी प्रविष्ट होता है। २० ॥

इसी प्रकार बड़े बडे उद्धंड पण्डितोंसे वर्णित इस चरित्रमें अल्प बुद्धिवाला मैं भी प्रवेश करता हूं। २१ ॥

अतएव अद्वितीय प्रतिभाशाली उन महात्माओंके चरित्र संकीर्तनसे पाप बहुत दूर चले जाते हैं। एवं थोड़ीही देरमें मनुष्य नीरोग हो जाता है। और जबतक सूर्य, चंद्र और तारागण नभोमण्डलमें स्थिर रहेंगे तबतक उनका यश स्थिर रहेगा ॥२२-२५

इस लिये आत्मवेदी पुरुषको चाहिए कि, उन महात्माओंके कीर्तन करनेसे आपने शरीरको अजर, अमर बनावें ॥ २६ ॥

जो मनुष्य सज्जनोंको आनंद देनेवाली रमणीय कथाको कहते हैं उससे दोनो लोकका फल प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

जो श्रवण उनकी कथाको सुनते हैं, मेरी समझमें वही तो सच्चे श्रवण हैं। और उससे जो पराङ्मुख हैं, वे केवल विदूषकके ऐसे कहनेके लिये श्रवण हैं, परन्तु वास्तवमें वे सच्चे श्रवण नहीं ॥ २८ ॥

जिस शिरोमस्तिष्कमें उसकी चेष्टा निरंतर फुरती रहती है, वही शिर है । और उससे भिन्न नारियलके छिलकेके ऐसा है ॥ २९ ॥

जिसकी रसना उसके संकीर्तनमें संलग्न रहती है वही रसना तो अच्छी है। और उसके अतिरिक्त दुष्टवचनरूपिणी छूरीकी धार कीसी है ॥ ३० ॥

श्रेष्ठ ओष्ठ वेही हैं जो उसके संकीर्तनमें परायण हैं। अन्यथा वे शुक्ती केसे हैं ३१

दंतभी वेही श्रेष्ठ हैं, जो शांत कथाओंसे अनुरंजित हैं । और इसके अतिरिक्त श्लेष्माके निकलनेके द्वारके अवरोधक मात्र हैं ॥ ३२ ॥

मुख वही श्रेष्ठ है जो निरंतर उसकी कथासे परिपूर्ण है, अन्यथा मलसे पूर्ण केवल दांतरूपी कीडोंके रहनेका विवरही समझना चाहिये ॥ ३३ ॥

वही मनुष्य है, जो इस कथाको सुनता और कहता है। अन्यथा देखनेके लिये केवल चित्र मात्र है ॥ ३४ ॥

गुण और दोषके ग्रहणमें महात्मालोग गुणहीको ग्रहण करते हैं, दोषको नहीं। जैसे दुग्ध और जलसे हंस दूधहीको निकाल लेता है, जलको नहीं ॥ ३५ ॥

गुण और दोषके समाहारमें दुष्ट जन दोषही ग्रहण करते है. जैसे कौव्वे मुक्ताफलको छोड़कर हाथीसे केवल मांसही लेते हैं ॥ ३६ ॥

दुष्ट जन निर्दोषपदार्थोंकोभी दोषसे दूषितही समझते हैं। जैसे उलूकगण रवि-मण्डलकोभी तमालवनके ऐसे काला समझता है ॥ ३७ ॥

दुर्जनोंका यह स्वभव है कि, वे सदा दोषोंहीको धारण करते हैं और सज्जन इससे विपरीत सद्गुणको धारण करते हैं। महात्मालोग सज्जन और दुष्टोंका ऐसा स्वभाव समझकर अपने हितके लिये सत्कथाहीमें सदा अनुरक्त रहते हैं ॥ ३८-३९ ॥

* * * * *

संक्षिप्त सूत्र.

त्रिशलादि नायक संबंधी वृत्तान्त. इस पद्मपुराणमें मैं कहता हूं। कुशाग्र (विपुलाचल) पर्वतके शिखरपर भगवान् **महावीरकी** स्थिति, महात्मा **इंद्रभूतिसे** श्रेणिकका प्रश्न, इस प्रश्नमें कुलकरोंकी उत्पत्ति, संसारका दुःख और भय **ऋषभनाथकी** उत्पत्ति, उनका मेरुशिखरपर अभिषेक, और लोकोपकारी धर्म्मोपदेश, ऋषभनाथका मुनि होना और लोकोत्तर ऐश्वर्य, सब देवताओंका आगमन और मोक्ष, भरतके साथ

बाहुबलिका बड़ाभारी युद्ध, कुतीर्थ तथा ब्राह्मणवर्णकी उत्पत्ति, इक्ष्वाकुप्रभृति अनेक राजाओंका वर्णन, विद्याधर और विद्युद्दंष्ट्रकी उत्पत्ति, जयन्तका उपसर्ग और केवलज्ञानकी प्राप्ति, विद्याध्ययनाध्यापनमें नागराजका संक्षोभ, अजितनाथका अवतार, पूर्णाम्बुदकी लड़कीका सौख्य, विद्याधरकुमारकी शरण, राक्षसाधिराजकी प्राप्ति, राक्षसद्वीपमें निवास, सगरकी उत्पत्ति, दुःखदीक्षासे निवृत्ति, राक्षस राजका जन्मकीर्तन, कपिकेतनवाले जनोंकी विशेष प्रज्ञप्ति, समुद्र–देवता–तथा तड़ित्केशका चरित्र, विजयसिंहके मारनेसे वज्रसदृश वेगवाले क्रोधका वर्णन, अंध्रकका विनाश, शत्रुओंका आगमन और रमणीय नगरमें प्रवेश, मधुपर्वतके ऊपर किष्किंधा नगरीकी रचना, सुकेशनन्दनादिकोंको लंकामे पाहुचनेका विचार करना, सम्पूर्ण विद्याको जाननेवाले इंद्रराजाका पुरीमें जन्म, बालीका मरण, वैश्रवणकी उत्पत्ति, सुमालीके लड़केका पुष्पकविमानपर प्रवेश, कैकसीके साथ सुंदर स्वप्नका दर्शन, दशाननकी उत्पत्ति तथा उससे विद्याकी प्राप्ति, अनावृतका संक्षोभ, सुमालीका आगमन, मंदोदरीकी प्राप्ति, अन्यान्य कन्याओंका निरीक्षण करना, भानुकरणकी चेष्टासे यक्षराक्षसके साथ संग्राम, कुबेरकी तपस्या, रावणको लंकाराज्यकी प्राप्ति, श्रीमान् हरिषेणका पवित्र माहात्म्य, त्रिजगद्भूषण नामवाले गजराजका दर्शन, यमस्थानकी च्युति, अर्ककी धूली (किरण) किष्किंधामें पड़ना, कैकसीआदिओंका गर्दभालंकारका संश्रय करना, चंद्रोदरके वियोगसे अनुराधाको महादुःख प्राप्ति, विराधितपुरका नाश और सुग्रीवको राज्यप्राप्ति, वालिकी संसारसे विरक्ति और अष्टापदपर संक्षोभ, साहसी सुग्रीवका ताराके साथ संयोग, रावणका विजयार्द्धपर्वतपर गमन, अनरण्य राजाका वैराग्य होना तथा यज्ञका नाश, महेन्द्रको विद्याकी प्राप्ति, राज्यलक्ष्मीका नाश, रावणका मेरुपर्वपर गमन तथा वापिस लौटना, अनंतवीर्यको कैवल्यज्ञानप्राप्ति, रावणका व्रतनियमादिकका ग्रहण, अष्टापद पर्वतपर महेंद्रके साथ प्रल्हादका संभाषण होना, कपिकेतु महात्मा हनुमानकी उत्पत्ति तथा उनके क्रोध और प्रसन्नता, हनूमान्के पूर्वजन्मका वृत्तान्त दिगम्बरमुनिद्वारा कहा जाना, जंगलमें गये हुए पवनंजयके हस्तीके देखनेमें विद्याधरका संयोग और अंजनाका दर्शनोत्सव, वायुपुत्रकी सहायता, वरुणके साथ भयंकरयुद्ध, रावणकी समुन्नति, दशस्यंदन (दशरथकी) समुद्भूति, कैकईको वरप्रदान मिलना, पद्म-लक्ष्मण-शत्रुघ्न तथा भरतकी उत्पत्ति, सीताकी उत्पत्ति, प्रभाचक्रका हरा जाना तथा उसकी प्राप्तिके लिये चिंता करना, नारदसे चित्रित सीताको देखकर माताकी विमूढता, सर्व प्राणियोंके शरण देनेवाले दशस्यंदनका दीक्षा लेना, भाचक्रको पूर्वजन्मका ज्ञान होना, जानकीका दर्शन, पहले कैकईके वरसे भरतकी यात्रा, राम, लक्ष्मण तथा सीताको दक्षिण देशमें यात्रा करना, वज्रकरणकी चेष्टा, रुद्रभूतिका अधीन

होना, बालावस्थाका परित्याग, मरुग्राममें रामपुरीकी संस्थिति, वनमालाके साथ समागम, अनिवीर्यकी समुद्गति, जितपद्माकी प्राप्ति, कौलदेशके भूषण रामचरित्रका वर्णन, जटायुको नियमप्राप्ति होना, पात्रदानके फलका उदय, महानागरका समारोह, तथा शम्बूकका विनिपात होना, केकसादिका वृत्तान्त, खरदूषणका युद्ध, सीताका हरण तथा रामका दुर्धर शोक, विराधका आगमन और खरदूषणका मरण, साहसगतिका मरण, और आकाशमार्गसे सीताका प्रयाण, हरि और पद्मको विद्याकी प्राप्ति, इंद्रजित् (मेघनाद) कुंभकर्ण और रावणका बंधन, लक्ष्मणको शक्ति लगाना, श्रीशांतिनाथमंदिरमें रावणका प्रवेश तथा स्तुति, लक्ष्मणको चक्रका लाभ, केकसीके लड़केकी मृत्यु, उसकी पत्नीका विलाप, तत्पश्चात्कैवल्यप्राप्ति, इंद्रजित्आदिकोंकी दीक्षा, सीताके साथ रामचंद्रजीका मिलाप, नारदजीका आगमन, अयोध्यामें प्रवेश, गज और भरतका पूर्वजन्मका चरित्रोल्लेख, मनोरमाकी प्राप्ति, संग्राममें सुमेध और लवणका मरण, मथुरामें उपसर्गका नष्ट होना, सप्तर्षियोंसे अवलम्बित सीताके निर्वासजन्य विलापमें वज्रजंघका परित्राण, कृतान्तवक्रका परिक्षोभ, वैदेहीका जन्मान्तर होना, राजपुत्रोंका दीक्षाग्रहण, प्रभामंडलका दुर्मरण, मारुतिका दीक्षा ग्रहण करना, रामचंद्रजीके पुत्रोंका तपस्याप्राप्ति करना, पूर्वाप्त-देव जन्य ज्ञानसे दिगम्बर होना, केवल ज्ञानकी प्राप्ति पश्चात् निर्वाणपदका लाभ वगैरह अनेक विषयोंका यथासान्निवेश विवेचन मैंने इस पुराणमें किया है।

अन्तिम भाग.

विद्याधरोंका अधिपति रावण परस्त्रीकी अभिलाषा कर कष्टको प्राप्त हुआ, तो अन्य जीव किस प्रकार विषयासक्त होकर सुखी रह सक्ते हैं ? ॥ २९ ॥

हजारों सुंदर स्त्रियोंसे हमेशा सुखपूर्वक सेवित होनेपरभी रावण अतृप्तिसेही विनष्ट होगया तो दूसरे विषयभोगवासनासे तृप्त होंगे, यह विचारना भूल है ॥ ३० ॥

अपने कलत्रसे असंतुष्ट होकर जो, दूसरोंके कलत्रमें अनुराग करता है, वह सूखे काष्ठके ऐसे बड़ेभारी व्यसनार्णवमें पड़ता है ॥ ३१ ॥

बलदेवप्रभृति शलाका पुरुष जिस गतिको प्राप्त हुए हैं, उसी गतिको जिनशासनके पूरे भक्त श्रीरामचंद्रजीनेभी पाया है ॥ ३२ ॥

पुण्यकर्मके उदयसे जीव सम्पत्तिके निधान ऐसे पदको प्राप्त करता है, और पापफलके उदयसे जीव अनेक विपदपूर्ण पदको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥

दुष्कृत् उसीको कहते हैं कि जिसके वशीभूत होकर आदमी खूब क्रोध, दूसरोंको पीड़ा देते और कड़वी बात कहते हैं। और सुकृत उसको कहते हैं, जिसके

वशीभूत होकर आदमी विनय, शास्त्राभ्यास, सदयवाक्य, अमत्सर तथा समदर्शिता प्रगट करते हैं ॥ ३४ ॥

कोई किसीको धन, आरोग्य तथा सुख नही देता है, यदि लोग सुख देते तो, इस संसारमें इतने दुःखी नहीं रहते ॥ ३५ ॥

बहुत कहनेसे क्या ? किन्तु एकही बात विद्वानोंने निश्चित की है, वह यह कि, बहुत शास्त्रार्थसे जो भेदके कई उपाय कहे गये हैं, उसकी प्राप्तिके लिये सदा विद्वद्गण उद्योग करें ॥ ३६ ॥

परमार्थके ठीक ठीक उपाय विद्वान्‌ही कहे गये हैं । इस लिये यथाशक्ति इनकी सेवा करके संसार समुद्रसे आप लोग पार होंगे ॥ ३७ ॥

जीवकी शुद्धि करनेमें दक्ष जो अत्यन्त रमणीय यह शास्त्र है, सो इसने बिलकुल संसारके सभी पदार्थको प्रकाशित करदिया है, इसलिये रविषेणाचार्यका यह प्रकाश (पद्मपुराण) सारे संसारमें प्रसिद्ध है ॥ ३८ ॥

श्री महावीर स्वामीके बारहसौ साढ़े तीन वर्ष मोक्ष जानेके बाद पद्ममुनिका यह सुंदर निबंध रचा गया ॥ ३९ ॥

सभी संसारको जैनी बनाते हुये जो देवता हैं, वे समीप रहें । सभी पदार्थोंमें समय समयपर बचनोंसे देवतालोग रक्षा करें और संसारके भव्यजीव वात्सल्यभाजन तथा सभी प्रतिष्ठासे युक्त हों ॥ ४०–४१ ॥

इस पुराणमें व्यंजनान्त तथा स्वरान्त जो नाम कहे गये हैं वे अर्थवाचक शब्द हैं । और शब्दसमुच्चय वाक्य है ॥ ४२ ॥

इस पुराणमें अलंकार, प्रमाण, छंद, आगम आदि सभी विषय कहे गये हैं । शुद्ध चित्तसे उन सब विषयोंको आदमी यहां सब देख सकते हैं ॥ ४३ ॥

इस पुराणमें अनुष्टुप् छंदके अनुसारसे १८०२३ अठारह हजार तेईस श्लोक गिने गये हैं ॥ ४४ ॥

समाप्तम् ।

भगवज्जिनसेनाचार्यका पाण्डित्य

(१)

आज हम 'भास्कर' के पाठकोंको एक अपूर्व साहित्य-सौरभ-भरी कविता प्रमोदवाटिकामें सैर कराना चाहते हैं। यद्यपि गतकिरणमें महापुराणका परिचय इस शीर्षकका लेख लिखा गया था, किन्तु हम समझते हैं कि, विषयबाहुल्य हो जानेके भयसे सम्पादक महोदय उपर्युक्त आचार्यके कविता कुसुमके गुच्छे पाठकोंको भेंट नहीं कर सके थे, इसलिये, इन किरणोंमें पाठकोंके साथ साथ हमेंभी इनके काव्यकुसुमकी सहृदय-हृदय-संतुष्टकारी सुगंधसे अभितृप्त होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यदि विवेचनापूर्वक देखा जाय तो साहित्यदर्पणकारकी यह उक्तिः—

चतुर्वर्गफलप्राप्तिः काव्यादेव प्रवर्तते।

अर्थात् 'धर्मार्थकाममोक्षकी फलप्राप्ति काव्यही द्वारा होती है' बड़ीही समीचीन ज्ञात होती है। सच मुच इनके काव्यकुसुमकुंजमें चारो पुरुषार्थोंके चार दरवाजे हैं। जिन्हे जो विषय अभीष्ट हो, काव्यकुंजमे प्रविष्ट होनेपर उन्हें अपने अभीष्टकी सिद्धि हुए बिना नही रहती। इसीलिये कविगणको सब किसीने अजरअमर कहा है। क्योंकि, एक कविका कथन है किः—

ते धन्यास्ते महात्मानस्तेषां लोके स्थिरं यशः ॥
यैर्निबद्धानि काव्यानि ये च काव्येषु कीर्तिताः ॥

अर्थात् वेही महात्मा धन्य हैं, और उन्हीका यश स्थिर समझना चाहिए कि, जिन्होंने काव्य प्रणयन किया है और जिनका वर्णन किन्ही काव्योंमें हुआ है।

काव्य ही एक वस्तु है, जो कविकी विद्वत्ताकी इयत्ता, सहृदयता, प्राकृतिकरचना, चतुरता, धार्मिकता तथा नीतिनिपुणता आदि विषय सहृदयोंके प्रतिभा-पट्टपर अंकित कर देती है। काव्यमें भाव, गांभीर्य, अलंकार, सौंदर्य तथा ध्वनिवैचित्र्यके साथ साथ शब्दमाधुर्यकी प्रधानता रहती है। इसीलिए श्रद्धेय पूज्यपाद पण्डित जगन्नाथ कविने अपने रसगंगाधर ग्रंथमें काव्यकी व्युत्पत्तिभी यही की है, किः—

रमणीयतार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।

अर्थात् रमणीयता उत्पन्न करनेवाला शब्दही काव्य कहा जाता है। शब्दसुंदरता काव्यकी बाहरी छटा है। पहिले शब्दसौंदर्यही सहृदयोंको काव्य पढ़नेके लिए

प्रोत्साहित करता है, पीछे भाव और अलंकारादि विषय उनकी मानस-भित्तिपर अपनी कविता चित्रित करते हैं। हमारे चरित्रनायक **भगवज्जिनसेनाचार्यके** काव्यमें शब्दसौष्ठव आदि सभी काव्यशोभावर्धक विषय सन्निविष्ट हैं । पहिली ' किरणमें ' लिखा जा चुका है कि, भगवज्जिनसेनाचार्य कविवर कालिदासके समकालिन थे. इसका प्रत्यक्ष प्रमाण पार्श्वाभ्युदयका अवतरण है । आनुमानिक प्रमाण यह कि, भगवज्जिनसेन और कविवर कालिदासकी काव्यरचनाप्रणालीकी समता बहुधा पाई जाती है । यदि शृंगारही रसमें परिप्लुत काव्य भगवज्जिनसेनभी करते तो हमे दोनों कविकुंजरोंकी कविताको देखकर यही कहना पडता कि,

सारीमध्य नारी है कि नारीमध्य सारी है।
कि नारी है कि सारी है, कि सारी है, कि नारी है ॥

अर्थात् कविवर कालिदासने जैसी उपमाकी सर्वांगसुंदरता दिखलाई है, वैसीही अनुपमता इन्होंनें भी बड़ी विशद रीतिसे दिखलाई है ।

उपमाप्रधान काव्योमें उपमा और उपमेयके लिंग वचनकी समता सर्व--प्रशंसनीय होती है । प्रायः आचार्यकी सभी उपमाओंमें यह सद्गुण पाया जाता है और कविवर कालिदासकी उपमाकी प्रशंसा इसी लिये होती है कि इन्होंने उपमा उपमेयमें लिंगवचनका साम्य खूब दिखलाया है । पाठको ! भारतवर्षके कवियोंने जो काव्य बनाया है, उसमें उन्होंने मानो अपने अन्तरिक भावकी एक प्रतिकृति अंकित करदी है । इसलिये इनके काव्यके यथार्थ भावके समझनेवाले विद्वानोंकोभी मैं एक उच्च कोटिके कवि समझता हूं । मैं जब संस्कृत काव्यकी ओर दृष्टिपात करता हूं, तो मुझे यही ज्ञात होता है कि, भव तथा परभवकी सभी उत्तमताओंको एकत्रित कर भारतकी कवितामयी चित्रांकनपट्टिकापर अजर, अमर कवि चित्रकारोंने मनोतीता तथा अवर्णनीया चित्रावली अंकित कर दी है और इसलिये उसी हृदयोन्मादिनी आलेख्यमालाको देखते देखते दर्शकवृंद जब सौंदर्यविस्मित, स्तंभित और विमुग्ध हो पड़ते हैं, तब वे मर्त्यलोकमें रह करभी स्वर्गके सुखका अनुभव करने लग जाते हैं । बल्कि उसी सर्वसुंदर कविता चित्रावलीके संसर्गसे दर्शकों (पाठकों) का हृदयभी धीरे धीरे निर्मल और सुंदर हो जाता है । आश्चर्य तो यह कि, उनके अन्तःकरणसे उस आलेख्यके दर्शन मात्रहीसे अधर्म, नीचता और असुंदरताकी चिंताभी सदाके लिये दूर भागती है । उस समय सद्भावके आवेशसे दर्शककोंके मन और प्राण सहसा पुलकित हो उठते हैं । स्वच्छ दर्पणमें जिस तरह प्रतिकृति विस्पष्टरूपसे प्रभासित होती है, उसी प्रकार उस समय दर्शक गणके निर्मलहृदयादर्शमें काव्योल्लिखित पवित्र

चरित्र प्रतिबिंबित हो जाता है। इसी प्रकार अपने अलौकिक कवितालोकसे पाठकोंके अन्तःकरण प्रकाशित और वशीभूत करनेमें जो कविगण समर्थ हो गये है, उनमें एक प्रसिद्ध जैन कवि भगवज्जिनसेनाचार्यहीके यहां मुझे पाण्डित्यप्रकर्ष दिखाना है।

भगवज्जिनसेनाचार्य जैनसिद्धान्तकेभी एक बड़ेभारी ज्ञाता थे। इस बातका साक्ष्य आपकी रचित **जयधवलकी *टीका** है। कहा जाता है कि, यह सिद्धान्त ग्रंथ ऐसा गूढ़ाशयसे भराहुआ है कि, आज इसका मर्मज्ञ भारतवर्षमें सायदही कोई हो ! विद्वानोंका कथन है कि इन्होंने एक आलंकारिक ग्रंथभी बनाया है। किन्तु जैनियोंके 'गुह्याद्गुह्यतरो ग्रंथो न प्रकाश्यः कदाचन' इस मार्गके अनुसरण करनेसे यहभी आलंकारिक ग्रंथ किसी अन्धेरे तहखानेमें पड़कर सड़गलकर अस्थिमात्रावशेष अथवा विलुप्तप्राय हो गया होगा !

मैं यह तो अवश्य कहूंगा कि, जिन्हे भारतवर्षके सच्चे प्राचीन इतिहास जानने हों, जिन्हे सत्कविता वाग्देवीका वात्सल्यभाजन बनना हो, जिन्हे उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपकादि अलंकारोंकी निराली छटा देखनी हो, जिन्हे व्याकरणकी महत्त्वपूर्ण पद-प्रयुक्ति-द्वारा भगवज्जिनसेनकी शब्दशास्त्राभिज्ञता देखनी हो और जिन्हें जैनसिद्धान्त तथा जैनधर्मकी विजय-वैजयन्ती फहरानी हो, वे इनके रचित महापुराणको चाहियेथा तो बहुत बार नहीं तो एक बारभी पढ़कर बहुतसी बातें जान सकते हैं। यों तो इनका सम्मुच्चय महापुराणही सत्काव्यसे भरा हुआ है, किन्तु यहां मैं इनके पाण्डित्यका दिग्दर्शनमात्र कराता हूं, क्योंकि बहुधा भास्करकी सभी किरणोंमें आपकी पण्डिताईके परिचय करानेकी चेष्टा की जायगी।

भगवज्जिनसेनाचार्यने महापुराणके पहिलेही पर्वमें काव्यरचनाका मतभेद और काव्यका लक्षण बड़ी विशद रीतिसे दिखलाया है।

आप्तपाशमतान्यन्ये कवयः पोषयन्त्यलम् ।
कुकवित्वाद्वरं तेषामकवित्वमुपासितम् ॥ ७२ ॥

अर्थात्—बहुतेरे कवि अपने पक्ष समर्थन करनेके लिये कवितामें झूठी बातकी परिपुष्टि कर बैठते हैं, किन्तु उन्हे कुकाव्य बनानेकी अपेक्षा अपनेको कवि नहीं प्रगट करनाही अच्छा है।

*इसकी एक प्रति मूडविदरीके भंडारमें देखनेमें आती है। इसके दर्शनके लिये बहुत दूर दूरसे लोग आते है। इसकी पूरी प्रशस्ति उतारकर 'भवनमें' आगई है। अगली किरणमें वह प्रकाशित करदी जावेगी। इस अत्यन्त प्राचीन ग्रंथका जीर्णोद्धार सोलापूरनिवासी सेठ **हीराचंद नेमचंद जीने** लगभग दश हजार रुपैया खर्चकर किया है.

पुराणकवयः केचित्केचिन्नवकवीश्वराः ।
तेषां मतानि भिन्नानि कस्तदाराधने क्षमः ॥ ७७ ॥

अर्थात्—बहुतेरे पुराने और नये कवि हैं, इन सबोंकी राय मिलती नहीं । इसलिये इनके हां में हां मिलाना ज़रा कठिन है ।

केचित्सौशब्दमिच्छन्ति केचिदर्थस्य सौष्ठवम् ।
केचित्समासभूयस्त्वं परे व्यस्तपदावलिम् ॥ ७८ ॥

अर्थात्—कोई शब्दसुंदरताकी ओर ध्यान देते है, कोई अर्थ—गांभीर्यहीको मुख्य मानते है, कोई समासबहुलताकोही पसन्द करते है और कोई कोई तो बिना समासकेही पदोंका प्रयोग करना अच्छा समझते हैं ।

मृदुबन्धार्थिनः केचित्स्फुटबन्धैषिणः परे ।
मध्यमाः केचिदन्येषां रुचिरन्यैव लक्ष्यते ॥ ७९ ॥

अर्थात्—कोई सरल रचनाकी ओर विशेष ज़ोर देते, कोई कोई रचनास्पष्टताकी ओर विशेष ध्यान देते हैं और किसी किसीकी तो राय है कि, मध्यमावस्थाकी कविता अच्छी होती है, इसलिये सब किसीकी रुचि भिन्न भिन्न माळूम पड़ती है ।

सहृदयो ! भिन्न भिन्न काव्योंकी भिन्न भिन्न रचना—प्रणाली देखकर हठात् यह बात माननी पड़ती है, कि, उल्लिखित आचार्यकी काव्यरचनासंबंधिनी सम्मति बड़ी गवेषणापूर्ण है । माळूम पडता है कि, इन्होंने कवियोंकी अंतरात्मामें पैठकर उनका हार्दिक भाव यहां रख दिया है । आगे यह कविश्रेष्ठोंकी रहन सहन लिखकर अलंकार शास्त्रकी अपनी अच्छी अभिज्ञता दिखाते हैं ।

कवेर्भावोऽथवा कर्म काव्यं तज्ज्ञैर्निरूप्यते ।
तत्प्रतीतार्थमग्राम्यं सालंकारमनाकुलम् ॥ ९४ ॥

कविके भाव और परिश्रमको कवितालोलुप विद्वद्गण काव्य कहते है । उस काव्यका अर्थ प्रसिद्ध ग्राम्यदोषसे रहित अलंकारयुक्त और साफ होना चाहिये ।

केचिदर्थस्य सौन्दर्यमपरे पदसौष्ठवम् ।
वाचामलंक्रियां माहुस्तद्वयं नो मतं मतम् ॥ ९५ ॥

किसीने अर्थसौंदर्य और किसीने पदसौदर्यको काव्यका भूषण ठहराया है । परंतु हमे तो दोनों मत पसन्द हैं ।

सालङ्कारमपारूढरससमुद्भूतसौष्ठवम् ।
अनुच्छिष्टं सतां काव्यं सरस्वत्या मुखायते ॥ ९६ ॥

दूसरेके काव्यसे नहीं चुराई गयी सालंकार और सर्वाङ्गसुंदर जो सज्जनोंकी कविता है वही सरस्वतीका मुख है ।

अस्पृष्टं बंधलालित्यादपेतं रसवत्तया ।
तत्काव्यमिति ग्राम्यं केवलं कटुकर्णयोः ॥ ९७ ॥

जिस काव्यमें रचनाचातुर्य और लालित्य नहीं, वह काव्य नहीं है, बल्कि ग्राम्य-दोषपरिप्लुत वह काव्य केवल कटुकारक होता है ।

सुश्लिष्टपदविन्यासं प्रबंधं रचयन्ति ये ।
श्राव्यबंधं प्रसन्नार्थं ते महाकवयो मताः ॥ ९८ ॥

सुंदर श्लेषालंकारसे परिपूर्ण जो श्राव्य काव्यकी रचना करते हैं वेही महाकवि हैं ।

महापुराणसंबंधि महानायकगोचरम् ।
त्रिवर्गफलसंदर्भं महाकाव्यं तदिष्यते ॥ ९९ ॥

जिसमें महापुराणसंबंधी महानायकोंका चरित्र हो और उसकी कथा अर्थ, धर्म, कामकी साधिका हो वह महाकाव्य कहलाता है ।

प्रज्ञामूलो गुणोदग्रस्कंधो वाक्पल्लवोज्ज्वलः ।
महाकवितरुर्धत्ते यशःकुसुममंजरीम् ॥ १०३ ॥

जिसका मूल बुद्धि है, गुण उन्नत शाखा है, और काव्यरचना कोमलपत्र है, ऐसा कविरूपी वृक्ष यशरूपी मंजरीको सदा धारण करते हैं ।

मैं समझताहूं इतनीही दिग्दर्शित करानेसे पाठकोंको, इनके काव्यविवेचनकी विद्वत्ता माळूम हो जायगी । अलंकारशास्त्रोंमें मम्मटादि आलंकारिक पण्डितोंने जैसी रचना--विचारचातुरीकी पद्धती दिखलाई है. प्रायः भगवज्जिनसेनने अपने ऐतिहासिक ग्रंथमेंभी अलंकारका निचोड़ ठीक वैसाही सन्निविष्ट किया है । इस पुराणमें जो इनकी काव्यमर्मज्ञता है, वह लेखमें दिखानी अशक्यसी है, केवल वह सहृदयोंके अनुभवगम्य है ।

काव्यके सुजन और दुर्जनका लक्षण.

सतीमपि कथां रम्यां दूषयन्त्येव दुर्जनाः ।
भुजंगा इव सच्छायां चंदनद्रुमवल्लरीम् ॥ ८१ ॥

जिस प्रकार सुखद छायावाले चंदनवृक्षकी मंजरीको जहरीले सॉंप दूषित करते हैं, ठीक उसी प्रकार दुर्जनभी अच्छे काव्यको झट् सदोप बना ड़ालते हैं ।

सदोषामपि निर्दोषां करोति सुजनः कृतिम् ।
घनात्यय इवापङ्कां सरसीं पङ्कदूषिताम् ॥ ८२ ॥

जैसे शरद्तु कीचड़से भरी नदीको स्वच्छ बनाती है वैसेही सज्जन दोषपूर्ण-काव्यको निर्दोष कर देते हैं ।

दुर्जनाः दोषमिच्छन्ति गुणमिच्छन्ति सज्जनाः ।
स तेषां क्षेत्रजो भावो दुश्चिकित्स्यश्चिरादपि ॥ ८३ ॥

दुर्जन दोष ढूंढ़ते हैं किन्तु सज्जन गुणहीका अन्वेषण करते हैं । यह उनलोगों-केलिये कोई नयी बात नहीं. उनलोगोंकी ऐसी प्रकृतिही है । इसलिये इन दोनोंकी परस्पर विपरीत प्रकृतियां दुश्चिकित्स्य (अनिवार्य) हैं ।

यतो गुणधनास्सन्तो दुर्जनाः दोषवित्तकाः ।
स्वधनं गृह्णतां तेषां कः प्रत्यर्थी बुधो जनः ॥ ८४ ॥

दुर्जन दोषधनी और सज्जन गुणधनी हैं, इसलिये अपने अपने धनकी रक्षा करते हुए इन लोगोंका कौन बाधक हो ? ।

दोषान्गृण्हन्तु वा कामं गुणास्तिष्ठन्तु नः स्फुटम् ।
गृहीतदोषं यत्काव्यं जायते तद्धि पुष्कलम् ॥ ८५ ॥

दुर्जन भलेही दोष निकाले, केवल मेरा गुण रह जाय तो बिना दोषका जो काव्य होगा वही साहित्य–कोशकी पूर्तीके लिये पर्याप्त होगा ।

सुभाषितमहामन्त्रान्प्रयुक्तान्कविमंत्रिभिः ।
श्रुत्वा प्रकोपमायान्ति दुर्ग्रहा इव दुर्जनाः ॥ ८६ ॥

कविरूपी मंत्रवादियोंसे प्रयोग किये गये सुभाषितरूपी महामंत्रोंको सुनकर दुर्ग्रहरूपी दुर्जन क्रुद्ध हो जाते हैं ।

चिरप्ररूढदुर्ग्रंथिवेणुमूलसमोऽनृजुः ।
नर्जु कर्तुं खलः शक्यः श्वपुच्छसदृशोऽथवा ॥ ८७ ॥

बांसकी जड़कीसी जो टेढ़ीमेढ़ी बहुत दिनोंकी गांठ पड़ी हुई है वह कभी नही सुलझ सकती क्योंकि, वह कुत्तेकी पूछकीसी है ।

इनकी सज्जन और दुर्जनकी मीमांसा महत्त्वपूर्ण होनेमें कुछ संदेह नहीं । माल्म पड़ता है कि, इन्होंनें उपर्युक्त पङ्क्तियोंमें सुजन और दुर्जनको सजीव बिठला दिया है। इसमें तो कुछ संदेह नहीं कि, महापुराण रचनेके समय इनके सामनें अंतर्जगत् तथा बहिर्जगत्के सभी दृश्य बद्धांजलि खड़े हुए थे । इसी लिये इस पुराणमें **आदिनाथ**

तीर्थंकरका चरित्र गुंफित करते हुएभी काव्यकुमुदबांधव—चकोरोंके लिये जहां तहां कविताचंद्रिकाकी छटा इन्होंने बड़ी सुंदरतासे छिटकायी है। सुजन दुर्जनके वर्णनसे यहभी ज्ञात होता है कि, भगवज्जिनसेन दुर्जनोंकी आक्षेपकी ओर ज़रासाभी ध्यान नहीं देते थे। वे समझते थे कि, हम अपना कर्तव्य करें। उनके आक्षेप प्रक्षेपकी समीक्षा ये स्वप्नमेंभी नहीं करते थे। बस बात इतनीही थी कि, ये अपने महोच्च मन्तव्य प्रकाशित करनेमें कभी मुकुलित मानस नहीं हुए। दुर्जन पीछेसे उनको भलेही उलटी सीधी कहें, किन्तु ये उनके गुणगान किये बिना नहीं रहते।

कथाका लक्षण.

पुरुषार्थोपयोगित्वात्त्रिवर्गकथनं कथा।
तत्रापि सत्कथां धर्म्यामामनन्ति मनीषिणः॥ ११८॥

पुरुपार्थकी उपयोगिताके कारण त्रिवर्गकी परिपुष्टी करनेवाली युक्तिकोही कथा कहते हैं। किन्तु जिसमें धर्मचर्चा अधिकतासे हो, वह सत्कथा कहलाती है।

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयसार्थसंसिद्धिरंजसा।
सद्धर्मस्तन्निबंधाया सा सद्धर्मकथा स्मृता॥ १२०॥

जिस कथासे झट अभ्युदय अर्थ, मुक्तिकी सिद्धि होती है, वह सद्धर्मकथा कहलाती है।

प्राहुःधर्म्मकथांगानि सप्त सप्तर्द्धिभूषणाः।
यैर्भूषिताः कथाहार्यैर्नटीव रसिका भवेत्॥ १२१॥

सात ऋद्धियोंके धारण करनेवाले गणधरोंने सात अंग माने हैं। आहरणीय अलंकार तथा गुणोंसे अलंकृत नटीकीसी सत्कथा अपने शांत, करुण तथा वात्सल्यादि रसद्वारा सभीको ऐहिक तथा पारलौकिक सुखका अनुभव कराती है।

भगवज्जिनसेन कथाके कैसे प्रांजल मर्मज्ञ थे, यह बात आपके उल्लिखित श्लोकोंसे भली भांति ज्ञात होती है। उल्लिखित दो एक श्लोकसे आपकी नाटकीय लक्षणकीभी अभिज्ञता अच्छीतरह झलकती है।

कथकका लक्षण.

तस्यात्तु कथकः सूरिः सद्वृत्तस्स्थिरधीर्वशी।
कल्पेंद्रियप्रशस्ताङ्गः स्पृष्टमृष्टेष्टगीर्गुणः॥ १२६॥

कथा कहनेवालोंको विद्वान्, सच्चरित्र स्थिरबुद्धि, जितेंद्रिय, स्वरूपवान्, स्पष्टवक्ता और मधुरभाषी होना चाहिये।

यस्सर्वज्ञमताम्भोधिवार्धौटविमलाशयः ।
अशेषवाङ्मलापायादुज्ज्वला यस्य भारती ॥ १२७ ॥

सर्वज्ञ देवके आगमरूपी समुद्रमें जिनका आशय प्रक्षालित हो गया है और वचनके सभी मल निकल जानेसे जिनकी वाणी जाज्वल्यमान हो गई है—

श्रीमाञ्जिनोऽजितो वाग्मी प्रगल्भः प्रतिभानवान् ।
यः सतां समनुव्याख्यवाग्विमर्दभरक्षमः ॥ १२८ ॥

तेजस्वी सभाके जीतनेवाले निर्भीक वक्ता, प्रतिभाशाली, सभ्योंके अनुकूल व्याख्यान करनेवाले और वाग्वज्रोंको सहनेवाले कथक कहलाते हैं ।

दयालुर्वत्सलो धीमान्परेङ्गितविशारदः ।
योऽधीति विश्वविद्यासु स धीरः कथयेत्कथां ॥ १२९ ॥

दयावान्, वात्सल्य रससे परिपूर्ण, बुद्धिमान्, दूसरोंकी चेष्टा भली भांति जाननेवाला और जो विश्वविद्यामें जो भली भांति निपुण है, वही कथा कह सकता है ।

नानोपाख्यानकुशलोनानाभाषाविशारदः ।
नानाशास्त्रकलाभिज्ञः स भवेत्कथकाग्रणीः ॥ १३० ॥

जो सभी उपाख्यानमें कुशल है, और जिसनें सभी भाषाएं सीखी हैं, और सभी कलामें जिन्होंने अच्छी प्रविणता पायी है, वह उच्चश्रेणीका कथक—अर्थात् वक्ता हो सकता है ।

इत्यादि अनेक प्रकारकी विद्वत्तापूर्ण उक्तियोंसे मालूम होता है कि, भगवज्जिनसेन अनेक भाषा तथा अनेक कथाओंके मर्मज्ञ थे । इनकी वक्तृत्व—प्रख्यातिभी उस समय खूब थी । किसी किसी इतिहासप्रेमी तथा साहित्यप्रेमी महोदयकी राय है कि, इन्हींकी रचना—प्रणाली और भाषासरणी लेकर जैनकाव्यादिकोंका प्रणयन हुआ है । मैं इस विचारसे कभी सहमत नहीं । वे यह भलेही कहें कि, स्वामीजीकी पुराणरचना तथा काव्यरचना आदर्शभूत है, किन्तु काव्यादिकोंकी मूल भित्ति इसको मानना उचित नहीं । क्योंकि, इन्होनें स्वयं इस पुराणमें कहा है कि, हम पूर्वपुराण कवि तथा नूतन कवियोंका अनुसरण करते हुए इस पुराण (आदिपुराण) की रचना करते हैं ।

इनकी शब्दशास्त्राभिज्ञता.

‘ तत्र देवसभे देवं स्थितमत्यद्भुतस्थितिम् ’
‘ मध्येसभमथोत्थाय भरतो रचिताञ्जलिः ’
‘ प्रजाः सुप्रजसः प्रीताः पुत्रशासनदेशनाः ’

'कर्मारीणां विजितमदनस्यार्हतः संचिचीर्षुः'
'ईशोमाभ्यामपचितपदं तं पुपुत्रीयुषाभ्याम्'
'मध्येगङ्गं ह्रदमधिवशेर्भूरितस्याः प्रपातम्'
'कृतावगाहनाः स्नातुं स्तनदघ्नं सरोजलम्'
'योऽधीति विश्वविद्यासु स धीरः कथयेत्कथां।'

पाठको ! जिनसेनस्वामीने शब्दसुन्दरताकी अधिकता दिखाते हुए भी बड़ी विद्वत्ताके साथ व्याकरणके सारगर्भितपदोंको प्रयुक्त किया है। यों तो व्याकरण-प्रधान कई काव्य हैं, किन्तु प्रसाद तथा माधुर्य्य-गुण-विशिष्ट एक ऐतिहासिक ग्रन्थमें व्याकरणकी ऐसी चमत्कृति दिखलानी कुछ साधारण बात नहीं है।

ऊपर श्लोकांशोंमें जो '**देवसभे, मध्येसभं, सुमजसः, संचिचीर्षुः, पुपुत्रीयुषाभ्याम्, मध्येगङ्गम्, विश्वविद्यासु अधीति** और **स्तनदघ्नम्** इत्यादि पदप्रयुक्त किये गये हैं, इनसे भगवज्जिनसेन स्वामीका अच्छा शब्दशास्त्राभिज्ञत्व मालूम होता है। इनके 'स्तनदघ्नं' इस पदके ऊपर हमें **बल्लाळ** कवि विरचित 'भोजप्रबंध' की एक कथा याद आगयी। वह यह है कि, एक समय एक ब्राह्मण फटी चिटी मैली धोती पहनकर सिरपर लकड़ीका बोझा लिये नदी पार हो रहा था। शिकारके थके माँदे भोजराज नदीके उस पारमें खडे हुए पार होनेकी ताकतमें थे। इस लिये उन्होंने ब्राह्मणसे पूछा कि 'कियन्मात्रं जलं विप्र!' अर्थात्—हे ब्राह्मण! कितना जल है? ब्राह्मणने उत्तर दिया कि 'जानुदघ्नं नराधिप!'—नरेश! ठेहुने तक। राजाको 'जानुदघ्नं' तथा संस्कृत पद्यमय उत्तर सुनकर आश्चर्य मालूम हुआ और उन्होंने कहा कि, 'ईदृशी किमवस्था ते' यानि—ऐसे भारी विद्वान् होकर तुम्हारी यह आवस्था? ब्राह्मणने कहा कि 'न हि सर्व्वे भवादृशाः' अर्थात् जैसे आप गुणी हैं, वैसे सभी नहीं हैं। राजा यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्हे तीन लाख रुपया तत्क्षण पुरस्कार देकर सदाके लिये अपने दरबारमें रख लिया।

किन्तु पाठको! महापुराणरूपी इस काव्य—सूत्रमें उदाहरणीय—विषय—मुक्ताके समुद्ग्रथन करनेपरभी पुरस्कार तो दूर रहे, बल्कि हजारों वर्ष पीछे फेंककर कितने पण्डितम्मन्य भगवज्जिनसेनको एक साधारण विद्वान् निश्चित करनेके लिये लम्बी चौड़ी चेष्टा कर रहे हैं। यह पंचम कालका प्रभाव है। इसकालने सृष्टीकी सारी सच्ची सरणीको इस प्रकार उलट पलट दिया है कि अब उसका सुलझना असम्भव नहीं, तो कठिन तो अवश्य है। खैर! इसके लिये विशेष चिन्ता करनेकी अपेक्षा इस विस्तृत कार्यक्षेत्रमें कुछ करना ही श्रेयस्कर है। यों तो जिनसेनका यह महापुराण

और पार्श्वाभ्युदयही वैराग्य रसके आदर्शभूत बने हुए है। तौभी उन्होंने जहां तहां शृंगाररसकी पार्विक–सुधांशु–चंद्रिका की ऐसी हृदय–सन्तापिका कविता ज्योत्स्ना छिटकायी है कि, उसे पढ़कर सहृदयोंका चित्तसागर हठात् उमड़ने लग जाता है। जैसे:—

बलिभं दक्षिणावर्त्ति नाभिमध्यं बभार सा।
नदीव जलमावर्त्तसंशोभि सतरङ्गकम् ॥

अर्थात्—श्रीमती श्रुताका मध्यभाग त्रिवलीसंयुक्त तथा दक्षिणावर्त नाभीवाला था। इसलिये वह ऐसा माल्रम पड़ा जैसा कि चकोहके साथ तरंग हो।

मध्यं स्तनभराक्रान्ति चिन्तयेवात्ततानवम्।
रोमावलिच्छलेनास्या दधेत्वष्टम्भयष्टिकम् ॥

उनकी कटी पयोधरके भार तथा चिन्तासे दबी जा रही है। कहीं टूट नहीं जाय! इसलिये मानो रोमावलीके व्याजसे रोकनेका खम्भा (ठेघुनी) लगाया गया है।

लतवासौ मृदू बाहू दधे विटपसच्छविम्।
नखांशुमञ्जरी चास्याः धत्तेस्म कुसुमाश्रियम् ॥

लताकीसी श्रुताकी दोनों बाहें सुन्दरविटपकी छबि दिखला रही है और नखोंकी चमक पुष्पकी भी शोभाको मात कर रही है।

आनील-चूचुकौ तस्याः कुचकुंभौ विरेजतुः।
पूर्णौ कामरसस्येव नीलरत्नाभिमुद्रितौ ॥ ७१ ॥ पर्व ६ ॥

नीले मुँहवाले उनके दोनों कुचकुम्भ बड़ेही शोभ रहे हैं। ये ऐसे माल्रम पड़ते है कि कामरससे परिपूर्ण घड़ेपर नीलम पत्थर की मुहर करदी गयी हो।

स्तनांशुकं शुकच्छायं तस्याः स्तनतटाश्रितम्।
बभासे रुद्धपङ्कजं कुड्मलं शैवलं तथा ॥ ७२ ॥

उनके स्तनपर शुककी भाँति हररंगका कपड़ा कमलमें लिपटे हुए शैवालके ऐसा माल्रम पड़ता था।

स्वकलावृद्धिहानिभ्यां चिरं चांद्रायणं तपः।
कृत्वा नूनं शशी प्रापत्तद्वक्त्रस्योपमानताम् ॥ ६–७६ ॥

चंद्रमाने अपनी कलाकी हानि-वृद्धिद्वारा बहुत दिनोंतक चांद्रायणव्रत करके तो पीछे इनके मुखकी समता कुछ पाई है।

मंद-माधूत-मन्दार-सांद्र-किञ्जल्क-पिञ्जरः ।
पुञ्जितालिरुतामञ्जुरागुञ्जन्मरुदाववौ ॥ ६-९९ ॥

धीरे धीरे हिलाये गये मन्दारवृक्षके घने परागसे पीलापन लिये हुए पुंज पुंज भंवरोंकी ध्वनिसे मञ्जु मंजु गुंजार करती हुई हवा बह रही है। पुंजीभूत भ्रमर है? या सनसनाती हुई हवा है?

पाठको! भगवज्जिनसेनने उपर्युक्त श्लोकोंमें श्रृंगार वर्णनके साथ साथ उपमा और उत्प्रेक्षाकी तो अटूट सम्पत्ति रखदी है। यद्यपि आपके प्रतिभाकाशमें वैराग्यरसके स्थायी प्रावट्कालीन मेघ सदा उमड़े रहते थे, तथापि श्रृंगाररूपी चञ्चलाने अपनी मौहूर्तिक चमकसे शान्तरसकी शोभा और दूनी सम्मानेके लिये, इनकी सर्वतोमुखी लेखनीमें अपूर्व शक्ति संचारित की है। इसके उदाहरण महापुराण और पार्श्वाभ्युदयही पर्याप्त हैं। इनके पढ़नेवालोंको ऐतिहासिक बातोंके सिवाय काव्यकीभी अनेक मार्मिक बातें मालूम होती है। अन्तके श्लोकमें इन्होंनें माधुर्य्यगुणकाभी अच्छा उदाहरण दिया है।

कवियोंके लिये श्रृंगार वर्णन करना मानो, तलवारकी धारपर चलना है। क्योंकि कवि कुलगुरु कालिदासकी श्रृंगार रसकी कविताकी बाढ़ देखकर कई उद्भट आनुमानिक विद्वानोंने मन गढन्त आख्यायिका रच डाली हैं। उन लोगोंका कथन है कि, कालिदास विलासप्रिय थे। अमुक वारांगणाके साथ अमुक समय पकड़े गये इत्यादि। किन्तु मै समझता हूं कि, अनुमानद्वारा भारतवर्षके एक सर्वश्रेष्ठ कविको असच्चरित्र बना देना उचित नहीं। कविकी काव्यरचनाकी प्रतिभा ईश्वरीय है। उसकी शक्ति जादूकीसी है। न मालूम वह कब कौनसे अलौकिक दृश्यको दिखावेगी। नहीं तो राजा दरिद्रका और दरिद्र राजाका, विषयी वीतरागका, और वीतराग विषयीका कभी वर्णन करही नहीं सकते। ऐसे कई अन्योन्याश्रित विषय उपस्थित हो सकते हैं। हमे आश्चर्य तो इस बातका है कि दशकुमारचरितके रचयिता दण्डी कवि और मृच्छकटिकके रचयिता राजा शूद्रककी प्रतिष्ठा भारत वर्षीय विद्वानोंने अभीतक बना रक्खी है। अर्थात् दण्डी कविको विषयी और चोर तथा शूद्रक कविको दरिद्र और चोर नहीं बनाया यहीं गनीमत है। कविवर कालिदासकी जीवनावस्थाकी सच्ची घटना जान बूझकर यदि उपर्युक्त कलंक इनपर लगाया गया हो तो कुछ बात नहीं, किन्तु जो मनगढन्त निंदा-स्तुति करनेवाले हैं वे भगवज्जिनसेनके काव्य और इनकी वीतरागता देखकरभी तो हमारे संस्कृतसाहित्यके सर्वस्व कालिदासके सिरसे विलासप्रियताका कलंक उतारें। और नहीं तो सब जाने दें रुद्रटकी निम्नलिखित उक्तिही कवियोंको निर्दोष बनानेके लिये काफी है:—

"नहि कविना परदारा एष्टव्या नापि चोपदेष्टव्याः ।
कर्तव्यतयान्येषां न च तदुपायोऽभिधातव्यः ॥
किन्तु तदीयं वृत्तं काव्याङ्गतया स केवलं वक्ति ।
आराधयितुं विदुषस्तेन न दोषः कवेरत्र ॥ "

उपमा.

विद्युत्वन्तो महाध्वाना वर्षन्तो रेजिरे घनाः ।
सहेमकक्ष्या मदिनो नागा इव सबृंहिताः ॥ ३–६७ ॥

यह बादल बिजलीकी चमकाहटके साथ गरज गरजकर बरसनेसे खूब शोभ रहा है । जैसे सुवर्णसूत्र धारण किये मदमत्त हाथी गरज रहा हो वैसा यहभी देख पड़ता है ।

केचिद्गिरिसरित्पूराः प्रावर्तन्त महारयाः ।
धातुरागारुणामुक्तरक्तमोक्षा इवाद्रिषु ॥ ७२ ॥

पर्वतोंपर कहीं गेरुके रंगसे लाल हुए नदियोंके प्रवाह बड़ी शीघ्रतासे उस समय बह रहे थे । किन्तु यह प्रवाह ऐसा मालूम पड़ता था कि, जैसे आपसमें पहाड़ और बादलोंके टकरा जानेसे रक्तका प्रवाह बह रहा हो ।

मार्दङ्गिककरास्फालादिव वातविघट्टनात् ।
पुष्करेष्विव गंभीरं ध्वनत्सु जलवाहिषु ॥ ७३ ॥
विद्युन्नटी नभोरङ्गे विचित्राकारधारिणी ।
प्रतिक्षणं विवृत्ताङ्गी नृत्यारम्भमिवा करोत् ॥ ७४ ॥

मेघोंको वायुसे टकरा जानेपर उनसे ऐसी गम्भीर ध्वनि होती थी कि, मानो वाद्य बजानेवालोंके हाथकी धीमी चोटसे मृदङ्गोंका शब्द होता है । उस समय बिजलीका चमकना ऐसा मालूम पड़ता था कि, मानो आकाशरूपी रंगभूमिमें अनेक रूप धारण करती तथा क्षण क्षणमें कई स्वाङ्गोंको स्वीकार करती हुई. बिजलीरूपिणी नटी मेघरूपी वाद्यके आधारपर नृत्य कर रही है ।

अन्तिम श्लोकसे यही बात साफ साफ मालूम होती है कि, भगवज्जिनसेन नाट्य विषयोंसे भली भांति परिचित थे । सर्व साधारणकी समझमे आजानेके लिये आपने बड़ी सरलतासे उपमापदका प्रयोग किया है । इसलिये आपके उपमाप्रधान दो पद्य और यहां उद्धृत करते हैं ।

सैषा स्वयम्प्रभास्यासीत्परा सौहार्द-भूमिका ।
चिरं मधुकरस्येव प्रत्यग्रा चूतमञ्जरी ॥ २८७ ॥

जैसे आमकी नयी मंजरी मधुकरोंको बड़ी स्नेहपात्र होती है, उसी प्रकार स्वयम्प्रभा ललिताङ्गदेवको परमप्रेमस्थली हुई।

स्वयम्प्रभाननालोक-तद्गात्रस्पर्शनोद्भवैः।
स रेमे करिणीसक्तः करीव सुचिरं सुरः॥ २८८॥

ललितांगदेवने स्वयम्प्रभाके मुखावलोकन तथा उनकी देहके स्पर्श-जन्यसुखसे हथिनीमें आसक्त हाथीके ऐसा बहुत कालतक आमोद प्रमोद किया। स्थालीपुलाकन्यायवत् इनकी उपमाकी दिग्दर्शिता मैं इतनीही बस समझता हूं। आगे इनके दिखाए हुए कुछ पर्वतकाभी दृश्य मैं पाठकोंको दिखाता हूं।

वनैश्चतुर्भिराभान्तं जिनस्येव सभोदयं।
श्रुतस्कंधमिवानादि निधनं सप्रमाणकम्॥ ५-१६२॥

अशोक आम्रादि चार वनोंसे शोभता हुआ जिनेंद्र भगवानकी समवसरण रचित सभाकेसे और प्रमाणसहित अनादिनिधन श्रुतस्कंधके ऐसा—

महीभृतामधीशत्वात्सद्वृत्तत्वात्सदास्थितेः।
प्रवृद्धकटकत्वाच्च सुराजानमिवोन्नतम्॥ ५-१६३॥

पर्वतोंके अन्यत्र राजाओंके अधीश होनेसे, सत्संगतसे, अन्यत्र स्थावरतासे, सेनाकी अधिकतासे, अन्यत्र पाषाणकी बहुलतासे, उन्नतशील राजाके ऐसा वह उन्नत पर्वत—

सर्वलोकोत्तरत्वाच्च ज्येष्ठत्वात्सर्वभूभृताम्।
महत्वात्स्वर्णवर्णत्वात्तमाद्यमिव पूरुषम्॥ ५-१६४॥

संसारमें सर्वोत्कृष्ट होनेके कारण, सब पहाड़ोंमे ऊंचा होनेसे और सुनहले रंगके समान होनेसे यह पर्वत आदि पुरुषके ऐसा मालूम पड़ता था।

समासादितवज्रत्वादप्सरःसंश्रयादपि।
ज्योतिःपरीतमूर्तित्वात्सुरराजमिवापरम्॥ ५-१६५॥

वज्रधारण करनेसे, अप्सराओंके आश्रित रहनेसे और चारोओर ज्योतिके छिटिकनेसे दूसरा इंद्रके ऐसा यह मालूम पड़ताथा।

चूलिकाग्रसमासीनं सौधर्मेन्द्रविमानकम्।
स्वर्लोकधारणे न्यस्तमिवैकं स्तंभमुच्छ्रितम्॥ ५-१६६॥

जिसकी चोटी सौधर्मेन्द्र विमानको छुए हुई है, इसलिये यह पर्वत ऐसा मालूम पड़ता था कि, स्वर्गको उठाए हुआ एक ऊंचा स्तंभ हो।

मेखलाभिर्वनश्रेणीर्दधानं कुसुमोज्ज्वलाः ।
स्पर्धयेव कुरुक्ष्माजैः सर्वर्तुफलदायिभिः ॥ ५-१६७ ॥

अपनी मेखला (नीचेके चारोतरफके भाग) से कुसुमित वनपंक्तियोंको धारण किये हुआ सब ऋतुओंमें फलनेवाले कुरुदेशके वृक्षोसे स्पर्धालुके ऐसा यह पहाड़ माळूम पड़ रहा है।

हिरण्मयमहोदग्रवपुषं रत्नभाजुषं ।
जिनजन्माभिषेकाय बद्धं पीठमिवामरैः ॥ ५-१६८ ॥

रत्नोंसे देदीप्यमान, सुवर्णमय ऊंचा पर्वत ऐसा माळूम होता है कि, देवताओंने जिनेन्द्र भगवान्के स्नानके लिये स्नानपीठिका तयार करली हो।

जिनाभिषेकसम्बन्धाज्जिनायतनधारणात् ।
स्वीकृतेनेव पुण्येन प्राप्तं स्वर्गमनर्गलम् ॥ ५-१६९ ॥

जिनेंद्र भगवानके स्नान करनेसे अथवा जिनचैत्यालय धारण करनेसे माळूम पड़ता है कि, इसने अनर्गल स्वर्ग प्राप्त कर लिया हो।

लवणाम्भोधिवेलाम्भोवलयश्लक्ष्णवाससः ।
जम्बूद्वीपमहीभर्तुः किरीटमिव सुस्थितम् ॥ १७० ॥

क्षार समुद्रके किनारेका जलही सुंदर कपड़ा है जिसका ऐसे जम्बूद्वीप महाराजके किरीटके सदृश यह पर्वत दीख पड़ता था।

कुलाचलपृथूत्तुङ्गवीचिभङ्गोपशोभिनः ।
संगीतमहतातोद्यविहङ्गरुतशालिनः ॥ १७१ ॥

पर्वतोंकी उत्तुंगतारूपी लहरोंसे शोभनेवाले, और पक्षियोंके कूजनसे संगीतके बाजेकी छटा दिखानेवाले-

महानदीजलाल्लोलमृणालविलसद्गुतेः ।
नंदनादिमहोद्यानविसर्पत्पत्रसम्पदः ॥ १७२ ॥

महानदीके जलमें चंचल सुंदर बिसतंतूकोंसे समुज्ज्वल और नंदनवाटिकाके पत्तोंसे शोभनेवाले—

सुरासुरसभावासभासितामरसश्रियः ।
सुखासवरसासक्तजीवभृङ्गावलीभृतः ॥ १७३ ॥

देवादिकोंकी सभामें कमनीय कमलकी शोभा धारण करनेवाले और सुखरूपी पुष्परसमें लीन जीवरूपी भ्रमरोंको रखनेवाले—

जगत्पद्माकरस्यास्य मध्ये कालानिलोद्धतम् ।
विबृद्धमिव किंजल्कपुंजमापिंजरच्छविम् ॥ १७४ ॥

ऐसे जगद्रूपी महासमुद्रके बीचमें कालरूपी वायुसे लाये गये, संवर्द्धित परागके ढेरसे पिंगलवर्णकी छटाकीसी छटावाले,—

सरत्नकटकं भास्वच्चूलिकामुकुटोज्ज्वलम् ।
सोऽदर्शद्गिरिराजं तं राजन्तं जिनमंदिरैः ॥ १७५ ॥

रत्नवलयके सहित कलशाकार मुकुटके सदृश चमकते हुए और जिनमंदिरोंसे विशेष शोभते हुए महाराजकेसे गिरिराजको देखा ।

पाठको ! उत्प्रेक्षाकी उच्चता तथा श्लेषालंकृतिकी निपुणताभी इस पुराणमें अच्छी तरह दिखलायी गयी है । उपमाप्रधानकाव्याभिनयके सूत्रधार होते हुएभी इन्होने अन्यान्य अलंकारोंके मर्म अंकित करनेमें कुछ कसर नहीं रक्खी है । आपने पर्वतकी उपमा सुराजसे देकर अपनी नीतिज्ञताकाभी अच्छा परिचय दिया है । एक जगह तो भगवज्जिनसेनने शीतोष्ण किरणवाले चंद्रमा और सूर्यके वर्णनके व्याजसे श्लेषालंकारके आधारपर राजनीतिका अच्छा उपदेश किया है । उपर्युक्त वर्णनमें प्रायः आदिकवि महर्षि वाल्मीकिजीकी वर्णनपरंपराकी कुछ आभा दिखलाई देती है । अब मैं यहा भगवज्जिनसेनके रूपकादि अलंकारकीभी एक दो बानगी दिये देता हूं ।

स्तनचक्राह्वये तस्याः श्रीखण्डद्रवकर्दमे ।
उरस्सरसि रेमेऽसौ सत्कुचांशुकशैवले ॥ पर्व ८-९ ॥

स्तनही हैं चक्रवाक जिसके, चंदनरूपी कर्दमवाले और स्तनरूपी कंचुकीहीसे शेवालकी शोभा धारण करनेवाले वक्षःस्थलरूपी सरोवरमें इन्होने रमण किया ।

यथा शरन्नदीतीरपुलिनं हंसकामिनी ।
भव्यावलिस्तथाध्यात्मशास्त्रं प्राप्य प्रमोदते ॥ १६० ॥

जैसे शरत्कालमें नदीके तटपर हंसपत्नी परमानंदको प्राप्त करती है वैसे भव्यावलि (मुमुक्षु जन) अध्यात्मशास्त्रका तत्त्व समझकर आनंदसमुद्रमें गोते लगाते है ।

यथा कुसुमितं चूतकाननं कलकण्ठिका ।
द्वीपं नन्दीश्वरं प्राप्य यथा वा पृतनामरी ॥

जिस प्रकार प्रफुल्लित आम्रकाननमें जाकर कोयल प्रसन्न होती है और जैसे नंदीश्वरद्वीप पाकर देवताओंकी सेना प्रसन्न होती है ·

तथेदं पट्टकं प्राप्य श्रीमत्यासीदनाकुला ।
मनोऽभीष्टार्थसंपत्तिः कस्य वा नोत्कतां हरेत् ॥

उसी प्रकार इस चित्रको पाकर श्रीमती बहुत प्रसन्न हुई । सच है, इच्छित वस्तुकी प्राप्ति भला किसीकी उत्कंठा नहीं दूर करती ?

पाठको ! इन्होंने पहले श्लोकमे रूपकालंकारकी अच्छी मूर्ति अंकितकी है और तीसरे श्लोकमे आपकी अध्यात्मशास्त्रकी प्राञ्जलताभी अच्छी तरह ज्ञात होती है ।

भगवज्जिनसेनः—

वसुन्धरा महादेवी पुत्रकल्याणसम्पदा ।
तया प्रमोदपूर्णांगी न स्वांगे नन्वमात्तदा ॥ (७–२०४) ॥

अर्थात्—महादेवी वसुन्धरा पुत्रविवाहजनित अमंद आनंदसे फूली नही समायी ।

कवि–श्रेष्ठ–माघकविः—

ततो ममुस्तत्र न कैटभद्विषस्तपोधनाभ्यागमसंपदा मुदः ।

अर्थात्—नारद ऋषिके आनेकी खुशी श्रीकृष्णचंद्रजीकी देहमें नहीं अँटी.

भगवज्जिनसेनः—

क गंभीरः पुराणाब्धिः क मादृग्बोध–दुर्विधः ।
सोऽहं महोदधिं दोर्भ्यां तितीर्षुर्यामि हास्यताम् ॥ १–२८ ॥

कहाँ तो अथाह पुराण समुद्र ? और कहाँ मुझसा अल्पज्ञ–व्यक्ति वर्णन करनेवाला ? इसलिये हाथोंसे तैर कर समुद्र पार होनेकी इच्छा करनेवालोंकीसी मेरी हँसी होगी ।

कविवर कालिदासः—

क सूर्यप्रभवो वंशः क चाल्पविषया मतिः ।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥

अर्थात्—कहाँ सूर्यवंश ? और कहाँ मेरी तुच्छबुद्धि ? इसलिये सूर्यवंशका वर्णन करना मोहसे दुस्तर समुद्रको डोंगीसे पार होनेकासा है ।

भगवज्जिनसेनः

पुराणकविभिः क्षुण्णे कथामार्गेऽस्ति मे गतिः ।
पौरस्त्यैः शोधितं मार्गं को वा नानुव्रजेज्जनः ॥

अर्थात्—पुराणकार कवियोंसे क्षुण्ण (परिस्कृत) मार्गमें यह मेरी गति है, क्यो कि नागरिकोसे परिशोधित मार्गमें कौन नहीं चल सकता ?

कविवर कालिदासः—

अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन्पूर्वसूरिभिः ।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः ॥

यानि पूर्व कवियोंने इस सूर्यवंशका वचन रूपी दरवाजा खोल दिया गया है, इसलिये वज्रसे छेदी गयी मणिमें सूत्रकीसी मेरी गति है ।

इन उपर्युक्त काव्योंसे पाठक, स्वयं विचार कर सकते हैं कि, भगवज्जिनसेन और कविवर कालिदास ये दोनों समसामयिक कवि अपने काव्यमें सर्वोत्कृष्टता दिखानेके लिये कितना प्रयास करते थे ? केवल प्रयासही तक नहीं बल्कि सफलताभी प्राप्त करते थे । जिसकी साक्षिता उपर्युक्त पद्यही दे रहे है ।

अमोघवर्षका राज्यत्वकाल.

अमोघशासने तस्मिन्भुवं शासति भूभुजि ।
न दण्ड्यपक्षः कोऽप्यासीत्प्रजानामकृतागसाम् ॥

अर्थात्–वज्रजंघराजाके अप्रतिहत शासन करनेपर निरपराधिनी प्रजाओको कभी दंड नहीं हुआ ।

उपर्युक्त श्लोकमें जो **अमोघशासन** यह पद है इससे मालूम पड़ता है कि, वज्रजंघके विशेषण व्याजसे इन्होंने अपने शिष्य गठोर कुलतिलक (राष्ट्रकूट वंशीय) महाराज अमोघ वर्षको याद किया है । क्योंकि अप्रासंगके भयसे इस पुराणमें मुख्यतया तो इन्होंने अमोघवर्षकी चर्चा की नहीं; किन्तु शिष्य–वात्सल्योद्रेकसे इन्होंने इस श्लोकमे अमोघवर्षकी बड़ी विशद रीतिसे राज्यशासनप्रणाली तथा नामका उल्लेख किया है ।

मै पहले कह आया हू कि, भगवज्जिनसेनने इस पुराणमें प्रायः सभी विषयोंका समावेशकिया है । इनका आशय बड़ाही उच्च था । इस पुराणको इन्होंने आदर्शरूपसें प्रणयन किया है । एकही पुराणमें जिसतरह इन्होंने चौबीसो तीर्थङ्करोंकी कथा लिख डालनेका सुसङ्कल्प कियाथा उसी प्रकार साहित्य तथा काव्योंके प्रायः सभी अङ्गोंकीभी चर्चा करनेमें आप बाज नहीं आये है । मैंने यहां स्थूल-रूपमे इनके काव्यका कुछ विवेचन किया है । आगामी किरणोंमें इनका सूक्ष्म-पाण्डित्य दिखानेका प्रयास करूं गा ।

हरिवंशपुराण.

अनुक्रमसंख्या ३.

विषय—ऐतिहासिक (प्रथमानुयोग).

ग्रन्थकार—श्रीजिनसेनाचार्य.

भाषा—संस्कृत और हिन्दी.

लिपि—नागरी.

ग्रन्थविवरण—प्राचीन. हस्तलिखित, शुद्ध प्रति, पत्रसंख्या ४२५, श्लोक-संख्या ११०००, अध्याय ६६.

ग्रन्थकी प्रतिलिपि करनेका समय सम्वत् १८६४.

मंगलाचरण ।

ॐनमो वीतरागाय ॥

सिद्धं ध्रौव्यव्ययोत्पादलक्षणं धर्म्मसाधनम् ।
जैनं द्रव्याद्यपेक्षातः साधनाद्यथ शासनम् ॥ १ ॥

शुद्धज्ञान-प्रकाशाय लोकालोकैकभानवे ।
नमः श्रीवर्द्धमानाय वर्द्धमानजिनेशिने ॥ २ ॥

* * * * *

जीवसिद्धिविधायेह कृतयुक्त्यनुशासनम् ।
वचः समन्तभद्रस्य वीरस्येव विजृम्भते ॥ ३० ॥

जगत्प्रसिद्धबोधस्य वृषभस्येव निस्तुषाः ।
बोधयन्ति सतां बुद्धिं सिद्धसेनस्य सूक्तयः ॥ ३१ ॥

इन्द्रचन्द्रार्कजैनेन्द्रव्यापिव्याकरणेक्षणाः ।
देवस्य देवसंघस्य न वन्द्यन्ते गिरः कथम् ॥ ३२ ॥

वज्रसूरेर्विचारिण्यः सहेत्वोर्बन्धमोक्षयोः ।
प्रमाणधर्म्मशास्त्राणां प्रवक्तृणामिवोक्तयः ॥ ३३ ॥

महासेनस्य मधुरा शीला-लंकारधारिणी ।
कथा न वर्णिता केन वनितेव सुलोचना ॥ ३४ ॥

कृतपद्मोदयोद्योता प्रत्यहं परिवर्तिता ।
मूर्तिः काव्यमयी लोके रवेरिव रवेः प्रिया ॥ ३५ ॥
वरांगनेव सर्वाङ्गैर्वराङ्गचरितार्थवाक् ।
कस्य नोत्पादयेद्गाढमनुरागं स्वगोचरम् ॥ ३६ ॥
शान्तस्थापि च वक्रोक्ती रम्योत्प्रेक्षा बलान्मनः ।
कस्य नोद्घाटिते न्वर्थे रमणीयेऽनुरञ्जयेत् ॥ ३७ ॥
यो शेषोक्तिविशेषेषु विशेषः पद्यगद्ययोः ।
विशेषवादिता तस्य विशेषत्रय-वादिनः ॥ ३८ ॥
आकूपारं यशो लोके प्रभाचन्द्रोदयोज्ज्वलम् ।
गुरोः कुमारसेनस्य विचरत्यजितात्मकम् ॥ ३९ ॥
जितात्मपरलोकस्य कवीनां चक्रवर्तिनः ।
वीरसेनगुरोः कीर्तिरकलङ्कावभासते ॥ ४० ॥
यामिताभ्युदये तस्य जिनेंद्रगुणसंस्तुतिः ।
स्वामिनो जिनसेनस्य कीर्तिः संकीर्तयत्यसौ ॥ ४१ ॥
वर्द्धमानपुराणोद्यदादित्योक्तिगभस्तयः ।
प्रस्फुरन्ति गिरीशान्तः स्फुटस्फटिकभित्तिषु ॥ ४२ ॥
निर्गुणोपि गुणान्साद्भिःकर्णपूरिकृताकृतिः ।
बिभर्त्येव वधूवक्त्रे चूतस्येवाम्रमंजरी ॥ ४३ ॥
साधुरस्यति काव्यस्य दोषवत्तामयाचितः ।
पावकः शोधयत्येव कलधौतस्य कालिकाम् ॥ ४४ ॥
काव्यस्यान्तर्गतं लेपं कुतश्चिदपि सत्समाः ।
प्रक्षिपन्ति बहिः क्षिप्रं सागरस्येव वीचयः ॥ ४५ ॥
मुक्ताफलतयादाना परिषद्भिः कृतिः स्फुरेत् ।
जलात्मापि विशुद्धाभिस्तोयधेरिव शुक्तिभिः ॥ ४६ ॥
दुर्वचोविषदुष्टान्तर्मुखेफुरितजिह्वकान् ।
निगृह्णन्ति खलव्यालान् सन्नरेन्द्राः स्वशक्तिभिः ॥ ४७ ॥
रजोबहुलमारूक्षं खलं कालं विदाहिनम् ।
सन्तः कालैकलब्धाम्भाः शमयन्ति यथा घनाः ॥ ४८ ॥
साध्वसाधुसमीकारप्रवृत्त (?) मम्बुधं बुधाः ।
वारयन्ति तमोराशिं रवीन्द्वोरिव रश्मयः ॥ ४९ ॥
इत्थं साधुसहायोऽहमनातंकमनुद्धतम् ।
देहं काव्यमयं लोके करोमि स्थिरमात्मनः ॥ ५० ॥
बद्धमूलं भुवि ख्यातं बहुशाखाविभूषितम् ।
पृथुपुष्पफलं पूतं कल्पवृक्षसमं परम् ॥ ५१ ॥

अरिष्टनेमिनाथस्य चरितै प्रोज्ज्वलीकृतम् ।
पुराणं हरिवंशाख्यं ख्यापयामि मनोहरम् ॥ ५२ ॥

द्युमणिद्योतनं द्योत्यं द्योतयन्ति यथार्णवः ।
मणिप्रदीपखद्योतविद्युतोऽपि यथायथम् ॥ ५३ ॥

द्योतितस्य तथा तस्य पुराणस्य महात्मभिः ।
द्योतने वर्त्ततेऽत्यल्पो मादृशोऽप्यनुरूपतः ॥ ५४ ॥

विप्रकृष्टमपि ह्यर्थं सौकुमार्ययुतं मनः ।
सूरिसूर्यकृतालोकं लोकः सोऽर्चिरवेक्षते ॥ ५५ ॥

पञ्चधा प्रविभक्तार्थं क्षेत्रादिप्रविभागतः ।
प्रमाणमागमाख्यं तत्प्रमाणपुरुषोदितम् ॥ ५६ ॥

तथा हि मूलतन्त्रस्य कर्त्ता तीर्थंकरः स्वयम् ।
ततोऽप्युत्तरतन्त्रस्य गौतमाख्यो गणाग्रणीः ॥ ५७ ॥

उत्तरोत्तरतंत्रस्य कर्तारो बहवः क्रमात् ।
प्रमाणं तेऽपि नः सर्वे सर्वज्ञोप्यनुवादिनः ॥ ५८ ॥

जयकेवलिनः पञ्च ते चतुर्दशपूर्विणः ।
क्रमेणैकादश प्राज्ञा विज्ञेया दशपूर्विणः ॥ ५९ ॥

पञ्चैवैकादशाङ्गानां धारकाः परिकीर्त्तिताः ।
आचारांगस्य चत्वारः पञ्च चेति युगस्मृतिः (?) ॥ ६० ॥

वर्द्धमानजिनेन्द्रस्यादिन्द्रभूतिः श्रुतं दधे ।
ततः सुधर्म्मस्तस्मात्तु जम्बूनामान्त्यकेवली ॥ ६१ ॥

तस्माद्विष्णुः क्रमात्तस्मान्नंदिमित्रोऽपराजितः ।
ततो गोवर्द्धनो दध्रे भद्रबाहुः श्रुतं ततः ॥ ६२ ॥

दश पूर्व विशाखाख्यः प्रोष्ठिलः क्षत्रियो जयः ।
नागसिद्धार्थनामानौ धृतिषेणगुरुस्ततः ॥ ६३ ॥

विजयो बुद्धिलाभिख्यो गंगदेवाभिधस्ततः ।
दशपूर्वधरोऽन्यस्तु धर्म्मसेनमुनीश्वरः ॥ ६३ ॥

नक्षत्राख्यो यशःपालः पाण्डुरेकादशां धृतः ।
ध्रुवसेनमुनिस्तस्मात्कंसाचार्यस्तुपञ्चमः ॥ ६४ ॥

सुभद्रोऽतो यशोभद्रो यशोबाहुरनन्तरः ।
लोहाचार्यस्तुरीयोऽभूदाचारांगधृतास्ततः ॥ ६५ ॥

पूर्वाचार्येभ्य एतेभ्यः परेभ्यश्च वितन्वतः ।
एकदेशागमस्यायमेकदेशोपदिश्यते ॥ ६६ ॥

अर्थतः पूर्व एवायमपूर्वो ग्रन्थतोऽल्पतः ।
शास्त्रविस्तारभीतिभ्यः क्रियते सारसंग्रहः ॥ ६७ ॥

मङ्गलाचरणके अन्तर्गत इसपुराणका संक्षिप्त सूत्र.

—— :o:——

लोकसंस्थानमत्रादौ राजवंशोद्भवस्ततः ।
हरिवंशावतारोऽतो वसुदेवविचेष्टितम् ॥ ७० ॥
चरितं नेमिनाथस्य द्वारवत्त्यां निवेशनम् ।
युद्धवर्णननिर्वाणे पुराणेऽष्टौ शुभा इमे ॥ ७१ ॥
संगृहादधिकारैः स्वैः संगृहीतैरलङ्कृताः ।
अधिकाराः सूत्रिताः प्राक् सूरिसूत्रानुसारिभि ॥ ७२ ॥
संग्रहैर्नवभागेन विस्तरेण च वस्तुतः ।
शासने देशता यस्माद्विभागः कथ्यते ततः ॥ ७३ ॥
वर्द्धमानजिनेन्द्रस्य धर्म्मतीर्थप्रवर्तनम् ।
गणभृद्गणसंख्यानं भूयो राजगृहागमम् ॥ ७४ ॥
गौतमश्रेणिकप्रश्नं क्षेत्रकालनिरूपणं ।
ततः कुलकरोत्पत्तिमुत्पत्तिं वृषभस्य च ॥ ७५ ॥
कीर्तनं क्षत्रियादीनां हरिवंशप्रवर्तनम् ।
मुनिसुव्रतनाथस्य तत्र वंशे समुद्भवम् ॥ ७६ ॥
दक्षप्रजापतेर्वृत्तं वसुवृत्तान्तमेव च ।
जननं वृष्णिपुत्राणां सुप्रतिष्ठस्य केवलम् ॥ ७७ ॥
वृष्णिदीक्षां तथा राज्यं समुद्रविजयस्य तु ।
वसुदेवस्य सौभाग्यमुपायेन विनिर्गमम् ॥ ७८ ॥
लाभं कन्यकयोस्तस्य सोमाविजयसेनयोः ॥
वन्यहस्तिवशीकारं श्यामया सह संगमम् ॥ ७९ ॥
अंगारकेण हरणं चम्पायां च विमोचनम् ।
लाभं गन्धर्वसेनाया मुनेर्विष्णोर्विचेष्टितम् ॥ ८० ॥
चरितं चारुदत्तस्य तस्यैव मुनिदर्शनम् ।
चारु नलियशोलाभं सोमश्रीलाभमेव च ॥ ८१ ॥
वेदोत्पत्तिमुपाख्यानं सौदासस्य नृपस्य तु ।
कपालि(?) कन्यकालाभं पद्मावत्युपलम्भनम् ॥ ८२ ॥
सप्राप्तिं चारुहासिन्या रत्नावत्यास्ततोऽपि च ।
सोमदत्तसुतालाभं वेगवत्याश्च संगमं ॥ ८३ ॥
लाभं मदनवेगाया बालचन्द्रावलोकनम् ।
प्रियङ्गुसुन्दरीलाभं बन्धुवत्यां समन्वितम् ॥ ८४ ॥
प्रभावत्याः परिप्राप्तिं रोहिण्याश्च स्वयम्वरम् ।
संग्रामे विजयं तस्य भ्रातृभिः सह संगमम् ॥ ८५ ॥

बलदेवसमुत्पत्तिं कंसोपाख्यानमेव च ।
जरासन्धस्य वचनात्सिंहस्यन्दनबन्धनम् ॥ ८६ ॥
यथा जीवयशोलाभं कंसस्य पितृबन्धनम् ।
देवक्या सह संयोगं ततोऽप्यानकदुन्दुभेः ॥ ८७ ॥
सत्पाति (?) मुक्तकादेशं कंससंक्षोभकारणम् ।
प्रार्थनं वसुदेवस्य देवकीप्रसवंप्रति ॥ ८८ ॥
आनकेन मुनेः प्रश्नमष्टपुत्रभवान्तरम् ।
चरितं नेमिनाथस्य पापप्रमथनं तथा ॥ ८९ ॥
उत्पत्तिं वासुदेवस्य गोकुले बालचेष्टितम् ।
ग्रहणं सर्वशास्त्राणां बलदेवोपदेशतः ॥ ९० ॥
चापरत्नसमारोपं कालिंद्यानागनाशनम् ।
वाजिवारणचाणूरमल्लकं सवधं ततः ॥ ९१ ॥
उग्रसेनस्य राज्यं च सत्यभामाकरग्रहं ।
सर्वज्ञातिसमेतस्य प्रीतिं च परमां हरेः ॥ ९२ ॥
जीवंयशाविलापं च जरासन्धतुषं ततः ।
प्रेषितस्य रणे कालयमनस्य पराभवम् ॥ ९३ ॥
तथा पराजितस्यापि मारणं हरिणा रणे ।
सौरीणां परमं तोषमकुतोभयतःस्थितिम् ॥ ९४ ॥
शिवदेव्याः सुतोत्पत्तौ षोडशस्वप्नदर्शनम् ।
फलानां कथनं पत्या नेमिनाथं समुद्भवम् ॥ ९५ ॥
मेरौ जन्माभिषेकं च बालक्रीडामहोदयम् ।
जरासन्धातिसन्धानं सौरिसागरसंश्रयम् ॥ ९६ ॥
देवताकृतमायातो जरासन्धनिवर्तनम् ।
विष्णोस्साष्टमभक्तस्य दर्भशय्याधिरोहणम् ॥ ९७ ॥
गौतमेन्द्रस्य वचनात्सागरस्यापसारणम् ।
कुबेरेणाक्षणात्तत्र द्वारवत्यां निवेशनं ॥ ९८ ॥
रुक्मिणीहरणं भास्वद्भातुप्रद्युम्नसम्भवम् ।
रौक्मिणोपहृतिं पूर्ववैरिणा धूमकेतुना ॥ ९९ ॥
विजयार्द्धे स्थितिं पित्रोर्नारदेनेष्टसूचनम् ।
प्राप्तिं षोडशलाभानां प्रज्ञप्तेरुपलम्भनम् ॥ १०० ॥
कालसंवर–संग्रामं पितृमातृसमागमम् ।
शम्बोत्पत्तिं शिशुक्रीडां प्रश्नं वापि पितुः पितुः ॥ १०१ ॥
तेन स्वहिंडनाख्यानं कुमाराणां च कीर्तनम् ।
वार्तोपलंभाद्दूतस्य प्रेषणं प्रतिशत्रुणा ॥ १०२ ॥

यादवानां सभाक्षोभं सेनयोरुपसर्प्पणम् ।
विजयार्द्धे खगक्षोभं वसुदेवपराक्रमम् ॥ १०३ ॥
अक्षौहिणीप्रमाणश्च रथिनोऽतिरथांस्तथा ।
महासमारथान्सर्वान्नृपानर्द्धरथानपि ॥ १०४ ॥
चक्रव्यूहव्यपोहार्थं गरुडव्यूहकल्पनं ।
सिंहगारुडविद्यासु रथाप्तिं बलकृष्णयोः ॥ १०५
नेमेः सारथिरूपेण मातलेरुपसर्प्पणम् ।
नेम्य (मि) ना वृष्णिपाथश्च चक्रव्यूहस्य भेदनम् ॥ १०६ ॥
क (?) न्दनं पाण्डुपुत्राणां धृतराष्ट्रसुतैः सह ।
सेनापत्योर्महायुद्धं कृष्णमाधवयोरतः ॥ १०७ ॥
चक्रोत्पत्तिं तथा विष्णोः जरासन्धवधस्ततः ।
विजयं वासुदेवस्य खेचरीभिर्निवेदितम् ॥ १०८ ॥
कृष्णकोटिशिलोत्थायं (?) वसुदेवागमं ततः ।
ततो दिग्विजयं दिव्यं रत्नानां च समुद्भवम् ॥ १०९ ॥
भ्रात्रो राज्याभिषेकश्च द्रौपदीहरणं सह (?) ।
पाण्डवैर्द्धातिकीखण्डाद्विष्णुनानयन पुनः (?) ॥ ११० ॥
नेमिसामर्थ्यविज्ञानं मज्जनं तदनन्तरम् ।
पूरणं पाञ्चजन्यस्य विवाहारम्भसंभ्रमम् ॥ १११ ॥
मृगमोक्षविधानश्च दीक्षणं केवलोदयम् ।
देवागमविभूतिं च समवस्थानकीर्त्तनम् ॥ ११२ ॥
राजीमत्यास्तपःप्राप्तिं द्विधा धर्म्मोपदेशनम् ।
धर्म्मतीर्थविहारश्च षट्सहोदरसंयमम् ॥ ११३ ॥
द्वीपायनमुनिक्रोधाद्द्वारावत्या विनाशनम् ।
रामकेशवयोःष्टुवं (स्तोत्रं) बन्धुपुत्रकलत्रयोः ॥ ११४ ॥
निर्गमं दुर्गमं कोशं कौशाम्बवनसेवनम् ।
सीरिरक्षणमुक्तस्य प्रमादाद्दैवयोगतः ॥ ११५ ॥
जरत्कुमारमुक्तेन शरेण हननं हरेः ।
ततो घातकशोकंच शोकं रामस्य दुस्तरम् ॥ ११६ ॥
सिद्धार्थबोधितस्यास्य निर्विण्णस्य तपस्यनं (?) ।
ब्रह्मलोकोपपादं च कौन्तेयानं तपोत्त्वमं (?) ॥ ११७ ॥
उर्ज्जयन्तगिरावन्ते नेमिनाथस्य निर्वृतिं ।
उपसर्गं जयन्तंच पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ ११८ ॥
दीक्षां जरत्कुमारस्य सन्तानन्तस्य चायतम् ।
हरिवंशपुराणस्य जितशत्रोश्च केवलम् ॥ ११९ ॥

पुरप्रवेशमन्ते च श्रेणिकस्य पृथुश्रियः ।
वर्द्धमानजिनेशस्य निर्वाणं गणिनां तथा ॥ १२० ॥
देवलोककृतं वक्ष्ये प्रदीपमहिमोदयं ।
हरिवंशपुराणस्य विभागोऽयं ससंग्रहः ॥ १२१ ॥

प्रशस्ति.

अमुष्य याताश्च तपोबलान्मुने-रवाप्तकैल्यफला मनुष्यता ।
मनुष्यभावो हि महाफलं भवे भवेदयं प्राप्तफलस्तपःफलात् ॥ १० ॥
इतीरितेयं हरिवंशसत्कथा समासतः श्रेणिकलोकविश्रुता ।
त्रिषष्टिसंख्यानपुराणपद्धतिं प्रदेशसम्बधवर्ती श्रियेऽस्तु ते ॥ ११ ॥
सुगौतमात्पुण्यपुराणपद्धतिं सपार्थिव-श्रेणिकपार्थिवस्तदा ॥
सुदृष्टिराकर्ण्य सकर्णतां गतो गतः पुरः प्रीतिमतिः कृतानतिः ॥ १२ ॥
चतुर्निकायामरखेचरादयो जिनं परीत्य प्रणपत्य भक्तितः ।
यथायथं जग्मुरजन्मकांक्षिणः प्रसिद्धसद्धर्मकथानुरागिणः ॥ १३ ॥
विहृत्य पूज्योऽपि महीं महीयसीम् महामुनिर्मोचितकर्म्मबन्धनः ।
इयाय मोक्षं जितशत्रुकेवली, निरन्तसौख्यप्रतिबद्धमक्षयम् ॥ १४ ॥
जिनेन्द्रवीरोऽपि विबोध्य सन्ततं समन्ततो भव्य-समूह-सन्ततिम् ।
प्रपद्य पावानगरीं गरीयसीं मनोहरोद्यानवने तदीयके ॥ १५ ॥
चतुर्थकालेऽर्द्धचतुर्थमासकैर्विहीनताविश्चतुरब्दशेषके ।
सकार्तिके स्वातिषु कृष्णभूतसु प्रभातसन्ध्यासमये स्वभावतः ॥ १६ ॥
अघातिकर्म्माणि निरुद्धयोगको विधूय घातीन्धनवद्विबंधनः ।
विबन्धनस्थानमवाप संकरो निरन्तरायोऽत्र सुखानुबन्धनम् ॥ १७ ॥
स पञ्चकल्याणमहामहेश्वरः प्रसिद्धनिर्वाणमहे चतुर्विधैः ।
शरीरपूजाविधिना विधानतः सुरैः समभ्यर्च्यत सिद्धशासनः ॥ १८ ॥
ज्वलत्प्रदीपालिकया प्रवृद्धया सुरासुरैर्दीपितया प्रदीप्तया ।
तदास्मपावानगरी समन्ततः प्रदीपिताकाशतला प्रकाशते ॥ १९ ॥
तथैव च श्रेणिकपूर्वभूभुजः प्रकृत्य कल्याणमयं सहप्रजाः ।
प्रजग्मुरिन्द्राश्च सुरैर्यथायथं प्रयाचमानाजिनबोधिमर्थिनः ॥ २० ॥
ततस्तु लोकः प्रतिवर्षमादरात् प्रसिद्धदीपालिकयात्र भारते ।
समुद्यतः पूजयितुं जिनेश्वरं जिनेन्द्रनिर्वाणविभूतिभक्तिभाक् ॥ २१ ॥
त्रयः क्रमात्केवलिनो जिनात्परे द्विषष्टिवर्षान्तरभाविनोऽभवत् ।
ततः परे पञ्च समस्तपूर्विणः तपोधना वर्षशतान्तरे गताः ॥ २२ ॥
त्र्यशीतिके वर्षशते तु रूपयुक् दशैव गीता दश पूर्विणः शतः ।
द्वये च विंशेऽगभृतोऽपि पञ्च ते सतेंऽगमाष्टादशके चतुर्मुनिः ॥ २३ ॥

गुरुः सुभद्रो जयभद्रनामापरो यशोबाहुरनन्तरस्ततः ।
महार्हलोहार्यगुरुश्च ये दधुः प्रसिद्धमाचारमहाङ्गम त्रते ॥ २४ ॥

महातपोवृद्धिनयन्धरश्रुतामृषिश्रुतिं गुप्तपदादिकां दधन् ।
मुनीश्वरोऽन्यः शिवगुप्तिसंज्ञको गुणैः स्वमर्हद्बलिरप्यधात्पदम् ॥ २५ ॥

समन्दरार्योपि च मित्रवीरविं गुरू तथान्योवलनोपमित्रकौ ।
विवर्द्धमानाय त्रिरत्नसंयुतश्रियान्वितः सिंहबलश्च वीरवित् ॥ २६ ॥

स पद्मसेनो गुणपद्मखण्डभृद्गुणाग्रणी व्याघ्रपदादिहस्तकः ।
स नागहस्ती जितदण्डनामभृत् सनन्दिषेणः प्रभुदीपसेनकः ॥ २७ ॥

तपोधनः श्रीधरसेनसंज्ञकः सुधर्मसेनोऽपि च सिंहसेनकः ।
सुनन्दिषेणेश्वरसेनकौ प्रभू सुनन्दिषेणाभयसेननामकौ ॥ २८ ॥

सुसिद्धसेनोभयभीमसेनकौ गुरू परौ तौ जिनशान्तिषेणकौ ।
अखण्डभृत्खंडमखण्डितस्थितिः समस्तसिद्धान्तमधत्त योऽर्थतः ॥ २९ ॥

दधार कर्म्मप्रकृतिं श्रुतिं च यो जिताक्षवृत्तिर्जयसेनसद्गुरुः ।
प्रसिद्धवैयाकरणप्रभाववा-नशेषराद्धान्तसमुद्रपारगः ॥ ३० ॥

तदीयशिष्योऽमितसेनसद्गुरुः पवित्रपुन्नाटगणाग्रणी गुणी ।
जिनेन्द्रसच्छासनवत्सलात्मना तपोभृता वर्षशताधिजीविना ॥ ३१ ॥

सुशास्त्रदानेन वदान्यतामुना वदान्यमुख्येन भुवि प्रकाशिताः ।
तदग्रजो धर्म्मसहोदरः शमी समग्रधीर्धर्म्म इवात्तविग्रहः ॥ ३२ ॥

तपोमयीं कीर्तिमशेषदिक्षु यः क्षिपन्बभौ कीर्तितकीर्तिषेणमाः (?) ।
तदग्रशिष्येण शिवाग्रसौख्यमा (?) गरिष्टनेमीश्वरभक्तिभारिणा ॥ ३३ ॥

स्वशक्तिभाजा जिनसेनसूरिणा धियाल्पयोक्ता हरिवंशपद्धतिः ।
यदत्र किंचिद्रचितं प्रमादतः परस्परव्याहतदोषदूषितम् ॥ ३४ ॥

तदप्रमादास्तु पुराणकोविदाः सृजन्तु जन्तुस्थिति शक्तिवेदिनः ।
प्रशस्तवंशो हरिवंशपर्वतः क मे मतिः काल्पतराल्पशक्तिका ॥ ३५ ॥

अनेन पुण्यप्रभवंस्तु केवलम् जिनेंद्रवंशस्तवनेन वाञ्छितः ।
न काव्यबंधव्यसनानुबन्धतो न कीर्तिसन्तानमहामनीषया ॥ ३६ ॥

न काव्यगर्वेण न चान्यवीक्षया जिनस्य भक्त्यैव कृता कृतिर्मया ।
जिनाश्चतुर्विंशतिरत्र कीर्तिताः मुकीर्तयो द्वादश चक्रवर्तिनः ॥ ३७ ॥

नवत्रिधास्सीरिहरिप्रतिद्विषः क्षितावितीत्थं पुरुषाः पुराणगाः ।
अवान्तरेऽनेकशतानि पार्थिवाः महीचरा व्योमचराश्च भूरिशः ॥ ३८ ॥

क्षितौ चतुर्भोगफलोपभोगिनः पुराणमुख्येऽत्र यशस्विनः स्तुताः ।
अगण्यपुण्य हरिवंशकीर्त्तनाद्यदत्र गण्यं गुणसंचितं मया ॥ ३९ ॥
फलादमुष्मात्तु मनुष्यलोकजाः भवन्तु भव्या जिनशासनस्थिताः ।
जिनस्य नेमेश्चरितं चराचरं प्रसिद्ध जीवादिपदार्थभासनम् ॥ ४० ॥

प्रवाच्यतां वाचकमव्यसज्जनैः समागतैः श्रोत्रपुटैः प्रपीयताम् ।
शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिशं पञ्चोत्तरेषूत्तराम् ।
पातीन्द्रायुधनाम्नि कृष्णनृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणाम् ॥
पूर्वां श्रीमदवन्तिभूभृति नृपे वत्सादिराजेऽपराम् ।
शौर्याणामधिमण्डलं जययुते वीरे वराहेऽवति ॥ ५३ ॥
कल्याणैः परिवर्द्धमानविपुला श्रीवर्द्धमाने पुरे
श्रीपार्श्वालयनन्न (?) राजवसतौ पर्याप्तशेषः पुरा ।
पश्चाद्दोस्तटिकाप्रजाप्रजनितप्राज्यार्चनावर्चने
शान्ते शान्तिगृहे जिने सुरचितो वंशो हरिणामयं ॥ ५४ ॥
व्युत्सृष्टापरसंघसन्ततिबृहन्पुन्नाटसंघान्वये
प्राप्तश्री जिनसेनसूरिकविना लाभाय बोधेः पुनः ।
दृष्टोऽयं हरिवंशपुण्यचरितः श्रीपर्वतः सर्वतो-
व्याप्ताशामुखमण्डलः स्थिरतरः स्थेयात्पृथिव्यां चिरम् ॥ ५५ ॥
इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य
कृतौ पर्वकमलवर्णनो नाम षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

इति हरिवंशपुराणं समाप्तम् ।

हरिवंशपुराणके मंगलाचरण और प्रशस्तिका आशयानुवाद.

ॐ नमो वीतरागाय।

ध्रौव्य व्ययोत्पादलक्षणावाला, धर्मका साधनभूत और द्रव्यादिकोंकी अपेक्षा सादि तथा अनादि जैनशासन सिद्ध है ॥ १ ॥

शुद्ध ज्ञानके प्रकाश करनेके लिये सारे लोकके एक सूर्य, जिनशासनवर्धक श्री **वर्द्धमान** स्वामीको नमस्कार है ॥ २ ॥

* * * * *

देखिये, संसारमें जीव–सिद्धि करके अकाट्य युक्तियोंसे भरी हुई संभ्रान्त वीरकेसे **श्रीसमन्तभद्र** स्वामीकी बातें आज सर्वत्र माननीय हो रही हैं ॥ ३० ॥

प्रसिद्ध बोद्धा वृषभकेसे **सिद्धसेनकी** स्वच्छ सूक्तियां सज्जनोकी मुद्रित बुद्धिको उन्मिषित करती रहती हैं ॥ ३१ ॥

इन्द्र, चंद्र, अर्क और जैनेन्द्र आदि व्याकरणोंके उत्सव स्वरूप श्रीदेवसंघकी बातें क्या नहीं माननीय होगीं ? यानि होही गीं ॥ ३२ ॥

न्याय तथा धर्मशास्त्रके व्याख्याताओंकी उक्ती की नाइ **वज्रसूरि**की सहेतुक बन्ध और मोक्षकी विचारशालिनी उक्तियां हैं ॥ ३३ ॥

सुंदर आंखवाली स्त्रीकीसी **महासेन**की विनयालंकारालंकृता कथा कौन नहीं वर्णित करेगा ? ॥ ३४ ॥

प्रतिदिन काव्यशोभा अथवा लक्ष्मीको बढ़ानेवाली संसारमें काव्यमूर्ति कीसी सूर्य प्रियाकी नाईं वरांग शब्दको परितार्थ करनेवाली वरांगनाकी ऐसी कविता भला किसके मनमें सुभग अनुराग नहीं उत्पन्न करती ॥ ३५।३६ ॥

जिनकी रम्य उत्प्रेक्षा और शान्तरसानुगामिनी वक्रोक्ति हठात् सब किसीके मनको मनोहर प्रशस्त अर्थमें अनुरंजित करती है ॥ ३७ ॥

गुरु **कुमारसेन**के प्रभापूर्ण चंद्रोदय काव्यका उज्ज्वल यश समुद्रपर्यंत अविजित-रूपसे फैला हुआ है ॥ ३९ ॥

इस लोक और परलोकको जीतनेवाले कविसम्राट् श्रीगुरु **वीरसेन**की कीर्ति स्वच्छ प्रभासित हो रही है ॥ ४० ॥

जिनसेनस्वामीने पार्श्वनाथ भगवानके गुणोंकी जो अपूर्व स्तुति बनाई है, वह उनकी कीर्तिका भली भांति संकीर्तन कर रही है। तथा उनके अभ्युदयका कारण हुई है। उनके रचे हुए वर्द्धमानपुराणरूपी उदयोन्मुख सूर्यकी उक्तिरूपी किरणें विद्वान् पुरुषोंकी अन्तःकरणरूपी स्फटिक भूमिमें स्फुरायमान हो रही है ॥ ४१-४२॥

जैसे आम्रमंजरी स्त्रियोंके मुखका भूषण हो जाती है, वैसेही सज्जनसे उपदिष्ट होकर निर्गुणीभी गुणोंको धारण करता है ॥ ४३ ॥

जैसे अग्नि सुवर्णकी कालिमा जलाकर अमूल्य तथा स्वच्छ बना देती है वैसे सज्जन बिना कहे हुएभी काव्यका दोप निकाल कर उसका गुण ग्रहण करते हैं ॥४४॥

जिस तरह समुद्रकी लहरें बाहरसे व्यर्थ आई हुई तृणादि वस्तुओंको बाहर फेंकती है, उसी तरह पण्डितमण्डलीभी काव्य गत दोषको बुद्धि-वैशद्यसे झट निकाल देती है॥४५॥

समुद्रका जल जिस तरहसे स्वच्छ शुक्तिओंसे शोभता है उसी तरह सभानुमोदित किसी कविकी कृति सर्वत्र प्रकाशित होती है ॥ ४६ ॥

दुष्टोंके मुखमें दुर्वचरूपी विषसे सर्पकी नाईं अनर्गलता भरी रहती है किन्तु अच्छे राजाएं अपनी शक्तिसे खलरूपी सर्पको दबा देते हैं ॥ ४७ ॥

रजोगुणविशिष्ट अथवा धूलिकी अधिकता, वा काव्यनीरसता आदि उपद्रवको मचानेवाले दुष्टकालको सदसद्विवेक सज्जनवर्षाकिसे शमन करते हैं ॥ ४८ ॥

भले बुरेकी परीक्षा नहीं करनेवालोंको विद्वान् लोग सूर्य तथा चंद्रमाकी किरणें जैसे अन्धकारको हटाती है, वैसेही औद्धत्यपनेसे रोकते हैं ॥ ४९ ॥

इसी प्रकार अनुद्विग्नता तथा अनुद्धतासे, सज्जनोंकी सहायतासे सहायवान् होकर पहले मैं अपनी इस काव्यमय देहको स्थिर करता हूं ॥ ५० ॥

बहुत शाखा प्रशाखाओंसे अलंकृत, जगत्प्रसिद्ध कल्पवृक्षके ऐसा बहुत पुण्यफलको देनेवाला, परम पवित्र और **अरिष्टनेमिनाथजीके** चरित्रसे प्रज्वलित सुन्दर हरिवंश नामका पुराण मैं प्रख्यात करताहू ॥ ५१-५२ ॥

जैसे सूर्यकी चमकको समुद्र, मणि, दीपक, खद्योत और बिजली यथाशक्ति विशेष प्रकाशमय करनेकी चेष्टा करती हैं। वैसेही पूर्वाचार्योंसे प्रकाशित पुराणकी ख्याति कुछ विशेष करनेके लिये मुझसे अल्पज्ञकी चेष्टा समझनी चाहिये ॥५३-५४॥

क्षेत्रादिके विभागसे पांच विभाग इसके किये गये हैं। प्रमाण, आगम इसमें प्रमाण तो पुरुषका बनाया हुआ है ॥ ५६ ॥

मूलतंत्रके कर्ता स्वयं तीर्थंकर हैं, और उत्तरतन्त्रके कर्ता गणधराग्रणी श्रीगौतम गणधर हैं ॥ ५७ ॥

और भी इसके उत्तरोत्तर जो तीन तंत्र हैं उनके कर्ता बहुतसे हो गये हैं, किन्तु सर्वज्ञ देवके कथनके ये लोग पीछा करनेवाले हैं इसलिये प्रमाणीभूत है ॥ ५८ ॥

पांच केवली पदके धारक, चतुर्दश पूर्वके धारक, एकादश प्राज्ञ, दशपूर्वके धारी, पांच मुनि एकादशांगके धारक, और आचारांगके चार (मुनि) धारक कहे गये हैं ॥ ५९.–६० ॥

वर्द्धमानजिनेन्द्रके शिष्य **इंद्रभूति**ने श्रुतको धारण किया । तत्पश्चात**सुधर्मा** अन्तकेवली **जम्बूस्वामी**नेभी धारण किया । क्रमशः निम्नलिखित आचार्य श्रुतके धारी हुए ॥ ६१ ॥

विष्णु, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन, भद्रबाहु ये श्रुतके धारी (श्रुतकेवली) हुए । ग्यारह अंग और दश पूर्वके धारी **विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिसेन विजय, बुद्धिल, गंगदेव** और **धर्मसेन** मुनीश्वर हुए । तत्पश्चात् **नक्षत्राचार्य, यशःपाल**, (जयपाल) **पाण्डु, ध्रुवसेन** और **कंसाचार्य** ये पाच एकादश अंगके धारी हुए ॥६२-६३-६४ ॥

तत्पश्चात् **सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु** (द्वितीय भद्रबाहु) और **लोहाचार्य** ये चार आचारांगके धारण करनेवाले हुए ॥ ६५ ॥

इन पूर्वाचार्योंसे विस्तारपूर्वक ग्यारह अंगके शास्त्रकी रचना हुई है उसका मैं एकदेश (कुछ अंश) लिखताहूं ॥ ६६ ॥

अर्थसे अथवा अल्प ग्रंथ होनेसे यह पुराण अपूर्व है। किन्तु बढ़ जानेके डरसे यहा मैं सार संग्रह करता हूं ॥ ६७-६९ ॥

पुराणभूमिकाके अन्तर्गत इस पुराणका संक्षिप्त सूत्र

इस पुराणमें पहिले लोगका संस्थान, पश्चात् राजाओंकी वंशोत्पत्ति, हरिवंशका अवतार, वसुदेवका अनेक प्रकारकी चेष्टा करना, नेमिनाथ महाराजका चरित्र, द्वारावतीमें प्रवेश करना, युद्ध वर्णन और निर्वाण ये आठ विषय इस पुराणमें बड़े ही मंगलसूचक मालूम पड़ते हैं ॥ ७०-७१ ॥

अपने संगृहीत पूर्व आचार्योंके सूत्रका पीछा करनेवाले अधिकारोंसे अधिकारोंको सूत्र बनाया और इसका नव भागोंमें विभाग किया हुआ है; सो उसीको मैं कहता हूं ॥ ७२-७३ ॥

वर्द्धमानजिनेंद्रका धर्मतीर्थका प्रचार करना, गणधरोंके गणकी स्थापना, फिर राजगृहवनमें आना, गौतम श्रेणिकका प्रश्न, क्षेत्र और कालका निरूपण करना, इसके बाद कुलकर तथा वृषभ (धर्मकी) की उत्पत्ति कही गयी है ॥ ७४-७५ ॥

इसके बाद क्षत्रियोंका कीर्तन तथा हरिवंशका प्रवर्तन हुआ। और इसी वंशमें **मुनिसुव्रत** नाथ तीर्थंकरकी उत्पत्ति हुई ॥ ७६ ॥

इसके बाद **दक्ष प्रजापति** (राजा) का वृतान्त और **वसु** राजाका वृत्तान्त लिखा हुआ है। तत्पश्चात् **वृष्णिपुत्रों**का जन्म, **सुप्रतिष्ठ**का केवलज्ञान, वृष्णियोंका दीक्षा धारण करना, **समुद्रविजय**का राज्य, और **वसुदेव**की सौभाग्यसंपत्तिका वर्णन है ॥७७-७८॥

तत्पश्चात् **वासुदेव**को **सोमा** और **विजयसेना** इन दो कन्याओंकी प्राप्ति, बनैले हाथीको वशीभूत करना तथा **श्यामा**के साथ समागम होना, **अंगारक**से उनका हरण होना, चम्पापुरीमें छुटकारा पाना, फिर गंधर्वसेनाकी प्राप्ति तथा **विष्णु**मुनिकी चेष्टा करना ॥ ७९-८० ॥

चारुदत्तका चरित्र पुनः उन्ही मुनिका दर्शन और विस्तृत यशका प्राप्त होना, **सोमश्री**का लाभ, **वेदकी उत्पत्ति, सौदास** राजाकी कथा, । और इसके बाद **कपिला**कन्यका और **पद्मावती**का प्राप्त होना लिखा है ॥ ८१-८२ ॥

पश्चात् **मदनवेगाकी** प्राप्ति, **बालचंद्रका** दर्शन, **प्रभावतीका** मिलना, **रोहिणीका** स्वयंवर, और युद्धमें उनकी विजय होना तथा भाईयोंके साथ मिलाप होना लिखा है ॥ ८३-८४-८५ ॥

बलदेवकी उत्पत्ति, **कंस**की कथा, **जरासंधके** कहनेसे सिंहस्यंदनको बांधना ८६

मूर्तिमान् यशका लाभ, **कंसके** पिताको बांधना, **वसुदेव**का **देवकी**के साथ संयोग, सत्पाति मुक्तका आदेश (?), **कंस**को संक्षोभ होना, **देवकी**के प्रसवके प्रति वसुदेवकी प्रार्थना ॥ ८७-८८ ॥

वसुदेवका मुनिसे आठ पुत्रोंके जन्मान्तरकी बात पूछना, पापविनाशक ऐसे श्री**नेमिनाथ**का चरित्रकी जिज्ञासा ॥ ८९ ॥

आगे भगवान् **श्रीकृष्ण**की उत्पत्ति, गोकुलमें बालक्रीडा और **बलदेव**जीके उपदेशसे सब शास्त्रोंका पठन करना, चापरत्नका चढ़ाना, **कालिन्दीके सर्प**को दबाना, पीछे अश्व हाथी तथा **चाणूरमल्लका** वध करना, **उग्रसेन**का राज्य करना, **सत्यभामाका** पाणिग्रहण करना, और सपरिवार **कृष्ण**को परमानन्द होना—वर्णन किया गया है ॥ ९०–९२ ॥

जीवंयशाका विलाप, **जरासंधका** संतुष्ट होना, रणमें भेज हुए **कालयवनका** पराभव होना वर्णन किया है ॥ ९३ ॥

तत्पश्चात् युद्धमें हरिसे अपराजितका मरण, वसुदेवको परम संतुष्ट होना तथा निर्भयता प्राप्त करना-लिखा है ॥ ९४ ॥

शिवादेवीको पुत्रोत्पत्तिमें सोलह स्वप्नोंका देखना, पतिसे इनका फल कहा जाना तथा **नेमिनाथ** भगवान् जन्मावतरण होना नेमिनाथको मेरुपर्वतपर जन्माभिषेक होना, बालक्रीडाका महोत्सव होना, तत्पश्चात् जरासंधका युद्ध करना लिखा है ॥९५-९६॥

फिर देवताकी मायासे जरासंधको युद्धसे हटना, अष्टमभक्तके साथ साथ **विष्णुको** दर्भासनपर विराजमान होना, गौतमेंद्रके कहनेसे सागरका हटाना, उत्सवके निमित्तसे कुबेरका द्वारावतीमें प्रवेश, तत्पश्चात् **रुक्मिणीका** हरण होना, सूर्यके समान तेजस्वी **प्रद्युम्नका** उत्पन्न होना और पूर्वशत्रु धूमकेतुसे प्रद्युम्नका हरण होनेका उल्लेख है ॥ ९७-९९ ॥

विजयार्द्धपर्वतपर प्रद्युम्नके निवासका वृत्तान्त नारदद्वारा **कृष्ण-रुक्मिणीको** मालूम होना और सोलह वर्षके बाद विद्याके साथ प्रद्युम्नका मिलना । प्रद्युम्नका काल-संवरके साथ युद्ध होना, तत्पश्चात् मातापिताका समागम होना तथा शंबूकुमारकी उत्पत्ति, बालक्रीडा और पितामहका प्रश्न करना वर्णित है ॥ १००-१०१ ॥

हिंडनाका आख्यान, कुमारोंका कीर्तन, वृत्तान्तोपलब्धिसे शत्रुके प्रति दूतको भेजना, यादवोंकी सभामें क्षोभ होना, तथा दोनो सेनाओंका आना ॥ १०२ ॥

विजयार्द्धपर्वतपर विद्याधरोंका क्षोभ होना, वसुदेवका पराक्रम दिखलाना, अक्षौहिणी (चतुरंग सेना) का प्रमाण, रथी, अतिरथी, महारथी, अर्द्धरथी आदि राजाओंका वर्णन, तथा चक्रव्यूहका नाश करनेके लिये **गरुड्व्यूहकी** योजना, बलदेव और कृष्णको सिंह और गारुडी विद्यामें सफलता प्राप्त कर लेना लिखा है ॥ १०३-१०५ ॥

सारथीके रूपसे **नेमिनाथको** मातुलके समीप जाना, नेमिनाथको वृष्णि और अर्जुनद्वारा चक्रव्यूहका भेदन करना, **पाण्डुपुत्रोंको** **धृतराष्ट्रके** पुत्रके साथ युद्ध होना, सेनापति कृष्णमाधवमें युद्ध, **विष्णुको** चक्ररत्नकी प्राप्ति होना, जरासंधका वध होना और विद्याधरियोंके द्वारा **वासुदेवका** विजय निवेदन होना उल्लिखित है ॥ १०६-१०८ ॥

कृष्णका कोटिशिलापर आगमन होना, तत्पश्चात् दिग्विजय प्राप्ति होना और दिव्य रत्नोंका लाभ होना, **द्रौपदीके** हरणके साथ साथ दोनो भाइयोंका राज्याभिषेक, पांडवोंद्वारा घातकीखंडसे विष्णुका आगमन होना वर्णन किया है ॥ १०९-११० ॥

नेमिनाथ कुमारको शक्तिका प्रकट करना तत्पश्चात् **नेमिनाथ**के साथ जलविहार करना, पांचजन्य नामक शंखको बजाना, और **नेमिनाथ**के विवाहकी तयारीका **वर्णन** किया गया है ॥ १११ ॥

मृगादि पशुओंको मुक्त करना, और **नेमिनाथका** दीक्षा ग्रहण करना, उनको केवल ज्ञानप्राप्ति होना, देवोंके वैभवसे आकर तीर्थंकरकेलिये वैभवयुक्त समवसृति निर्माण करना ॥ ११२ ॥

राजीमतीको संसारको त्याग कर दीक्षा ग्रहण करने तप करना और तीर्थंकरद्वारा द्विविध धर्म-मुनि और श्रावक-धर्मका उपदेश करना, धर्मतीर्थमें विहार करना और पाण्डवादि छः भाईयोंका दीक्षा ग्रहण करना ॥ ११३ ॥

द्वीपायन मुनिको क्रोध उत्पन्न होना और उससे **द्वारका**का विनाश होना, पुत्र, कलत्र और बंधुओंके साथ बलराम और केशवको स्तवन करना लिखा है ॥ ११४ ॥

जरत्कुमार द्वारा मुक्त शरसे हरिको वध होना, तत्पश्चात् घातकको बड़ा भारी पश्चात्ताप होना और **बलराम**को बहुत शोक--संकुल होना ॥ ११६ ॥

सिद्धार्थके कहनेसे तपस्या करना और पंचस्वर्ग जो ब्रह्मलोक उसीकी प्राप्ति करना, **कौन्तेयका** तप करना ॥ ११७ ॥

उज्जयंत गिरिपर **नेमिनाथ** तीर्थंकरको निर्वाण प्राप्त होना, महात्मा पांडवोंको उपसर्ग होना, और जरत्कुमारका दीक्षा ग्रहण करना और इनकी संतानकी वृद्धि होना-लिखा है ॥ ११९ ॥

हरिवंशपुराणकी जीता है शत्रु जिन्होंने ऐसे पांडवोंको केवलज्ञान होना और **हरी**-वंशका कथा वर्द्धमान जिनेंद्रद्वारा सुनकर राजा **श्रेणिक**का राजगृह नगरीमे प्रवेशकरना तत्पश्चात् **वर्द्धमान** स्वामीको तथा उनके सम्मानार्थ देवोंसे दीपोंका महोत्सव करना इस भांति **हरिवंश**मे संग्रहके साथ विभाग है । ॥ १२१ ॥

प्रशस्ति.

इस मुनिके तपोबलसे मनुष्यता कैवल्यफलको देनेवाली हुई क्योंकि इस संसारमें मनुष्यजन्म लेनाही बड़ी तपस्याका फल समझना चाहिये ॥ १० ॥

श्रेणिक नरेश्वरसे सुनी हुई यह **हरिवंश** कथा मैने संक्षिप्तसे कही । **त्रिषष्टि** शलाका पुरुषोंकी पुराण-पद्धतिसे संबंध रखनेवाली यह कथा तुम्हारी मंगलकारिणी होवे ॥ ११ ॥

गौतम गणधरसे राजा **श्रे**णिक इस कथाको सुनकर सम्यग्दृष्टि तथा सत्कर्णा हुए। बल्कि पीछेसे प्रसन्न तथा विनयी होकर अपने नगरको गये ॥ १२ ॥

भुवनवासी, व्यंतरवासी, ज्योतिषवासी कल्पवासी चतुर्निकायदेव तथा विद्याधर **महावीर** जिनेंद्रको चारों तरफसे घेरकर उन्होंने भक्तिपूर्वक परमात्माको प्रणाम किया. और मोक्षकी आकांक्षा हृदयमें धारण करके प्रसिद्ध सद्धर्मकथापर दृढ़चित्त होते हुए अपने स्थानको पधारे ॥ १३ ॥

पूज्य होते हुए भी संपूर्ण पृथ्वीपर विहार कर सभी कर्मोंसे मुक्त होकर जितशत्रु होते हुए मोक्षपदको प्राप्त हुए ॥ १४ ॥

महावीर जिनेंद्र भी अनवरत उपदेश देकर, चारों तरफ जिसके भव्य समूह है, ऐसी सुंदर **पावापुरी** नगरीको गये। चौथे कालमें, मार्थ चौथे महीनेमे, चौथे बरसमें **कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी** स्वाती नक्षत्रपर प्रात:कालके रमणीय सान्ध्य प्रकाशमें संपूर्ण कर्मबंधका नाश करके तथा अघाति कर्मको घाती इंधनके ऐसा नष्टकर सर्व सुखके स्थानको अर्थात् निर्वाण पदको प्राप्त हुए ॥ १५-१७ ॥

पांचकल्याणिक महामहोत्सवसे युक्त, प्रसिद्ध निर्वाणमहोत्सवमें, शरीर पूजाकी विधिसे चतुर्विध देवताओंसे वह सिद्धशासन श्रीमहावीरस्वामी पूजित हुए ॥ १८ ॥

सुर असुरोंसे प्रकाशित की गयी **दीपावली**से उस समय पावानगरी उद्भासित होकर आकाशको भी प्रकाशित करने लगी ॥ १९ ॥

उसी **श्रे**णिकके पूर्ववर्ती राजालोग प्रजाओंके साथ कल्याणमहोत्सवका संपादन कर देवताओंका तथा इंद्रोंके साथ साथ अपने अपने स्थानको पधारे ॥ २० ॥

जिनेद्र भगवान्के **निर्वाण**की विभूतिका भक्तिभाजन होकर सभी लोग प्रतिवर्ष प्रसिद्ध दीपावलीके निमित्तसे जिनेंद्रकी आराधना करनेके लिये समुद्योतित हो गये ॥ २१ ॥

महावीरस्वामीके बाद क्रमशः बासठ वर्षके बीचमें तीन **के**वलज्ञानी हो गये। तिसके बाद सौ वर्षके अंतर पांच तपस्वी श्रुतकेवलज्ञानी हुए ॥ २२ ॥

तत्पश्चात् ८३ वर्षके बीचमें दशपूर्वके जाननेवाले दश मुनि हुए। फिर २२० वर्षमें अंगमात्रके जाननेवाले पांच मुनि हो गये। फिर १८ वर्षमें **सुभद्र**, **जयभद्र**, **यशोबाहु** और **लोहाचार्य** ये चारों मुनि प्रथम अंगके धारक हुए ॥ २३–२४ ॥

तत्पश्चात् **नयन्धर**, **ऋषिश्रुति**, **गुप्ति**, **शिवगुप्ति**, **अर्हद्बलि**, **मंदराचार्य**, **मित्रवीर**, **बल**, **बलमित्र**, **सिंहबल**, **वीरवित्**, **पद्मसेन**, **गुणपद्म**, **गुणाग्रणी**, **व्याघ्रहस्त**, **नागहस्ति**, **जितदण्ड**, **नन्दिसेन**, **दीपसेन**, **धरसेन**, **धर्मसेन**, **सिंहसेन**, **सुनंदिषेण**,

सूरसेन, सुनंदिषण, अभयसेन, सुसिद्धिसेन, अभयसेन, भीमसेन, जिनसेन और शांतिसेन आदि मुनि क्रमसे हुए। ये समस्त सिद्धशास्त्रके पारगामी और संसारमें प्रसिद्ध थे ॥ २५–२९ ॥

इनके बाद जयसेन मुनि हुए। कर्मप्रकृतिशास्त्रके जाननेवाले, वशी, व्याकरणके अच्छे विद्वान् और सिद्धान्तरूप समुद्रके पारगामी थे ॥ ३० ॥

जयसेनमुनिके शिष्य अमितसेन हुए। उस समय ये पवित्र पुन्नाटगणमें प्रधान मुनि गिने जाते थे। इन्हें जिनशासनसे बड़ा प्रेम था। बड़े तपस्वी थे, ये सौ वर्षतक जीवित थे। ये वक्ताओंमें प्रधान वक्ता थे। इन्होंने अपनी वक्तृतासे संसारमें बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की थी ॥ ३१–३२ ॥

जयसेनके बड़े भाई धर्मबन्धु कीर्तिषेण हुए। ये बड़े बुद्धिमान्, शान्तस्वभावी थे। मानो धर्म हीने शरीर धारण किया हो, ऐसे ये मालूम पड़ते थे। इनकी तपोमयी कीर्ति संसारभरमें प्रख्यात थी, ये बड़े भारी तपस्वी थे। इनके अग्रशिष्य, मोक्षसुख चाहनेवाले और नेमिनाथके परम भक्त मुक्त जिनसेनने अपनी अल्प बुद्धिके अनुसार इस हरिवंश पुराणको लिखा है। यदि इसमें प्रमादसे--असावधानीसे--अज्ञानसे कुछ लिखा गया हो, अथवा परस्पर कुछ असम्बद्ध लिखा गया हो, तो उसे पुराणके जाननेवाले और जीवोंकी स्थिति तथा शक्तिके ज्ञाता प्रमादरहित होकर सुधार दें। क्योंकि कहां तो हरिवंश पर्वतरूपी उत्तम वंश और कहां मुझ सरीखा अल्पबुद्धि और थोड़ी शक्तिवाला पुरुष ! ॥ ३३–३६ ॥

जिन भगवान्के वंशके इस स्तवनमें मेरी केवल यही वाञ्छा है कि, इससे पुण्यकी उत्पत्ति हो। काव्यरचनाके व्यसनसे अथवा कीर्ति प्राप्त करनेकी बड़ी भारी इच्छासे मैंने यह प्रयत्न नहीं किया ॥ ३६ ॥

मेरी यह कृति काव्यका गर्व दिखलानेके लिये अथवा दूसरे कवियोंकी ईर्षासे नहीं हुई है। किन्तु जिनेंद्र भगवान्की भक्तिसे हुई है ॥ ३७ ॥

इस ग्रंथमे चौबीस तीर्थंकर और कीर्तिमान् बारह चक्रवर्ती नव बलभद्र नव नारायण नव प्रतिनारायण, इस तरह त्रिषष्ठिशलाका पुरुषोंका तथा इनके सिवाय अन्यान्य सैकडों भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंका कि जिन्होंने इस पृथ्वीपर धर्म, अर्थ, काम, और मोक्षरूप चारों फलोंका साधन किया है और जिनका यश चारों तरफ फैल रहा है—वर्णन किया गया है।

इस हरिवंशकी कीर्तिका वर्णन करनेसे मैने जो अगण्य पुण्य और गुणोंका संचय किया है उसका फल मैं यही चाहता हूं कि, मनुष्यलोकमें जिनशासनका धारण करनेवाला भव्य जीव होवे।

यह **नेमिनाथ** तीर्थंकरका चरित्र समस्त जीवादि पदार्थोंका प्रकाशक है. जो वाचक (शास्त्रोंका मुख्य व्याख्याता) मुख्य सज्जन है, उन्हें चाहिये कि इसे सभामें बांचे और जो सभामें आये हुए श्रोता है, वे अपने कानरूपी अंजलिसे इस अमृतका पान करें ॥ ४० ॥

जबकि उत्तर दिशामें **कृष्णराजा**का पुत्र **इंद्रायुध** (नामक राजा राज्य करता था) दक्षिणमें **श्रीवल्लभ**, पूर्वमें **अवन्तीनरेश** और पश्चिममें **वत्सराज** राज्य करते थे---उस समय **शक संवत् ७०५ में** यह ग्रंथ रचा गया. ॥ ५३ ॥

अनेक कल्याणोंके कारण--जहां कि सुख संपत्ति बढ़ी हुई है ऐसा **वर्द्धमान** नामका एक नगर है. वहां **नन्नराज** (रत्नराज) की वस्तीमें श्री **पार्श्व**नाथ भगवानका चैत्यालय है, उसमें इस ग्रंथका लिखनेका आरंभ किया गया और श्री शांतिनाथके मंदिरमें पूर्ण किया। इसलिये उस समय पूजन वगैरहसे खूब उत्सव बनाया गया था ॥ ५४ ॥

दूसरे संघोंकी सन्ततिको जिसने छोड दिया है, ऐसे बड़े **पुन्नाट** संघकी परिपाटीमें होनेवाले श्री **जिनसेनसूरि** कविने सम्यग्ज्ञानके पानेके लिये जो यह **हरिवंश**का पुण्यचरित्ररूपी शोभामय पर्वत देखा है--रचा है. वह सब ओरसे आशाओंके (दिशाओंके वा इच्छाओंके) मुखमंडलको व्याप्त करता हुआ पृथ्वीमें चिरकाल-तक स्थिर रहे ॥ ५५ ॥

इति श्री अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहान्तर्गत हरिवंशका
कालपर्व नामका ६६ वां
अध्याय समाप्त.

शाकासंवत्‌की उलझन.

इतिहास—मर्मज्ञो ! भूरिविभूति-शाली इस भारतवर्षका इतिहास, बड़ी अँधेरी गिरिकन्दरामें पड़ा हुआ है। इसका उद्धार करना मानो लोहेका चना चबाना है। यह बात तो सर्वमान्य हो चुकी है, कि यदि इस भारतवर्षके इतिहासका उद्धार पूर्णरूपसे हो जाय तो, भारतीय इतिहास सभी इतिहासक्षेत्रमें अपना स्थान सर्वोच्च रक्खेगा। अदर्शभूत भारतीय साहित्य और नीति-निपुणता आदि विषयोंने विदेशीय विद्वानोंको यहां तक लालायित कर रक्खा है कि उनकी रगरगमें विद्याभिमान और स्वदेशाभिमानकी विद्युत् अविच्छिन्न दौड़ती रहनेपरभी उन्हे भारतीय संस्कृत-साहित्य सुन्दरता, भारतीय अलौकिक वीरता, भारतवर्षीय कलाचतुरता, भारतीय प्राचीन सभ्यता तथा भारतकी नीतिनिपुणताकी प्रशंसा आपेसे बाहर होकर मुक्त कण्ठसे करनी पड़ी है।

वर्त्तमानसमयमे इतिहासके आधारभूत प्रचलित कथाएं, पुराण तथा काव्यादि-कही है। परन्तु इनके आधारपर किसी इतिहासकी सत्यताका निर्णय कहाँ तक हो सकता है? यह विवेचनीय विषय है। प्यारे पाठको! यदि हम विक्रमादित्यको इतिहासाकाशके सहस्रकिरणमाली सूर्य्य कहें तो, इसमें कुछ अत्युक्ति नहीं होगी। आज तक विदेशीय तथा भारतवर्षीय विद्या-दिग्गजोंने इनके समयादिकी स्थिरताके लिये दन्तकथासे लेकर शिला लेख ताम्रपत्रतककी राखे छान डाली है, तथा अपनी अकाट्य कल्पनाओंकी बड़ी बड़ी आकाश स्पर्शिनी इमारते बना रक्खी है। किन्तु ये परस्पर विरोधिनी कल्पनाएं विक्रमादित्य विषयक शङ्काओंको निवृत्त करना तो दूर रहे बल्कि सर्वसाधारणोंके विचार-वैभव मस्तिष्कमे एक नये सन्देह-सागरकी तरंगे प्रोच्छलित कर रही है। इसीलिये—विक्रमादित्य कब हुए? यह सम्वत् किसने चलाया? इत्यादि अनेक प्रकारके महत्त्वपूर्ण प्रश्न हम भारतवासियोंके सम्मुख सदा उपस्थित ही रहते है।

आजतक किम्वदन्ती और प्राचीन निर्मूल दंतकथाओंके आधारपर हमलोगोंने यह मान रक्खा है कि आजके १९७० वर्ष पूर्व एक विक्रमादित्य नामक किसी पराक्रमी वीर राजाने म्लेच्छो (Scythions or sakas) के हाथसे इस पवित्र भारतभूमिका उद्धार कर अपनी विजय-वैजयन्ती फहरानेके लिये अपने नामका सम्वत् चलाया था। और प्रायः सभी व्यापारिक मण्डली तथा सामाजिक

संस्थाओंमें यही सम्बत् समादृत होता है। यह भी कहा जाता है कि, इन्हीं महाराज विक्रमादित्यकी सभामें 'नवरत्न' थे। इन्हीं प्रसिद्ध रत्नोंमेंसे हमारे सुप्रसिद्ध कवि-वर कालिदास भी थे।

बंगसाहित्य-मार्त्तण्ड प्रातः स्मरणीय श्रीयुत ईश्वरचंद्रविद्या-सागरने शकुन्तला-नाटकका विक्रमादित्यकी छत्रछायामें रचा जाना लिखा है। आप कहते हैं कि, "वास्तवमें कालिदासका 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' अलौकिक पदार्थ है। धन्य कालिदास! धन्य अभिज्ञान-शाकुन्तल!! प्रलयके पहले तुम्हारे नाश होनेकी शङ्का नहीं। धन्य विक्रमादित्य! यह कालिदास तुम्हारे मित्र तथा सभासद थे। यह अभिज्ञान-शाकुन्तल तुम्हारेही परितोषार्थ उज्जयिनीकी रङ्ग-भूमिमें खेला गया था"।

धन्वन्तरिः क्षपणकोऽमरसिंहशङ्कु-
वेतालभट्टघटकर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायाम्
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥

इत्यादि अनेक प्रचलित श्लोकों तथा उक्तिसे विक्रमसभामें 'नवरत्नों' का रहना सिद्ध होता है। कविवर कालिदासके विक्रम-सभामें रहनेकी पूरी साक्षिता तो इनके दो नाटकही दे रहे है। एक तो 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' नामक नाटकमें सूत्रधारने नटीसे कहा है कि "आर्ये इय हि रसभाव-विशेष-दीक्षा-गुरोः विक्रमादित्यस्य अभिरूपभूयिष्ठा परिषत्" अर्थात् हे प्राण-प्रिये नटि! शृङ्गारादिरस और रसोद्बोधक धर्मकी विशेष बात जाननेवाले विक्रमादित्यकी यह विद्वानोंसे भरी हुई सभा है। दूसरी 'विक्रमोर्वशी' नामक त्रोटक है। इसके नाममें जो 'विक्रम' है इससे मालूम होता है कि कालिदासने अपने आश्रयदाता विक्रमादित्य राजाके चिरस्मरणार्थही इस त्रोटक का नाम विक्रमनामसे प्रसिद्ध कर दिया। इन दो नाटकोंमें संस्कृत साहित्यवनकेशरी विक्रमादित्य राजाके कुछ उल्लेख होनेसे यह निर्णय हुए बिना नहीं रहता कि कवि-कुल-कुमुद-कलाधर कालिदास विक्रमादित्यकी सभा-कुमुदिनीको अपनी कविता-चांदनीसे सदा प्रकाशित तथा आह्लादित किया करतेथे। दूसरा प्रमाण यह भी है कि, बुद्धगयाके एक शिला-लेखमें इनकी सभाके रत्नोंमेंसे एक रत्न कवि अमरसिंहनें एक मन्दिरके निर्माणके समयमें महाराज विक्रमादित्यका तथा इनके सभास्थ रत्नोंका उल्लेख किया है।

इस शिलालेखका अनुवाद चार्लस वेल्कनेस (Charls wellkenes) ने किया है। आपका मत है कि अमरकोशके रचयिता* तथा विक्रमादित्यकी सभाके नवरत्नों

* अमरकोशके रचयिताके विषयमें हम फिर कभी अपना स्वतंत्र विचार प्रकट करेंगे।

में से एकरत्न यही अमरसिंह है। क्योंकि इस शिलालेखमे और अमरकोशमें बौद्ध और वैदिक धर्म्म-सम्बन्धी मिश्रित विचार जहां तहां उल्लिखित हुआहै। अस्तु !!! यह एक प्रकारसे निश्चय हो जाता है कि, महाराज विक्रमादित्यकी सभाको उल्लिखित नव धुरंधर विद्वान् अवश्य सुशोभित किया करते थे। परन्तु वर्त्तमान समयमें महाराज विक्रमादित्यके अस्तित्व कालकी सत्यतामें मत मतान्तरके भेदोने कई बाधाएं खड़ी करदी है।

बड़े बड़े इतिहास-खोजी और पुरातत्त्ववेत्ताओका कथन है कि जिस समय विक्रमादित्यका अस्तित्व माना जाता है उस समय ताम्रपत्र और शिलालेखोका बड़े बाहुल्यसे प्रचारहो गया था। क्योंकि इनके पूर्व और समकालीन महाराजनन्द, चन्द्रगुप्त, अशोक और खरवेला आदि महाराजाओंके समयके शिलालेख एलेक्जेंडर दी ग्रेट, सेल्यूकस, महाराज कनिष्क, हविष्क और वासुदेव आदिकोंके सिक्के तथा उस समयकी संघटित घटनाओंके उल्लेख- इनके समय तथा अस्तित्वके प्रमाणकी घोषणा बड़े उन्मादसे कर रहे हैं; तो फिर ऐसे समयमें महाराज विक्रमादित्य सरीखे वीर तथा विद्या-प्रेमी राजाके समयका कोई उल्लेख न मिलना, उक्त समय (१०७०) के निश्चित होनेमे जरा कठिन समस्या उपस्थित कर देता है।

दूसरी बात यह है कि, प्रथम शताब्दिमें उज्जयिनी राजधानीमें विक्रमादित्य नामक किसी राजाके अस्तित्वका कुछ प्रमाण नही मिलता। प्रथम शताब्दिमे माने हुए विक्रमादित्यका कुछ प्रमाण नहीं मिलनेसे, उस आधारपर मानी गई ऐतिहासिक कल्पनाएं प्रायः निर्मूलसी मालूम होने लग जाती है और भारतीय इतिहाससृष्टि एक प्रकारसे उलट पुलट हो जाती है। अर्थात् जिन राजाओं और कवियोंके समय हमने पूर्व समझ रक्खे थे, वे पर हो जाते है और जो पर समझ रक्खे थे वे पूर्व हो जाते है। इस लिये भारतीय इतिहासक्षेत्रमे एक अपूर्व कल्पनाका आविर्भाव हो जाता है।

इस कल्पनाके निवारणार्थ हमारे मनमे हठात् कई प्रश्न उपस्थित होने लगते हैं। जैसे:—

(१) म्लेच्छोंका पराभवकर्त्ता और सम्वत्का संस्थापक विक्रमादित्य नामक कोई राजा प्रथम शताब्दि (B. C.) मे था या नहीं ?

। बि. फर्गुसन, डॉ. एचकर्न, प्रो. बेबर, प्रो. मैक्समूलर डा० फ्लीट, लासन, जै कोबी, मानियर विलियम्स और डॉ० पिटर्सन आदि विदेशी विद्वानोंने और डा० भाऊ दाजी, डा० रामकृष्ण भण्डारकर, प्रो० काशीनाथ बापूजी पाठक और आर. सी. दत्त आदि भारतीय विद्वानोंने विक्रमादित्यको प्रथम शताब्दिमें माननेंकी कई शंकाएं उपास्थितकी हैं।

(२) अनेक राजाओंसे भारत ' विक्रमादित्य ' यह साधारण उपाधि है या नाम ?

(३) विक्रमादित्यकी सभामें जो ' नवरत्न ' थे वे किस विक्रमादित्यकी सभामें तथा किस समयमें ?

(४) प्रथम शताब्दि (B. C.) के पूर्व विक्रमादित्य नामक जब कोई राजा न था, तो यह सम्बत् किसने चलाया ?

(५) यह सम्बत् विक्रमके नामसे क्यों प्रसिद्ध हुआ ?

(६) यदि यह सम्बत् पीछेसे चला गया तो इसकी स्थिति इसके पूर्व माननेका क्या कारण है ?

(७) वास्तवमें विक्रमादित्यनामक कोई राजा हुआ था कि नहीं ? और यदि हुआ था तो कब ?

(८) और किन्हीं भारतीय राजाओंने अपनी प्रसिद्धि के लिये अपने नामसे कोई सम्बत् चलाया है कि नहीं ?

(९) वास्तवमें प्राचीन शक है या सम्बत् ?

(१०) शकके स्थापन कर्त्ता कौन है ?

प्रिय सुहृत्पाठको ! आइये. भारतीय इतिहास-पुष्पवाटिकामें अनेक सत्यसौरभ पुष्पोंका हम लोग पता लगावें और इस बातको ढूंढ निकालें कि इन उपर्युक्त प्रश्नोंका उत्तर किन किन सुदृढ़ प्रमाणों द्वारा दिया जासकता है।

पहले तो इन प्रश्नोंके उत्तरके लिये हम सबोंको चार मार्गोंका आश्रय लेना पड़े गा। वे ये मार्ग हैं:—

(१) (क) प्राचीन पुराण कर्ता अथवा कवियोंके ग्रन्थोंके ऐतिहासिक अविरोधी उल्लेख

(ख) प्राचीन ताम्रपत्र और शिलालेख.

(ग) भारतीय इतिहासोंके मर्मज्ञ तथा प्रसिद्ध प्रसिद्ध पुरातत्त्वान्वेषियोंका युक्तियुक्त कथन.

(घ) जिस समयका उल्लेख किया जाता है, उस समयकी प्राकृतिक घटनाओंका ठीकठीक मिलान।

उत्तर—१ (क)—म्लेच्छोंके पराभव-कर्ता और सम्बत्के संस्थापक विक्रमादित्यके अस्तित्वके विषयमें श्वेताम्बर पण्डित मेरुतुङ्गाचार्य्यने एक पट्टावलीमें विक्रमको प्रथम शताब्दिमें मानकर उल्लेख किया है। कथासरित्सागरमें भी इसी प्रकार विक्रमका उल्लेख किया गया है। ये दोनों कथन प्रामाणिक तथा अविरुद्ध नहीं माने जासकते।

क्योंकि इन दोनोंने किम्वदन्तियोंके आधारपर ही ऐसा लिखा है । इनके कथनकी मूलभित्ति प्रामाणिक नहीं होनेसे इसके माननीय होनेमे बहुत सन्देह है । और दूसरी बात यह है कि ये दोनों ग्रन्थकर्त्ता भी इतने प्राचीन नही कि उनकी प्राचीनताके आधारपर ही विक्रमादित्यका अस्तित्व प्रथमशताब्दिमे मान लिया जाय ।

तीसरी बात यह है कि, इनके कथनके विरुद्ध अनेक ऐतिहासिक प्रमाण तथा कवियोंके लेख मिलते हैं । जैसे—राजतरंगिणीके कर्ताने हर्षको विक्रमादित्यके नामसे उल्लिखित किया है; जिनका अस्तित्व लगभग छठवी और सातवी शताब्दिमें माना जाता है । चौथी बात यह कि विक्रमादित्यके सभास्थ 'नवरत्न' विद्वानोंके लेखसे भी मालूम होता है कि, उपर्युक्त दोनो मत प्रामाणिक तथा अविरुद्ध नही है । पांचवीं बात यह है कि कथासरित्सागरके कर्ता सोमदेवने पाणिनि, व्याडि, वार्तिककार कात्यायन, महाराजनन्द, चन्द्रगुप्त, और शालिवाहन आदि ऐतिहासिक नायकोंको समकालीन लिखकर बड़ी गड़बड़ी मचा दी है । हम यह तो अवश्य कहेंगे कि उपर्युक्त व्यक्तियोंकी समकालीनता कभी होही नहीं सकती । यो तो खेंचातानीकी बात ही जुदी है । इससे अब यह साफ साफ मालूम हो जाता है कि कथासरित्सागर एक आख्यायिका मात्र है । अतएव इन मतोंके आधारपर विक्रमको प्रथम शताब्दिमें माननाभी एक आख्यायिका कासा मालूम पड़ता है ।

१—(ख) अब दूसरी राह यदि ताम्रपत्र और शिलालेखोंकी दृष्टिसे पकड़ी जाय, तो वर्तमान समयतक विक्रमादित्यके प्रथमशताब्दिमें अस्तित्वको कायम रखनेके लिये ताम्रपत्र अथवा शिलालेख दृष्टिगोचर हुए ही नहीं । दूसरा यह कि छठवीं और सातवी शताब्दिके पहलेके जितने ताम्रपत्र अथवा शिलालेख मिलते है उनमें प्रायः अनेक भिन्न भिन्न राजाओंके सम्बतोंका उल्लेख मिलता है । बड़े ही आश्चर्य्यकी बात है कि विक्रमादित्य ऐसे प्रतापशाली राजाका स्वतन्त्र ताम्रपत्र या शिलालेख कहीं मिलता ही नही । छठवीं शताब्दिके एक मन्दसोरके शिलालेखमे बड़ी स्पष्टता से ५२९ मालव सम्बत् उल्लिखित किया गया है । मालव सम्बत् वाले शिलालेखमें यह भी साफ-साफ लिख दिया गया है कि मालववंशके स्थापन होनेके ४९३ वर्ष बाद पौष शुक्र

१—मालवानां गणस्थित्या याते शतचतुष्टये ।
त्रिनवत्यधिकेऽब्दानामृतौ सेव्यघनस्वने ॥ १९ ॥
सहस्यमासशुक्लस्य प्रशस्तेऽह्नि त्रयोदशे ।
मंगलाचारविधिना प्रासादोऽयं निवेशितः ॥ २० ॥

× × × ×

त्रयोदशीको एक मन्दिर बनाया गया। ५२९ मालवशक फाल्गुन शुक्ल द्वितीयाको मन्दिरके टूटे हुए किसी भागकी मरम्मत की गयी। इत्यादि प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि ५२९ मालवशक तक विक्रमादित्यके सम्वतकी भी कुछ चर्चा नहीं थी। इसलिये हम समझते हैं कि यह कहनेमें कुछ अत्युक्ति नहीं होगी कि उक्त समय तक विक्रमादित्यके अस्तित्वकी तथा इनके सम्वत्की भी कुछ चर्चा नहीं थी। नहीं तो सम्भव था कि मालववंशका सम्वत् न लेकर ही मालवनरेश विक्रमादित्यका सम्वत् समादृत होता। इस स्थलपर इस शंकाको भी कोई आधार नहीं मिलता कि यह मालवसम्वत् ही विक्रमादित्यका क्यों न मान लिया जाय। क्योंकि श्लोकमें जो 'मालवानां' यह बहुवचनान्त पद है इससे मालूम होता है कि इससे विक्रमादित्यका कोई सम्बन्ध नहीं था, बल्कि यह मालववंशकी परम्पराका सूचन करनेवाला सम्वत मालववंशसे स्थापित है। दूसरी बात यह है कि छठवीं शताब्दिमें महाराज विक्रमादित्यकी प्रसिद्धिके समय तथा आठवीं और नवमी शताब्दिमें जबकि विक्रम सम्वत्की ख्याति शैशवावस्थामें थी तो भी उससमयके दानपत्र और शिलालेखादि ऐतिहासिक पत्रिकादिकोंपर विक्रमसम्वत्के साथ साथ मालवंशका भी उल्लेख पाया जाता है।

अस्तु! हम समझते हैं कि मालवसम्वत्को विक्रमादित्यके सम्वत्से भिन्न कहना कुछ अनुचित नहीं होगा।

अनेक ऐतिहासिक सामग्रीके आधारपर पुरातत्वान्वेषी बहुतसे विद्वानोंका विक्रमादित्यको प्रथम शताब्दिमें नहीं माननेका आग्रह होनेपर भी डा० भूलरने विक्रमादित्यको प्रथम शताब्दिमे मानकर आजतक इस विषयमें बड़ी छान बीन की है और

संस्कारितमिदं भूयः श्रेण्या भानुमतो गृहम्॥ २२॥

× × × × ×

वत्सरेषु पञ्चसु विंशत्यधिकेषु नवसु चाब्देषु।
यातेष्वभिरम्यतपस्यमासशुक्लद्वितीयायाम्॥ २४॥

अर्थात्—मालवगणकी स्थितिके ४९३ वर्ष बीतनेके बाद वर्षाऋतुमें पौष शुक्ल त्रयोदशीको मंगलाचारपूर्वक यह प्रासाद बनाया गया और ५२९ मालवशक फाल्गुन शुक्ल द्वितीयाको इसकी मरम्मत हुई।

२—इण्डियन ऐण्टीक्वेरीकी १९ रवीं जिल्दके १६४ वें पृष्ठपर एक शिलालेखमें लिखा है कि:—

सम्वत्सरशतैर्यातैः सपञ्चनवत्यर्गलैः।
सप्तभिर्मालवेशानां धूर्जटेः मन्दिरं कृतम्॥

अर्थात् ७९५ मालव सम्वत्को किसीने शिवजीका मन्दिर बनाया।

इण्डियन आर्किऑलॉजिकल २४ सर्वे व्हाल्युम १० पेज ३२ प्लेट नंबर ११ देखो.

२

अन्तमें आपने विक्रमकी छठवीं शताब्दिके पूर्व स्थिति कायम रखनेके लिये भड़ोच जिलान्तर्गत जम्बूसर ताल्लुकेमें कावीनगरस्थ गुर्जराधिपति महाराज जयभट्टके दान-सम्बन्धी एक शिलालेखका उल्लेख किया है। आपका कथन है कि, इस शिलालेखमें जो ४३० का उल्लेख है, वह विक्रम सम्बत् होना चाहिये और वे इस कथनकी पुष्टि इस आधारपर करते है कि, प्रथम जयभट्टके पुत्र गुर्जराधिपति महाराज दादा द्वितीयके भी, कावीमें एक दो दानपत्र मिलते हैं। उनमें ३८० और ४०५ ऐसा समय दिया गया है। इस समयको उन्होंने अनुमानद्वारा शकसम्बत् निश्चित किया है। अस्तु, जब दादा द्वितीय (जयभट्टके पुत्र) का समय ३८० शक निश्चित किया जाता है, तो उनके पिता जयभट्टका समय ४३० लिखना, विक्रमसम्बत् ही निश्चित हो सकता है। परन्तु डॉ० भूलरको भाग्य-वश प्रचुर परिश्रमसे मिले हुए छठवीं शताब्दिके पूर्व विक्रमादित्यके स्थिति-निश्चायक इस एकमात्र शिलालेखके विरुद्ध पुरातत्त्वान्वेषी विद्वानोंने प्रमाणका परिपूर्ण भण्डार खोला दिया है।

विज्ञ पाठको! यद्यपि इस छोटेसे लेखमें एतद्विषयक मतमतान्तरके पूरे भेद दिखलाने असम्भवसे हैं, तौभी थोड़ासा उनका दिग्दर्शन करा देना हम उचित समझते हैं।

प्रो० मैक्स मूलरको उपर्युक्त कथन ठीक नहीं जचता। इस शिलालेखके आधारपर हमारे चरित्रनायक विक्रमादित्यको छठवीं शताब्दिके पहले मानना, प्रो. मैक्समूलर साहबको सन्देह-सङ्कुल माल्म पड़ता है। इनका कथन है कि प्रथम तो शिलालेखके जिस अंशपर ४३० लिखा हुआ है वह अंश भग्न* तथा अक्षर सर्वथा अस्पष्ट है, इसलिये उसपर पूर्णतया विश्वास नहीं किया जा सकता। दूसरी बात यह कि, उसमें विक्रम सम्बत्का कहीं नामही निशान नही है कि जिससे विक्रम सम्बत्का होना निश्चय हो जाय। तीसरी बात यह है कि शिलालेखमें उत्कीर्ण आषाढ सुदी रविवारका विक्रम सम्बत् ४३० में मिलजाना भी ठीक नहीं माल्म पड़ता। इसलिये इस एकमात्र शिलालेखके अधारपर ही विक्रम सम्बत् को छठवीं शताब्दिके पूर्व मानना भ्रमात्मक माल्म पड़ता है। अतः सन्देहचक्करमें पड़े हुए इस सम्बत्की स्थिरताके लिये बड़े प्रबल प्रमाणकी आवश्यकता है। बल्कि इस प्रश्नका भी उत्तर

* Dr. Bulher in Ind Ant Vol V Page 110, himself says :—It is however to be regretted that the date the name of the writer and the signature of the grantor have sufferd mutilation. The plate seems to have undergone very rough treatment as it is full of inundation.

१—प्रो. मैक्समूलर की "हिन्दूस्तान हमें क्या सिखला सकता है" (Indian what it can teach us) नामकी पुस्तकके २८५ और २८६ के पृष्ठ देखो।

नहीं मिलता कि यदि विक्रम सम्बत् प्रथम शताब्दिमें ही प्रचलित होगया था तो इसको ६०० वर्ष गुप्त रखनेका कौनसा कारण है।

गुर्जरवंशीय राजाओ, उनके दानपत्रों और शिलालेखोंकी समालोचना करते समय पं. भगवान् लाल इंद्रजी एक नवीन प्रमाण-द्वारा इन राजाओं और शिलालेखोंका समय बड़ी विद्वत्ता तथा शोधक दृष्टिसे निश्चित करते हैं। आपका कथन है कि गुजरातके चालुक्यवंशीय और गुर्जरवंशीय महाराजाओंके दानपत्रोंमे लिखित समय न तो शाका सम्बत् है और न विक्रम ही सम्बत् है। ये इन दान-पत्रो और शिलालेखोंका समय एक त्रिकुटक नामक सम्बत्सरसे प्रारम्भ मानते है । इस सम्वत्सरका प्रारम्भ आप शकसम्बत् १६६ अथवा १६७ (२४४–४५ A. D.) से होना निश्चय करते हैं। अर्थात् यदि हम इस १६६--१६७ मे प्रारम्भ हुए त्रिकुटक सम्बत्‌द्वारा उन दान-पत्रादिकोंका समय निश्चित करे तो इस विषयमें पड़ी हुई उलझनका सुलझाव बड़ा सरलतासे हो जाता है। परन्तु यह प्रश्न अब भी खड़ा ही रह जाता है कि यदि इस त्रिकुट सम्बत्सरको गुर्जरोंके दानपत्रका समय माना जाय तो दादा द्वितीयका समय ३२० और उनके पिता जयभट्टका समय ४३० किस प्रकार हो सकता है। यानि पिताके पहले पुत्रका होना असम्भव है। परन्तु हमारी रायमें अपनी ही राय क्यों कहें बल्कि बहुतसे विद्वानोंकी रायमें जिनका उल्लेख हम आगे करेंगे—कावीके शिलालेखवाले जयभट्टको दादा द्वितीयका पिता मानना ही भ्रम है।

इसका मूल कारण यह है कि गुजरात और महाराष्ट्रप्रदेशी हिन्दुओंमें एक साधारण रिवाज है कि पितामहके नामका स्थनापन्न पौत्र हो जाता है । इस गुर्जर राज्यमे दादा और जयभट्ट नामके कई राजाओंने राज्य किया है। बल्कि इस नामके फेरमें पड़कर डा. भूलरने कावीवाले जयभट्टको दादाद्वितीयका पिता लिख दिया है। परन्तु वास्तवमें यदि कावीवाले शिलालेखका उल्लिखित समय त्रिकुट नामक सम्बत्‌से लगभग ४०० वर्ष माना जाय तो वह समय दादा द्वितीयके पुत्र जयभट्टका होना चाहिये। यदि ४५६ से ४८६ का समय माना जाय तो दादा तृतीयके पुत्र जयभट्ट तृतीयका समय होना चाहिये।

हम अपने पाठकोंको सुगमतासे समझने केलिये, तथा दादा और जयभट्टकी गड़बड़ी मिटानेके लिये पं. भगवान्‌लाल इन्द्रजीके लिखे हुए गुर्जरराजाओंका वंशवृक्ष यहां उद्धृत करते हैं।

(१) **दादा प्रथम.**

(त्रिकुटक संवत् ३३० से ३३५ तक) ई. स. ५७५–६०० तक.

(२) **जयभट्ट प्रथम अपर नाम वीतराग.**

(त्रि. सं. २५५ से ३०७ तक) ई. ६००.

|

(३) **दादा द्वितीय अपर नाम प्रशान्तराग.**

(त्रि. स. ३८०–३८५ से ४०५ तक) ई. ६२५.

|

(४) **जयभट्ट द्वितीय.**

(त्रि. सं. ४०५–४३० तक) ई. ६५०.

|

(५) **दादा तृतीय ऊर्फ (अपरनाम) बाहू सहाय.**

(त्रि. सं. ४३० से ४५६ तक) ई. ६७५.

|

(६) **जभभट्ट तृतीय.**

(त्रि. सं. ४५६–६७६) ई. ७०१–७३१.

अब यही एक विचरणीय विषय है कि ऊपर जो हमने समय निर्दिष्ट किया है उसके निश्चत होनेके लिये हमारे पास कौन कौनसे प्रमाण हैं । प्रथम तो डॉ० बार्डने कनरीके दानपत्रमें २८५ अङ्कित त्रिकुटक सम्वत्सरका उल्लेख किया है। दूसरी बात यह है कि नौसारीके शिला-लेखमें स्पष्टतया यह कथन पाया जाता है कि उज्जयिनी नरेश शिलादित्य महाराज हर्षवर्द्धन विक्रमादित्यने जब वल्लभीनरेशको युद्धमें पराजित कियाथा तो दादा द्वितीयने उनको आश्रय दिया था। इस लिये दादा द्वितीयको हर्षवर्द्धनका समकालीन होना आवश्यक है। रविकीर्त्ति नामक एक जैनकविने आय होलीके मेगुत्ती नामक एक जिनेन्द्रभवनमें मन्दिरनिर्माणके समय वहां एक शिलालेख लिखा है। उसमें महाराष्ट्राधिपति पुलकेशी द्वितीयके और उज्जयिनीनरेश हर्ष विक्रमके युद्धकी चर्चा की गयी है और इन्होंने अपने शिलालेखमें कालिदास कीसी कविता-समकीर्ति पानेकी अभिलाषा प्रकटित की है। इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि महाराज हर्ष विक्रम और महाराज पुलकेशी समकालीन थे। इस शिलालेखका समय ५६६ शक (८३५ A. D.) है।

क्योंकि आयहोलीके मेगुत्ती वस्तीके शिलालेखमें, निरपालके दान-पत्रमें, कर्नूलके दानपत्रमे, तथा टोगुशोर आदिस्थानोके दान-पत्रोंमे यह उल्लेख पाया जाता है कि, चालुक्यवंशाधिपति पुलकेशी द्वितीयके साथ मालवाधिपति महाराज हर्षवर्द्धन

१—महाराज पुलिकेशीका यह शिला-लेख फिर कभी पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करेंगे.

विक्रमादित्यको घोर युद्ध हुआ था और इस युद्धमें विक्रमादित्यको हराकर पुलकेशीने " परमेश्वर " उपाधि धारण कीथी । महाराज पुलिकेशीका समय ६१० से ६३५ तक निश्चित हो चुका है ।

अस्तु !!! महाराज हर्षवर्द्धनविक्रमका यही समय निश्चित होता है । और दादा द्वितीयको इनके समकालीन होना अत्यावश्यक है। दादा द्वितीयके ताम्रपत्र और दानपत्रमें ३८० लिखा हुआ है। यदि इस उल्लिखित समय (३८०) को शक माना जाय तौभी यह समय विक्रमादित्यके समकालीनवाले समयसे नहीं मिलता। दूसरे दानपत्रोंद्वारा इनको हर्षवर्धनका समकालीन होना आवश्यक है ।

उपर्युक्त कथनसे यह बात साफ हो जाती है कि, कावीके दानपत्रमें उल्लिखित समयको शक अथवा विक्रमसम्बत् मानना निरी भ्रान्ति है। उन उल्लिखित समयोंको त्रिकुटक छेदी अथवा कालीचुरी सम्बत् मानना ही युक्तियुक्त मालूम होता है।

जनरल केनिंगहंग साहबने कावीशिलालेखमें लिखित आषाढ़ सुदी दशमी रविवारको इस प्रमाणसे सिद्ध किया है कि ४८६+७५०=७३६ को २४ वीं जून होता है और उसी दिन उक्त समय ७३६ का मिलान हो जाता है। इसी प्रकार त्रिकुट-सम्बत्सरमें उल्लिखित और एक शिलालेखका भी पता लगता है।

अभी ४५६ में २४९ या २५० जोड़नेसे ७०५ तथा ७०६ A. D. होता है। जनवरी तथा फरवरीमें माघ मासके मिलान करनेसे दानपत्रका समय ७०६ A. D. होना निश्चित मालूम होता है। क्योंकि उसी वर्षमें २ री फेब्रुआरी मंगलवार-को माघ मासमें ही चन्द्रग्रहण लगना सिद्ध होता है।

अस्तु ! इन उपर्युक्त प्रमाणोंद्वारा यह सिद्ध हुए बिना नहीं रहता कि कावी वगैरहके दानपत्रादिकोंमें उल्लिखित समय १६६-१६७ शक वा २४९ अथवा २५० A. D. से प्रारम्भ होनेवाला यह त्रिकुटक* सम्बत्ही है। अब पाठक स्वयम् इस बातका विचार कर सकते हैं कि, जिस कावीदानपत्रके उल्लिखित समयको विक्रम सम्बत् मानकर, जिस विक्रमको छठवीं शताब्दिके पूर्व माननेके लिए आकाश पाताल एक किये जा रहे है, वह कहां तक सिद्ध हो सकता है ?

कुछ दिन हुए १९११ की ९ संख्यावाली " सरस्वती " में एक वैद्यमहाराजके लेखके आधारपर सरस्वती-सम्पादक महोदयने पेशावरके पास तख्तेशाही नामक

---

* यदि हमारे पाठकोंको इस सम्बत्के विशेष बात जाननेकी इच्छा होगी तो हम अन्य किसी पत्रमें बड़ी विस्तृतिसे इसकी पूर्ण विवृति लिखेंगे। यहां लेख बढ़ जाने तथा विषयान्तर हो जानेके कारण सामग्री रहनेपर भी हम नहीं प्रकाशित कर सकें।

स्थानके एक शिलालेखका उल्लेख कियाहै। आप कहते हैं कि "यह उत्कीर्ण लेख पार्थियन राजा गुड़फर्सका है। यह राजा भारतके उत्तर और पश्चिमाञ्चलका स्वामी था। इस लेखमें १०३ के अङ्कपर सम्बत्का नाम नहीं। गुड़फर्सके सिंहासनपर बैठनेके छब्बीसवें वर्षका यह लेख है। डॉ. फ्लीट और मिस्टर विन्सेन्ट स्मिथने अनेक तर्कनाओं और प्रमाणोंसे यह सिद्ध किया है कि यह १०३ विक्रम सम्बत्का ही सूचक है"।

हमें बड़ा आश्चर्य्य होता है कि न द्विवेदीजीने और न वैद्य ही जीने यह साफ साफ लिखा कि डॉ. फ्लीटने अथवा मि. विन्सेन्ट स्मिथने उपर्युक्त शिलालेखका उद्धार कर अर्थात् शिलालेखका निष्कर्ष समझकर कौनसे पत्रमें अथवा पुस्तकमें अपनी सम्मति प्रकटित की है। दूसरी बात यह है कि पूर्व समयमें ऐसी सर्वसाधारण रीति प्रचलित थी कि प्रायः उस समयके सभी राजाओंने अपने अपने समयकी विशेष विशेष घटनाओंको लेकर अपने अपने सम्बत् चलाये हैं; जिनका पूर्ण उल्लेख हम नं. ८ प्रश्नका उत्तर देते समय करेंगे।

अब विचार इस बातका होता है कि जिस १०३ को आपने विक्रम सम्बत् समझ रक्खा है, क्या हम उसी १०३ को गुड्फर्सके वंशीयोंका चलाया हुआ सम्बत् नहीं मान सकते हैं? नहीं माने क्यों? और जब शिलालेखमें सम्वत्का उद्बोधक कोई शब्द ही नहीं है तो, फिर किस आधारपर हम १०३ को विक्रम सम्बत् स्वीकार करलें। निष्पक्ष पाठक, स्वयं इस बातको विचार करलें कि ऐसे ही निर्मूल आधारपर उल्लिखित कावी शिलालेखके ४३० को विक्रम सम्बत् मानना कहां-तक युक्तियुक्त ठहरा? इसका तो कोई उत्तर ही नहीं हो सकता कि हमें येन केन प्रकारेण प्रथम शताब्दिके पूर्व ही विक्रमसम्बत् ठहराना है; भारतीय इतिहास-क्षेत्र बहुत विस्तृत है। प्रथम शताब्दिके ही पूर्व क्यों? बल्कि उसके दो चार हजार वर्ष और पूर्व विक्रम सम्बत्का साम्राज्य स्थापित कर सकते हैं। परन्तु विद्वन्मण्डली और ऐतिहासिक समाजमें यह विचार कहांतक मान्य हो सकता है, इसका उत्तर हम नहीं दे सकते। यदि दुराग्रहवश ऐसा मान भी लिया जाय, कि यह १०३ विक्रम सम्बत् है तो क्या कोई कह सकता है कि विक्रमसम्बत् की जगद्व्यापिनी ज्योतिने पेशोरके तख्तेबाहीके कोनेमें ही क्यों प्रकाश किया। महाराज विक्रमादित्यकी मुख्य राजधानी और बहुतसे प्रसिद्ध स्थान इस सम्बत्की अलौकिक छटासे क्यों बञ्चित रहे? यदि कोई महाशय इस प्रश्नका उत्तर निष्पक्ष-भावसे देनेकी कृपा करेंगे तो उन्हें इतिहास—भूमण्डलमें चक्कर लगाकर यह मुक्त-कण्ठसे स्वीकार करलेना पड़ेगा, कि प्रथम शताब्दिके पूर्वके विक्रमसम्बत् सम्बन्धी निदर्शनपत्र, ताम्रपत्र, शिलालेख और सिक्के आदि मिलते ही नहीं।

(१) (ग)–अब हमलोगोंको पुरातत्त्वान्वेषी विद्वानोंद्वारा महाराज विक्रमादित्यका समय निर्णय करना है। परन्तु हम इसके आरम्भ करनेके पूर्व अपने पाठकोंको यह याद दिला देना अपना कर्तव्य समझते हैं कि, महाकवि कालिदास और विक्रमादित्यके समकालीन होनेका यथासाध्य प्रमाण हम ऊपर उद्धृत कर चुके हैं और हम समझते है कि विद्वानोंकी सम्मतिपर कालिदासका समयनिर्णय करना ही महाराज विक्रमादित्यका समयनिर्णय करना है। बल्कि महाकवि कालिदासके समय निर्णयार्थ हमने एक स्वतन्त्र लेख ही इस किरणमें अन्यत्र प्रकाशित किया है। उसमें इस उत्तरसे सम्बन्ध रखनेवाली बहुतसे विद्वानोंकी सम्मतियां उद्धृत कीगयी है। हमने पुनरुक्ति हो जानेकी शङ्कासे उनको यहां प्रकाशित नहीं किया है। इस लिये पाठक-गण वहांके दोनो अंशोंको सम्मिलित पढ़कर इस उत्तरकी पुष्टि कर लेंगें। उनके अतिरिक्त जो कुछ सम्मत्ति है उसको यहां उद्धृत करते हैं।

१---ह्वेनसंग नामक चीननिवासी एक बौद्ध धर्म्मोपदेशक अनेक देशोंमे परि-भ्रमण करता हुआ भारतवर्षमें आया था। चीन इतिहासलेखकोंके कथनानुसार ह्वेनसंगका आगमन लगभग ६२९ A. D. से ६४५-५० A. D. मे हुआ था। यद्यपि उस उल्लिखित समयमें दस पांच वर्षका हेरफेर हो सकता है तौभी हम यह कहेंगें कि ह्वेनसंगका आगमन सातवीं शताब्दिमें अवश्य हुआ था।

ह्वेनसंग स्वयं महाराज हर्षवर्द्धन शिलादित्य विक्रमादित्यकी सभामें जाकर उपस्थित हुआ था। इसने विक्रमादित्यका उपर्युक्त इन तीन भिन्न भिन्न नामोंसे उल्लेख किया है। ह्वेनसंगका कथन है कि जब मै प्रथम ही विक्रमादित्यकी राजधानीमें गया था, तो उस समय महाराज मोक्षमहाधर्म्मपरिषद्में गये हुए थे। वह बड़े शक्तिशाली राजा थे। इन्होंने पूर्वसे लेकर पश्चिमाञ्चल तक अपनी विजयशालिनी सेनाको बढ़ाया था और इसी महाराज हर्षवर्द्धनने अगणित सेना लेकर महाराष्ट्राधिपति पुलिकेशीपर चढ़ाई की थी, किन्तु भाग्य-वश इनकी इसबार जीत नहीं हुई। महाराज हर्षवर्द्धन ऐसे पराक्रमशाली राजा थे कि, इनसे सभी निकटवर्ती राजा भयभीत रहते थे। इन्हींने जब युद्धमें बल्लभी नरेशको पराजित किया था तब गुर्जराधिपति महाराज दादा द्वितीयने इनको आश्रय दिया था। इस बातका उल्लेख कई दानपत्रादिकोंमें है।

ह्वेनसंग साहबने अपनी "भारतभ्रमण" नामक पुस्तकमें कई जगह दिगंबर जैनमुनि और आचार्य्योंका 'निर्ग्रन्थ' 'अर्हत्' और 'श्रमणक'* आदि विशेषणोंसे उल्लेख किया हैं।

* विषयच्युतिकी शङ्कासे यहां हमने इस विषयका पूरा विवरण नहीं लिखा। फिर कभी हम इस विषयपर अलग लेख लिखेंगे।

कहा जाता है कि महाराज हर्षवर्द्धन विक्रमादित्यके यशोगान तथा गुण-गान इनकी प्रजाएं संगीतरूपमे गाया करतीथीं। इन्होंने अपने नामका सम्बत्‌भी चलाया है।

(२)—रमेशचन्द्रदत्त C. I. E. अपने भारतवर्षके प्राचीन इतिहासमें कन्नौज और उज्जैनका उल्लेख करते समय कहते है कि, गुप्तवंशके पश्चाद् भारतीय इतिहासके प्रधान नायक उज्जयिनीके महाराज विक्रमादित्य ही हुए। एक प्रसिद्ध राष्ट्रीय युद्धके विजेता, प्राचीन सर्वाङ्गसुन्दर संस्कृतसाहित्यके मुख्य संरक्षक, और अनेक प्रचलित दन्तकथाओंके स्वामी—फ्रेञ्चोंके लिये कारमन्लजवान, मुसल्मानोंके लिये हरून अल्‌रसीद अंग्रेजोंके लिये आल्फ्रेड और बौद्धोंकेलिये अशोक जैसे माननीय हो गये हैं, वैसे ही हिन्दुओं केलिये विक्रमादित्य थे।

इस राष्ट्रीय वीरके सम्बन्धमे भारतवर्षकी भिन्न भिन्न भाषाओंमें अगणित दन्तकथाएं प्रचलित हो गयी है। ग्रामवासिगण आजपर्य्यन्त उन काहानियोंको बड़े मनोयोग पूर्वक सुना करते हैं। दन्तकथाओंका इतना बड़ा साहित्य आजतक किसी दूसरेके विषयमे इतना प्रचलित नही है। परन्तु इन कथा और कहानियोंसे उनके सच्चे इतिहासका अभावसा हो गया है। इतिहासलेखक और पुरातत्वान्वेषियोंमें इनके समयके निर्णय करने केलिये बड़ी खलबली मचगयी है। कोई कहता है कि ५६ बी. सी. से प्रारम्भ होनेवाले सम्बत्‌के साथ उनका नाम जोड़ दिया गया है। कुछ विद्वानोंका मत है कि ईशाकी प्रथम शताब्दिमे विक्रमादित्य थे। और कितने विद्वान् ईसाकी पांचवी छठवीं शताब्दिके पूर्व विक्रमादित्यका अस्तित्व मानते ही नहीं। हम इन झगडोंमें पड़ना नहीं चाहते। किन्तु हम यह अवश्य कहेंगे कि इसमे तो कोई सन्देह ही नही कि विक्रमादित्य ईसाकी छठवीं शताब्दिमें राज्य करतेथे। इनके सामयिक बड़े बड़े कवि और लेखकोंने जो अपने अपने महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ लिख छोड़े हैं वे आज बड़ी पूज्यश्रद्धासे समादृत होकर पढे जाते है।

इस सारांशके माननेके सामानतया ये चार कारण हैं। पहला तो यह है कि काश्मीरके हिन्दू इतिहासलेखकोंने कनिष्क और विक्रमादित्यके बीचमें अन्यान्य तीस राजाओंका उल्लेख किया है; जिसमें विक्रमादित्यके राजत्वका समय छठवीं शताब्दिमें आजाता है। दूसरा यह कि, ह्वेनसंगके भारतवर्षमे आगमनद्वारा महाराज हर्ष विक्रमका पूर्ण वर्णन किया गया है। तीसरा यह कि वराहमिहिर जो विक्रम सभाके नव रत्नोंमेंसे एक रत्न थे उन्होंने अपने वराहमिहिर ज्योतिषग्रन्थमें आपना समय ५०५ से ५८७ तक लिखा है। इससे भी माळूम होता है कि, इनका अस्तित्व छठवीं शताब्दिमें था नकि प्रथम शताब्दिमें। चौथा कारण यह है कि इनके सभास्थ नवरत्नोंमेंके एक समुज्ज्वल रत्न कविवर

कालिदासने बहुतसे अपूर्व रघुवंश आदि काव्य बनाये हैं। उनमें भी विक्रमका जहां तहां उल्लेख है। इससे भली भाँति यह सिद्ध होता है कि, विक्रमको पहली शताब्दिमें मानना बड़ी भ्रान्ति है।

प्रो. मैक्समूलर साहबका कथन है कि, उज्जयिनीनरेश महाराज विक्रमादित्यकी सभामें कविशिरोमणि कालिदासादि रत्न रहते थे। ईसाके ५६ वर्ष पूर्व अर्थात् ६६ B. C. से चला हुआ सम्वत् (जिसका संस्थापन हुए आज १९७० वर्ष, हुए) इन्हीं विक्रमादित्यका है। यह बात प्रायः सर्वमान्य होरही थी परन्तु अब इसके स्वीकार करनेमें बड़ा भारी परिवर्त्तन हो रहा है। आप कहते हैं कि, शकोंका पराभव कर्त्ता तथा सम्वत्का संस्थापक विक्रमादित्यनामक कोई राजा प्रथम शताब्दिके पूर्व था ही नहीं।

आपका कथन है कि उज्जयिनीके महाराज हर्ष विक्रमादित्यने ही कोरूरके युद्धमें म्लेच्छोंका पराभव कर उस विजयोपलक्ष्यमें अपना सम्वत् संस्थापित किया और इस नवस्थापित सम्वत्को ६०० वर्ष पहले माननेके लिये सबोंको बाध्य किया। अर्थात् लगभग ५४४ ईस्वी A. D इस कोरूरके युद्धका समय निश्चित होता है। महाराज विक्रमादित्यने इस समयको विक्रम सम्वत् ६०० के शुरूसे उद्घोषित किया। इसीसे इस सम्वत्का प्रारम्भ ५६ B. C. से समझा जाता है।

मि. फर्गुसन, डॉ. फ्लीट, जनरल कैनिंगहम, कर्नल टाड, डा. रामकृष्ण भण्डारकर और प. भगवान्लाल इन्द्रजी आदि विद्वानोंकी भी यही राय है कि म्लेच्छोंका पराभव कर्त्ता तथा सम्वत्के संस्थापक विक्रमादित्य नामका कोई राजा प्रथम शताब्दिमें हुआ ही नहीं।

१ (ष) महाराज विक्रमादित्यके समयकी प्राकृतिक घटनाओंका मिलान उनके सभास्थित पण्डितप्रवर महाकवि कालिदासकी अलौकिक कल्पनाओंपर ही निर्भर है। इस लिये उनके ग्रन्थोंमें जिस स्थानपर ऐतिहासिक बात का मिलान करना कुछ सम्भावित है उसका यत्किञ्चित् मैं यहां कुछ उल्लेख करता हूं।

१—जैसे महाराज रघुने विजययात्रा करके हूणोंको पराजित किया है।

" तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम्
कपोलपाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम् " र० ०० ४ स० ६८. श्लो०

अर्थात् रघुराजाके दिग्विजय—व्यापारमें हार हुए हूणोंकी स्त्रियोंके कपोलमें जो लालिमा है वह रघुराजाके पराक्रमकी चेष्टा सूचित कर रही है।

इतिहास खोजी विद्वानोंका कथन है कि, पञ्चम शताब्दिके बाद हूणोंका सम्बन्ध भारतवर्षके साथ था। इसलिये कविवर कालिदासका यह उल्लेख पञ्चम शताब्दिके बादका मालूम होता है। निम्नलिखित रघुवंशके श्लोकमें सुमुद्रगुप्तका भी सम्बध स्पष्टतया मालूम होता है।

"**आसमुद्रक्षितीशानाम्**" र० वं० १ स० ५ श्लो०
"**तस्मै सभ्याः सभार्याय गोप्त्रे गुप्ततमेन्द्रियाः**" १ स० ५५ श्लो०
"**अन्वास्य गोप्ता गृहिणी-सहायः**" २ स० २४ श्लो०
"**तनु-प्रकाशेन विचेयतारका**
प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी" ३ स० २ श्लो०

"**इक्षुच्छाय-निषादिन्यः तस्य गोप्तुर्गुणोदयम्।**
आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः॥ ४ स० २० श्लो०
स गुप्तमूलप्रत्यन्तः शुद्धपार्ष्णिरयान्वितः।
षड्विधं बलमादाय प्रतस्थे दिग्जिगीषया॥" ४ स० २६ श्लो०

प्रथम श्लोकमें जो 'समुद्र' ऐसा पद आया है इससे समुद्रगुप्तका सम्बन्ध ज्ञात होता है।

द्वितीय और तृतीय श्लोकमें 'गोप्त्रे' 'गुप्त' 'गोप्ता' का भी प्रयोग गुप्त ही वंशके लक्ष्यसे किये जानेका कारण मि. हरिनाथ दे बताते हैं।

चौथे श्लोकमें उपमा-रूपसे "शशिना" इस पदसे चन्द्रगुप्तका वर्णन होना निश्चित होता है।

पांचवे और छठवे श्लोकमें 'गोप्तुः' 'आकुमार' और 'गुप्त' पदप्रयुक्तिसे कुमार-गुप्तका सम्बन्ध साफ साफ जाहिर होता है।

एक बात और यह है कि, पांचवे श्लोकका जो आशय है वह प्रयागमें जो समुद्रगुप्तके विजयस्तम्भका शिलालेख है, उस शिलालेखान्तर्गत आशयके कुछ अंशसे मिलता है।

---

१ - समुद्र-पर्यन्त राजाओंका वर्णन मैं करता हूं।

२—सस्त्रीक, उस राजाकी इन्द्रियजीत मुनियोंने सेवा की।

३—पत्नी ही है सहायक जिसकी ऐसा राजा दिलीप गायकी सेवा कर.

४—थोड़ी चमकवाले शशिके ऐसा जिनकी आंखकी तारा कुछ मन्दसी पड़ गयी है. वह प्रातःकालासन्न रात्रिकीसी दीख पड़ती थी।

५ ईखकी छायामें बैठी हुई धान रखनेवाली स्त्रियां गोप्ता राजाका गुण-गान कुमारावस्था (कुमार) से लेकर अबतकका गाती थीं।

६ शत्रुओंपर आक्रमण करनेवाले और अपने किले तथा निवासस्थानकी रक्षा करनेवाले कुशली रघुने छः प्रकारके साधन (सेना) लेकर दिशा जीतनेकी इच्छासे यात्रा की।

" राजाऽपि लेभे सुतमाशु तस्मात् ।
आलोकमर्कादिव जीवलोकः " र. वं. ५ स. श्लो. ३५.
" ब्राह्मे मुहूर्ते किल तस्य देवी ।
कुमार–कल्पं सुषुवे कुमारम् ॥ " र. वं. ५ स. श्लो. ३६.
" रूपं तदोजस्वि तदेव वीर्य्यं
तदेव नैसर्गिकमुन्नतत्वम् ।
न कारणात् स्वाद्बिभिदे कुमारः
प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात् " ॥ र. व. ५ स. श्लो.

उपर्युक्त तीनो श्लोकोमे जो 'कुमार' यह पद आया है इससे तथा श्लोकोंके अर्थानुसार यह अनुमान किया जाता है, कि **चन्द्रगुप्त द्वितीय**के पुत्र **कुमारगुप्त**के नाम करणके उपलक्ष्यमें ये श्लोक कालिदासने रचे है ।

" **दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपात्** " मे. दू. १४ श्लो.

इस श्लोकसे दिङ्नाग और कालिदासकी समकालीनता जो मल्लीनाथने दिखलाई है, सो इसकी विशेष बात हमने जिनसेन और कालिदासकी समकालीनतावाले लेखमें दिखाई है. पाठकजन वहांके उतने अंश से यहांकी भी पुष्टि समझेंगे ।

विज्ञपाठको ! इस लेखमें हमने दश प्रश्न किये हैं; उनमें पहले प्रश्नका उत्तर ताम्रपत्र और ऐतिहासिक घटना आदि चार मार्गके आश्रयसे यथा साध्य हमने दिया है । इस उपस्थित-सामग्रीसे हमे यह बात निश्चित हो जाती है कि विक्रमादित्य प्रथम शताब्दि ५६ B. C. के पहले नहीं थे । इसके प्रतिकूल यदि हमारे विज्ञ इतिहास-मर्मज्ञ ताम्रपत्रादि ऐतिहासिक प्रमाणद्वारा अपनी सम्मति प्रकट करनेकी कृपा करेंगे तो उसके स्वीकार करनेमें हमे कुछ आपत्ति नही होगी । यह विषय बड़े महत्त्वका है, क्योंकि इस विषयको लेकर बड़े बड़े विद्वानोंने कई निबन्ध लिखे है । भारतीय इतिहास-मर्मज्ञोंको इस ओर ध्यान आकृष्ट होवे तथा फिर इस विषयपर आन्दोलन होकर कोई एक सिद्धान्त निकल आवे; इसलिये हमने भास्करकी प्रत्येक किरणमें भारतवर्षके इस एक श्लाघनीय ऐतिहासिक विषयपर कुछ कुछ अपना मन्तव्य प्रकाशित करनेका विचार किया है । साथही साथ श्रीयुत परेशचन्द्र वन्द्योपाध्याय एम. ए. सबजजका विक्रमादित्यका प्रथम शताब्दिके पहले अस्तित्वकी परिपुष्टि करनेवाला लेख इन किरणोंमें प्रकाशित किया

१ जैस संसार सूर्य्यसे प्रकाश पाता है वैसे ही ऋषिसे राजाने कुमार पाया ।

२ ब्राह्ममुहूर्तमें देवीने कार्त्तिकेयके सदृश पुत्र पैदा किया ।

३ इनका वैसा ही ओजस्वी वीर्य्य तथा स्वाभाविक औन्नत्य था । जैसे दीपकसे निकली हुई ज्योति दीपकसे भिन्न नहीं होती वैसे ही यह अपने पितासे किसी बातमें कम नही थे ।

४ अपने (कालिदासके) प्रतिपक्षी दिङ्नागाचार्य्योपलक्षित दोषको निर्दोष करते हुए ।

गया है। इस लेखपर पुरातत्त्ववेत्ता तथा हमारे इतिहास-हितैषी पाठक अवश्य विचार करें। हम आपके लेखके कई अंशोंपर बहुत कुछ लिखना है। स्थानाभावके कारण इन किरणोंमें नहीं लिखकर अगली किरणमें लिखेंगे। (क्रमशः)

सुभाषित.

अहो ! महोदार-महोदयो ! सुनो
स्वधर्म्मका ह्रास हुआ इसे गुनो।
वही गुणी जैन तथा प्रभाववान
जिनेश-तत्त्वैक-रुचि- शरीरवान[1] ॥ १ ॥

कभी नये सभ्य-समाजमें पड़ा
कभी पुरानी पगिया डटे खड़ा।
न एक सत्कार्य्य विमूढ सोचते
यथा गताक्षो न जनो विलोकते[2] ॥ २ ॥

ये हैं सुविज्ञ सकलज्ञ धनी महान[3]
सद्वंश-जात सुकृती सबमें प्रधान
कोई कहे यदि तुम्हे करना न मान।
किं किं न दोषमथवा कुरुतेऽभिमानः[4] ॥ ३ ॥

कोई कहे यह लबार तथा अनारी
मूर्खाधिराज शठ दुष्ट भले भिखारी।
किन्तु क्षमा कर सुधी-जन यत्र तत्र
ज्ञानान्वितेन भवति क्षमितव्यमत्र[5] ॥ ४ ॥

१—जो जिनेशतत्त्वका अनन्य प्रेमी है वही जैन शरीरी है।

२—जैसे अन्धा आदमी नहीं देखता।

३—यह शब्द यद्यपि हलन्त है किन्तु यहां इसे स्वरविशिष्ट उच्चारण करना चाहिये, अन्यथा छन्दोभङ्ग हो जायगा। इसी प्रकार आगे के दो पद्योंमें "शान्ति" और "सृष्टि" इनपदों में भी ह्रस्व इकार है। इन्हें भी पढती वार दीर्घ उच्चारण करनेसे छन्दश्च्युतिकी शङ्का नहीं हो सकती।

४—भला अभिमान कौन कौनसी बुराइयां नहीं करता?

५—ज्ञानी जीवको इस संसारमें सदा क्षमा करनी चाहिये।

कैसी छद्म-मयी यहै जवनिका संसारकी है प्रभो !
शोक-क्रोध-भयादिकी नित नयी झाँकी दिखाती विभो !
छोड़ो अज्ञ ! हुए विपन्न इससे भी शास्त्रवित्केशरी
मत्तेभं हि हिनस्ति यः स हरिणं किं मुञ्चते केशरी ॥ ५ ॥
धर्म-ध्यान धरे न लोक-हितकी चर्चा करे एक भी
स्वार्थी लोभ-वशी गुणी सुजनकी निन्दा करे द्वेष भी।
शिक्षा-वारिजको निशाकर बने दुर्दृश्य ही देखते
यस्तं लोक-विनिन्दितं खलजनं कः सज्जनः सेवते ॥ ६ ॥
जगत् चिन्ताका है गृह विषय शत्रु प्रबल है
कलत्रादि प्राणी निरय-पथ-दर्शी सबल है।
सभी सृष्टि सच्चे सुखमय-पथोंसे विरहिता
इति ज्ञात्वा सन्तः स्थिरतरधियः श्रेयसि रताः ॥ ७ ॥
तमःप्राया आंखे रदन नहीं दीखे वदनमें
उन्हें शान्ति कैसी ? सघन वनमें या सदनमें।
चलें यष्टि-द्वारा शिरसिज हुए श्वेत नतिमान
मनो जन्मोच्छित्त्यै तदपि कुरुते नायमसुमान ॥ ८ ॥
नर-वर-जनि पाई हा ! वृथा ही बिताई
व्यसन-वसन ओढ़े विश्व-विद्या नशाई
विषय-विटप काटो मूलसे देर होती
यदिह विषय-शत्रु दुःख मुग्रं करोति ॥ ९ ॥
अहरह अविकारी कीर्ति-कान्ति-प्रसारी
सकल-सुकृत-सार मान विद्या-प्रचार।
विमुख इस सुधासे जो वही सापराध
स्खलति यदि स मार्गे तत्र दैवापराधः ॥ १० ॥

१—शास्त्रवित्केशरी (विद्वानोंमें श्रेष्ठ) क्योंकि सिंह-पर्यायवाची शब्द श्रेष्ठताका भी सूचन करता है जैसे:—पुरुष-सिंह नर-शार्दूल नर-केशरी आदि।

२—जो मतवाले हाथीको मारता है वह सिंह कभी हरिणको छोड़ सकता है ?

३— निन्दित जनकी सेवा भला कौन सज्जन कर सकता है ?

४—सज्जन ऐसा विचार कर स्थिरबुद्धितासे अपने कल्याणमें रत रहते हैं।

५—झुके हुए (कुबड़े).

६—तौभी प्राणी पुनर्जन्मको रोनेके लिये यानि मुक्ति केलिये ध्यान नहीं देते।

७—जनि (जन्म) ८—संसारमें विषयरूपी शत्रु बड़े भीषण दुःखका अनुभव कराता है।

९—इस चरण का भाव यह है कि प्रयत्न-प्रथिक मनुष्यका यदि कहीं मार्गमें स्खलन (पतन) होवे तो वह भाग्यका दोष समझना चाहिये नकि उसके प्रयत्नका।

होठोंमें लालिमा हो त्रिवलि उदरमें कालिमा हो स्तनोंमें
नाभीमें निम्नता हो गुरुतर कुचहो चक्रता श्रोणियों में ।
सच्चारित्रा सुगात्रा प्रकटितसुखमा दिव्यलावण्यज्योति
तुष्वैवं स्त्रीं पवित्रां शिव-सुखकरणीं सज्जनः स्वीकरोति ॥

पण्डित हरनाथ द्विवेदी

भगवज्जिनसेनाचार्य्य और कविवर कालिदास.

यह देखकर हमारे हर्षका पारावार नही रहता कि, अब हमारे भारतवर्षमे भी ऐतिहासिक महत्त्वका पुनरुत्थान हो रहा है, और सभी समाजवाले अपनी अपनी ऐतिहासिक खोजोंमे लगरहे है । परन्तु साथ साथ यह देखकर हमे आश्चर्य होता है कि, भारतवासी अभीतक किसी नई खोज और नवीन बातोंके सुनने और माननेके लिये सहमत नही होते । परन्तु अब वह समय नही रहा कि संसार अन्धपरम्पराके विश्वासपर चल सके, बल्कि अब समय आपकी प्रत्येक कल्पना और सिद्धान्तोका सुदृढ प्रमाण मांगे गा । इसलिये आपको अपनी निर्मूल कल्पनाएं छोड़ देनी होगी और यदि आपके हृदयको कष्टकर हो तौभी सुदृढ प्रमाण और नई खोजे स्वीकार करनी होगी ।

हम समझते है कि, हिन्दी-क्षेत्र तथा बहुदर्शिमण्डलीमे हिन्दी समाचारपत्रोमें सर्वप्रधान " सरस्वती " मासिक पत्रके सुयोग्य सम्पादक द्विवेदीजीसे प्रायः सब-कोई परिचित होगें । आपकी ऐतिहासिक मर्मज्ञता, बहुदर्शिता तथा समालोचना-सुदक्षताके साथ साथ पुस्तक-पर्य्यालोचनताकी गीतिकाएं श्रीमती " सरस्वती " महीने महीनेपर अपने पाठकोंके समीप वीणावादन-द्वारा सुमधुर स्वरोंसे गागाकर द्विवेदीजीमें पाठकोंकी पूज्यश्रद्धाकी मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ाया करती है । द्विवेदीजीने कविवर कालिदासके गुणदोष तथा समयादिके निर्णय करनेमे कितनी माथापच्ची कीहै, इसका पूरा प्रमाण और रात्रिन्दिन पुस्तकाध्ययनका चिन्ह आपकी लिखित " कालिदासकी निरंकुशता " ही काफी है । सरस्वतीके प्रायः बहुतसे अङ्क ऐसे होंगे कि जिनको द्विवेदीजीने अवश्य कालिदासीय-कवित्व-विभूतिसे विभूषित किया होगा ।

१—ऐसा समझकर सज्जन पवित्र कल्याण तथा सुखकी करनेवाली स्त्रीको स्वीकार करते है ।

हमने **भास्कर**की गत किरणमें "भगवज्जिनसेन और गुणभद्राचार्य्यका परिचय" शीर्षक लेखमें प्रसङ्ग–वश कविवर कालिदास और भगवज्जिनसेनाचार्य्यकी सम-कालीनताकी कुछ चर्चा की थी। सो कालिदास-सर्वस्वसंरक्षक तथा अनन्य कालि-दासीयज्ञेयज्ञाता द्विवेदीजीने विगत नवम्बर मासकी सरस्वतीकी बारहवीं संख्याके ५७२ पृष्ठमें "कालिदासके विषयमें जैनी पण्डितोंकी एक निर्मूल कल्पना" शीर्षक एक लम्बा चौड़ा लेख लिख डाला है।

द्विवेदीजी अपनी निर्मूल काल्पनिक युक्तियोंसे "पार्श्वाभ्युदय" रचे जानेका कारण यह बतलाते हैं कि, "अनुमानसे मालूम होता है कि, विनयसेनको 'मेघदूत' का विषय, जो शृंगार रससे परिप्लुत है, अच्छा न लगा। उन्होंने शायद सोचा कि, ऐसा अच्छा काव्य यदि किसी जैन तीर्थङ्करपर घटा दिया जाय तो घटानेवालेके कविता–चातुर्य्यका भी प्रकाशन हो जाय, और यह काव्य जैन साधुओंके पढ़ने योग्य भी हो जाय। यह बात विनयसेनने जिनसेनसे कही होगी। इस सलाहको जिनसेनने पसन्द करके ही जान पड़ता है, पार्श्वाभ्युदयकी रचना की है"

द्विवेदीजीको स्मरण रहे कि आपको "मालूम होता है" "शायद" "कही होगी" इत्यादि निस्सार युक्तियोंको वे ही स्वीकार करेंगे जो आपके वाक्योंको ही सर्वज्ञ-वाक्य मानते हों। बिना सुदृढ प्रमाण दिये तथा अकाट्य युक्तियोंको प्रकाशित किये वर्त्तमान इतिहासखोजी इस बातको कभी नहीं मान सकते।

वर्त्तमान समयतक जो अनेक इतिहासमर्मज्ञ तथा प्रत्नतत्त्ववेत्ताओंने कालिदासका समय स्थिर करनेके लिये अगणित ऐतिहासिक अन्वेषण किये हैं, उनसे निर्णय होना तो दूर रहे बल्कि मतविभिन्नताकी धारा आज सहस्रपथमें प्रवाहित हो रही हैं।

अबतक किसी पुरातत्त्ववेत्ताओंने संदेहरहित अपनी अकाट्य तर्कनाओंसे यह नहीं निश्चय किया कि, कालिदास अमुक शताब्दिमें हुए तथा अमुक राजाके आश्रित थे! कोई कहता है कि, कालिदास संवत् शताब्दिके प्रारंभमें हुए. कोई कहते हैं कि कालि-दासका प्रथम शताब्दिमें होना बिलकुल असंभव है. क्योंकि संवतका संस्थापक विक्रमादित्य नामक कोई राजा हुआ ही नहीं। कोई संवत्का स्थापक कनिष्क तथा चंद्रगुप्तहीको बतलाते हैं, अतएव इनके समयमें ही कालिदासका अस्तित्व मानना परमावश्यक है। कोई कहता है कि नहीं नहीं, कालिदास ईस्वी सनके ५४४ में ही हुए हैं। क्योंकि, हर्षराजाने विक्रमादित्य नाम धारण करके अपना संवत् चलाया है, अतएव उनके समयमें ही कालिदासका होना आवश्यक है। कोई कहता है, विक्रमकी सभाके नवरत्न-मालान्तर्गत एक ज्योतिषी कवि बराहमिहरने अपने ग्रंथमें कालिदासका उल्लेख किया है

इस वास्ते कालिदासको उनका समकालीन होना जरूरी है, तो इसके विपक्षमें कोई ऐसा कहता है कि, राजा भोज जब उज्जयिनीके सिंहासनपर विराजमान थे तब उनकी सभाको कालिदास भवभूति आदि अनेक कविमण्डली अनुरंजित किया करती थी, इसलिये इनके ग्यारहवीं शताब्दिमें होनेमें कुछ संदेह नहीं है। कोई कहता है कि, कालिदास नामसे कई कवि हो गये। कोई कहता है कि ११ वीं शताब्दिके भोजके सभामें; कोई कहता है प्रथम शताब्दिके विक्रमादित्यकी सभामें, तो कोई कहता है, पंचम शताब्दिके हर्ष विक्रमादित्यके सभामें। इसी प्रकार कालिदासके विषयमें अनेक इतिहास लेखकोंने सैकड़ों सप्रमाण किंवदन्तियां अपने मनमाने समयमें कालिदासका अस्तित्व परिपुष्ट करनेके लिये बना डाली है, किन्तु इनके साधक बाधक प्रमाणके सारगर्भित होनेमें प्रायः बहुतसे विद्वानोंको संदेह है। ऐतिहासिक लेखकोंने आजतक कालिदासके कालसम्बन्धी जितने प्रमाण प्रकाशित किये है, उनको वे कभी ऐसा नहीं कहते कि सब कोई हमे परमेश्वर तथा सर्वज्ञ समझकर हमारी कही हुई बातको ही सर्वथा मान्य करो। बल्कि उन इतिहास–खोजियोंका यह अभिप्राय सर्वथा प्रकटित होता था कि, हमारे इस नये संशोधनके विषयमे और विद्वानोंकी जो उक्तियां होगी वे हम सहाय्यरूपसे स्वीकार करेंगे। और जबतक कोई बात निर्णीत नहीं होती तबतक वे अपने प्रकाशित मन्तव्यको भी सर्वस्वीकृत होने केलिये अस्त व्यस्त नहीं होते। आजकलके जो नये आविष्कर्ता हैं वे इस मन्तव्यसे सर्वथा प्रतिकूल है। और हम समझते है कि, जबतक ऐसा धर्म–वश विवेचन चलता रहेगा तबतक नयी खोज, नया संशोधन और नयी बातें कभी भी कृतकार्य नहीं हो सकती। इसलिये सच्चे इतिहासका भी निर्णय होना कठिन हो जायगा; नयी खोज प्राचीन इतिहासकी अंगपुष्टि केलिये एक बड़ी भारी सहायिका है। इसीलिये हमने गत किरणमें कालिदास और जिनसेनकी समकालीनता दिखलानेकी चेष्टा की थी। वह हमारी नयी खोज नहीथी। प्रायः बहुदर्शी विद्वच्छिरोमणियोंको मालूम होगा कि, पार्श्वाभ्युदयके टीकाकार पण्डिताचार्य योगीराट् कैसे उद्भट विद्वान् थे। उन्हीके पार्श्वाभ्युदयके अवतरणके आधारपर, कालिदास और जिनसेनाचार्यकी काव्यरचनाप्रणालीकी समता निश्चित कर तथा ऐतिहासिक विद्वानोंकी सम्मति विवेचन कर हमने यह लिखा था कि, कालिदास और भगवज्जिनसेनाचार्य समकालीन थे। हमने इस विषयमें पूरे प्रमाणके प्रकाशनके लिये जो अपने पाठकोंको सूचना दी थी, उसपर 'द्विवेदी'जीने अपनी सरस्वतीमें वाग्विलास करनेकी कृपा की है। हम इसके लिये द्विवेदीजीके बड़े ही उपकृत होते है कि, आपने हमे 'भास्कर'में कालिदासके और भगवज्जिनसेनाचार्यके विषयमे कुछ लिखनेका अच्छा अवसर दिया है।

कालिदासके विषयमें बड़े बड़े इतिहासवेत्ताओंकी क्या राय है, वह हम नीचे उद्धृत किये देते हैं और हम अपने महयोगीपत्रसंपादकों तथा पाठकोंसे अनुरोध करते हैं कि, वे अन्यान्य पुरातत्त्ववेत्ता विद्वानोंकी मतभेदपरिपूर्ण सम्मतियां पढकर भलीभांति विचार करलें कि वास्तवमें कालिदासका अस्तित्व कब मानना उचित है।

(१) **हिप्पोलाइट फौचे**की कालिदासके कालनिर्णयके विषयमें सम्मति है कि, जब पोष्यपुत्र (Posthumouse child) को उत्तराधिकारी होनेका प्रचार भारतमें प्रचलित था तभी कालिदास हुए। क्योंकि रघुवंशके अंतमें—पोष्यपुत्र सिंहासनारूढ हुआ, ऐसा लिखा है। इस लिये कालिदासका समय बी. सी. अष्टम शताब्दि मानना जरूर है।

(२) **सर विलयम जोन्स**का मत है कि, कालिदासका समय प्रथम शताब्दिमें मानना चाहिए। उसका प्रमाण आप यों देते हैं कि. परपरागत किंवदंतिओंमें जो विक्रमके सभामें नवरत्नोंके उद्ग्रथित होनेकी चर्चा लोगोंने की है उसके अनुसार कालिदासका भी समय विक्रमके समयानुसार प्रथम शताब्दिमें होना चाहिए. और विक्रम संवत् प्रथमशताब्दिके पहलेसे प्रारंभ है।

डॉ० फ्लीट साहबने यह निश्चयपूर्वक लिखा है कि, बी. सी. ५७ से जिसका संवत् प्रचलित है वह **विक्रम** नामका राजा कोई हुआ ही नहीं। ' विक्रम ' यह उपाधि **चंद्रगुप्त** प्रथम या द्वितीयकी ही होनी चाहिए। क्योंकि, विक्रमके इतिहासके विषयमें न कोई ऐतिहासिक विश्वसनीय बात ही साक्ष्य देती है और न कोई शिलालेख अथवा शिक्के ही मिलते है। अतएव विक्रमके अस्तित्वसंबंधी वार्ता प्रथम शताब्दिकी व्यर्थ है। जब विक्रमका ही पता नहीं लगता तब बिचारे कालिदासको पूछता ही कौन है? इसलिये प्रथम शताब्दिमें कालिदासका मानना ठीक नहीं।

(४) **प्रो० शारदारंजन रॉय** विक्रम संवत्के बारेमें लिखते हैं कि, उज्जयिनीमें ' विक्रमादित्य ' उपाधि धारण करनेवाला **श्रीहर्ष** नामका राजा था। उसीने ५४४. ई० में कोरूरमें म्लेच्छोंके साथ युद्ध किया था और म्लेच्छोंको भारतसे भगाया था। म्लेच्छोंपर विजयाक्रमण करनेसे ही उसके संस्मरणार्थ हर्षने अपना संवत् चला दिया। और उसीको ६०० वर्षका पुराना बतलाया। अर्थात् इस संवतका प्रारंभ ईस्वीके पहिले ५६ में हुआ ऐसा जाहिर किया। विक्रमसंवत्का उल्लेख ५४४ के सिवा और दूसरा किसी ऐतिहासिक लेखोंमें आताही नहीं। इसलिये इसीको प्रमाण माना और उसीके अनुसार कालिदासका भी अस्तित्व छठवीं शताब्दिमें माना।

फिर भी प्रोफेसरसाहेब कहते हैं अश्वघोष और कालिदासकी कवितामें बहुत समता दिखती है। कालिदास का भाव तथा आशय इन्होंने लियाथा, यदि ऐसा माना जाय तो

अश्व घोषका समय प्राय: ७९ ईस्वी विद्वानोंने नियत किया है और अशोकका बी. सी. २२७। इससे माल्हम होता है कि, अश्वघोष और अशोकके बीचमें कालिदासका अस्तित्व अवश्य था। अतः बी. सी. की प्रथम शताब्दिमें कालिदासका समय मानना चाहिये।

इन्होंनें एक और ऐतिहासिक विवेचन इस प्रकार किया है कि कालिदासके काव्यके टीकाकर मल्लिनाथका समय १४ वी शताब्दि है और गणरत्न महोदधिका उल्लेख इन्होने अपनी टीकामें जहां तहां किया है। इसलिये माल्हम होता है कि कमसे कम इनके सौ वर्ष पहले १२५० ई०में अवश्य गणरत्नमहोदधि-कार हो गये हैं. तब ११५७ वर्ष पहले विक्रम हुए। अर्थात् बी. सी. ५७ में विक्रमने राज्य किया था, यह ज्ञात होता है। जब विक्रमके समकालीन कालिदास माने जायं तो बी. सी. के प्रथम शताब्दिमें कालिदासको होना चाहिए* ।

(५) **ज्योतिर्विदाभरण** नामक ज्योतिषशास्त्रके कर्ता कालिदासने धन्वंतरी, क्षपणक, अमरसिंह, वराहमिहिर आदि नव रत्नोंका अपने ग्रंथमें उल्लेख किया है। उससे विक्रमके समकालीन कालिदासका होना ज्ञात होता है। और विक्रमक प्रथम शताब्दिमें हुए ऐसा माननेसे कालिदास भी प्रथम शताब्दिमे हुए, किन्तु इसपर अनेक शंकाए हैं जैसे:—

डॉ० भाऊ दाजी कहते हैं काव्यादि ग्रंथोंके रचयिता और ज्योतिःशास्त्रके रचयिता कालिदास भिन्न भिन्न है। आपके मन्तव्यानुसार यदि ज्योतिर्विदाभरणके कालिदास प्रथम शताब्दिमें माने जायं तो, काव्योंके कर्ता कालिदासका औरही समय निश्चित करना पडेगा। और जैसे:-

बुद्धगयामें **अमरसिंहनें** एक मंदिर बनवाया है. इसका समय ४१४—६४२ ई. तक माना गया है। इसपर जनरल **क्यानिंगहॅमका** मत है कि, यही अमरदेव विक्रमसभाके एक रत्न थे। तब छठवीं सातवीं शताब्दिमें विक्रमका समय मानना चाहिये। इसलिये कालिदासको भी छठवीं सातवीं शताब्दिमें माननेसे किसी प्रकारकी आपत्ति नही हैं।

अमरदेवके बुद्धगयाके शिलालेखके विषयमें History of Literature नामक ग्रंथमें **प्रो० वेबरसाहेब** लिखते हैं कि जिसका नाम विक्रमके सभान्तर्गत नवरत्नोंमें था, उस अमरदेवने संवत् १०१५ (ई. ९४९) में मंदिर बनवाया है। ऐसा उल्लिखित क्यानिंगहॅमके मतके विरुद्ध मत प्रकाशित कर कालिदासका समय ग्यारहवीं शताब्दिमें मानते हैं। क्या खूब है? एक ही शिलालेखमें दोपाश्चात्य पुरातत्ववेत्ता-

* देखो रॉयल ॲ. सो. बेंगालब्रँच ६ व्हाल्युम.

ओंका इतना लंबा चौड़ा मतभेद ? और भी एक नये ऐतिहासिक खिलौनेकी कारीगरी देखिये:—

वराहमिहर—जोकी विक्रमसभाके एक रत्न थे, उन्होनें अपना समय ५८७ ई. अर्थात् छठवीं शताब्दिमें बताया है। इस आधारपर कालिदासका समय **डॉ० भाऊ दाजी** तथा **मि० आपटेने** छठवीं शताब्दि माना है।

पाठको! ज़रा विचार कर इस ऐतिहासिक स्तुतिको देखिये कि विक्रमसभाका एक रत्न ज्योतिर्विदाभरणका कर्ता—**कालिदास** प्रथम शताब्दिमे, दूसरा रत्न वराहमिहर छठवीं शताब्दिमें, तीसरा रत्न अमरसिंह—ग्यारहवीं तथा सातवीं शताब्दिमें—अन्यान्य पुरातत्त्वान्वेषी पण्डित मानते हैं। अब आप ही लोग बतलावें कि विक्रमको किन रत्नोंके समकालीन मानना उचित है ? बलहारी है इस ऐतिहासिक संशोधनकी !!!

(६) **जॉन मुरीमिचेल** लिखते हैं कि, हमे किसी ऐतिहासिक तथा शिलालेखान्तर्गत प्रमाणद्वारा यह बात निश्चित नहीं मालूम हुई कि, कालिदास विक्रमादित्यके सभामें थे। किन्तु यह बात लोगोंने ठीक मान रक्खी है कि, भोजराजाके सभामें कालिदास नहीं थे, परन्तु इन दोनों बातोंमे लोगोंको सहमत होना साधारण बात नहीं है। **जोन्स**साहेब कालिदासको बी. सी. की प्रथम शताब्दिमें मानते है। **एलफिन्स्टन**साहेब आपको पंचम शताब्दिमे खैंचते हैं। **कोलब्रुक** और **प्रो० विलसन**साहेब ९०० वर्ष पहिले होनेको बताते है। विलसनसाहेबकी राय है कि, कालिदास दो होने चाहिए। क्योंकि, नलोदय काव्यके कर्ता कालिदासको माननेसे मेघदूतादि कीसी सरस रचना नलोदयकी नहीं मालूम पड़ती, इसलिये जब संस्कृतसाहित्य उच्च श्रेणीका था, तब कालिदासका होना सम्भवपर* है।

(७) **मि० पी. पिटर्सन** कहते हैं कि कालिदासको जो आधुनिक इतिहास लेखकोंने अर्वाचीन मान रक्खा है, सो ठीक नहीं. उन्हें प्राचीन ही मानना उचित है। अर्थात् प्रथम शताब्दिके पहले कालिदासका अस्तित्व था।।

(८) **प्रो० मोक्षमूलर** साहेब कहते हैं, ई. ५८५-८६ के शिलालेखमें प्रसिद्ध कवि भारवीके साथ साथ कालिदासका उल्लेख मिलता है, इसलिये इस शिलालेखके कुछ वर्ष पहले कालिदासका समय मानना चाहिये।

प्रथम शताब्दिमें विक्रमादित्य हुआ ऐसा कोई प्रमाण—पत्र आजतक उपलब्ध नहीं हुआ। किन्तु निर्मूल इस बातपर लोगोंको कैसे विश्वास हुआ, यह मुझे आश्चर्य मालूम

* देखो-रॉ. अ. सो. व्हाल्युम १-१०८ का पृष्ठ.

† देखो-कोर्टशिप इन एन्शन्ट इंडिया पृष्ठ ११०

पड़ता है। इस आश्चर्यित उलझनका सुलझाव मि. फर्ग्यूसन साहेबने इसप्रकार किया है कि, कोरूरके युद्धमें जो उज्जयनीके महाराज हर्ष विक्रमादित्यने ई. स. ५४४ में म्लेंच्छोको पराजित किया था, उसी अपने विजयोपलक्ष्यमें इस संवत्को ६०० वर्ष पीछे खैंचकर चलाया था। यह मि. फर्ग्यूसन साहेबकी सारगर्भित सम्मति मुझे अच्छी माल्रूम पड़ती है और इसी समयमें कालिदासका अस्तित्व संभवपर है।

(९) **मल्लिनाथने** मेघदूतकी टीकामे एक जगह लिखा है कि, दिङ्नाग और निचुल ये दोनों कालिदासके प्रतिस्पर्धी कवि थे। बौद्धोंके इतिहासमें लिखा है कि, दिङ्नाग असंगके शिष्य थे। कनिष्कके ५०० वर्ष पीछे असंग हुए। अर्थात् ५७८ ईस्वीमें असंगका समय निश्चित होता है। अतएव कालिदासको दिङ्नागके समसामायिक होनेसे इनका अस्तित्व छठवीं शताब्दिमे निर्णीत होता है। यह **आपटे** महाशयका कथन है। मि० **आपटे** महाशयका दूसरा यह भी कथन है कि, राजतरंगिणीमें—उज्जयनीमे जब विक्रमादित्य राज्य करते थे, तब उस समय उन्होने काश्मीरमें **मातृगुप्त** नामक एक कविको भेजाथा—ऐसा वर्णन है। बल्कि उस कविको आधा राज्य भी दे दिया था। यह मातृगुप्त **कालिदास** ही होना चाहिए। क्योंकि उसका नाम कालिगुप्त तथा कालिदास भी था। और दूसरी बात यह है कि कालिदासके काव्योंमें जो काश्मीरके सृष्टिसौदर्यकी आभा बीचबीचमे माल्रूम पड़ती है इससे कालिदासको छठवी शताब्दिमे होना युक्तियुक्त है। डॉ० भाऊ दाजी भी इस कथनसे सहमत है। अन्तमें मि० रघुनाथ नारायण आपटे महाशयका निर्णय है कि, कालिदासको ई. सन ४७२—६३४ तकके बीचमे होना ही चाहिए।

(१०) **प्रो० के. बी. पाठक** लिखते है कि, रघुवंशमे जो हूण लोगोंपर रघुसे आक्रमण किया गया है सो हूणोंका समय छठवीं शताब्दि ही निश्चित होता है। क्योंकि, हूण लोगोंका राज्य काश्मीरमें जब सिंधुनदीपर था तभीका यह वर्णन है। और यह घटना छठवी शताब्दिकी ही है। इसलिये कालिदासका अस्तित्व छठवीं शताब्दिमे मानना उचित है।

तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम्।
कपोलपाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम्॥ ६८॥

सर्ग चतुर्थ.

(११) बल्लाल कविविरचित भोजप्रबंधमे कालिदासके बारबार उल्लेख आनेसे **मि० बेंटली** साहेब कहते हैं कि, भोजराज ग्यारहवीं शताब्दिमें हुए थे। इसलिये कालिदासको भी ग्यारहवी शताब्दिमें होना चाहिये।

(१२) **डॉ० भाऊदाजी**का कथन है कि, कालिदास साढ़े छठवीं शताब्दिमें* हुए।

(१३) **मि० टी. डब्ल्यु. रैस डेव्हिड** कहते हैं कि, सिलोनके सभी विद्वानोंका यही सर्वसाधारण मत है कि कालिदास नामक प्रसिद्ध कवि छठवीं शताब्दिके प्रारंभमें हुआ है और उनका समय ५५२ ईस्वी +बतलाते हैं।

(१४) मि० **रमेशचन्द्र दत्त** की राय है कि, कालिदास छठवीं† शताब्दिमें हुआ।

(१५) प्रो० **म्याक्डोनल्ड**साहेब लिखते हैं कि; कालिदास पांचवी शताब्दिके प्रारंभमें हुए थे‡।

(१६) मि० **मनमोहन चक्रवर्ति**का कथन है कि, कालिदासने जो रघुवंशमे हूणोंका वर्णन किया है इससे ज्ञात होता है कि, कालिदास स्कंधगुप्तके समयमें हुआ था। जिसका अस्तित्व ४७० ईस्वी माना जाता है। और भी आप कहते है कि, रघुवंशका लेखनसमय ईस्वी ४८० से ४९० तक होना चाहिए। और मेघदूत तथा ऋतुसंहारादि काव्योंका प्रणयन इसके २०।३० वर्ष पहले हुआ है। अतएव कालिदासका समय पचम शताब्दिका है।

(१७) कालिदासके विषयमे विल्यमजोम्सका जो कथन है कि विक्रमादित्यका समय बी. सी ५७ होना हमे मंजूर है; अध्यापक मि० **नन्दरगीकर** उसीपर अपनी सम्मति देते है कि बी. सी. ४० मे कालिदास हुए, यह बात हमे विश्वसनीय ज्ञात होती है। क्यों कि मल्लिनाथने भी इसी बातको प्रमाणित किया है।

(१८) कोई कहते हैं कि यशोवर्मनने ईस्वी सन ७००--७३० तक राज्य किया। उसकी सभामें भवभूति कवि थे। भवभूतिने जब अपना उत्तर रामचरित्र नाटक बनाकर राजाको दिखाया था तब कालिदासने **रात्रिरेवं व्यरंसीत्** की जगह **रात्रिरेव व्यरंसीत्** होना चाहिये ऐसा कहकर भवभूतिकी बड़ी प्रशंसा की थी। इससे भवभूति और कालिदास समकालीन हो सकते हैं, अर्थात् कालिदास लगभग अष्टम शताब्दिमें हुए थे ऐसा माल्लूम पड़ता है।

(१९) किसीका कथन है कि श्वेताम्बर जैनशास्त्रोंमें ऐसा उल्लेख मिलता है कि मानतुंगाचार्य और कालिदाससे राजा भोजकी सभामें वादविवाद हुआ था, अत: भोजको ग्यारहवीं शताब्दिमें होनेसे कालिदासको भी ग्यारहवी शताब्दिमें मानना पड़ेगा।

---

* देखो-Library Remains of Dr. Bhau Daji Page-37.

\+ देखो लंडन जर्नल रॉ. अ. सो. व्हा. २० पेज १४९

‡ देखो-Ancient India Page 145-44 149

† देखो-History of sanskrit Litrature Page 325

(२०) **वाग्भट्टने** हर्षचरित्रमें लिखा है कि:—

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥

बाग्भट्टको श्रीहर्षराजाके समकालीन माना जाता है । हर्षका समय सप्तम शताब्दिके प्रारंभमें है, इसलिये हर्ष विक्रमादित्यके सभामें जो कालिदास थे, उनका भी छठवीं शताब्दिका अन्त और सप्तम शताब्दिका प्रारंभ मान लेनेसे कुछ आपत्ति नहीं ।

(२१) **कर्नल विलफोर्ड, जेम्स प्रिन्सेप** वगैरह पुरातत्त्वान्वेषी विद्वान् कालिदासको पंचम शताब्दिमें मानते है. इनका यह कथन मि. एल्फिन्स्टन साहबने भी प्रमाणित माना है ।

(२२) प्रो० **लैसनने** ईस्वी सनकी द्वितीय शताब्दिके उत्तरार्धमें कालिदास हुए हैं, ऐसा प्रमाणित किया है । क्योंकि कालिदास समुद्रगुप्तके समयमे थे । इसका प्रमाण शिलालेखमें जो ' कविमित्र ' है वही काफी है ।

(२३) **कर्नल टॉड**साहेबने कालिदासप्रभृति नवरत्नोंका अस्तित्व परमारवंशीय राजा भोजके* समयमें माना है । इनकी रायमें भोज नामके तीन राजा हुए । प्रथम भोज संवत् ६३१ (५७५ ईस्वी) मे. द्वितीय भोज संवत् ७२१ (६६५ ईस्वी) में और तृतीय भोज संवत् ११०० (१०४४ ईस्वी) में हुए । ऐतिहासिक संशोधकों कि दृष्टिसे प्रथम भोजके समयमें कालिदासका होना युक्तियुक्त जँचा है । इसी प्रथम भोजकी उपाधि **विक्रमादित्य** है ऐसा टॉड्साहेबने माना है ।

(२४) प्रो० **कोवेल**का मत है कि, अश्वघोषका बुद्धचरित ईस्वी सन ७० में प्रसिद्ध था । अश्वघोषके काव्यकी समता कालिदासके रघुवंशादि काव्योंसे होती है, इसलिये कालिदासका समय प्रथम शताब्दिमें मानना चाहिए ।

(२५) प्रो० **कर्न**साहेब बृहत्संहिताके प्रारंभमे लिखते हैं कि. विक्रमादित्य शकके प्रारंभमें हुए थे. अतएव कालिदासको भी उनके समकालीन होने चाहिए ।

(२६) चीन प्रवासी **हुएनसंग** विक्रमादित्यको द्वितीय शताब्दिके प्रारंभमें मानते हैं, इसलिये कालिदासका भी वही समय निर्द्धारित होता है ।

(२७) **आलबेरुणी**ने विक्रमसंवत्का प्रारभ शकके १३५ वर्ष पहले माना है. अत एव कालिदासका भी यही समय होना चाहिये ।

(२८) दिङ्नागाचार्य असंग नामक बौद्धाचार्यके शिष्य थे । दिङनाग २०० ईस्वीमें हुए हैं । उस समय भी एक विक्रमादित्य नामका राजा श्रावस्ती नगरीमें राज्य करता था । इसलिये कालिदासको भी विक्रमके साथ मानना युक्त है ।

---

* देखो Annals of Rajasthan Val II Page 92

(२९) एक किसी विद्वान्‌की राय है कि, **कुमारिल भट्ट** ७०० ईस्वीमें हो गये हैं। इनके तंत्रवार्तिक ग्रंथमें कालिदासके शकुन्तलाका:—

सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः।

यह श्लोकांश कुमारिलभट्टने उद्धृत किया है। इससे जाना जाता है कि दो चार दस वर्षके हेरफेरमें कुमारिलभट्टके ही समयमें कालिदास हुए हैं।

(३०) **रविकीर्ति** जैनाचार्यके आयहोलीके शिलालेखपर जो **५५६** शक (ईस्वी ६३४) लिखा है वही समय प्रायः कालिदासका भी होना चाहिए। क्योंकि रविकीर्तीने साफ साफ लिख दिया है कि, कालिदास और भारवी कीसी हमारी कीर्ति है। इस शिलालेखपर डॉ. भाण्डारकर कहते हैं कि:—

"कालिदासका अभीतक सप्रमाण और संतोषजनक समय निर्णय नहीं हुआ। तौभी उनका उल्लेख रविकीर्तिने आयहोलीके शासनमे किया हैं। जिससे कालिदासका समय साढे सातवीं शताब्दिका जान पड़ता है"।

(३१) किसी किसीकी राय है कि, बुद्धचरितके कर्त्ता **अश्वघोष** कालिदाससे भी प्राचीन हैं, क्योंकि **माघ** आदि अर्वाचीन कवियोंकी रचना-प्रणालीकी कुछ भी समता बुद्धचरित्रमें नहीं पाई जाती। कालिदाससे प्राचीन होनेका प्रमाण लोगोंने यों ठहराया है कि, कालिदासवत् यह भी माधुर्य-प्रिय थे और महर्षि वाल्मीकिके ऐसा इनके काव्यगुम्फनका ढर्रा है। जैसे:—

अश्वघोष—**नवपुष्करगर्भकोमलाभ्यां**
तपनीयोज्ज्वलसङ्गताङ्गताभ्याम्।
स्वपिति स्म तथाऽपरा भुजाभ्याम्
परिरभ्य प्रियवन्मृदङ्गमेव॥

वाल्मीकि—**स्त्रियो ज्वलन्तीस्तपयोपगूढाः**
निशीथकाले रमणोपगूढाः।
ददर्श काश्चित्प्रमदोपगूढाः
यथा विहङ्गा विहगोपगूढाः॥

(३२) कोई कहता है कि कालिदास **जानकीहरण** के कर्त्ता कुमारदासके समकालीन थे। बौद्धग्रन्थोंमें लिखा हुआ है कि चन्द्रगुप्तके पौत्र **प्रियदर्शीके** वंशमें यह हुए हैं, और इनका समय छठवी शताब्दि निश्चित होता है।

(३३) राजशेखर कविने तीन कालिदास माने हैं। जैसे:—

" एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदास-त्रयी किमु "

अष्टम शताब्दिके **भवभूति** के समकालीन कालिदास. **परिमल** कालिदास, **माघ** समकालीन कालिदास, **अभिनव** कालिदास उपाधिवाले **भागवत चम्पूकार**, **शङ्करविजय** कालिदास आदि अनेक कालिदास है।

एक किम्वदन्ती है कि, कुमारदासके मित्र कालिदास एकबार सिंघल नगरमें गये। वहां एक वारविलासिनीके दरवाजेपर निम्नलिखित समस्या लिखी हुई थी:—

" कमले कमलोत्पत्तिः श्रूयते न च दृश्यते "

इस पूर्ति कालिदासने की:—

" बाले तव मुखाम्भोजे दृष्टमिन्दीवरद्वयम् "
कमले कमलोत्पत्तिः श्रूयते न च दृश्यते।

(३४) कोई महोदय तो बड़ी सूक्ष्मदर्शितासे कालिदासीय काव्योंमें छन्दोरचनापर विचार कर कविवर कालिदासको आशातीत प्राचीन कायम करते हैं। और कोई कालिदासकी हिन्दी के दो चार पद्य दिखा कर इनको हिन्दी कवियोंकी श्रेणीमे बिठलाते हैं।

अब मुझे द्विवेदीजीसे यह बात पूछनी है कि द्विवेदीजी! उल्लिखित चौंतीस कल्पनाओंमें कौनसी कल्पना 'निर्मूल' है। मैं समझता हूं कि द्विवेदीजीकी समझमे कालिदासका प्रथम शताब्दिके बाद अस्तित्व कायम करनेवाली प्रायः सभी कल्पनाएं निर्मूल होंगी।

धन्य कालिदास! धन्य तेरी महिमा!! और धन्य तेरी ऐतिहासिचर्चा!!! हिन्दुओंकी श्रुतियोंने ईश्वरके विषयमें जिसतरह "नेति नेति" कहा है, उसी तरह प्रायः सभी इतिहासमर्मज्ञोंने इतिहास-क्षेत्रमें बड़ी बक्रपरिकतासे तथा द्रुतपदसे कवायदें करके आखीरमें उन्हें 'अनुमान' प्रायः 'मालूम' आदि सन्देह-परिपोषक शब्दोंकी ही शरण लेनी पड़ती है। पर मैं द्विवेदीजीकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करता हूं कि आपने निस्सन्देहपूर्वक कालिदासका अस्तित्व प्रथम शताब्दिके पहले माना है।

द्विवेदीजीको स्मरण रहे कि अभी हमने केवल कालिदासके विषयमें इतिहासज्ञोंकी सम्मतियां ही उद्धृतकी है। अभी मुझे "**पार्श्वाभ्युदय** की ज्योति जैनियोंके ही शास्त्रभाण्डारमे क्यों जगमगाती रही" इसका उत्तर तथा भगवज्जिनसेन और कविवर कालिदासकी समकालीनताके **पूरे प्रमाण** अभी प्रकाशित करनेही है। अगामी किरणोंमें उन्हें मैं अवश्य प्रकाशित करूं गा। (क्रमशः)

भारतवर्षीय प्राचीन शिल्पकला.

:0:

भारतवर्षमें जबसे सभ्यताकी नींव पड़ी है, तभीसे शिल्पकलाकीभी अवतारणा हुई है। किन्तु भारतीय सभ्यताकी प्रभा कब छिटकी है, इसकी पूर्वास्थिति कैसी थी, इत्यादि बातोंका ठीक ठीक पता अभी-तक इतिहास-वेत्ताओंने लगाया ही नहीं। और सच पूछिये तो, इस विषयका ठीक पता लगना भी बड़ा दुस्साध्य है। परन्तु मैं इतना तो अवश्य कहूंगा शिल्पकलाका जनक भारतवर्ष ही है।

शिल्प और सभ्यतामें बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। भारतीय शिल्पके बीचमें जातीय भाव तथा प्रकृतिकी एक अक्षुण्ण छाप रहती है। यहांके शिल्पमें विशेषता तो यह है कि, भीतर और बाहर दोनो सौन्दर्यसे ओतप्रोत रहते हैं। शिल्पका जो बाह्य अंश है वही शिल्पका सर्वस्व नहीं समझना चाहिये। उस शिल्पका प्राण अर्थात् शिल्पी अपने जिस मानसिक भाव-द्वारा शिल्पीय पदार्थको अनुरञ्जित करता है, वही भाव उसका प्राकृतिक सौन्दर्य्य है। शिल्पीमात्र रेखा और वर्णादि-द्वारा अपने अपने मनका भाव प्रकटित करते है। जिस रसको प्रकट करना शिल्पीका उद्देश्य है, वह यदि शिल्पमें परिलक्षित हो जाता है तो शिल्पी अपनेको कृतकार्य्य समझता है।

बहुतेरे लोगोका कथन है कि, शाक्य बुद्धदेवके आविर्भावके पहले शिल्पकलाकी उत्पत्ति थी ही नहीं। किन्तु जब मै प्राचीन काव्यों और पुराणोंके शिल्पीय वर्णनोंकी ओर दृष्टि देता हूं तो मुझे मालूम होता है कि, इस स्वर्णमय भारतवर्षहीने शिल्पकलाकी अविष्कृति कर शिल्पकलाविष्कारकर्ताओंमें अपनेको आदर्श बनाकर भारतवासिओंका मुख समुज्ज्वल किया है। दूसरी बात यह है कि, जैन, बौद्ध और हिन्दूके वेदादिक ग्रन्थोंमें बड़ी स्पष्टतासे मूर्ति-पूजाका विधान लिखा हुआ है, इसलिये यह मानना पड़ेगा कि भारतवर्षमें ही सबसे पहले शिल्पीय स्रोत वहा था और शाक्य बुद्धदेवके पहले भी शिल्पकलाका प्रचार था। जैनशास्त्र तो शिल्पकलाकी मनोऽतीत प्राचीनता बतला रहा है। क्योंकि जैनग्रन्थोंमें बहुत जगह अकृत्रिम चैत्यालय का वर्णन आया है। प्राचीन कालमें शिल्पकलाकी क्या अवस्था थी, इस बातका भी पता मुझे पुराणों तथा शिलालेखादि ऐतिहासिक सामग्री ही द्वारा मालूम होता है। प्राचीन कालकी शिल्पकला ऐसी अभ्युदयावस्थामें थी कि, उस समयके एक साधारण राज-प्रासादकी भी धनव्ययिताकी इयत्ता के लिये आज कलके बड़े बड़े राजाओंकी राज्य-सम्पत्ति भी पर्याप्त नहीं समझी जासकती है। प्राचीन राजाओंके दैनिक उपभोगके लिये, जो सामग्री-सम्भार पुराणोंमें वर्णित है, आज वह स्वप्नसा मालूम पड़ता है। यह सब काल ही का प्रभाव समझना चाहिये कि, भारतीय सभ्यता, शिल्पकला-निपुणता तथा धनाढ्यता, आज गजभुक्तकपित्थवत्

अथवा पुञ्जभूतकर्पूरवत् एकदम विलुप्तप्राया हो गयी। जब मनुष्य सभ्यता तथा ऐश्वर्यकी अन्तिम सीढ़ीपर पहुंच जाता है, तब उसकी सौन्दर्य्यानुभूतिकी शक्ति उत्तरोत्तर बढ़कर पहले शिल्प-कला ही को कार्य-क्षेत्रमें अग्रसर करती है। किन्तु ऐश्वर्य्य तथा सभ्यताकी आकांक्षाकी परितृप्ति होनेसे साहित्य-सुन्दरता, सभ्यता और शिल्प—कला हतश्री होने लगजाती हैं। ठीक, यही हालत हमारे भारतवर्षकी भी है। इसने पहले तो सब विषयोंमें अपनी असीम उन्नति की, किन्तु पीछे सन्तुष्टिके शिखरपर चढ़कर अपनेको परमुखापेक्षी तथा सर्वप्रशंसनीय विषयोंका अपात्र बनादिया। किन्तु हम-सबोंको इस भारत वसुधामाताके चरणकमलोंमें अपने तन, मन, धन समर्पित करने चाहिये कि, जिन्होंने अपने गर्भसे शिल्पकलाके आदर्शभूत नक्काशीदार पत्थरके टुकड़े, शिलालेख और प्राचीन मन्दिर तथा चैत्यालय आदि प्राचीन प्रमाण आविर्भूत कर सब विद्वानोंके परिचायक प्रतिभापट्टपर भारतीय प्राचीन सभ्यता, और भारतीय प्राचीन शिल्पकलाकी उत्तमताका परिचय भली भांति करा दिया। यहांपर मुझे वङ्गीय साहित्यके एक अप्रतिम लेखक श्री मधुसूदन गोस्वामीजीका एक बंगला पद्य याद आगया। वह यह है:—

ओरे बाछा ! मातृ—कोषे रतनेर राजी।
ए भिखारी दशा तबे केन तोर आजि॥

भावार्थ—

अरे वत्स ! मुझ मातृकोषमें रत्नोंका है ढेर पड़ा।
तो फिर क्यों तू भिक्षुक बनकर और दीन हो आज खड़ा॥

पाठको ! यह कैसी उक्ति है ? सचमुच यदि हम सब रत्नगर्भा वसुन्धरा माताकी इस पुत्र-वात्सल्ययुक्त तथा करुणामयी उक्तिकी ओर ज़रा दृष्टि-पात करें तो आज फिर भारतीय साहित्य, विज्ञान और शिल्पकलाकी वही प्राचीन छटा दिखा सकते हैं, फिर भी भारतवर्षका वही स्वर्णयुग उपस्थित हो सकता है, और सब किसीके अकर्म्मण्य, परमुखापेक्षिता और विद्या-व्यसन-विमुखता सदाके लिये दूर भाग सकती हैं। किन्तु फिर भी यदि हम लोग कानमें तेल डालकर नींद के खर्राटे तथा आलस्य आहिफेनके पिनक मारते रहे गें, तब तो असभ्यादि आक्षेपोंके लक्ष्य बने ही हैं। इसमें नयी बात क्या है ?

शिल्पकला-का अवतरण पृथ्वीपर मानव जातिके निवास होनेका जबसे प्रारम्भ हुआ, तबसे इस बातकी ज़रूरत हुई कि, मानवीय आरोग्यरक्षण तथा सम्वर्द्धनके लिये कोई आश्रय चाहिये। यह बात प्रायः अन्यान्य इतिहासों और पुराणोंमें लिखी हुई है कि, पहले मनुष्य, वृक्षोंके नीचे तथा पर्वतोंकी गुफाओंमें आश्रय बनाकर रहते थे।

बौद्ध, जैन, वेदानुयायी और अन्यान्य धार्म्मिक मतोंमें इस कथनकी पुष्टि पाई जाती है कि, शिल्पकलाके पूर्ण उद्धार होनेके पहले मानवजातिका निवास वृक्षोंके तले और गिरि-कन्दराओंमें रहताथा, इस लिये उपर्युक्त कथनके माननेमें कोई सन्देह नहीं माळूम पड़ता।

मनुष्य-जातिके प्रथम उद्धारक **अन्तिम मनु नाभिराजा** के पुत्र **महाराज आदिनाथ** चतुर्थकालमें हुए। इन्होंने ही साधारण जीवन व्यतीत करनेकी प्रणाली बदल डाली। क्रमशः समाजकी नियम-बद्धरचना हुई, कायदे और कानूनका प्रसार हुआ तथा अनेक प्रकारके औद्योगिक कार्य प्रचलित हुए। इन्हीं महाराज आदिनाथके सार्वभौमत्वमें नूतन सुसंस्कृत पद्धतिसे आनन्दमय जीवन व्यतीत करनेके लिये शिल्पकलाका उदय हुआ। ऐश्वर्य्यानुसार लोग उत्तम, मध्यम तथा निकृष्ट श्रेणीके गृहमन्दिरादि निर्मित कर उनमें रहने लगे। सृष्टि—निर्मित नाना पदार्थों तथा प्राणियोंके गृहों और मन्दिरोंपर चित्र खुदवा कर लोग उनसे अपना मनोविनोद करने लगे।

इसी प्रकार शिल्प-कलाकी दिन दिन उन्नति होने लगी। उस समय शिल्पियोंने शिल्प—सृष्टि—सौन्दर्य्यकी बड़ी प्रख्याति की।

शिल्पकलाके प्रसारका दूसरा कारण यह था कि, भारतवासी जनोंमे बहुत प्राचीन कालसे मूर्त्ति—पूजा प्रचलित थी। बहुधा सम्पूर्ण आर्य्य (जिनमें जिनमतानुयायी, वेदानुयायी और बुद्धानुयायी आदि सभी समाविष्ट हैं) पुरातन कालसे मूर्ति-पूजक हैं। भारतवर्षकी मूर्तियाँ कैसी भाव-भरी तथा सुन्दर होती है, इसका अनुभव वे ही अनुभवी विद्वान् कर सकते हैं, जिन्होंने अच्छे अच्छे शिल्पियोंके हाथकी बनी सर्व-सुन्दर आदर्शभूत मूर्तियां देखी होंगी।

शिल्पकलाके प्रथम प्रसारके विषयमें इतिहास-लेखकोंकी भिन्न भिन्न राय है। किन्तु भारतीय शिल्पसृष्टिको सर्व-प्राचीन मानना ही उचित है। अफशोस है कि, **महाराज-चन्द्रगुप्त** तथा **अशोक**के पहलेके शिलालेख, मूर्त्तियाँ और नक्काशीदार टुकड़े वगैरह प्रायः मिलते ही नहीं। किन्तु इनलोगोंके समयके शिल्पकला-समलङ्कृत पदार्थोंको देखकर यह मानना पड़ता है कि, उस कालमें शिल्पकला बड़ी समुन्नतावस्थामें थी। क्योंकि उस समयके एक राज-प्रासादका वर्णन यों आया है कि:—" प्रमोद वाटिकाके बीचमें राज-प्रासाद बना हुआ है। इसमें लकड़ीका काम प्रायः बहुत है। कोठेके खंभोंमें सोनेके पत्तर तथा तारोंसे कई चित्र तथा नक्काशी खुदी हुई है। सोनेके बनी हुई अंगूरकी लताएं उनमें परिवेष्टित हैं। लताओंपर चांदीकी चीड़ियाएं अंगूर खानेके लोभसे आबैठी हैं। प्रासादके चारों तरफ अनेकप्रकारकी मछलियोंसे प्रोच्छलित संगमर्मर सोपानमय कई सरोवर हैं। इनमें सुवर्णके कृत्रिम हंस भी हवाके सहारे इधरसे उधर तैर रहे हैं. दरवाजेके ऊपर दोनों तरफ दो सुवर्ण तथा रजत-निर्मित सिंह बैठे हुए हैं। और प्रासादके अन्तःकक्ष तो ऐश्वर्य्य तथा विलासिताकी

लीलाभूमि ही थी"। इत्यादि अनेक प्रकारके वर्णनोसे हठात् यह बात माननी पड़ती है कि यह भारतवर्ष ही किसी समयमें धनाढ्यता, सभ्यता, शिल्पकलानिपुणता, सौन्दर्य्य-प्रियता और विलासिताका प्रधान स्थान तथा उत्पादक था। तभी हमारी न्यायप्रिय गर्वनर्मेन्टका भी यह भारतवर्ष सदा कृपा-पात्र बनरहा है। भारतीय शिल्पकलाका प्राचीन आदर्श क्या है? भारतवर्ष ही क्यों शिल्पकलाका जनक है? इन सब बातोंका सप्रमाण विवेचन मैं अपने पाठकोंकी सेवामें निवेदित करता हूं। (क्रमशः)

शास्त्र-महत्त्व.

सुख सौजन्य शान्ति सौभाग्योंकी जड़ शास्त्र कहाता है।
धृति धर्म्माधिकता धन्याढ्यताका भी मूल कहाता है॥ १॥
महिमा इसकी महा-महिम-विद्वानोंने जो गाई है।
ऋषि मुनियोंने भी इसके बल मर्यादा जो पाई है॥ २॥
शेष शारदाकी जिह्वा करसकती इसका नहीं कथन।
भारतवासी उऋण न होंगे चाहे करें वे कोटि नमन॥ ३॥
हाय! शोक है इसी बातका कि सब भूलें अपनी बान।
सबे उन्नतिपथसे पीठ दिखाके झूठी करते शान॥ ४॥
जैन धर्म्मका मर्म्म जैनशास्त्रोंके तत्त्वोंको सुविचार।
जुलियस आदि विदेशी विज्ञोंका है इसपर प्रेम अपार॥ ५॥
आज सभी सत्कला यहींसे प्रचरित है सब देशोंमें।
विविध-विषय-भूषित ग्रन्थोंकी धाक अभी सब देशोंमें॥ ६॥
किन्तु अभी सब लोगोंने तो नहीं किया है ध्यान इधर।
तभी गँवाकर सम्पत् अपनी ठोकर खातें जिधर तिधर॥ ७॥
जिसने स्याद्वाद-सागरमें गोता खूब लगाया है।
विविध-पुराण-विपिनमें अविरत मनो-मयूर नचाया है॥ ८॥
ताम्रपत्र प्रस्तर लेखोंसे नव्य प्राक्त्व बिलगाया है।
"जीव दया है परम धर्म्म" यह तथ्य तत्त्व अपनाया है॥ ९॥
है मेरा अनुरोध उन्हींसे वे ही करें धर्म्म उद्धार।
जीर्ण शीर्ण जिनसद्ग्रन्थोंकी भी रक्षाका करें प्रचार॥

पण्डित हरनाथ द्विवेदी.

परिशिष्ट शिलालेख.

श्रीः ॥ जयत्यजेयमाहात्म्यं विशासितकुशासनम् ।
शासनं जैनमुद्भासि मुक्तिलक्ष्म्यैकशासनम् ॥ १ ॥

अपरिमितसुखमनल्पावगममयं प्रबलबलहृतातङ्कम् ।
निखिलावलोकविभवं प्रसरतु हृदये परं ज्योतिः ॥ २ ॥

उद्दीप्राखिलरत्नमुध्दृतजडं नानानयान्तर्गृहम् ।
स स्यात्कारसुधाभिलिप्तजानिभृत्कारुण्य कूपोच्छ्रितम् ॥
आरोप्यश्रुतमानपात्रममृतद्वीपं नयन्तः पराम् ।
एते तीर्थकृतो मदीयहृदये मध्येभवाब्ध्यासताम् ॥ ३ ॥

तत्राभवत्त्रिभुवनप्रभुरिद्धवृद्धिः । श्रीवर्द्धमानमुनिरन्तिमतीर्थनाथः ॥
यद्देहदीप्तिरपि सन्निहिताखिलानाम् । पूर्वोत्तराश्रितभवां विशदीचकार ॥ ४ ॥

तस्याभवच्चरमचित्जगदीश्वरस्य । यो यौवराज्यपदसंश्रयतः प्रभूतिः ॥
श्रीगौतमो गणपतिर्भगवान्वरिष्ठः । श्रेष्ठैरनुष्ठितनुतिर्मुनिभिस्स जीयात् ॥ ५ ॥

तदन्वये शुद्धिमति प्रतीते समग्रशीलामलरत्नजाले ।
अभूद्यतीन्द्रो भुवि भद्रबाहुः पयः पयोधाविव पूर्णचन्द्रः ॥ ६ ॥

भद्रबाहुरग्रिमस्समग्रबुद्धिसम्पदा ।
शुद्धसिद्धशासनं सुशब्दबन्धसुन्दरम् ॥
इद्धवृत्तसिद्धिरत्र बद्धकर्म्मभित्तपो ।
वृद्धिवार्द्धिता प्रकीर्तिरुद्धधीर्महर्द्धिकः ॥ ७ ॥

यो भद्रबाहुः श्रुतकेवलीनां मुनीश्वराणामिह पश्चिमोऽपि ।
अपश्चिमोऽभूद्विदुषां विनेता सर्वश्रुतार्थप्रतिपादनेन ॥ ८ ॥

यदीयशिष्योऽजनि चन्द्रगुप्तः समग्रशीलानतदेववृद्धः ।
विवेश यत्तीव्रतपःप्रभावप्रभूतकीर्तिर्भुवनान्तराणि ॥ ९ ॥

तदीयवंशाकरतः प्रसिद्धादभूददेषा पतिरत्नमाला ।
बभौ यदन्तर्मणिवान्मुनीन्द्रस्सकुंदकुंदोदितचण्डदण्डः ॥ १० ॥

अभूदुमास्वाति मुनिः पवित्रे वंशे तदीये सकलार्थवेदी ।
सूत्रीकृतं येन जिनप्रणीतं शास्त्रार्थजातं मुनिपुंगवेन ॥ ११ ॥

स प्राणिसंरक्षणसावधानो बभार योगी किल गृध्रपक्षान् ।
तदाप्रभृत्येव बुधा यमाहुराचार्य्य शब्दोत्तरगृध्रपिच्छम् ॥ १२ ॥

तस्मादभूद्योगिकुलप्रदीपो बलाकपिच्छः स तपोमहर्द्धिः ।
यदङ्गसंस्पर्शनमात्रतोऽपि वायुर्विषादीनमृतीचकार ॥ १३ ॥

समन्तभद्रोऽजनिभद्रमूर्तिस्ततः प्रणेता जिनशासनस्य ।
यदीयवाग्वज्रकठोरपातश्चूर्णीचकार प्रतिवादिशैलान् ॥ १४ ॥

श्रीपूज्यपादोध्द्तधर्म्मराज्यस्ततो सुराधीश्वरपूज्यपादः ।
यदीयवैदुष्य गुणानिदानीं वदन्ति शास्त्राणि तदुध्द्तानि ॥ १५ ॥
धृतविश्वबुद्धि'यमत्रयोगिभिः कृतकृत्यभावमनुबिभ्रदुच्चकैः ।
जिनवद्बभूव यदनङ्गचापहृत्स जिनेन्द्रबुद्धिरिति साधुवर्णितः ॥ १६ ॥
श्रीपूज्यपादमुनिरप्रतिमौपधर्द्धिर्जीयाद्विदेहजिनदर्शनपूतगात्रः ।
यत्पादधौतजलसंस्प (?)र्शप्रभावात्कालायसं किल तदा कनकीचकार ॥ १७॥
ततः पं शास्त्रविदां मुनीनामग्रेसरो भूदकलङ्कसूरिः ।
मिथ्यान्धकारास्थगिताखिलार्थाः प्रकाशिता यस्य वचोमयूखैः ॥ १८ ॥
तस्मिन्गते स्वर्गभुवं महर्षौ दिवः पतिं नर्तुमिवप्रकृष्टां ।
तदन्वयोद्भूतमुनीश्वराणां बभूवुरित्थं भुवि संघ-भेदाः ॥ १९ ॥
स योगिसंघश्चतुरः प्रभेदानासाद्य भूयानविरुद्धवृत्तान् ।
बभावयं श्रीभगवान जिनेन्द्रश्चतुर्मुखानीव मिथस्समानि ॥ २० ॥
देव-नन्दि-सिंह-सेन संघभेदवर्तिनां देशभेद्तः ऽबोधभाजिदेवयोगिनाम् ।
वृत्ततः समस्ततो विरुद्धधर्म्मसेविनां मध्यतः प्रसिद्ध एष नन्दिसंघ इत्यभूत् ॥२१॥
नन्दिसंघे स देशीयगणे गच्छेच्छपुस्तके ।
इङ्गुलेशबलिर्जीयान्मंगलीकृतभूतलः ॥ २२ ॥
तत्र सर्व्वशरीरिरक्षाकृतमतिर्विजितेन्द्रियः ।
सिद्धशासनवर्द्धनप्रतिलब्धकीर्तिकलापकः ॥ २३ ॥
विश्रुतश्रुतकीर्तिभट्टारकयतिस्समजायते ।
प्रस्फुरद्वचनामृतांशुविनाशिताखिलहृत्तमाः ॥ २४ ॥
कृत्वा विनेयान्कृतकृत्यवृत्तीन् निधाय तेषु श्रुतभारमुच्चैः ।
स्वदेहभारं च भुविप्रशान्तः समाधिभेदेन दिवं स भेजे ॥ २५ ॥

× × × × ×

गते गगनवाससि त्रिदिवमत्र यस्योच्छ्रिता न वृत्तगुणसंहतिर्वसति केवलं तद्यशः ।
अमन्दमदमन्मथप्रणमदुग्रचापोच्चलत्प्रतापहतिकृत्तपश्चरणभेदलब्धं भुवि ॥ २६ ॥
श्रीचारुकीर्तिमुनिरप्रतिमप्रभावस्तस्माद्भून्नि जयशोधवलीकृताशः ।
यस्याभवत्तपसि निष्ठुरतोपशान्तिश्चित्ते गुणे च गुरुता कृशता शरीरे ॥२७॥
यस्तपोवल्लिभि र्वेल्लिताद्द्रुमो वर्त्तयामास सारत्रयं भूतले ।
युक्तिशास्त्रादिकं च प्रकृष्टाश्शयशब्दविद्याम्बुधेर्वृद्धिकृच्चंद्रमाः ॥ २८ ॥
यस्य (?) योगिसिंहपादयोस्सर्वदा सङ्गिनीमिन्दिरां पश्यतश्शार्ङ्गिणः ।
चिन्तयेवाभवत्कृष्णतावर्ष्मणः सान्यथानीलतो किं भवेत्तत्तनोः ॥ २९ ॥
एषां शरीराश्रयतोऽपि वातो रुजः प्रशान्तिं वितनोन्तेषाम् ।
बल्लालराजोत्थितरोगशान्तिरासीत्किलैतात्किमु भेषजेन ॥ ३० ॥

मुनिर्म्मनीषाबलतो विचारितं समाधिभेदं समवाप्य सत्तमः।
विहाय देहं विविधापदां पदं विवेश दिव्यं वपुरिद्धवैभवम् ॥ ३१ ॥
अस्तमायाति तस्मिन्कृतिनिर्णयं विनाभविष्यत्तदा पण्डितयतिः। (?)
सोमवस्तुमिथ्यातमस्तोमपिहितं सर्व्वमत्तमैरित्ययं वक्तृभिरुपाघोषि ३२
विबुध जनपालकं कुबुधमतहारकम्।
विजितसकलेंद्रियं भजत तमलं बुधाः ॥ ३३ ॥
धवलसरोवरनगरजिनास्पदमसदृशमाकृतदुरुतपोमहः ॥
यत्पादद्वयमेव भूपतिततिश्चक्रे शिरोभूषणम्।
यद्वाक्यामृतमेव कोविदकुलं पीत्वा जिजीवानिशम् ॥
यत्कीर्त्या विमलं बभूव भुवनं रत्नाकरेणावृतम्।
यद्विद्या विशदीचकार भुवने शास्त्रार्थजातं महत् ॥ ३४ ॥
कृत्वा तपस्तीव्रमनल्पमेधास्संपाद्यपुण्यान्यनुपप्लुतानि।
तेषां फलस्यानुभवाय दत्तचेता इवायं त्रिविधं सयोगी ॥ ३५ ॥
तस्मिञ्जाते भूम्नि सिद्धान्तयोगी प्रोद्यद्वाचा वर्द्धयन् सिद्धशास्त्रम्।
शुद्धे व्योम्नि द्वादशात्माकरौघैर्यद्वत्पद्मव्यूहमुभिद्रयन्स्वैः ॥ ३६ ॥
दुर्वाद्युक्तं शास्त्र-जातं विवेकी वाचानेकान्तार्थसंभूतया यः।
इंद्रोऽशन्या मेघजालेत्थया भू-वृद्धीं भूभृत्संहतिं वा बिभेद ॥ ३७ ॥
यद्वत्पदाम्बुजनतावनिपालमौलिरत्नांशवोऽनिशममुं विदधुस्सरागम्। (?)
तद्वन्नवस्तु न वधुर्न च वस्त्रजातं नो यौवनं नच बलं नच भाग्यमिद्धम् ॥३८॥
प्रविश्य शास्त्राम्बुधिमेक धीरो जगाद पूर्णं सकलार्थरत्नम्।
पारं समर्थास्तदनुप्रवेशादेकैकमेवात्र न सर्वमापुः ॥ ३९ ॥
सम्पाद्य शिष्यान्स मुनिः प्रसिद्धानध्यापयामास कुशाग्रबुद्धीन्।
जगत्पवित्रीकरणाय धर्म्मप्रवर्तनायाखिलसंविदं च ॥ ४० ॥
कृत्वा भक्तिं ते गुरोः सर्वशास्त्रं नीत्वा वत्सं कामधेनुः पयो वा।
स्वीकृत्योच्चैस्तत्पिबन्तोऽतिपुष्टाः शक्तिं स्वेषां ख्यापयामासुरिद्धम् ॥ ४१ ॥
तदीय शिष्येषु विदाम्वरेषु गुणैरनेकैःश्रुतमुन्यभिख्यः।
रराज शैलेषु समुन्नतेषु सरत्नकूटैरिव मन्दराद्रिः ॥ ४२ ॥
कुलेन शीलेन गुणेन मत्या शास्त्रेण रूपेण च योग्य एषः।
विचार्य तं सूरिपदं स नीत्वा कृतक्रियं स्वं गणयाञ्चकार ॥ ४३ ॥
अथैकदा चिंतयदित्यनेनाः (?) स्थितिं समालोक्य निजायुषोल्पाम्।
समर्थ्य चास्मिन्स्वगणे समर्थे तपश्चरिष्यामि समाधियोग्यम् ॥ ४४ ॥
विचार्य चैवं हृदये गणाग्रणीर्निवेदयामास विनेयबान्धवः।
मुनिस्समाहूय गणाग्रवर्तिनं स्वपुत्रमित्थं श्रुतवृत्तशालिनम् ॥ ४५ ॥

मद्न्वयादेषसमागतोऽयं गणो गुणानां पदमस्य रक्षा ।
त्वयाङ्गमद्गत्क्रियतामितीष्टं समर्प्पयामास गणी गणं स्वम् ॥ ४६ ॥

गुरुविरहसमुद्यदुःखदूनं तदीयं मुखमगुरुवचोभिस्सुप्रसन्नं चकार ।
सपदिविमलिताब्द (ब्ज) श्लिष्टपांसुप्रतानं किमधिवसातयोषिन्मन्दफूत्कारवातैः ॥४७॥

कृतिततिहितवृत्तस्सत्त्व गुप्तिप्रवृत्तो जितकुमतिविशेषश्शोषिताशेषदोषः ।
जितरतिपतिसत्व-तत्त्व विद्या-प्रभूत्वः सुकृतिफलविधेयं सोऽगमाद्दिव्यभूयम् ॥४८॥

गतेऽत्र तत्सूरिपदाश्रयोऽयं मुनीश्वरो संघमवर्द्धयत्तराम् ।
गुणैश्शास्त्रैश्चरितैरनिन्दितैः प्रचिन्तयंस्तद्गुरुपादपंकजम् ॥ ४९ ॥

प्रकृत्यकृत्यं कृतसंघरक्षो विहाय चाकृत्यमनल्पबुद्धिः ।
प्रवर्द्धयन्धर्ममनिन्दितं तद्गुरूपदेशान सफलीचकार ॥ ५० ॥

अखण्डयदयं मुनिर्विमलवाग्भिरत्यद्भुतान् ।
अमन्दमदसंचरत्कुमतवादिकोलाहलम् ॥
भ्रमन्नमरभूमिभृद्भ्रमितवारिधिप्रोच्चलत् ।
तरङ्गततिविभ्रमग्रहणचातुरीभिर्भुवि ॥ ५१ ॥

कां त्वं कामिनि ! कथ्यतां श्रुतमुनेः कीर्तिः किमागम्यते ।
ब्रह्मन्मत्प्रियसन्निभो मुनिबुधः संमृग्यते सर्व्वतः ॥
नेंद्रः किं स च गोत्रभिद्धनपतिः किं नारत्यसौ किन्नरः ।
शेषः कुत्र गतः स च द्विरशनो रुद्रः पशूनां पतिः ॥ ५२ ॥

वाग्देवताहृदयरंजन मंडनानि मन्दारपुष्पमकरन्दरसोपमानि ।
आनंदिताखिलजगन्त्यमृतं वमन्ति कर्णेषु यस्य वचनानि कवीश्वराणां ॥ ५३ ॥

समन्तभद्रोप्यसमन्तभद्रः श्रीपूज्यपादोऽपि न पूज्यपादः ।
मयूरपिच्छोप्यमयूरपिच्छः चित्रं विरुद्धोऽपि विरुद्ध एषः ॥ ५४ ॥

एवं जिनेन्द्रोदितधर्ममुच्चैः प्रवर्द्धयन्तं मुनिवंशदीपिनम् ।
अदृश्यवृत्त्या कलिना प्रयुक्तो वधाय रागः तमवाप दूतवत् ॥ ५५ ॥

यथा खलः प्राप्य महानुभावं तमेव पश्चात्कवलीकरोति ।
तथा शनैः सोऽयमनुप्रविश्य वपुर्वबाधे प्रतिबद्धवीर्यः ॥ ५६ ॥

अङ्गान्यभूवन्सकृशानि यस्य न च व्रतान्यद्भुत-वृत्तभाजः ।
प्रकम्पमापद्वपुरिद्धरोगान्न चित्तमावश्यकमित्यपूर्वम् ॥ ५७ ॥

स मोक्षमार्गे रुचिमेष धीरो मुदञ्च धर्मे हृदये प्रशान्तिम् ।
समादधे तद्विपरीतकारिन्यस्मिन्प्रसर्प्पत्यधिदेहमुच्चैः ॥ ५८ ॥

अंगेषु तस्मिन्प्रविजृम्भमाने निश्चित्य योगी तदसाध्यरूपताम् ।
ततः समागत्य निजाग्रजस्य प्रणम्य पादाववदत्कृताञ्जलिः ॥ ५९ ॥

देव पण्डितेंद्र योगिराज धर्म्म-वत्सल त्वत्पदप्रसादतः समस्तमर्जितं मया ।
सद्यशः श्रुतं व्रतं तपश्च पुण्यमक्षयं किं ममात्र वर्त्तितक्रियस्य कल्पकांक्षिणः ॥६०॥

देहतो विनात्र कष्टमस्ति किं जगत्त्रये तस्य रोगपीड़ितस्य वाच्यता न शब्दतः ।
ध्येय एव योगतो वपुर्विसर्ज्जनक्रमः साधुवर्ग सर्वकृत्यवेदिनां विदांवरः ॥ ६१ ॥

विज्ञाप्य कार्यं मुनिरित्थमर्थ्ये मुहुर्मुहुर्वारयतो गणेशान् ।
स्वीकृत्य सल्लेखनमात्मनीनं समाहितो भावयति स्म भाव्यम् ॥ ६२ ॥

उग्राद्विपत्तिमितिमिङ्गिलनक्रचक्र-प्रोत्तुंगमृत्युमृतिभीमतरङ्गभाजी । (?)
तीव्राजवं जवपयोनिधिमध्यभागे क्लिश्नात्यहार्निशमयं पतितस्स जन्तुः ।६३।

इदं खलु यदङ्गकं गगनवाससां केवलम्
न हेयमसुखास्पदं निखिलदेहभाजामपि ।
अतोऽस्य मुनयः परं विगमनाय बद्धाशया
यतन्त इह संततं कठिनकायतापादिभिः ॥ ६४ ॥

अयं विषयसंचयो विषमशेषदोषास्पदम् ।
स्पृशज्जनिजुपामहो बहुभवेषु सम्मोहकृत् ॥
अतः खलु विवेकिनः तमपहाय सर्वंसहाः ।
विशन्ति पदमक्षयं विविधकर्म्महान्युत्थितम् ॥ ६५ ॥

उद्दामदुःखशिखिसंगतिमङ्गयष्टिं तीव्राजवं जवतयानपतापतामाम् ।
स्रक्चन्दनादिविषयामिव तैलसिक्तम् कोवाऽवलंब्य भुवि संचरति प्रबुद्धः ॥६६॥

स्रष्टुः स्त्रीणामेनसा सृष्टितः किं गात्रस्याधोभूमिसृष्टया च किं स्यात् ।
पुत्रादीनां शत्रुकार्य्ये किमर्थं सृष्टेरित्थं व्यर्थता धातुरासीत् ॥ ६७ ॥

इदं हि बाल्यं बहुदुःखबीजं इदं वयःश्री घनरागदाहा ।
सवृद्धिभावोऽप्यमर्षाग्रशाला (?) दशेयमङ्गस्य विपत्फला हि ॥ ६८ ॥

लब्धं मया प्राक्तनजन्मपुण्यात्सुजन्मसद्गात्रमपूर्वबुद्धिः ।
सदाश्रयः श्रीजिनधर्म्मसेवा ततो विना मा च परः कृती कः ॥ ६९ ॥

इत्थं विभाव्य सकलं भुवनस्वरूपम्
योगी विनश्वरमिति प्रशमं दधानः ।
अर्द्धावमीलितदृगस्खलितान्तरङ्गः
पश्यन्स्वरूपमिति सो विहितः समाधौ ॥ ७० ॥

हृदयकमलमध्ये सौधमादाय रूपं प्रसरदमृतकल्पैर्मूलमन्त्रैः प्रसिञ्चन् ।
मुनिपरिषदुदीर्णा(?) स्तोत्रघोषैस्सहैव श्रुतिमुनिरयमङ्गं स्वं विहाय प्रशान्तः ७१

अगमदमृतकल्पं कल्पमल्पीकृतैना विगलितपरिमोहस्तत्र भोगाङ्ककेषु ।
विनमदमरकान्तानन्दबाष्पाम्बुधारापतनहृतरजोन्तर्धामसोपानरम्यम् ॥ ७२ ॥

यतौ याते तस्मिञ्जगदजनि शून्यं जनिभृतम्
मनो मोहध्वान्तं वत बलमपूर्व्यप्रातिहरं । (?)
व्यदीप्यद्यच्छोको नयनजलमुष्णं विरचयन्
वियोगः किं कुर्य्यादिह न महतां दुस्सहतरः ॥ ७३ ॥

पादा यस्य महामुनेरपि न कैर्भूभृच्छिरोभिर्धृता
वृत्तं सन्नविदाम्बरस्य हृदयं जग्राह कस्यामलम् ।
सोऽयं श्रीमुनिभानुमान्विधिवशादस्तं प्रयातो महान् ।
यूयं तद्विधिमेव हन्त तपसा हन्तुं यतध्वं बुधाः ॥ ७४ ॥

यत्र प्रयान्ति परलोकमनिन्द्यवृत्ता
स्थानस्य तस्य परिपूजनमेव तेषाम ।
इज्या भवेदिति कृताकृतपुण्यराशेः
स्थेयादियं श्रुतमुनेस्सुचिरं निपद्या ॥ ७५ ॥

इषुशरशिखिविधुमितशकपरिधाविशारदतिद्वियगाषाढे ।
सितनवमिबुधदिनोदयजुषि स वैशाखे प्रतिष्ठितमिह ॥ ७६ ॥

विलीनसकलक्रियां विगतरोधमत्युर्जितम्
विलंघिततमस्तुलाविरहितं विमुक्ताशयम् ।
अवाङ्मनसगोचरं विजितलोकशक्त्यग्रिमम्
मदीयहृदयेऽनिशं वसतु धाम दिव्यं महत् ॥ ७७ ॥

प्रबन्धध्वनिसम्बन्धा सद्रागोपादनक्षमा ।
मङ्गराजकवेर्वाणी वाणी वीणायततराम् ॥ ॥ ७८

परिशिष्ट शिलालेखका भावानुवाद.

शिलालेख नं. १०८

१. कुशासनका विध्वंस करनेवाला मुक्तिलक्ष्मीका एक शासन और अजेय है माहात्म्य जिसका ऐसा समुज्ज्वल जैनशासन जयशाली होवे।

२. सब सुखोका मूल और सब प्रकारके आतंकों (मनोवेदनाओ) को दूर करनेवाली प्रकाशमय ज्योति हमारे हृदयमें फैले।

३. रत्नत्रयके प्रकाश करनेवाले, मूर्खता हटानेवाले, विविधनयके विवेचक और स्याद्वाद मुधासे वितृप्त ये तीर्थंकर हमारे हृदयमें विराजमान होवें।

४. त्रिभुवनमें विख्यात अन्तिम तीर्थनाथ श्री वर्धमानस्वामी हुए। इनकी देहकी कान्तिने सभी सृष्टिको प्रकाशित कर दिया।

५. इनके रहते रहते मुनियोंसे वंदित श्रेष्ठ संघाधिपति श्रीमान् गौतम मुनि हुए।

६-८. इन्हींके समुज्ज्वल वंशमें समुद्रसे चन्द्रमाके ऐसे यतिराज श्री **भद्रबाहु** स्वामी हुए । इनकी कीर्ति तथा सिद्धशासन भूमंडलमें व्याप्त थे । यद्यपि **भद्रबाहु** स्वामी श्रुतकेवली, मुनीश्वरोंके अन्तमें हुए तौभी ये सभी पंडितोंके नायक तथा श्रुत्यर्थ प्रतिपादन करनेसे सभी विद्वानोंके पूर्ववर्ती थे ।

९-१०. इन्हींके शिष्य शीलवान् श्रीमान **चन्द्रगुप्त** मुनि हुए । इनकी तीव्र तपस्या उससमय भूमंडलमें व्याप्त हो रही थी । इन्हींके वंशमें बहुतसे यतिवर हुए । जिनमें मुनींद्र **कुंद**कुंदस्वामी, प्रखर तपस्या करनेवाले हुए ।

११-१३. तत्पश्चात् सभी अर्थको जाननेवाले **उमास्वाति** नामक मुनि इस पवित्र आम्नायमें हुए । जिन्होंने श्री**जिनेंद्र**प्रणीत शास्त्रको सूत्र रूपमें रूपांतर किया । सभी प्राणियोंके संरक्षणमें तत्पर योगी **उमास्वाति** मुनिने गृध्रपक्षका धारण किया । तभीसे विद्वद्गण उन्हें गृध्रपिच्छाचार्य कहने लगे । इन योगी महाराजकी परंपरामें प्रदीप-रूप महर्द्धिशाली तपस्वी **बलाकपिच्छ** हुए । इनके शरीरके संसर्गसे विषमयी हवा भी उस समय अमृत (निर्विष) हो जाती थी ।

१४. इसकेबाद जिनशासनके प्रणेता भद्रमूर्ति श्रीमान् **समन्तभद्र** स्वामी हुए । इनके वाग्वज्रके कठोर पातने वादिरूपी पर्वतोंको चूर्ण चूर्ण कर दिया ।

१५-१७. इनकी परंपरामें श्रीधर्मराज **पूज्यपाद** स्वामी हुए, जिनके बनाये हुए शास्त्रोंमें जैनधर्मका बहुतही महत्त्व मालूम होता है । इन्होंने निरंतर कृतकृत्य होकर संसारहितैषिणी बुद्धीको धारण किया । अनंगके ताप हरनेवाले साक्षात् **जिन**भग-वान्‌के ऐसे विदित होनेसे लोगोंने इनका नाम ' जिनेंद्र ' रक्खा । औषधशास्त्रमें परम प्रवीण, विदेह **जिनेंद्र** दर्शनसे पवित्र होनेवाले श्रीमान् **पूज्यपाद** मुनि जयशाली रहें । इनके चरणकमलके धौत जलके संसर्गसे कृष्णलोह भी सुवर्ण हो जाता था ।

१८-१९. इनके बाद शास्त्रवेत्ता मुनिओंमें अग्रेसर **अकलंकसूरि** हुए । इन्हींके वाङ्मय रूपी किरणोंसे मिथ्यांधकारसे आच्छादित अर्थ संसारमें प्रकाशित हुआ । इनके स्वर्ग जानेपर इनकी परंपराके मुनिसंघोंमें कई भेद (फूट) हुआ

२०. इनके बाद श्रीमान् योगी जिनेंद्र भगवान् अविरुद्धवृत्तिवाले चार संघोंको पाकर परस्पर समान चार मुखके ऐसे उन्हें समझकर शोभने लगे ।

२१. क्रमशः **देव**, **नंदि**, **सिंह** और **सेन** ये चार संघ निर्मित हुए । जिनमें **नंदि**संघ बड़ा प्रसिद्ध था ।

२२. नंदिसंघमें देशीय गण, पुस्तक गच्छके स्वामी इंगुलेश्वर, जिन्होंने सारी भूतलको मंगलमय कर दिया है—वह विजयशाली होवें ।

२३–२५. उसी नंदिसंघमें संपूर्ण प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले, इंद्रिय निग्रही स्याद्वादमतके प्रचार करनेसे कीर्तिकलापको पानेवाले, प्रसिद्ध यतिवर श्रुतकीर्ति भट्टारक हुए। जिनकी प्रभामयी वचनामृतकिरणोंसे सारा अज्ञानांधकार विनष्ट हो गया। विनयी सज्जनोंको कृतकृत्य बनाकर तथा उनपर श्रुतशास्त्रका भार समर्पित कर और पृथ्वीपर अपनी देहका भार रखकर समाधीपूर्वक शान्त होकर उन्होने स्वर्गधामको अलंकृत किया।

२६. महात्मा दिगम्बरके स्वर्ग चले जानेपर इस भूतलपर उनकी कीर्ति स्थिर-रूपसे रहगयी।

२७. इनके शिष्य अप्रतिम प्रतापशाली **श्रीचारुकीर्ति** मुनि हुए। इन्होंने अपने सुयशसे दिशाओंको भी समुज्ज्वल कर दिया। इनकी तपस्यामें निष्ठुरता, चित्तमें शान्ति, गुणमें गुरुता तथा शरीरमें कृशताकी मात्रा दिन दिन बढ़ने लगी।

२८. जिनके तपरूपीवल्लीसे वलयित होकर वृक्षरूपी संसारमें रत्न-त्रयका प्रचार होने लगा। इनकी युक्ति, शास्त्रादि तथा प्रकृष्टाशय विद्याम्बुधिके बढानेके लिये चन्द्रमाके तुल्य थे।

२९. जिस योगिसिंह महत्माके चरणकमलोंकी सदा सेवा करनेवाली लक्ष्मीको देखकर (अहो मुझे यह कैसे मिले) ईर्षासे विष्णुका सारा शरीर काला हो गया। नहीं तो उनके काले होनेकी दूसरी वजह नहीं थी।

३०. जिनके शरीरके सम्पर्कमात्र ही से वा मन्त्र किसीके रोगोंको शान्ति हो जाती थी। लोग कहा करते थे कि बल्लालराजकी कृपासे रोग छुटा है, दवासे क्या?

३१. मुनिने समाधिपूर्वक अनेक आपद्का स्थान इस विनश्वर शरीरको छोड़कर दिव्य शरीरको पाया।

३२. इनके स्वर्ग चले जानेपर ऐसा कोई विद्वान् नहीं हुआ। उस समय यह संसार अज्ञानांधकारसे आवृत था। ऐसा उत्तम वक्ताओंने कहा।

३३. इसलिए कुमतान्धकारके विनाशक, अपनी सभी इन्द्रियोंको जीतनेवाले, और विद्वद्गणोंके रक्षक उन महात्माको हे विद्वद्वर्य्य! भजो।

३४. जिनके चरणकमलको राजाओंने शिरोभूषण बनाया, जिनके वचनामृत पानकर पण्डितगण अहर्निश जीते थे. जिनकी कीर्तिरूपी समुद्रसे परिवेष्टित होकर यह पृथ्वीतल धवलित हुआ और जिनकी विद्याने भूतलमें शास्त्रोंको विशद बनादिया।

३५. वे महात्मा योगिराज एक चित्त होकर बड़ी कठीन तपस्याको करके तथा बहुत पुण्य इकठ्ठा करके उन्ही पुण्योंको उपभोग करनेके लिये स्वर्गको चले गये।

३६. उनके स्वर्ग चले जानेपर अपनी शास्त्रमयी वाणीसे सिद्धशास्त्रोंको शृङ्खलित करते हुए, शुद्धाकाशमें वर्तमान, शास्त्ररूपी पद्मोंको विकसित करते हुए सूर्य्यकेसे सिद्धान्त योगीने सज्जनोंके मनको प्रफुल्लित किया।

३७. इन्द्रका वज्र जिस प्रकार पर्वतोंका भेदन करता है उसी प्रकार इन्होंने एकान्त अर्थसे युक्त दुर्वादियोंकी उक्तिको खण्ड खण्ड कर दिया।

३८ उनके चरणोंपर गिरे हुए राजाओंकी मुकुट-मणिकी धूलिओंने जिस तरहसे इनको रागवान् बनाया था, उसतरह सांसारिक वस्तु, स्त्री, वस्त्र तथा यौवनादि उनको रागी नहीं करसके।

३९. ये महात्मा शास्त्ररूपी समुद्रमें प्रविष्ट हो कर अनेक अर्थरूप रत्न निकाल लाये और उन रत्नोंको अपने शिष्योंको वितरित करदिया।

४० इन्होंने संसारको पवित्र करनेके लिये तथा धर्म्मका प्रचार होनेके लिये अपने शिष्योंको कुशाग्रबुद्धि बनाकर पढ़ाया।

४१. जिस प्रकार बछड़ा गायसे दूध ग्रहण करता है उसी प्रकार गुरुमें असीम भक्ति कर उन सबोंने उनसे सब शास्त्रोंका ग्रहण कर संसारमें अपनी खूब कीर्ति फैलायी।

४२. जिस प्रकार समुन्नत पर्वतोंमें रत्नकूटोंसे मन्दराचल पर्वत शोभता है, उसी प्रकार उनके सकल शास्त्रवेत्ता शिष्योंमें अनेक गुणोंद्वारा श्रुतमुनि शोभाको प्राप्त हुए।

४३. कुल, शील, गुण, मति, शास्त्र और रूप इनसबोंसे इन्हें योग्य समझकर **सूरि** पद दिया।

४४. इसके बाद सांसारिक स्थितिको सोचते हुए इन्होंने अपनी आयु थोड़ी जान कर यह विचारा कि अगर मेरा गण समर्थ हो जावे तो मैं समाधियोग्य तपस्या करूंगा।

४५. मनमें ऐसा सोचकर श्रुत-वृत्तशाली अपने गणाग्रवर्त्ती पुत्रको बुलाकर कहा कि:—

४६. हमारी वंश-परंपरासे ये **गण** चले आते हैं, इसलिये तुम भी इनकी रक्षा करो, ऐसा कहकर गणीने अपने गणको उनके सपूर्द किया।

४६. असह्य विरहजन्य दुःखसे ये बहुत दुःखी हुए किन्तु इनके गुरु कोमल वचनोंसे इनको प्रसन्न किया।

४७. अच्छे अच्छे सुकृत कार्यको करनेवाले, कुमति तथा दोषको समूल नष्ट करनेवाले और कामदेवकी तत्त्वविद्याको जीतनेवाले वे दिव्य स्वर्गधामको गये।

४८—४९. उनके स्वर्गधाम चले जाने पर मूरिपदको धारण करनेवाले ये अपने संघकी शनैश्शनैः वृद्धि करने लगे । किन्तु गुणोंको शास्त्रोंको तथा उनके अनिन्द्य चरित्रोंको बार बार स्मरण कर सदा अपने गुरुके चरणकमलकी ही चिन्ता करते थे ।

५०. कृत्यको करके, अपने संघकी रक्षा करके तथा अपने अनिंदित धर्म्मसे उत्तरोत्तर बढ़ाते हुए इन्होंने अपने गुरुके उपदेशको सफल किया ।

५१. इन्हीं मुनिने अपनी विमल वाक्धारासे उद्धत वादियोंको शमन करते हुए संसारमें अपने धर्म्मका प्रचार किया ।

५२. हे कामिनि ! तू कौन है ? क्या **श्रुतमुनि**की कीर्ति तू इधर आ रही है ? क्या इन्द्र है, नहीं यह तो गोत्रभिद् है । कुबेर तो नही है ? किन्तु यह किन्नर नहीं मालूम पड़ता है । ब्रह्मन् ! मैं अपने ऐसे किसी विद्वान मुनिको चारो तरफ खोज रहाहूं ।

५३. सरस्वती देवीके हृदयको रंजन करनेवाली, मन्दार तथा मकरन्दके रसके सदृश और सभी संसारको आनन्दित करनेवाली कवीश्वरोंकी सुमधुर वाणी सबके कानोंमे अमृतधाराको भरती है ।

५४. **समन्तभद्र** होते हुए भी असमन्तभद्र, श्रीपूज्यपाद होते हुए भी अपूज्यपाद और मयूरपिच्छ धारण करते हुए भी मयूरपिच्छको नही धारण करनेवाले हुए । आश्चर्य्य है कि इनमे विरुद्ध अविरुद्ध दोनो वृत्तियां थी ।

५५. इस प्रकार जिनेंद्रसे कहे गये धर्म्मकी बड़ी वृद्धि हुई किन्तु पीछेसे गुप्त रीतिसे कलिकालसे प्रयुक्त जो रोग (पञ्चम कालका प्रभाव) है वह धर्म्ममे बाधा पहुचाने लगा ।

५६. *जैसे दुष्ट सज्जनको अपनी सेवासे मुग्धकर पीछे सर्व ग्रास* करनेको तयार हो जाते है उसी प्रकार पञ्चम कालका प्रभाव मुनियोंके प्रभावको रोककर उनके धर्म्म-कार्य्यमे बाधा पहुंचाने लगा ।

५७—५८. जिनके अङ्गोंके खिन्न होनेपर व्रतादिक नियम ज्योंके त्यो दृढ़ बने रहे । उस महात्माने मोक्षमे रुचि, धर्म्ममे हर्ष और हृदयमे शान्तिको अवधारित किया ।

५९. अनन्तर महात्माने अपने शरीरमे रोगको बढ़ते हुए देखकर और उसको असाध्य समझकर अपने ज्येष्ठ भ्राताके निकट आकर प्रणाम करके कहा ।

६०—६१. हे पण्डित-प्रवर योगिराज ! आपकी कृपासे मैंने सभी दोषोंको प्रक्षालित किया, यशको विस्तृत किया और बहुतसे व्रतोंको किया, परन्तु रोगग्रस्त शरीर रहने की अपेक्षा अब इस भूतलमें नहीं रहना ही अच्छा है ।

६२ मुनिने संघको भी ऐसी सूचना देकर संवके बार बार रोकने परभी अन्तिम क्रिया सल्लेखनको सम्पादित कर अन्तिम समाधि लगाई।

६३. भयङ्कर विपत्तिरूप ग्राहादि जीवोंसे तथा मृत्युरूपी लहरोंयुक्त व्यग्रतारूपी समुद्रके बीचमें गिरकर यह जीव रात दिन क्लेशको पा रहा है।

६४. दिगम्बर जैन तथा सभी देह-धारियोंके लिये यह दुःख-मय शरीर त्याज्य ही समझना चाहिये। इसीसे मुनि-गण पुनर्जीवन रोकनेके लिये काय-कष्टकर अनेक तपस्याएं करते हैं।

६५. यह विषय-सञ्चय भीषण दोषका स्थान समझना चाहिये। इस लिये सहिष्णु विवेकी सांसारिक विषयको छोड़कर विविध कर्मको नष्टकरनेके लिये अक्षय पदको प्राप्त होते है।

६६. बड़े उद्दीप्त दुःखाग्निसे तप्त, अनेक रोगोंसे युक्त और माला चन्दन आदि विषम पदार्थोंसे संवलित इस शरीरके धारण करनेसे संसारमें क्या लाभ है?

६७. पापमयी स्त्रीकी सृष्टिसे क्या? शरीरके नीचे पृथ्वीकी सृष्टि करनेसे क्या प्रयोजन? और पुत्रादिकोंसे शत्रुता क्यों रख छोड़ी गयी? इसलिये मैं समझता हूं कि ब्रह्माकी सृष्टि व्यर्थ ही है।

६८. पहले बाल्यावस्था ही दुःखका बीज है, तत्पश्चात् युवावस्थाको भी रोगका अड्डाही समझना चाहिये और वृद्धावस्थाको भी ऐसा ही विषमय समझकर यह मानना पड़ता है कि इस शरीरकी दशा ही विपत्ति-परिणामको दिखलानेवाली है।

६९. प्राक्तन जन्मके पुण्यसे मैंने सुन्दर शरीर, सुन्दर मनुष्यजन्म तथा अच्छी बुद्धि पाई है. इसलिये मुझे सज्जनोंकी संगति, श्री जिनधर्मकी सेवा करनी चाहिये। क्योंकि इनके बिना आदमी कृती नहीं हो सकता।

७०. सार संसारका स्वरूप जानकर, योगिराट्—सभी संसार विनश्वर है, ऐसा कह कर शान्तिको धारण करते हुए आधी आँखें मीचकर स्वरूपको देखते हुए समाधिको प्राप्त हुए।

७१. अपने हृदय-कमलमें स्वच्छ रूपको धारणकर तथा अमृतसदृश उन मूल मन्त्रोंसे सींचते हुए **श्रुतिमुनि**ने स्तोत्र-पाठके साथ साथ शान्तितापूर्वक अपने शरीरको छोड़ा।

७२. जिनके उत्पन्न होनेपर अज्ञानान्धकारावृत यह संसार ज्ञानवान् होकर हर्ष-युक्त हुआ, सो आज उन्हीके स्वर्ग जानेपर लोग उष्ण उच्छ्वास लेलेकर आँखोंसे शोकाश्रुधारा बहा रहे हैं। ठीक है, बड़ोंका वियोग दुस्सह होता ही है।

७४. इन महा मुनिके चरण-कमल प्रायः सभी राजाओंने शिरोधृत किये तथा इनकी सच्चरित्रता भी अपने हृदयमें सभी कविवर्य्योंने गृहीत की। वही महात्मा आज भाग्य-वश परलोकको चलबसे, इस लिये आप लोग भी उन्हींकेसे सद्धर्मकार्य्य पालन करनेके लिये अविरत कोशिश करें।

७५. जिन महात्माओंके चरित्र अनिन्द्य हैं, वे जिस स्थानसे परलोकको जाते है उस स्थानकी भी पूजा करनी उन्हींकी पूजा करनी है, इसलिये जिनधर्म्म—प्रचारक श्रुतमुनिका यह स्थान (निषद्या) सदा बना रहे।

७६. शक १३६५ वैशाख शुक्र नवमी बुधवारको इन्होंने स्वर्गका प्रस्थान किया।

७७. सभी क्रियाको शान्त करनेवाला, अज्ञानान्धकारको हटानेवाला, सभी आशयसे रहित और अवाङ्मनसगोचर संसारमे सभी शक्तिको जीतनेवाला जो कोई दिव्य तेज है वह मेरे हृदयमें सदा रहे।

७८. इस प्रबन्धकी ध्वनिसे सम्बन्ध रखनेवाली, तथा सच्चे प्रेमको उत्पन्न करनेवाली मङ्गराजकी वाणी वीणावाणी होवे।

सम्पादकीय टिप्पणी.

इतिहासकी आवश्यकता.

हमारी शिक्षा तथा इतिहासप्रिय गवर्नमेन्ट तो ऐतिहासिक वस्तुसम्भार इकठ्ठा करनेके लिये प्रयत्नवती थी ही, किन्तु बड़े सौभाग्यकी बात है कि अब भारत-वासी भी अपने अपने समाजकी सभ्यता, शिक्षाप्रियता, सुजनता और शूरता आदि प्रशंसनीय सद्गुणोंकी ख्याति प्रकटित करनेके लिये थोड़ी थोड़ी इतिहासकी उपयोगिता समझने लगे हैं।

सामाजिक देहके जीवनवृतान्तका नाम इतिहास है। जिस तरह मनुष्यके शरीरमें किसी प्रकारकी व्याधि होनेपर उसके मातापिता उसकी देहका सारा वृतान्त समझकर दवा करानेके लिये प्रवृत्त होते है, उसी तरह समाज—चिकित्सक अथवा सुधारक भी समाजका इतिहास ही समझकर संस्कार-कार्य्यमें अग्रसर होते हैं। मैं क्या था? अब क्या हूं? समयने क्यों ऐसा पल्टा खाया??? इत्यादि ऐतिहासिक विवेचन करनेसे भविष्यमें क्या होगा? यह निरूपण करना सहज हो जाता है। समाजको

किस राहसे जाना उचित है ? सामाजिक आदर्श कैसा होना चाहिये ? - प्राचीन इतिहास ही इन प्रश्नोंका सदुत्तर दे सकता है। अर्थात् ऐतिहासिक आलोचनाद्वारा अतीत समाजकी परिणाम-नियामक-नीति भली भाँति ज्ञात हो जाती है। इसी प्रकार भविष्यत् दृष्टिके फलसे समाजको किस आदर्शमें परिणत करना चाहिये-इसकी मीमांसा करनी जरा सरल हो जाती है। अनुमानतः बीस शताब्दिसे जब भारतवासीके प्राण अनेक अभिनव आदर्शके आकर्षणसे उन्मत्त हो उठे और जबकि समाज भी जड़ता छोड़कर हाथ पैर फैलाकर कालस्रोतसे पार होनेकी इच्छा कर रहा है तब फिर ऐसे समयमे इतिहासका सहारा न लेकर निर्विघ्न अग्रसर होनेमे बड़ी कठिनाई मालूम पड़ती है। एक बात यह भी है कि इतिहासकी सहायता मिलनेमें अभी बड़ी भारी अड़चन है। क्योंकि किसी समाजका आनुक्रमिक इतिहास मिलता ही नही। किन्तु आनुक्रमिक इतिहास भले ही न मिले, इतिहास-सामग्री मिलने में कुछ कठिनता नहीं होती। क्यों कि गवर्नमेन्टने एसिआइटिक-सुसाइटी और आर्कियोलाजिकल सर्वे डिपार्टमेन्ट आदि ऐतिहासिक संग्रहालय जहाँ तहाँ प्रधान प्रधान नगरों में खोलकर इस अभावको एकदम दूर करदिया है। यदि गाँव गाँव और नगर नगरमें उपर्युक्त संग्रहालयोंकी शाखा-प्रशाखा खुलजाय तो सम्भव है कि सर्वसाधारण जन भी इतिहास-स्नेही बनकर सच्चे दिलसे ऐतिहासिक कार्य्य करनेवाले लोगोंकी हँसी नही उड़ाकर बल्कि सहायक बन जायेंगे। हमारे जैन समाजमें ऐसे बहुत कम आदमी हैं जिन्हें कुछ इतिहाससे प्रेम हो, किन्तु जो विरलप्राय है उन्ही वितरणशूरो तथा जैन वंशविभूषणोंसे मेरी प्रार्थना है कि जहाँ आप लोगोंके करकमलोंसे अगणित धर्म्म-कार्य्यकी सद्गति होती है वहाँ इस दीन जैनसमाजके इतिहासका कुछ सुधार हो जाय तो यह जैनसमाज आप सबोंका चिरकृतज्ञ बना रहेगा।

* * * *

जैनदर्शनपर अजैनोंकी मीमांसा.

हर्षका विषय है कि वङ्गीय विद्वद्गणोंकी भी दृष्टि जैनियोंके सैद्धान्तिक तथा दार्शनिक विषयोंकी ओर आकृष्ट होने लगी है। विगत वर्षके एकादश भाग तथा द्वितीय खण्डवाले **प्रवासी**की पाँचवी संख्यामें **जैन-दर्शनेर जीवतत्वेर एकांश** इस शीर्षकका एक लेख निकल चुका है। इस लेखके पाण्डित्य-पूर्ण तथा सार गर्भित होनेमें कोई सन्देह नहीं, क्योंकि इसको श्रीयुत विधुशेखर भट्टाचार्य्य शास्त्रीजीने लिखा है। यह लेख शास्त्री-जीके चित्रके साथ साथ प्रकाशित किया गया है। आपने वृक्षादिककी सचित्तता तथा अ-चित्तताका विचार बड़ी सूक्ष्म दर्शितासे करके अन्तमें महाभारतके कुछ श्लोक उद्धृतकर लिखा है कि वृक्षोंके छेदनकी निवृत्तिका प्रायः ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन इन तीनोंने ही उपदेश दिया

है। शास्त्रीजीका जैन शास्त्रपर बहुत दिनोंसे प्रेम है। कई वर्ष हुए जब आप काशीमें थे तो "मित्रगोष्ठी" नामकी एक संस्कृत मासिकपत्रिका निकाला करते थे। उसके सम्पादक शास्त्रीजी तथा श्री पण्डित रामावतार शर्म्मा एम. ए. साहित्याचार्य्य काव्यतीर्थ थे। उसके कई अङ्कोंमें "जैनधर्म्मस्य संक्षिप्तमिति वृत्तम्" इस शीर्षकका लेख आपने लिखा था। जैन इतिहासके अन्तमें आपने अपनी सम्मति लिखी थी कि, "वैदिकधर्म्म ही सब धर्म्मोंका मूल है" किन्तु इस बातको सर्वमान्य कर देना कठिन है। धर्म्मकी सर्वश्रेष्ठताका यही लक्षण है कि जिसको सब कोई अपना समझे। इतना मै अवश्य कहूंगा कि शास्त्रीजी यदि निष्पक्ष दृष्टिसे विचार करेंगे तो आज नहीं तो कल्ह उनको यह निर्विवाद स्वीकार करना पड़ेगा कि यह जैन ही धर्म्म आदि धर्म्म तथा सार्वधर्म्म था, अथवा होनेकी योग्यता रखता है। शास्त्रीजी लाहोरकी शास्त्रिपरीक्षा पास और काव्यतीर्थके सिवा आप दर्शनशास्त्रके अच्छे ज्ञाता हैं। क्योंकि उस समय मित्रगोष्ठीमें **अनेकान्तवादः, मीमांसादर्शने ईश्वरवादः अद्वैतश्रुतेर्मीमांसकव्याख्या** आदि बड़े महत्त्व-पूर्ण दार्शनिक लेख लिखा करते थे। शास्त्रीजीके संस्कृत गद्यपद्य दोनो उच्च श्रेणीके होते हैं। बड़ी खुशीकी बात है कि इधर अब आप अपने गाम्भीर्य्यपरिपूर्ण लेखोंसे अपनी मातृभाषा (बंगभाषा) को भी विभूषित करने लगे है। वर्षोंसे आप अजस्र साहित्य—सेवा कर रहे है। छोटी मोटी तो आपने कई संस्कृतकी किताबें लिखी है किन्तु हालमें आपने पालीव्याकरण नामक एक ग्रन्थ लिखकर अपने पाली साहित्यानुशीलनका अच्छा परिचय दिया है। जैन धर्म्मपर अभीतक आपके जितने लेख निकल चुके हैं उनसे मालूम होता है कि आपने अभीतक विशेषकर श्वेताम्बरीय जैनग्रन्थ देखा है। शास्त्रजीसे मेरा अनुरोध है कि आप दिगम्बरीय जैनदर्शन (परीक्षामुख, प्रमेयकमलै—मार्तण्ड, अष्टसहस्री, राजवार्तिक और श्लोकवार्तिक आदि) ग्रन्थ अवश्य पढें। सम्भव है कि इन ग्रन्थोंको पढकर आप और बहुत कुछ जैन दार्शनिक तत्त्व जान सकेंगे।

* * * *

जैन इतिहास और जैनसमाज.

हमारी तो यह अभ्रान्त धारणा है कि, जबतक जैनियोंके इतिहासका संस्कार नहीं होगा। तबतक जैनियोंपर जो अजैनोंकी आक्षेप-वृष्टि होती चली आती है, उसकी मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जायगी। सम्मेद शिखरपर अपने अपने आधिपत्यकी उद्घोषणा करनेके लिये आजकल श्वेताम्बर तथा दिगम्बर जैन आपसमें लड़ रहे हैं। दोनों समाज इतिहास-द्वारा अपनी अपनी प्राचीनता दिखानेके लिये बड़ी बड़ी खोजें कर रहे हैं। आज दो महीने हुए तीर्थक्षेत्र कमिटीकी ओरसे श्रीयुत मौजीलालजी तथा श्रीमान्

पण्डित झम्मनलालजी सम्मेद शिखर–सम्बन्धी दिगम्बरीय प्राचीन इतिहासकी खोजके लिये " श्री जैनसिद्धान्तभवन " आरा (The Central Jain Oriental Library Arrah) को गये थे। वहाँ उन्हे बहुतसी ऐतिहासिक बातोंका पता लगा है। किन्तु मैं अब भी तीर्थ-क्षेत्र कमिटीके अध्यक्षोंको सूचना दिये देता हूं कि, आपको भवनके द्वारा जो ऐतिहासिक सामग्री मिलेगी वह दूसरी जगह कदापि नहीं मिल सकती। ' भवन ' आपके इस कार्य्यको करनेके लिये तयार है। दूसरी ऐसी कोई संस्था नहीं है, जहाँ आपको सुलभतया प्राचीन सम्मिलित दिगम्बर इतिहाससामग्री मिल जाय। किन्तु रुकावट इसी बातकी है कि, इस सब ज्ञात तथा एकाधार ' भवन ' के पास इतने द्रव्य और कार्य्यकर्त्ता नहीं है. कि यह सब लोगोंको बिना पूछे ही घर बैठे बरसों जहाँ तहांसे सामग्री मंगवा और ढूंढवा कर पहुंचादे। सहायता मिलनेपर यह ' भवन ' चाहे जितनी ऐतिहासिक सामग्रीकी आवश्यकता होगी उसकी अवश्य पूर्ति करेगा। मै समझता हूं कि, तीर्थ-क्षेत्र कमिटी मेरे इस कथनपर अवश्य ध्यान देगी। इतना तो मैं साभिमान कह सकता हूं कि, आज तक भवनने अलभ्य ऐतिहासिक संग्रह किया है। अब इसमें काम करनेवालों तथा द्रव्य देनेवालोंकी बड़ी आवश्यकता है। क्यों कि, बहुत प्राचीन ताड़पत्राङ्कित ग्रन्थ भवनमें लगभग तीन हजार है। इनमें ऐसे ऐतिहासिक रत्न भरे पड़े है कि यदि इनकी प्रतिलिपि नागराक्षरमें हो जाय तो, आज फिर वे रत्न दिगम्बर जैन इतिहासको समुज्ज्वलित कर देगें। कर्नाटक-प्रान्तमें कई नागराक्षरके लेखक तयार हो चले। यदि कुछ दाता छः छः महीनेके लिये भी कर्नाटकी लिपिसे नागरी लिपिमे लिखनेवाले दश लेखक दे दें तो, भवन उनकी चिरकृतज्ञताके साथ उनकी सत्कीर्तिका प्रसार तथा जैन इतिहासका उद्धार सदा करता रहे गा। क्यों कि, किसी एक संस्थाका भार बड़ा भारी भार समझना चाहिये। जिस संस्थासे जैन इतिहासके कई मुख्य मुख्य अङ्गोंकी पुष्टि होनेवाली है, उस संस्थामें द्रव्यकी कैसी आवश्यकता है ? यह बात किसीको अविदित नहीं है। इस भवनके मुक्तहस्तसे पृष्ठ-पोषक अथवा यों कहिये कि विपन्न-जैन इतिहासके आश्रय-कल्पतरु स्वर्गीय बाबू देवकुमार जी ही थे। आज भी जैनइतिहासकी जो कुछ सेवा यह ' भवन ' कर रहा है, वह उन्हींकी पवित्रात्माके प्रभावसे। यह बात तो ठीक ही है कि, कोई विषय-निर्वाचन सर्व-सम्मत नहीं हो सकता। क्यों कि, कोई इतिहासका उद्धार करता है तो कोई तीर्थ की ही अतिशयतासे मुग्ध होकर उसकी रक्षा करने लाग जाता है। कितने लोग प्रान्तिक और माण्डलिक सभासमितियोंसे

ही धर्म्म तथा समाजकी उन्नति समझकर रात दिन उनके पीछे पड़े रहते हैं, तो इस-पर मुझे एक कविकी उक्ति याद आती है कि:—

मधु मधुरं दधि मधुरं द्राक्षा मधुरा सुधापि मधुरैव।
तस्य तदेव हि मधुरं यस्य मनो यत्र संलग्नम् ॥

किन्तु इतना तो सर्व संस्थाओंके स्तम्भीभूत लीडरोंको अवश्य विचारना चाहिये कि, कौनसी संस्था कौनसा काम कर रही है? और इसमें किस बातकी आवश्यकता है?

* * * * *

भवनके दो सच्चे गुणज्ञ पाठक.

आराके जैनी तो **भवन**से कुछ लाभ उठाना जानते ही नहीं। इसकी दूसरी वजह कुछ नहीं, केवल अविद्या तथा दुर्व्यसनताकी ही अधिकता समझनी चाहिये। बड़े अफशोसकी बात है कि जिस प्रख्यात आरा नगरीमें देशदेशान्तरके जैनी आकर अनेक अतिशय-शाली मन्दिर तथा "श्री जैनसिद्धान्तभवन" का दर्शन कर अपनेको कृत-कृत्य मानते हैं सो वहाँहीके जैनी भाई भवनकी ओर कभी भूलकर भी नहीं देखते! किन्तु आज मैं भवनके दो सच्चे गुणग्राही पाठक अजैन विद्वानोंकी गुण-लोलुपता प्रकटित किये देता हूँ। एकतो श्रीयुत बाबू परेशचन्द्र बन्द्योपाध्याय एम्. ए. हैं। आप स्थानीय कोर्टके सबजज्ज है। आप ही "**बंगलार पुरावृत्त**"के लेखक हैं। यह तीन सौ पृष्ठकी पुस्तक बड़ी ही गवेषणा-पूर्ण तथा सार गर्भित है। क्योंकि कुछ दिन हुए **प्रवासीमें** इसकी बड़ी अच्छी समालोचना निकली थी। आप ओंकारवादी है। ॐसे ही आप सारी भाषा तथा सारे अक्षरोंकी उत्पत्ति बड़ी विद्वत्ता तथा युक्तिसे सिद्ध करते हैं। आपने एक बड़ा ही पाण्डित्य—पूर्ण भाषाओंका इतिहास लिखा है। आपने उसे भास्करमें छपानेके लिये कहा है। आप बराबर भवनमें आया करते हैं और अंग्रेजी तथा संस्कृतकी ऐतिहासिक पुस्तकें भवनसे लेले कर पढ़ा करते हैं। बल्कि इन किरणोंमे आपका एक "शाकासम्वत्" शीर्षकका लेख प्रकाशित हुआ है। आप इतिहासके बड़े प्रेमी हैं।

दूसरे श्रीयुत बाबू मंगलचरणजी वकील हैं। आप स्थानीय वकीलोंमें सर्वश्रेष्ठ वकील तथा **आरानागरी–प्रचारिणी सभा**के सभापति हैं। अन्यान्य दर्शनशास्त्रके ज्ञाता होते हुए भी वेदान्त दर्शनपर तो आपका पूर्ण आधिपत्य है। प्रायः **बौद्धमत**के आपने बहुतसे ग्रन्थ पढ़े है। आप न्यायशास्त्रके अन्तिम ग्रन्थ **कुसुमाञ्जलि** तथा **खण्डनखाद्य**को बड़ी आसानीसे लगाते हैं। आप भी जबसे **भवन** स्थापित हुआ तबसे हमेशः भवनमें आते हैं। आपने मूल **समयसार नाटक** तथा **पञ्च-**

पुराणको अच्छी तरहसे पढ़ा है। पद्मपुराणके बारेमें तो आपने कहा था कि, इसकी रचना-प्रणाली वाल्मिकीय रामायणसे एकदम मिलती जुलती है, इसलिए यह पुराण भी बहुत प्राचीन है। उपर्युक्त दोनों विद्वानोंकी भवनसे बड़ी सहानुभूति रहती है; इसलिए यह **भवन** आप लोगोंका चिरकृतज्ञ है।

* * * *

महाराज चन्द्रगुप्त और शिक्षासम्पादक.

विगतवर्षकी "शिक्षा" के किसी अङ्कमें इसके सम्पादक महोदयने 'भास्कर' की गत प्रथम किरणमें प्रकाशित महाराज चन्द्रगुप्तके शिलालेखको उद्धृत कर अपना मन्तव्य जनाया था कि इस शिलालेखमें कहीं **चन्द्रगुप्त**का नाम नहीं है. इसलिए चन्द्रगुप्त जैन नहीं हो सकते। मैंने आपके सन्देह निराकरणार्थ इन्हीं किरणोंके द्वितीय पृष्ठमें सप्रमाण **महाराज चन्द्रगुप्तका इतिहास** शीर्षक एक लेख लिखा है। मैं समझताहूं कि **शिक्षा-सम्पादक** महोदय उसे पढ़कर अपना चन्द्रगुप्त--विषयक सन्देह **निवृत्त** करेंगें। मुझे यह बात विश्वस्तरूपसे ज्ञात हुई है कि आप व्याकरण, साहित्य तथा दर्शनशास्त्रके प्राञ्जल विद्वान् होते हुए भी बहुत वर्षोंसे आरामें **आरानागरी-प्रचारिणी सभा** स्थापित कर हिन्दीकी सेवा कर रहे हैं। विहारके हिन्दी लेखकोंमें आपकी बड़ी प्रतिष्ठा है। आप **शिक्षाको** हिन्दीसाहित्यके बड़े ही उपयोगी लेखोंसे विभूषित किया करते हैं। हमें आश्चर्य्य तो इस बातका है कि आजकलके संस्कृत पण्डित पौराणिक राम-कृष्णकी कथाके सिवा हिन्दूस्तानके इतिहासका नाम भी नहीं जानते तो ऐसी अवस्थामें चन्द्रगुप्तके बारेमें कुछ सन्देह करना ही मैं पण्डितजीकी कृपा समझताहूं। मैं पण्डितजीसे अनुरोध करताहूं आप भास्करके ऐतिहासिक विषयोंपर अवश्य शङ्का प्रशङ्का किया करें। उत्तर देनेमें मुझे जैन इतिहासकी बड़ी प्राचीनता ढूंढ निकालनी पड़ती है।

* * * * *

महाभारतका समयनिर्णय

आजकल पुरा तत्त्वान्वेषियोंका ध्यान प्राचीन प्राचीन ऐतिहासिक स्थानोंको खुदवाकर अनेक विवादग्रस्त समयोंका निर्णय करनेकी ओर विशेष आकृष्ट होरहा है। ताता कम्पनीके दिये हुए द्रव्यसे तथा गवर्नमेन्टकी पूर्ण सहायतासे आजकल पटना खोदा जारहा है। महाराज चन्द्रगुप्तके इतिहास निर्णीत करनेहीके लिये यह पटना खोदा जा रहा है। इसके मुख्य अभिभावक संस्कृतज्ञ मि. स्पूनर साहब हैं। आप अंग्रेज होकर भी संस्कृतके विद्वानोंसे घंटों संस्कृतहीमें बातचीत करते हैं। सुना जाता है कि हस्तिनापुरमें भी

तुरत खोदनेका काम लगनेवाला है। क्योंकि गवर्नमेन्ट बहुत शीघ्र **महाभारतका** समय निर्णीत करना चाहती है। हस्तिनापुर खोदनेकी दूसरी वजह कुछ नहीं, शिर्फ इसी लिये गवर्नमेन्टने इतने लम्बे चौड़े उद्योग करनेके लिये कमर बाँधा है। सब धर्म्मानुयायियोंको शीघ्र सचेत होकर अपने अपने धर्म्मशास्त्र और पुराणोंके साथ वर्तमान निश्चित होनेवाले समयका मिलान करनेके लिये, प्रस्तुत रहना चाहिये। क्योंकि जो समय हम लोगोंने मान रक्खा है, वही ठीक है—उसमें कुछ फेरफार होही नहीं सकता। ऐसी बिना जड़ फुनुंगीकी अपनी अपनी हठे हठात् छोड़नी होगी। मेरी विशेष प्रार्थना अपने जैन पण्डितोंसे है कि वे अविश्रान्त पौराणिक–पर्य्यालोचन करें। शायद महाभारतका समय हम लोगोंने श्री १००८ नेमिनाथ बाईसवें तीर्थङ्करके समयमें माना है। अस्तु! मेरा कहनेका सारांश यह है कि, श्री १००८ महावीर स्वामी अन्तिम तीर्थङ्करके वर्त्तमान समय २४३९ से लेकर नेमिनाथतीर्थङ्करके समयका कितना अन्तर है—यह निर्णय कर हम सबोंको अपने ऐतिहासिकमार्गको परिष्कृत कर देना चाहिये। आशा है कि जैनी पण्डितोका ध्यान अवश्य इस ओर आकृष्ट होगा।

* * * * *

मैसोर प्रान्तस्थ शिलालेखोंसे रामायण और महाभारतका सम्बन्ध.

सीताहरणके बाद जो रामचन्द्रजीने लङ्कापर चढ़ाई की थी, सो वह मैसोर ही होकर गये थे। सीताजीकी खबर पक्षिराज जटायुने दी थी। किष्किन्धामें पम्पासरोवरके समीप जो सुग्रीवसे रामचन्द्रजीको मिताई हुई थी, वह किष्किन्धा वर्त्तमान विजयनगरके निकट जो तुङ्गभद्रा नदी है; उसीके नज़दीक है। मैसोर प्रान्तमें इन्हीं रामायणके नायकोंके नामानुसार **रामनाथपुर, लक्ष्मणतीर्थ** आदि अनेक स्थान हैं। उपर्युक्त बातें रामेश्वरपर्वतके निकटवाले मुल्कल मुरुताल्लुकके शिलालेखमें है।

चिन्तामणि ताल्लुकमें जो कैरव नामक ग्राम है, वही महाभारतका **एकचक्रपुर** कहा जाता है। क्योंकि शेकपुर ताल्लुकमें जो **बेलग्रामी** ताम्रपत्र (Inscription) है, उसीमें यह बात लिखी हुई है कि पाण्डवोंकी माता श्रीमती कुन्तीने यहांपर एक मन्दिर बनवाया था। और पञ्च पाण्डवोंने भी **राजसूययज्ञ** करनेके बाद यहाँपर पाँच मन्दिर बनवाये थे। इसके बाद **विराटकी** राजधानी **मत्स्यनगरीमें** पाण्डवोंने अपने देश निकालेका अन्तिम समय व्यतीत किया था। यह नगरी मैसोरके ठीक उत्तर-पूर्वकोणवर्ती वर्त्तमान धारवाड़ प्रान्तके पानुगल या हानुगलमें है।

उपर्युक्त बातें मेरे विचक्षण पाठक निरी गप्प नहीं समझे। अनेक अलभ्य शिला-लेखोंके आविष्कर्त्ता तथा कई इतिहास–ग्रन्थोंके लेखक मि. लुइसराइस (Lowis Riecs) की लिखी "मैसोर और कूर्ग" (Mysore and Coorg) नामकी पुस्तकमें ये सब बातें हैं। यह किताब नयी है। क्योंकि यह १९०९ में लण्डनमें छपी है। उल्लिखित रामायण तथा महाभारत विषयकमीमांसा पाठक मेरी न समझे। ऐतिहासिक विद्वानोंके विचारार्थ मैने एक विदेशी इतिहासज्ञ विद्वान्की सम्मति प्रकटित की है। यदि ये बातें ऐतिहासिकदृष्टिसे सची निकलेगीं तो हम क्या सभी विद्वद्गणोंको मान्य होगीं।

* * * * *

यों तो जैनियोंके **शाकटायनादि** सर्व–प्राचीन व्याकरणकी प्रसिद्धि थी ही, किन्तु अब धीरे २ निष्पक्ष विद्वानोंद्वारा उसकी सर्व-श्रेष्ठता भी प्रकटित की जारही है। कुछ दिन हुए "गौहाटी बङ्गीय साहित्यानुशीलनी सभा" में "कातन्त्र व्याकरण" नामक एक निबन्ध पढ़ा गया था। इसके लेखक श्रीवनमाली चक्रवर्त्ती वेदान्ततीर्थ वेदान्तरत्न एम्. ए. है। इस निबन्धके लिखनेमें आपने पाणिनि आदि व्याकरणोंकी बड़ी छानबीन की है। इस लिये यह निबन्ध बड़ाही पाण्डित्यपूर्ण, सारगर्भित तथा उच्च श्रेणीका हुआ है। निबन्धके प्रारम्भमें **कातन्त्र**का अवतरण आपने **कलापचन्द्र** तथा **कथासरित्सागर**की एक आख्यायिकाके आधारपर अवतरित किया है। कलापचन्द्रमें श्रीमत्सुषेणाचार्य्यने लिखा है कि:—

जैनियोंके व्याकरणका गौरव.

"राजा कश्चिन्महिष्या सह सलिलगतः खेलयन् पाणितोयैः
सिञ्चंस्तां व्याहृतोऽसावतिसलिलतया मोदकं देहि राजन्!
मूर्खत्वात्तन्न बुध्वा स्वरघटितपदं मोदकस्तेन दत्तो
राज्ञी प्राज्ञी ततः सा नृपतिमपि पतिं मूर्खमेनं जगर्ह"॥

अर्थात्—कोई राजा अपनी महिषीके साथ जल–क्रीडा करनेके लिये तालावको गये थे। तालावमें पैठकर रानी और राजा दोनों आपसमें पानीके छीटे पडारहे थे। एक बार राजाने बड़े जोर शोरसे छीटे पडाये। रानीने संस्कृतमें कहा कि "मोदकं देहि राजन्!" अर्थात् अब जल मत उछा लिये। मूर्ख राजाने मा+उदकं=मोदकं यह स्वर–सन्धिका रहस्य नहीं जानकर मिठाई मंगा दी। इससे विदुषी रानीको क्रोध होगया और अपने पति राजाकी 'मूर्ख' ऐसा कहकर अवमानना की।

किम्बदन्ती है कि, इन्हीं शालिवाहन नामक राजाको संस्कृतमें शीघ्र व्युत्पन्न करनेके लिये **सर्ववर्म्माचार्य्यने** कार्त्तिकेयजी.की आराधना कर वरप्रदानके महत्त्वसे ऐसा अपूर्व व्याकरण बनाया।

सुप्रसिद्ध कथासरित्सागरकी आख्यायिकामें लिखा हुआ है कि, प्रतिष्ठान नगराधिपति **सातवाहन** राजाको एक बड़े गुणशाली सर्ववर्म्मा नामक मन्त्री थे। राजा जल-क्रीड़ा प्रसङ्गवश अपनी रानीसे मूर्ख कहे जाकर अवमानित होते हुए खाना पीना छोड़कर बड़े चिन्तित हुए। उनके मन्त्री सर्व्ववर्म्माने राजाको छः महीनेमें संस्कृत के विद्वान् बना देनेका वादा कर उन्हे प्रसन्न किया। और बड़ी कठिन तपस्यासे कार्त्तिकेयजीको प्रसन्न किया। कार्त्तिकेयजीने प्रकटित होकर उन्हें वरप्रदान दिया कि " **सिद्धो वर्ण-समाम्नायः** " यही तुह्मारे रचे अभिनव व्याकरणका प्रथम सूत्र होगा। पीछे सर्ववर्म्माने कार्त्तिकेयजीके वरप्रसादसे यह कातन्त्रनामक एक प्राञ्जल व्याकरण बनाया। इसी प्रकार अवतरण सम्बन्धी अनेक प्रकारके गल्प इसमें उद्धृत किये गये हैं।

कथासरित्सागर कैसा प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रन्थ है, यह बात विद्वानोंसे छिपी नहीं है। क्यों कि इस निबन्धके लेखक स्वयं चक्रवर्त्तीजीने भी लिखा है कि, कथा-सरित्सागर एक आख्यायिकाकी पुस्तक है। किन्तु आख्यायिका भी एक वारगी ऐतिहासिकोंकी दृष्टिमें उपेक्षणीय नहीं है। क्योंकि आख्यायिकाकी मूलभित्ति शिर्फ जनश्रुति (चर्चा) है, और जनश्रुति सर्वथा निर्मूल नही है। मेरीभी यही राय है कि प्रायः सभी आख्यायिकाएं निर्मूल नहीं होतीं। क्योंकि इस कातन्त्रके सभी बात निर्मूल नहीं है। यह जरूर सत्य है कि, इसको सर्ववर्म्माचार्य्यने बनाया है और यह बहुत अपूर्व व्याकरणका ग्रन्थ है। किन्तु शालिवाहनकी जलक्रीड़ाके जमानेमें **कुमार**के कृपाकलापसे सर्ववर्म्माचार्य्यने कान्तन्त्रको रचा, यह बात हमे एकदम निर्मूलसी माळूम पड़ती है। और मैं समझता हूं कि, चक्रवर्त्तीजीको यह बात अनैतिहासिकसी जची होगी।

आपने सिद्धान्तकौमुदी, मुग्धबोध तथा कलापादि व्याकरणोंके नियम उद्धृत कर कातन्त्रके नियमनिर्वाचनकी बड़ी प्रशंसा की है। आपकी समझमें कातन्त्रकासा निर्दोष तथा सर्वाङ्गसुन्दर व्याकरण दूसरा है ही नहीं। यों तो आपने इस निबन्धमें पाणिनीय आदि व्याकरणोंके बहुतसे सामासिक तथा अन्यान्य प्राकरणिक नियमोंकी जटिलता और अशुद्धि दिखलाई है, किन्तु मैं पाणिनीय व्याकरणके द्वितीयातत्पुरुष समासका केवल एक नियम दिखाकर चक्रवर्त्तीजीकी व्याकरण–विवेचन–पटुता तथा व्याकरण–रहस्यज्ञता प्रदर्शित करता हूं।

पाणिनिने लिखा है—

द्वितीयाश्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः २।१।२४.

अर्थात् श्रितप्रभृति सात शब्दोंके साथ द्वितीयातत्पुरुष समास होता है । किन्तु पाणिनिके परवर्ती वार्तिककार कात्यायनने देखा कि, इतनी ही शब्द-सूचीसे द्वितीया तत्पुरुषमें सब शब्दोंका समावेश नहीं होगा । क्योंकि श्रितादिसे भिन्न गमीप्रभृति और कई शब्दोंके साथ द्वितीयातत्पुरुष समास होता है । इसीलिये उन्होंने एक वार्तिक बनाया कि:—

"**गमि गाम्यादीनामुपसंख्यानम्**" यहांपर गमी और गामी शब्दका स्पष्ट उल्लेख है । किन्तु कितने शब्द गम्यादिमें परिगण्य हैं, यह निश्चय करना दुरूह है । इसी लिये मुग्धबोधकी टीकामें इसको भी (श्रितादि या अश्रितादि गणको) आकृतिगण माना गया है । नहीं तो "विप्राय वेदविदुषे" (भागवत) सुखेप्सु, द्विषद्वीर्य्य, निराकरिष्णु, हंसमण्डल, द्युतिविष्णु आदि प्रयोग सिद्ध होते ही नहीं । वस्तुतः जिस समय द्वितीयाश्रितातीतपतितादि इस सूत्रकी रचना हुई थी उस समय इतने ही प्रयोग व्यवहृत थे । पीछे भाषा-परिवर्त्तन होनेपर उक्त नये नये शब्दोंकी रचना हुई । इस लिये व्याकरणका सूत्र भी बदल गया । अतः **सर्ववर्म्माचार्य्य**ने द्वितीयादि तत्पुरुषका पृथक् पृथक् सूत्र नहीं लिखकर एक ही पद्यात्मक सूत्र लिख दिया कि:—

"विभक्तयो द्वितीयाद्या नाम्ना परपदेन तु ।
समस्यन्ते समासो हि ज्ञेयस्तत्पुरुषस्स च ॥"

अर्थात्—द्वितीयादि विभक्तियाँ परवर्त्ती नाम (प्रातिपदिक) के साथ समस्त होती हैं; वही तत्पुरुष समास कहलाता है ।

आधुनिक पाणिनीय विद्वद्गण इस विषयमें **सहसुपा** २।१।४ इस सूत्र-द्वारा पाणिनिके उन उन स्थलोंमें अनुक्त विशेष समास करते हैं । ये सुखेप्सु, वेदविद्वान् और प्रियानुरागप्रभृति प्रयोग 'सहसुपेति' सूत्रद्वारा सिद्ध करते हैं ।

यहाँपर भाष्यकारने लिखा है कि:—

"**यस्य समासस्य अन्यल्लक्षणं नास्ति इदं तस्य लक्षणं भविष्यति**"

अर्थात् जिस समासका दूसरा लक्षण नहीं है उसका लक्षण यह सहसुपा सूत्र ही होगा । किसी किसी वैयाकरणकी राय है कि वेदं+विद्वान्=वेदविद्वान् यहां द्वितीयातत्पुरुष और प्रियायां+अनुरागः=प्रियानुरागः यहाँ सप्तमीतत्पुरुष समास है । किन्तु उनसे यदि पूछा जाय कि पाणिनीयके किस सूत्रसे यह समास सिद्ध हुआ है तो उत्तर देनेमें आगे

बड़ी अड़चन होती है। फिर वैयाकरण महोदयको कौमुदीमें चक्कर लगाकर अगत्या कहना पड़ता है कि द्वितीयाश्रितादिसूत्रमें योग विभाग किया गया है। अर्थात् द्वितीया एकसूत्र और श्रितादि एक सूत्र मानकर अवशिष्ट प्रयोगोंकी सिद्धि की जाती है। किन्तु यह ख़ूबी जैनियोंके ही कातन्त्रव्याकरणमें है कि एक ही सूत्रमें तत्पुरुषसमासके सभी प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं। इसीप्रकार चक्रवर्तीजीने कातन्त्रकी बड़ी बड़ी ख़ूबियाँ दिखलाई हैं। सर्ववर्म्माचार्य्य केवल वैयाकरण ही नहीं थे। वे जैनसिद्धान्तके अच्छे ज्ञाता थे। क्योंकि "सिद्धो वर्णसमाम्नायः" जो इस व्याकरणका पहला सूत्र है उसमें 'सिद्ध वर्ण' जैनलोग ही मानते हैं। दूसरे वैयाकरण तो ढक्का आदि पदार्थों द्वारा वर्णोंकी उत्पत्ति सिद्ध करते हैं। किन्तु वर्ण स्वतः सिद्ध है, सृष्टि अनादि कालसे चली आती है, ये सब सैद्धान्तिक बात जैनियोंकी ही स्वीकृत है। दूसरे मतावलम्बियोंको नहीं। चक्रवर्तीजीका कथन है कि पाणिनीय व्याकरण इसके बहुत पहलेका है। क्योंकि पाणिनिके समयमें संस्कृतभाषा बोलचालकी भाषा थी। जब यह भाषा मृत हो गयी अर्थात् संस्कृतभाषा जब सिर्फ लौकिकभाषा हुई तब इस व्याकरणका प्रणयन हुआ। मैं भी चक्रवर्तीजीकी इस रायको पसन्द करताहूं। क्योंकि पाणिनीय व्याकरणके पीछे रचेजानेसे ही इस व्याकरणके नियमों (सूत्रों) में इतनी परिष्कृति है तथा इसकी इतनी प्रशंसा होती है। कथासरित्सागरकी ऐतिहासिक बातें कितनी निर्मूल हैं इसका उल्लेख मैंने "शाकासम्बत्की उलझन" वाले लेखमें किया है। उसकी पुष्टि इस निबन्धमें चक्रवर्तीजीने भी की है। मैं चक्रवर्तीजीसे अनुरोध करताहूं कि आप जैनियोंके "जैनेन्द्रव्याकरण" तथा "शाकटायनव्याकरण" आदि बडे २ व्याकरणग्रन्थोंका भी पर्य्यालोचन कर ऐसा ही अपना पाण्डित्य–पूर्ण विचार प्रकटित करेंगे। बंगालके नामी २ पण्डितोंने कातन्त्रव्याकरणके ऊपर कई निबन्ध लिखे हैं। जैसे महामहोपाध्याय श्रीयुत यादवेश्वर तर्करत्नजीका "कातन्त्रकलापव्याकरण" स्वनामधन्य महामहोपाध्याय चन्द्रकान्त तर्कालङ्कारजीका "कातन्त्रछंदःप्रक्रिया" नामक निबन्ध बड़े ही उच्च श्रेणीके हैं। अभीतक इन्हें हमने देखा नहीं है। चक्रवर्त्तीजीके इस निबन्धकी टिप्पणीमें हमने उल्लिखित दो निबन्धोंका नाम देखा है।

कलकत्तेमें "वंगीय साहित्यपरिषद्" नामक एक बड़ी ओजस्विनी सम्भ्रान्त संस्था है। वहींसे "साहित्यपरिषत्पत्रिका" त्रैमासिकरूपमें निकलती है। इसमें बड़े ही महत्वपूर्ण प्रायः ऐतिहासिक लेख रहते हैं। इसके सभी लेखक लब्धप्रतिष्ठ तथा संस्कृत अंग्रेजीके प्राञ्जल विद्वान् हैं। चक्रवर्त्तीजीके जिस निबन्धपर हमने यह अपनी सम्मति प्रकटित की है, वह सन १३१७ की प्रथम संख्यावाली इसी

पत्रिकामें छपा है। इसके सहकारी सम्पादक गर्वमेन्ट आर्कियोलेजिकल सर्वे विभागके प्रधानाध्यक्ष श्री राखालदास बन्द्योपाध्याय जी हैं। इसीसे आप जान सकते हैं कि यह पत्रिका कैसे महत्त्वकी है। "शाकासम्वत्के संस्थापक विक्रमराजा प्रथम शताब्दिमें हुएही नहीं" इसकी पुष्टिके लिये आज तीन वर्ष हुए, बन्द्योपाध्यायजीने इस पत्रिकाकी एक अतिरिक्त संख्या निकालकर कई शिलालेख तथा ताम्रपत्रके साथ लगभग १०० पृष्ठका एक बड़ा ही गवेषणा-पूर्ण निबन्ध लिखा है। भास्करकी आगामी किरणोंमें हम उसे अवश्य प्रकाशित करेंगे.

* * * * *

कर्नाटक देशमें भवनद्वारा नागरीका प्रचार.

मूड़ बिद्रीके भण्डारमें जैनधर्म्मकी बड़ी अलभ्य पुस्तकें हैं। भवनको जब उन पुस्तकोंकी नकल करानेकी आवश्यकता हुई तो, वहाँ नागरी लिपिके लिखनेवाले एक भी लेखक नहीं मिले। वहाँकी लिपि कर्नाटकीय तथा भाषा भी वही है। कर्नाककीय लिपि प्रायः जापानी लिपिकी प्रतिकृतिसी है। वहांके लोग अपनी मातृभाषा तथा लिपिके ऐसे अनन्य भक्त हैं कि, दूसरी भाषा अथवा लिपि उनके पास फटकने नहीं पाती। आजसे दोतीने वर्ष हुए "श्रीजैन सिद्धान्तभवन" के सेक्रेटरी श्रीमान् बाबू करोड़ीचन्दजी तीर्थयात्रा करके उधरके भण्डारोंके उद्धार तथा दर्शन करनेके लिये जब मूड़बिद्रीमें पहुंचे तो. वहाँकी पाठशालाके छात्रोंको पारितोषिकका प्रलोभन देकर नागराक्षर पढ़ने और लिखनेके लिये प्रोत्साहित किया। अब वहाँके विद्यार्थी धड़ाधड़ सुन्दर नागराक्षर लिखरहे हैं। बल्कि टूटी फूटी हिन्दीमें पत्र भी लिख लेते हैं। उन लोगोंकी कई चिट्ठियाँ भवनमें आगयी हैं। वहाँसे सैकडों शास्त्र प्रतिलिखित होकर भवनमें आगये। मैं काशी तथा आराकी नागरी प्रचारिणी सभाओंसे अनुरोध करताहूं कि वे ऐसे ही हिन्दी तथा नागरीका जहाँ नामनिशान नहो वहाँ नागरीका प्रचार कर अपने उद्देशोंको पूरा करें; अन्यथा घर बैठे २ जहाँ तहाँ राजाओंके प्रास शिर्फ मेमोरियल भेजनेसे हिंदी तथा नागरीका प्रचार कभी नहीं होसकता। मैं आशा करताहूं मेरे इस अनुरोधपर नागरी-प्रचारिणी सभाएं अवश्य ध्यान देगीं।

* * * * *

वह दिन कब आयगा.

आजकल जो जाति विद्या-रसिका होकर जिस कामको करनेके लिये कमर बाँधती है, उसे वह बड़ी खूबसूरती और प्रतिष्ठाके साथ झट कर डालती है। विद्याकी मूल भित्ति केवल पुस्तक तथा प्रतिभा समझनी चाहिये। हमारे पूर्वाचार्य्योंने जो अपनी प्रतिभा-प्रधानताकी पराकाष्ठा दिखलाई है वह किसीसे छिपी नहीं है। बाकी रही पुस्तक-सो जैनि-

थोंकी पुस्तकोंकी याद करनेसे मनस्ताप रोंगटे रोंगके संतप्त किये देता है। यदि अबसे भी जैनी अपनी अवशिष्ट मौलिक सर्वस्व पुस्तकोंकी रक्षा तथा प्रचारका उद्योग करें तो निस्सन्देह हम लोगोंकी भावी धार्म्मिक अथवा सामाजिक अवनतिकी सबल आशङ्का विनष्ट होजाय।

आजकल यवनजातिने विद्याको अपना लिया है। वह नये नये विद्यालय तथा विश्व-विद्यालय खोलनेके फिक्रमें हमेशः लगी रहती है। जो कलकत्ता नगरी बंगालियोंकी 'आमी' 'तुमी' की ध्वनिसे मुखरित हुई रहती है, वहां भी मुसल्मानोंके कई फारसी और अरबीके मदरसे हैं। उनमें ऊंचेसे ऊंचे दर्जेकी पढाई होती है, अथवा जिस मोहमयी (मुम्बई) पुरीमें शिर्फ ' इकड़े ' ' तिकड़े ' की सुश्राव्य टरें सुन पड़ती हैं, वहां भी Urdu School (उर्दूका मदरसा) का साइन बोर्ड चन्द्रमाकासा चमक रहा है। इसकी वजह यही है कि मुसल्मानोंने अपने साहित्यकी सामग्री सम्पन्न कर विद्या-प्रचारके लिये असावधानता तथा आलस्यको दूर फटकार रक्खा है।

बांकीपुरमें खुदाबक्स खांजीकी लायब्रेरीकी प्रशंसा हिन्दूस्तानमें कौन कहे, इंगलैण्ड तथा जर्म्मनके बड़े २ नामी विद्वानोंने उसकी रिपोर्टें देखकर मुक्तकण्ठसे की है। सचमुच हस्तलिखित फारसी और अर्बी ग्रन्थोंका संग्रह भारतवर्षमें ऐसा कहीं नहीं है। खुदाबक्सखाँ अपनी लायब्रेरीमें बैठ कर हमेशः यह कहा करते थे कि:—

अगर फिर्दौस बरू ऐ ज़मीनस्त।
हमीनस्त वो हमीनस्त वो हमीनस्त॥

अर्थात्—कहीं स्वर्ग है जगमें तो फिर।
यही स्वर्ग है यही स्वर्ग है॥

मैं श्रीजिनवाणी मातासे प्रार्थना करताहूं कि आप वह समय शीघ्र दिखावें कि जैनग्रन्थसंग्रहस्नेही तथा जैनइतिहासप्रेमी जैनसन्तान **भवन**में बैठकर खुदाबक्स-खांके ऐसा **स्वर्ग** और **भवन**का साम्य-संयोजक पद्य गाया करे।

* * * *

भारतका अर्णवयान

बाबू राधाकुमुद मुकुर्जी एम्. ए. ने इस नामकी एक अंग्रेजीमें पुस्तक लिखी है। अंग्रेजीमें इसका नाम " Indian shipping " है। इसमें कई प्राचीन जहाजोंके काल्पनिक चित्र भी दिये गये हैं। आपने इस पुस्तकमें भारतीय प्राचीन नौ-निर्म्माण शिल्पकी उन्नतिका अच्छा चित्र खींचा है। बड़ी मार्मिक दृष्टिसे आपने इस बातको दिखाया है कि पहले

भारतवासी वाणिज्यादि व्यापारके लिये बेरोकटोक जहाजोंमें बैठकर विदेशोंमें जाते थे। और इस पुस्तकमें यह बात बड़ी विशदतासे दिखलाई गयी है कि, पहले जमानेमें वर्णविचार केवल चार ही वर्णपर निर्भर नहीं था। हाथी, घोड़ा, गाय, भैंस वगैरह जन्तु भी वर्णव्यवस्थाके किलेमें घिरे थे। और कहांतक कहा जाय काष्ठ भी चारो वर्णोंमें विभक्त थे। काष्ठका ब्राह्मणक्षत्रियादि विचार करके जहाज बनाई जाती थी। इसके प्रमाणमें आपने इस पुस्तकमें एक श्लोक उद्धृत किया है कि:—

" लघु यत् कोमलं काष्ठं सुघटं ब्रह्म–जाति तत्।
दृढाङ्गं लघु यत् काष्ठमघटं क्षत्र–जाति तत्॥ "

साहित्य नामक बंगला मासिक पत्रमें श्रीयुत पंचकौड़ी बन्द्योपाध्यायजीने इस पुस्तककी बड़ी प्रशंसाके साथ समालोचना की है। आखीरमें बन्द्योपाध्यायजीने लिखा है कि, परिष्कृत अंग्रेजी भाषामें इस पुस्तकको लिखकर श्रीयुत राधाकुमुदजीने पाश्चात्य विद्वन्मण्डलीमें बडी भारी प्रतिष्ठा प्राप्त की है, किन्तु इसे यदि वंगभाषामें आप लिखते तो, आपकी प्रतिष्ठा हो अथवा न हो, किन्तु आपकी यह पुस्तक बंगाली विद्वानोंके लिये ज्ञानाञ्जनशलाकाका काम अवश्य देती। यह सचित्र पुस्तक ढाईसौ पृष्ठकी है। इंगलैंडके **लंगमैनसने** इसे छापकर प्रकाशित किया है।

* * * * *

भारतीय प्राचीन झलक

हम लोग घर बैठे बैठे अभिनव पदार्थोंके प्रेमी होकर पुरातत्ववेत्ताओंकी प्राचीन खोजपर विश्वास नहीं करते। बंबईसे दक्षिण पांचकोसपर एक गुफा है। यहां स्टीमरसे आना पड़ता है। इसकी रक्षा गवर्नमेन्टद्वारा होती है। पर्वतके कुछ ऊपर चढ़कर गुफामें जाना पड़ता है। वहांका दृश्य देखते ही बनता है। गुफामें कई मूर्तियाँ हैं। इन्हें देखनेसे तो मालूम होता है कि, यहां शायद हिन्दूधर्म्मकी प्रधानता हो, किन्तु गुफाके पूर्व ओर एक बहुत पुरानी दिगम्बर मूर्ति पद्मासन लगाए बैठी है। आसपासमें यक्षयक्षिणी भी देख पड़ती थी। आश्चर्य्य है कि, सभी धार्मिक मूर्तियोंका यहां खूब सम्मेलन हुआ है।

बंबईसे पन्द्रह कोश पश्चिमकी ओर एक " **कनेली गुफा** " है। बरौली स्टेशन उतर कर आठ माइल पैदल जाना पड़ता है। लगभग १५० वहां गुफाएं हैं। इस पर्वतके नीचेसे ऊपरतक गुफा ही गुफा है। किसी किसी गुफामें इतनी बडी बड़ी दालानें हैं कि, उनमें दो दो हजार मनुष्य सावकाश बैठ सकते हैं। गुफाओंकी हरेक दीवालके अगलबगलमें कुछ लिखा हुआ है। मुझे तो मालूम हुआ कि कर्नाटकीय लिपि है, किन्तु बहुतेरे विद्वान् कहते हैं कि, ये पाली अक्षर हैं। गुफाओंमें जो मूर्तियां मैंने देखी हैं, वे प्रायः बौद्ध मूर्तियां थीं, किन्तु सुना जाता है कि, यहां दो चार दिगम्बर जैनमूर्तियां भी हैं। खैर जो हो इनके देखनेसे भारतीय प्राचीन झलक एकबार झलक जाती है।

पुस्तक-पर्य्यवेक्षण.

जिनवाणी माताकी पुकार—

इसके लेखक बाबू परमेष्ठीदासजी लमेचू तथा प्रकाशक बाबू उदयराजजी बद्रीदास जैन हैं। इसकी किमतं शिर्फ **मातृ-सेवा** है। आधा आनेका टिकट पोस्टेजके लिये भेजकर बाबू उदयराजजी बद्री दास जैन—नं. ७७ बड़तलास्ट्रीट कलकत्तेके पतेसे इसे सर्वसाधारण जैन मंगा सकते हैं। प्रारम्भमें "मातृवन्दना" यह ध्रुपद लयकी कविता बड़ी ही भक्तिरसप्लुत हुई है। बाबू मक्खनलाल लमेचूके "निवेदन" पढनेसे धार्मिक आवेश होजाता है। और मालूम होता है कि, इसके लेखके मानसभित्तिपर श्रीजिनवाणी माताकी वर्त्तमान हीनावस्थाका चित्र चित्रित होगया है। तत्पश्चात् इसके प्रमुख लेखक श्रीपरमेष्ठीदास लमेचूकी उर्दू वजनकी "मातृपुकार" नामकी दस पृष्ठमें कविता है। लेखकके विशुद्ध भावकी मैं मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करताहूं। आपका कविता-विषय बड़ाही उच्चत्तम है। आपके पद-पदसे जिनवाणीमाताकी भक्तिका उद्रेक-बिन्दु टपकता है। यद्यपि इस कवितामें शब्द-चयन तथा छन्दश्शृंखलाकी ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है, तौभी मुझे तो यह पूर्ण आशा है कि, इसका विषय-सौन्दर्य्याधिक्य पाठकोंका ध्यान इन क्षुद्र च्युतियोंकी ओर जाने ही नहीं देगा।

आज इसे ("जिनवाणी माताकी पुकार" को) यह **भास्कर** अपनी स्नेहमयी किरणोंके क्रोड़ान्तर्गताकर पाठकोंकी सेवामें पहुंचा कर अनुरोध करता है कि, आप इसे एक बार तो अवश्य साद्यन्त पढे कि जिससे आप लोगोंको धार्मिक अथवा सामाजिक अवस्थाका दृश्य जरूर दृग्गोचरीभूत होजायँ।

* * * *

अनुभवानन्द—

इसके लेखक "जैनमित्र" के प्रख्यात अनुभवी सम्पादक श्रीमान् ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी हैं। यह जैनमित्रके तेरहवें वर्षके उपहारमें उपहृत हुआ है। जैनमित्र-कार्य्यालय-हीराबाग बम्बईके पतेसे यह ॥) आनेमें मिलता है।

गत वर्षके जैनमित्रमें यह प्रकाशित होचुका है। उसीसे उद्धृत कर यह अबकी बार पुस्तकाकार छपाया गया है। इसमें **अगमदुर्गम, अद्भुत चोरी** आदि ५६ शीर्षक (Heading) हैं। १२८ पृष्ठकी इस छोटीसी पुस्तकमें ब्रह्मचारीजीने जैन-

सिद्धान्त तथा जैनदर्शनका कूटकूटकर रहस्य भरदिया है। दार्शनिक तथा सैद्धान्तिक विचारोंको इस ढंगसे लिखा गया है कि, हठात् उन्हें पढनेकी रुचि समुद्भूत होती है। कहीं कहीं पारिभाषिक शब्द ज्योंके त्यों रख दिये गये हैं, इसलिये जैनियोंको तो नहीं किन्तु अजैनोंके समझनेमें ज़रा काठिनाई पड़ेगी। प्रायः उर्दूकवि गद्य या पद्य दोनोंमें हरेक शब्दपर अपनी अनुप्रासप्रियता दिखाते है। अभी हिन्दीको यह सौभाग्य प्राप्त ही नहीं है, किन्तु आपने इस अनुभवानन्द हिन्दी गद्य जैनदर्शनमें भी अनुप्रासकी अच्छी छटा दिखाई है। जैसेः—पृष्ठ १६ पं. २ "चिज्ज्योतिविलासी, अविनाशी, अत्यानन्दधामप्रवासी, कर्म्मराहुग्रसनरहित, विभावमेघाडम्बरविरहित, स्वभाव–परिणमन–विकाशसहित"। कहीं कहीं आपका वाक्यदैर्घ्य तो संस्कृतगद्यकाव्यकी याद दिलाने लगता है और कहीं कहीं आपकी हिन्दी प्राचीन हिन्दीकी परमाणु विकिरण करने लगजाती है। मैं समझताहूं कि, यह अनुभवानन्द भी हिन्दी साहित्यकोशके कुछ अभावकी अवश्य पूर्ति करेगा! प्रूफ संशोधकों अथ प्रेसकर्म्मचारियोंकी अनवधानतासे इसमें तीन पृष्ठका अशुद्धिपत्र लगाया गया है। जब मैं इससे मिलाकर पढने लगा. तो देखा कि, इसके अतिरिक्त भी अन्यान्य कई अशुद्धियां अभी रह गयी हैं। जैसे पहले ही पृष्ठमें अशुद्धिपत्रके सिवा २ पंक्तिमें **क्षोभितमन** [क्षुब्धमन] ६ पं. **दृष्टा** [द्रष्टा] ८ पं. **खेदित** [खिन्न] ऐसे असंख्य पद हैं। मैं आशा करताहूं कि, इसकी दूसरी आवृत्तिमें ब्रह्मचारीजी स्वयं इसका संशोधन कर इसे संशुद्ध करेगें। अस्तु, मैं अपने सभी ग्राहकोंसे साग्रह अनुरोध करताहूं कि आप सब इसे मंगाकर बार बार पढ़ें। इसके प्रत्येक बार पढ़नेसे नई नई जैनदार्शनिक ज्योति इससे छिटकती है। इसकी लागत तथा विषयके अनुसार इसकी किमत आठ आना बहुतही कम है।

* * * * *

विद्वद्रत्नमाला—

इसके रचयिता "लेखक–रत्न" और जैनहितैषीके सुयोग्य सम्पादक श्रीनाथूराम प्रेमीजी हैं। इस मालामें जिनसेन और गुणभद्राचार्य्य, पण्डित–प्रवर आशाधर, श्री अमितगतिसूरि, श्रीवादिराजसूरि, महाकवि मल्लिषेण और श्रीसमन्त भद्राचार्य्य ये सब विद्वद्रत्न उपगुम्फित हैं। यह माला विगत वर्षके जैनहितैषीमें प्रकाशित हो चुकी है। वही संगृहीत होकर पुस्तककारमें जैनमित्रके तेरहवें वर्षके उपहारमें दी गयी है।

मैं जब अपने जैनइतिहासक्षेत्रकी ओर दृष्टि फेरता हूं तो इसकी उच्छृङ्खलता तथा अनुक्रमराहित्य ही सब जगह दिखाई देता है, तो ऐसी अवस्थामें समाजको

क्या कर्त्तव्य है वह स्वयं विचार सकता है । ऐसे तो सभी इतिहास–लेखक प्रायः भूलके शिकारके लक्ष्य बने रहते हैं, किन्तु हमारे इतिहासमें तो भूलें होनी सर्वथा सम्भावित हैं। क्यों कि हमारे समाजने आंजतक अन्यान्य कई संस्थाए स्थापित कीं किन्तु ऐतिहासिक संग्रहकी ओर कुछ ध्यान ही नहीं दिया । इसलिये दूसरेने हमे अन्धे समझकर अनुग्रहतया अथवा अननुग्रहतया जो बुरी भली ऐतिहासिक राहें पकड़ा दी हैं उन्हींके सहारे आचार्य्योंकी ओट लेकर हमलोग चल रहे हैं । यदि सुगम परिष्कृत सच्चे मार्गसे समाजको जानेके लिये कहा जाय तो वह "पुरानी लकीर का फकीर बनकर" चौंक उठेगा और उस राहसे जानेके लिये कभी सहमत नहीं होगा। इन्हीं सब दोषोंको हटानेके लिये स्वर्गीय बाबू देवकुमारजीने श्री. जैनसिद्धान्तभवन नामक यह जैन ऐतिहासिक संग्रहालय खोला तथा वहांसे यह भास्कर निकलने लगा। उल्लिखित मालाके समुद्ग्रथिता हमारे प्रेमीजी भी जैन इतिहासकी परिष्कृतिके लिये बड़े उद्योगशील होरहे हैं । इसकी साक्षिता आपकी यह विद्वद्रत्नमाला ही पर्य्याप्त है। भास्करकी प्रथम किरण प्रकाशित होनेके पहले ही इस मालाके कई रत्न जैनहितैषीमें प्रकाशित होचुके थे । उनमें जिनसेनाचार्य्य और गुणभद्राचार्य्यका ऐतिहासिक परिचय तो आपने इसका प्रथम रत्न किया है । योंतो प्रेमीजीने छः हो विद्वद्रत्नोंके लिये अपनी अनुभवपूर्ण मास्तिष्किक शक्तियोंसे बड़ी बड़ी ऐतिहासिक खोजें की हैं किन्तु जिनसेन और गुणभद्राचार्य्यके विषयमें आपका परिश्रम विशेष प्रशंसनीय है ।

देवसेनसूरि के दर्शनसारकी गाथा के अनुसार प्रेमीजीने जिनसेन के बाद पद्म नन्दी इनके बाद विनयसेन तत्पश्चात् गुणभद्रको क्रमशः आचार्य्य पदवी धारण करने को लिखा है। मैं यह बात निरी निर्मूल नहीं कहता हूं किन्तु **सेनगण**की पट्टावली में इनका नाम नहीं है और महा पुराणमें भी इनका वर्णन कहीं नहीं आया है। पहल समयमें आचार्य्यपद विद्याके अनुसार लोगों को दिया जाता था। यदि पद्मनन्दी सेनगणमें मान लिये जायं तौ भी सम्भव है कि पद्मनन्दी और विनयसेनकी अपेक्षा गुणभद्र अधिक विद्वान् थे। इस लिये जिनसेनके बाद गुणभद्र ही आचार्य्यपट्टाधीश हुए। एक जगह टिप्पणीमें स्वयं प्रेमीजीने भी लिखा है कि पद्मनन्दी नन्दिसंघके आचार्य्य मालूम पड़ते हैं।

एक जगह और आपने लिखा है कि बिक्रमके १३६ वर्ष पीछे श्वेताम्बर-सम्प्रदाय अलग हुआ है। किन्तु यह बात एकदम निर्मूल मालूम होती है. क्यों कि यह बात सर्वमान्य तथा सर्वप्रसिद्ध है कि भद्रबाहुस्वामीके समयमें दिगम्बरसम्प्रदायसे श्वेताम्बरसम्प्रदाय अलग हुआ है।

स्थानपरिचयमें आपने एक जगह लिखा है कि नवम शताब्दिमें दिगम्बर आचार्य्योंके चरित्रमें कुछ शिथिलता आगई थी कि जिससे आचार्य्य लोग राजसभाओंमें जाने आने लग गये थे । मै समझता हूं कि ऐसा मान लेनेसे एक ऐतिहासिक विषयपर बड़ा ही आघात पहुंचता है । राजसभाओंमें जाने आनेसे आचार्य्योंके चरित्र भले ही शिथिल हों, किन्तु महाराज **चन्द्रगुप्त**की राजसभामें **भद्रबाहु स्वामी** बराबर जाते आते थे और चन्द्रगुप्त भी उन्हें बड़े आदरसे बुलाते थे ।

पार्श्वाभ्युदय के काव्यसौष्ठवकी समालोचना करते हुए प्रेमीजीने एक जगह लिखा है कि " केवल अपने अध्ययन और अपनी जांचके भरोसे हमारा यह कहना तो बड़े भारी साहसका कार्य्य होगा कि महाकवि जिनसेनकी कविता **कविकुलगुरु** कालिदासकी कविताके जोड़ेकी है " ।

यहां पर मुझे प्रेमीजीसे यह कहना है कि प्रेमी जी ! आपहीके अध्ययनाध्यापनके आधार पर जिनसेनाचार्य्यके काव्यके उत्कर्षापकर्षकी परीक्षा सर्वथा अवलम्बित नहीं है । इनके काव्यकी सर्वश्रेष्ठता कई अजैन ऐतिहासिक विद्वानोंने भी निष्पक्षपातसे दिखलाई है । प्रेमीजीके उपर्युक्त वाक्यमें एक बड़ा भारी रहस्य है । किन्तु स्थानाभाव तथा अवकाशाभावके कारण उसे मै अभी नहीं प्रकटित कर सकता । किन्तु मैं इतना तो अवश्य कहूंगा कि प्रेमीजीने यह वाक्य लिखनेमें भी बड़े भारी साहसका काम किया है । मै समझता हूं कि इसके लिखनेका दूसरा कारण कुछ नही । कुछ दिनोंसे प्रेमीजीमें पक्षपातराहित्यकी मात्रा हदसे ज्यादा बढ़ी हुई है ।

मै विद्वद्रत्नमालाको साद्यन्त पढगया हूं सही, किन्तु ऐसी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक पुस्तकका ऐतिहासिक पर्य्यवेक्षण एकही बार करनेसे मुझे सन्तुष्टि नहीं हुई, इसलिये आगामी किरणोंमें भी मैं अवश्य करूंगा । प्रेमीजीने इसकी प्रस्तावनामें ही पाठकोंको सूचित कर दिया है कि यह जब छप रही थी तो मैं बीमार था, इस लिये इसमें अशुद्धि रह जानेकी सम्भावना है । किन्तु जब मैंने इसे पढा तो **अनुभवानन्द**से थोडी अशुद्धि मिली । उसमेंभी प्रायः बहुत ऐसी हैं कि जो जैनहितैषीमें अबतक रह जाती हैं । जैसेः—

विद्व. पृ.	पं.	
१०	३	जिसने इस टीकाको **सम्पादन की** है ।
३०	११	अर्थोंकी रचना की है, श्रीपाल नामके मुनिने **जिसे सम्पादन की है** ।
३२	१२	श्रीजयसेनगुरुने .... जयधवल टीकाको **पूर्ण की** ।
४७	१०	उसने .... वसुन्धराको वशमें **कर ली** ।
५०	१	वसुन्धराको मैंने दूषित **की थी** ।

५५ १३ उसे .... सुना दी।
६२ '५४ कविने .... अनुयोगोंके विषयोंको संग्रह कर दिये हैं।
८० ५ इसे अमोघवर्ष प्रथमने संस्कृतमें बनाई थी।
८१ ३ उसे .... तीन चार राजाओंने ... धारणकी।
८२ ६ श्रीहर्षने ... ... नगरी को लूटीथी।
८६ ८ जिसने .... राजाओंको .... आज्ञानुवर्ती किये थे।
९२ १६ शहाबूद्दीन गोरीने .... दिल्लीको अपनी राजधानी बनाई थी।
१०१ ८ आशाधरने धारनगरी को छोड़ दी।
१३७ १९ कर्त्ताने काष्ठासंघके उत्पादक बतलाये तो लोहाचार्य्यको हैं।
१६१ ४ भीमने चंद्रदेशीय लोगोंको जीते।
१६१ ४ जिसने भस्मक व्याधिको भस्म करदी।
१६१ १५ स्वामीजी तत्काल ऋषि बनगये। मस्तकपर जटा बढ़ालिये।

उल्लिखित सोलह वाक्योंकी प्रधान क्रियाएं हिन्दीव्याकरणोंके नियमानुसार एक वचन, पुँल्लिङ्ग और अन्यपुरुषके अनुसार होनी चाहिये थीं। अन्तिम वाक्यमें उह्य कर्त्ता मानने पर भी जटाके अनुसार क्रिया बढ़ाली होनी चाहिये थी।

ऐसे वाक्य तो जैनहितैषीमें प्रेमीजीके सम्पादनके पहले विधिरूपसे लिखे जाते थे, किन्तु प्रेमीजी अब इन्हें विधि निषेध दोनों समझकर लिखते है। अधिकतर विधिरूपमें लिखते हैं। इसका उदाहरण मै विगत हितैषीसे निकाल कर देता हूं। जैसे:—

जै. भा. पृ. पं.

६–७ ३२१ २२ जिन्होंने............अपनी आत्माको इतनी उन्नत नहीं की है।
,, ३२७ २४ मुर्शिदाबादवालोंने ... उन्हें स्थापित करायेथे।
,, ३३६ १ जिसने .... हिंसाकठोरताकी कीचडको धो बहाई।
५ २३७ १ एक ज़रासी बातको ... उसने ......बढ़ा दी है।
,, २७० १ इसे.......मारवाडी स्टोर्सने प्रकाशित की है।

इसीप्रकार जैनहितैषीमें ऐसे व्याकरण-विरुद्ध वाक्य खूब लिखे जाते हैं। शायद प्रेमीजीने 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' इस नीतिवाक्यके अनुसार हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ लेखक तथा सरस्वतीके सुसम्पादक खुद द्विवेदीजीके गत जनवरी महीनेकी १ म संख्यावाली सरस्वतीके ११ पृष्ठकी २२ वीं पं० में अध्यापक एडवर्ड हेनरी पामरवाले लेखके "नीचे उनकी एक उर्दू कविता उद्धृत की जाती है। जिसे उन्होंने........एक कविताकी वजनपर लिखीथी" इस वाक्यको आदर्श मानकर

लिखा हो, सो यह भी नहीं हो सकता, क्योंकि प्रेमीजी इसके प्रतिकूल भी कभी कभी लिख देते हैं। और द्विवेदीजीका तो ऐसा वाक्य मैंने शायद और नहीं देखा है।

स्वाधीनतामें जॉनस्टुअर्ट मिलका जीवनचरित जो प्रेमीजीने लिखा है, उसमें भी प्रायः ऐसे वाक्य बहुत मिलते हैं। जैसेः—

पृ. २६ प. २३ " जो बातें वास्तवमें बुरी होती थीं, उन्हींके विषयमें उसके ऐसे मनोभाव, होते थे। **जिन्हें** लोगोंने बुरी मान **रखी** है "।

पृ. २८ पं. २ " **उन्हें** उसने प्रतिनिधिसत्ताकराज्यपद्धतिसे कम **समझे** "।

पृ. ४७ पं. ७ " विचार और सिद्धान्त थे **उन्हें** साफ साफ शब्दोंमें लिखकर दे **दिये** "।

पृ. ९१ पं. ३ " उन्होंने **उसे** सन् १८७० में स्वीकार **करलीथी** "।

मालामे एक वाक्य और है, जो प्रेमीजी बराबर लिखते हैं, जिसको और दूसरे लेखक शायद ही लिखते हों। यदि लिखें भी तो वह भ्रमात्मक ही समझना चाहिये। जैसेः—

पृ.	पं.	**वाक्य.**
४	२०	पद्यग्रन्थमे खण्डेलाका राजा खण्डेलगिरि **बतलाया** है।
५	१	नन्दिसंघकी पट्टावलीमें यशोभद्रको........प्रारम्भसे **बतलाया** है।

यहां **बतलाया** है यह क्रिया बड़ी ही भ्रमपूर्ण मालूम पड़ती है। क्योंकि सकर्म्मक धातुके आसन्नभूतकी क्रियाका कर्त्ता 'ने' सविभक्तिक रहना चाहिये। यदि यहां कर्त्ता उह्य (understood) मानलिया जाय, तौ भी ठीक नहीं। क्योंकि विना शान गुमानके धड़ामसे 'ने' सविभक्तिक कर्त्ता किसीने इस प्रकार उह्य माना ही नहीं। इस लिये मै समझता हूं कि प्रेमीजी और लेखकोंके अनुसार ऐसी जगह **बतलाया गया है** ऐसा लिखा करें तो अच्छा होगा। क्योंकि यहां क्रियाके पूर्ववर्त्ती **राजा** आदि पद कर्मकर्तृत्व दोनों रूपसे प्रयुक्त हो जायगा। विद्वद्रत्नमालामें संस्कृतके बहुतसे पद बहुत ही संशोध्य हैं।

जैसेः—वि. पृ. ७४ पं, ७ " जितनी **संक्षेपता**से यह ग्रन्थ पूर्ण किया गया है" बंगला पुस्तकोंमें '**ह्रासता**' लिखा रहता है। ठीक इसी जोड़ेका **संक्षेपता** भी हो जायगा। इसके बदले **संक्षिप्तता** लिखा जाता तो अच्छा होता।

मुझसे यह जरूर अनुचित हुआ है कि, विद्वद्रत्नमालाकी प्रस्तावनामें प्रेमीजीसे सूचित करनेपर भी मैंने जान बूझकर व्यर्थ उनकी दोषोद्घोषणा की है, किन्तु मैं प्रेमीजीसे निवेदन किये देता हूं कि, आपने जिन अशुद्धियोंके लिये सबोंको सूचित किया था वे तो हैं ही। उन्हें मैंने एकदम छोड़दिया है, किन्तु जिनका सम्बन्ध

आपके संशोधित **जैनहितैषीमें** अबतक चला आता है उन्हींका यहां ज़रासा जिक्र किया है। सुना जाता है कि बहुतेरे हिन्दीहितैषियोंने आपसमें यह सलाह की है कि, व्याकरणाधिक्य तथा व्याकरणकी नियमपालनपरायणताहीने संस्कृतभाषाको मृतभाषा (Dead language) बना दिया है, इस लिये हम लोगोंको हिन्दीव्याकरणोंके नियमोंका प्रसार अथवा जो नियम बन गये है, उनका विशेष स्वीकार कभी नहीं करना चाहिये। शायद इन्हीं हिन्दीसुधारकोंमेंसे हमारे एक प्रेमीजी भी हों। हम जैनियोंको इस बातका गौरव मानना चाहिये कि, अन्यान्य अजैन हिन्दीपत्रसम्पादकोंकी प्रेमीजीके हिन्दीभाषाधिपत्यपर बड़ी श्रद्धा है। सचमुच आपकी विशुद्ध हिन्दी पढ़नी बार चह-चहाती हुई चीडियोंकीसी बोल उठती है। बहुत वर्षोंसे आपने अपने अदम्य अध्यवसाय तथा स्वभावसुन्दर मुहाविरेदार हिन्दीसे जैनहितैषीको आदर्श बना रक्खा है। इस लिये मै अपने पाठकोंसे सविनय निवेदन करताहूं कि आप सब **सरस्वती** आदि हिन्दीके प्रधान प्रधानपत्रोंसे सुप्रशंसित तथा सुसमालोचित और जैनहितैषीके सम्पादकद्वारा विरचित इस विद्वद्रत्नमालाको अवश्य खरीदकर पढ़े। यह हिन्दीका आनन्द तथा जैन इतिहासका विज्ञान एक साथ कराती है। इस विद्वत्तापूर्ण १७४ पृष्ठकी विद्वद्रत्न-मालाका मूल्य ॥.) कहीं कम है। (शेष आगे)

जिनपूजाधिकार-मीमांसा—

इसके लेखक देवबन्दनिवासी श्रीयुत जुगल किशोरजी मुख्तार है। जैनहितैषीके क्रोड़पत्रमें यह वितरित हुई है।

इसे हमने पढ़ा तो मालूम हुआ कि इस पुस्तकके लिखे जानेका कारण तथा मूल-भित्ति दस्से और बीसोंका झगड़ा ही है। यद्यपि इस भास्करका अथवा मेरा इस झगड़ेसे कुछ सम्बन्ध नही है तोभी यहां यह कहदेना मै उचित समझताहूं कि मुख्तार साहबने जो जिनपूजाके लिये सभी वर्णोंको अधिकार दिया है, सो बहुत ठीक है। पूजाका अर्थ सत्कार और पूज्य श्रद्धा भी है। किन्तु जहां आपने पूजाका अर्थ शिर्फ मूर्त्तिप्रक्षालनादि रूढ़ि मानलिया है, सो ठीक नहीं। क्योंकि ऐसा माननेसे एक ऐतिहासिक विषयकी बड़ी हानि होती है। वह यह है कि मन्दिरोंके बाहर जो **मानस्तम्भ** लगाये जाते है, उनका यही अभिप्राय है कि अस्पृश्य वर्णोंके आनेकी यही सरहद है। वे इसको लांघकर आगे नहीं जा सकते। बल्कि मानस्तम्भोंमें अप्रतिष्ठित मूर्त्तियाँ भी रहती हैं कि जिनपर इतर वर्ण अक्षत आदि चढ़ा सकते है। पूजा कई प्रकारकी होती है। जिन्हें (स्पृश्य-वर्णोंको) प्रक्षालन आदि करनेका अधिकार है, वे सब पूजा करें और जिन्हें मानस्तम्भ तक अधिकार है, वे मूर्त्तिस्तुति, स्तोत्र, ध्यान, जप, तप, तथा दर्शन

दूरहीसे बड़ी स्वच्छन्दतापूर्वक करसकते हैं । उनके लिये वे ही पूजा है । यह पुस्तक मुखतार साहेबने बड़ी गवेषणासे लिखी है । इस लिये हमें आशा है कि हमारे ध्वजाधारी पण्डित-गण मुखतार साहेबकी इस मीमांसापर अपनी सुमीमांसा प्रकटित कर एक निष्पक्ष जैन विद्वान्का उत्साह बढायेंगे ।

पत्रपरिचय.

सचित्र हिन्दी-मासिक मनोरंजन—

इसके सम्पादक श्री ईश्वरी प्रसादजी मिश्र हैं । इसके आकार प्रकार बड़े सुन्दर तथा आवरकपत्र कहीं नेत्ररंजक है । बाबू मैथिली शरण गुप्तजी तथा प. रूपनारायण पाण्डेयजी ऐसे 'खड़ी बोली' की कविताके उद्भट कवियोंकी इसमें हृदयहारिणी कविता रहती है तथा मनोरंजन-प्रधान अन्यान्य साहित्यक लेख भी अच्छे रहते हैं ।

'नाकमें दम' यह लेख यद्यपि अनुवाद तथा मनोरंजनके सार्थकता-सूचक रूपसे इसमे निकल रहा है, किन्तु अबकी बारके सातवीं संख्यावाले "मनोरंजन" का "नाकमें दम" तो अश्लीलताके मारे पढ़ने वालोंको नाकोदम किये देता है । मै तो समझताहूं कि गुरुशिष्य तथा पितापुत्र परस्पर एक दूसरेको इसे पढकर नहीं सुना सकता । इसके लेखक जी. पी. श्री वास्तवजी बडे विनोदप्रिय हैं । वैनोदिक शब्द आपके सामने हाथ जोड़े खड़े रहते है । यदि आप चाहेंगे तो इसको आगामी संख्यामे दूसरे ढंगसे लिख सकते है । जो हिन्दी जाननेवाले मराठी मासिक मनोरंजनकी मनोरंजनता देखकर तरस रहेथे वे अब इस हिन्दी मनोरंजनका तनमनसे आदर करे । इसका वार्षिक मूल्य २।) बहुत ही कम है । इसके मंगानेका पता:— **मैनेजर—मनोरंजन — आरा.**

नागरीहितैषिणीपत्रिका—(साहित्यपत्रिका.)

यह बिहारकी गौरवकारिणी आरा नागरीप्रचारिणी सभाकी मुखपत्रिका है । सभाने बड़ी कृपा करके भास्करके परिवर्त्तनमें सम्मिलित ९ वाँ १० वाँ अङ्क भेजेथे । इनमें काव्यतीर्थ व्याकरणतीर्थ पण्डित सकलनारायण पाण्डेयजीकी 'हिन्दीलेखन-प्रणालीकी शुद्धता,' और बाबू अवधविहारीशरण जी. बी. ए. का "मेगस्थनिज" ये साहित्यके लिये बड़े ही उपयुक्त लेख हैं । अन्यान्य लेख भी सुपाठ्य हैं । बाबू दामोदर सहायजीकी "विनयानुताप" यह खड़ी बोलीकी कविता बहुत अच्छी है ।

किन्तु " **लगाये** जीभ औ नाकोंको जैस स्वाद खुशबूमें " यहां **लगाये** यह क्रिया इस कविताको पड़ीबोलीमें परिणत करती है। ऐसे तो **परतीत** आदि दो चार शब्द चिन्तनीय है, किंतु खड़े बोलनेवालोंने अपनी बोलीमें उन्हें अभीतक स्थान दे रक्खा है; आगे इनको निष्कासन करेंगे या आश्वासन यह वे ही जानें। ऐसे ऐसे उपयोगी लेखोंसे समलंकृत होनेपर भी इसका वार्षिक मूल्य १॥) भला किसको नहीं कम जचेगा?

मंगानेका पता:—**नागरीप्रचारिणी सभा—आरा—**

इन्दु—

यह सचित्र हिन्दीका मासिक पत्र है। इसके सम्पादक हिन्दीविज्ञोंके परिचित श्री अम्बिका प्रसादजी गुप्त हैं। इसकी ३ री कलाकी ६ वी और ७ वीं किरण हमारे पास समालोचनाको आई थी। इनमें छोटे बड़े बाईस लेख है। सभी लेख सुपाठ्य तथा मार्मिक है। अनेक उपाधिधारी विज्ञानवेत्ता बाबू महेशचरण सिंहजीका " योग्य सन्तान पैदाकरना " यह लेख बड़े महत्वका है। पण्डित रूपनारायणजीकी। " अधाखिलाफूल " कविता तो बड़ी ही मानसद्राविका है। पाण्डेयजीकी कविता प्रायः गुप्तजीकीसी सर्व—प्रशंसनीय होचली है। 'इन्दु' में लेख वास्तवमे हमेशः उपयोगी निकलते हैं। विज्ञ पाठक इसकी सुधामयी कलासे अपनेको अवश्य अभितृप्त करें। इसका वार्षिक मूल्य ३॥)

सम्पादक या प्रकाशक—' इन्दु ' **बाबू अम्बिकाप्रसाद गुप्त**—बनारस सिटी—

जैनहितैषी—

इसके सम्पादक श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी है। अन्यान्य हिन्दी मासिकपत्रोंमें जिस तरह सरस्वतीकी प्रतिष्ठा है उसीप्रकार हमारे जैनपत्रोंमे भी जैनहितैषीकी बड़ी प्रतिष्ठा है। इसकी वजह यह है कि प्रेमीजी इसको सदा सामयिक तथा उपयोगी लेखोंसे बिभूषित किया करते है। विशेषकर निराश्रित जैनइतिहासको भी आपने इसमें बहुत दिनोंसे स्थान दे रक्खा है। प्रेमीजीके ही सम्पादक—सिंहासनासीनत्वमें जैन-हितैषीने अपनी इतनी चारों तरफ कीर्त्तिकौमुदी फैलाई है। प्रेमीजी जैनइतिहास, जैनसमाज तथा हिन्दीसाहित्यके लिये रातदिन कितनी जीतोड़ मेहनत करते है? यदि लोगोंको यह जानना हो तो जैनहितैषीका गत पांचवा भाग मंगाकर प्रेमीजीका "तीर्थपर्य्यटन" यह लेख अवश्य पढ़ें। मैं आशा करताहूं कि ऐसे अमूल्य पत्रको केवल वार्षिक मूल्य २) देकर हमारे जैनीभाई इसके अवश्य ग्राहक होंगे। ज्यादा नफा यह है कि दोही रुपयेमें ग्राहकोंको सालमें उपहारकी पुस्तकें भी बहुत अच्छी अच्छी मिल जाती हैं।

पता:—**मैनेजर जैनहितैषी**—जैनग्रन्थरत्नाकर **कार्यालय—हीराबाग — बम्बई।**

सत्यवादी—

"महाराष्ट्रीयखण्डेवालदिगम्बरजैनपंचमहासभा" का यह मासिक मुखपत्र है। इसके सम्पादक पण्डित उदयलालजी काशलीवाल हैं। अभीतक इसके नव अङ्क निकल चुके है। पण्डितजी बड़ी स्पष्टवादिता, सत्यवादिता तथा निर्भीकतासे इस पत्रमें अपनी सामाजिक उलझनोंको प्रकाशितकर उनको सुलझानेके लिये चेष्टा करते हैं। इसमें अन्यान्य लेख भी अच्छे रहते हैं। सत्यवादी दिगम्बरसाधुओंमें जो हठधर्म्मी और मूर्ख हैं, उन्हें देखकर और पत्रोंके ऐसा "टुक टुक दीदम दम न कशीदम" नहीं लगाये रहता, बल्कि उनकी खूब खबर लेता है। मै अपने पाठकोंसे अनुरोध करताहूं कि आप सब एक वर्षके लिये भी इसके ग्राहक बनकर इसकी सत्यवादिताकी जांच कर लें। ऐसे उपयोगी पत्रके लिये वार्षिक मूल्य १।) केवल नामका है।

पताः—सम्पादक, **सत्यवादी**–पो० गिरगांव-बम्बई।

जैनमित्र—

यह "दिगम्बरजैनप्रान्तिकसभा बम्बई" का मुखपत्र है। यह बहुत पुराना पाक्षिक पत्र है। इसके सम्पादक श्रीयुत ब्रह्मचारी शीतल प्रसादजी हैं। आपका सम्पादकीय स्तम्भ बड़ा ही पाण्डित्यपूर्ण होता है। सौभाग्यसे आजतक इसको सभी सम्पादक कृतविद्य तथा धर्म्म-धुरीण मिलते गये। ब्रह्मचारीजी जैन दार्शनिक तथा धार्मिक लेख लिखनेमें बड़े सिद्ध-हस्त हैं। इस पत्रको सर्वाङ्ग सुन्दर बनानेमें आप सदा सचेष्ट रहते हैं। जैनमित्रकी सम्पादकीय टिप्पणीमें दार्शनिक तथा धार्मिक विषय अधिक रहते हैं। ब्रह्मचारीजी यदि अपनी विचारपूर्ण टिप्पणीमें साहित्यिक, सामाजिक और ऐतिहासिक विषयोंको भी आश्रय दिया करें तो कहीं अच्छा होगा। अस्तु हमारे पाठक जरूर इस पत्रके ग्राहक बनें। इसका सालाना चन्दा २) कुछ अधिक नहीं है। पता–**जैनमित्र-कार्य्यालय**, हीराबाग—बम्बई.

धन्यवाद-धारा.

कारंजासिंहासनाधीश श्री १०८ मान् भट्टारक देवेन्द्रकीर्त्तिजी महाराज इस भवनके बड़े ही शुभचिन्तक हैं। आपके मनमें भवनकी भव्य-भावनाएँ सदा प्रोच्छ-लित होती रहती हैं। गत वर्षमें आपने भवनमें १५१) नक्द और एक अत्यन्त प्राचीन नागराक्षरमें लिखित गोमट्टसारजी देकर जो अपनी उदारता तथा विद्वत्ताका

जो परिचय दिया है, वह और भट्टारकोंके लिये आदर्शभूत तथा अनुकरणीय है। आप हमेशः भवनकी भलाईके लिये अपनी शुभसम्मति दिया करते हैं। जैनशास्त्रके एक अच्छे मर्मज्ञ आप ऐसे सहायक पाकर यह भवन फूले नहीं समाकर अपने उद्देश्योंकी सिद्धिके लिये बड़ी बड़ी आशाएँ करता हुआ चिरकृतज्ञता-पूर्वक आपको सहस्रशः धन्यवाद-प्रदान करता है।

*　　*　　*　　*

कारंजासिंहासनाधीश श्री १०८ मान् भट्टारक वीरसेनजी महाराज भी भवनके परम अन्तरङ्ग हितैषी है। पर साल आपने बहुत पुराने कर्नाटकीय लिपिमें ताड़पत्र-लिखित जैनधर्म्मके सैकडों ग्रन्थ सुरक्षानिमित्त तथा प्रतिलिपि करनेके लिये **भवन**मे देकर जैनसाहित्य तथा धर्म्मका तो उदात्त उपकार किया है तथा भवनको अनुग्रह-भाजन बनाया है। वास्तवमें जैनधर्म्म, जैनसाहित्य तथा जैनइतिहासके उद्धारके लिये भवनको ऐसे ही ऐसे सुधीश्रेष्ठ सच्चे सहायकोंकी आवश्यकता है। आपकी इस अनुपम उपकृतिसे उपकृत होकर भवन आपपर असाधारण धन्यवादधाराका अभिवर्षण करता हुआ आपकी कृपादृष्टिका सदाभिलाषी बनता है।

*　　*　　*　　*

स्वर्गीय बाबू देवकुमारजीके परमश्रद्धास्पद श्री १०८ मान् नेमीसागरजीवर्णी भवनके प्रधान पृष्टपोषकोंमेंसे एक है। भवनकी प्रख्याति तथा ग्रन्थ-संग्रहके लिये आपने आजतक जो अभावनीय परिश्रम किया है वह स्वर्णाक्षरमें लिखने योग्य है। कौन ऐसा जैनी होगा जो आपकी शान्तिपिपासिता, जैनधर्म्मसम्मानबुद्धिता, मधुर-भाषिता और उपदेश-दक्षता देखकर जैनधर्मकी प्रभावनाके लिये प्रभावित न होजाय। बहुत दिनोंतक आपने अपने पादपद्मपरागसे आरा पुरीको पवित्रित किया है। अब लगभग दोवर्षसे अपने प्रान्त (कर्नाटक) मे जैनधर्म्मकी निर्वाणोन्मुख ज्योतिको सुप्रज्वलित कर रहे है। आपके करकमलारोपित, अभिषिक्त तथा परिवर्द्धित यह भवन आज आपकी सेवामे धन्यवादोपहार लेकर उपस्थित होता है। आशा है कि आप इसे स्वीकार कर भवनको पूर्ववत् अपनी वत्सलमयी कृपादृष्टिसे चिरस्थायी बनानेकी कृपा करेंगे।

*　　*　　*　　*　　*

श्रीमान् सेठ विनोदीराम बालचन्द-झालरा पाटन और श्रीमान् रामलालजी जैन—हेड् क्लार्क सप्लाई ऑफिस—जालन्धर छावनी ये दोनों महोदय **भवनके** बड़े परमहितैषी हैं। आप लोगोंने इसके अजीवन सभासद (Life member) होकर अपनी आदर्श उदारताका परिचय दिया है। इस लिये भवन आप लोगोंको असंख्य धन्य-वाद देता हुआ आशा करता है कि, आप सब ऐसे ही सदा वात्सल्य-दृष्टि करते रहेंगे।

मैं जब कलकत्तेसे बंबई आया, तो मुझे भास्कर लिखनेके लिये कई किताबोंकी आवश्यकता हुई। श्रीयुत दानवीर जैनकुलभूषण सेठ माणिकचन्द हीराचन्द जे. पी. ने बंबई एसिआइटिक सोसाइटीसे सैकड़ों पुस्तकें मंगादीं, तथा श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमीने अपने कार्य्यालयसे आवश्यकतानुसार कई ग्रन्थ दिये. इसलिये ऐसे उदार तथा समाज–हितैषियोंकी उपकृतिसे पूर्ण उपकृत होकर मैं इन दोनो महोदयोंको कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद देता हूं।

सचित्र दिगम्बर जैन.

भास्कर तथा भवनके परम शुभचिन्तक मासिक दिगम्बरजैनका परिचय मैंने भूलसे **पत्रपरिचय** वाले शीर्षकमें पाठकोंको नहीं कराया। यह लोकमान्य पत्र गुंजरातीमें निकलता है। इसके सम्पादक जैनसाहित्यसेवियोंके चिरपरिचित श्रीयुत मूलचन्द किसनदास कापड़ियाजी हैं। कापड़ियाजीकी वक्तृत्वशक्ति तथा लेखिकशक्ति दोनों एकसे एक बढी हैं। आपने इसपत्रको अपनी सर्वश्रेष्ठ सम्पादनशैली तथा विशुद्ध बिषयविवेचनसे बड़ा ही उन्नत बनारक्खा है। दिगम्बरजैनमें सामाजिक अथवा धार्म्मिक लेख बड़ी मार्म्मिक दृष्टिसे लिखे रहते हैं। इसका दिवालीका अङ्क तो सालमें लाजबाब निकलता है। समाजके अथवा धर्म्मके जितने सच्चे साधु तथा गृहस्थ उद्धारक हैं, उनके परिचयपूर्वक चित्र निकाल कर कापड़ियाजी उनके सामाजिक तथा धार्म्मिक उत्साह और दूने बढ़ाते हैं। वार्षिक उपाहारकी पुस्तकें भी प्रायः बहुत अच्छी रहती हैं। यद्यपि इसकी भाषा गुजराती है किन्तु इतनी सरल रहती है कि इसका आशय हिन्दीभाषाभाषी भी बड़ी आशानीसे समझ सकते हैं। इसलिये मैं अपने हिन्दी जानने वाले ग्राहकोंसे भी अनुरोध करता हूं कि वे इसके ग्राहक अवश्य बने। वार्षिक मूल्य १।।।) कुछ बेजां नहीं है।

पताः—मैनेजर–दिगम्बर जैन–चन्दावाड़ी–सूरत।

आवश्यक–सूचना.

विलम्ब-निवेदन.

जब मैं भास्करकी पहली किरण निकाल चुका, तो सामग्रीसम्पन्नतया इसकी दूसरी किरण भी निश्चित समयसे दोचार दसरोज पहले ही प्रकाशित कर पाठकोंकी सेवामें पहुंचा देनेकी तैयारियाँ बाँधने लगा। पहले तो भास्करका ऐतिहासिक विषय ही कठिन रक्खागया है, उस पृथ्वी सरस्वती आदि पत्रोंने 'भास्कर'के कई विषयोंकी निर्मूलता दिखानेकी कृपा की।

बस बात क्या थी बिलम्ब होनेकी सूरत धीरे धीरे दिखाई देने लगी । जब मैं बम्बई चला आया तो, और कई बातोंकी असुविधा हुई । ऐतिहासिक प्रमाणोंके लिये शिला-लेख खोजने तथा उनके ब्लॉक बनवानेमें भी बहुत देर लगी । खैर कुछ देर ही सही, किन्तु दूसरी किरणके साथ साथ अब तीसरी किरणमें भी देर होने लगी । जिस समाचारपत्रको निजका प्रेस नहीं है, उन्हें निश्चित समयसे विचलित होना तो स्वभाव-सिद्ध है । सो प्रेसके फेरमें मैं भी पड़ा । बंबईके "लक्ष्मीनारायणप्रेसमें" भास्करके तीन फर्मे छपने पाये थे कि वहां धड़ा धड़ चूहे गिरने शुरु होगये । प्रेसकर्मचारी घर जा बैठे। अब भास्करके उछलकूद करने तथा अस्त व्यस्त होने पर भी कौन सुनता है? आखीरमें हमे यहांके प्रसिद्ध 'इन्दु' प्रेसमें सब मैटर देने पड़े । इस प्रेसमें कर्म-चारियोंकी इतनी अधिकता है कि, अगर प्रतिदिन मैं एक फर्मा मांगता तो, यह एक क्या दो फर्मे देनेको तयार; इसलिये इसने भास्करके दोनों किरणें बड़ी आसानीसे छापदीं । दोनों किरणोंके प्रकाशित होनेका समय हो ही गया था, इस लिये पाठकोंको पढ़नेमें सुभीता होनेके लिये दो अलग अलग जिल्द नहीं करके मैंने एक ही जिल्द करदी ।

दो एक महिनेकी देर होजानेसे मेरे विज्ञ पाठक अवश्य उकता गये होंगे. किन्तु उन्हें स्मरण रखना चाहिये कि, जिस सरकारी एसिआइटिक सुसाइटियोंकी जर्नलके लिये सैकडों वैतनिक कर्म्मचारी विद्वान् हमेशः कटिबद्ध रहते हैं—ऐतिहासिक बखेड़ोंमें पड़कर वहांकी भी जर्नलें महीनोंकी कौन कहे? वर्षों पीछे पड़ी रहती हैं । इन किरणोंकी ऐतिहासिक खोज करनेमें कितनी मेहनत हुई है, पाठकोंसे यह कहना फिजूल है । क्योंकि "हाथकंगनको आरसी क्या?"

मैं अपने पाठकोंको यह दृढ़ आशा दिलाये देताहूं कि, किरणोंके प्रकाशित होनेमें निश्चित समयसे एकाध महीना इधर उधर हो जावे, यह दूसरी बात है । किन्तु वर्षमें आप लोगोंकी सेवामें भास्करकी चार किरणें अवश्य पहुं जायंगी । मैं आशा करताहूं कि, ऐतिहासिकपत्र इस भास्करके बिलम्बका कारण अनिवार्य्य समझकर इसके शुभानुध्यायी पाठक सदा अपने उदार आशयाकाशमें भास्करको अवकाश देगें ।

• • • • •

अबकी बार जो भास्करमें हरिवंश पुराण तथा पद्मपुराणके मंगलाचरण और प्रशस्ति दी गयी हैं, अथवा सेनगणकी पट्टावली प्रकाशित की गयी है, सो भवनमें उनकी दूसरी प्रति नहीं मिलनेसे प्राचीन संस्कृत तथा लिपिकी वजहसे इनमें कुछ कुछ अशुद्धि रहगयी है । इनकी दूसरी प्रति मिलानेके लिये मैंने यहां बहुत तलाशी, किन्तु

मिली ही नहीं। जहां तहां तो मैंने संशोधन करवा दिया है, किन्तु जो विशेष सन्देहास्पद है वह रह ही गया। इसलिये यदि जैनविद्वद्गण उनका संशोधनकर मुझे सूचित करनेकी कृपा करेंगे तो उनकी बड़ी कृपा होगी। दूसरी बात यह भी मैं कह देना उचित समझता हूं कि, भास्करमें जो संस्कृतका अनुवाद हुआ है वह भावानुवाद है। और अनुवादक पण्डित भी मेरे अजैन कर्म्मचारी हैं। इसलिये सम्भव है कि उन्होंने जैनपारिभाषिक शब्दोंका व्युत्पत्त्यनुसार औरका और अर्थ किया होगा, अथवा वे शब्द ज्योंके त्यों रख छोड़े होगें। इसलिये पाठक अनुवादके भावार्थ ही की ओर विशेष ध्यान देगें।

* * * *

कार्य्याधिकतासे हरिवंशपुराणके कर्त्ता जिनसेनाचार्य्य और पद्मपुराणके कर्त्ता रविषेणाचार्य्यका परिचय इन किरणोंमें मैं नहीं देसका। सम्भवतः अगामी किरणमें दूंगा।

* * * * *

भास्करके पहुंचनेमें विलम्ब होनेसे मेरे कई सहयोगी तथा सहयोगिनियोंने जो एकही बार दर्शन देकर फिर दर्शनद्वारा कृतार्थ करनेकी कृपा नहीं की है, उनसे निवेदन है कि, वे भास्करका विषयकाठिन्य देखकर इसे अपने साहयोगिक स्नेह तथा दर्शनसे वञ्चित न रक्खें। भास्कर अवश्य प्रकाशित होगा तथा अपने सहयोगी तथा सहयोगिनियोंकी सेवामें जरूर उपस्थित होगा।

* * * *

भास्करके शीघ्रतासे छपनेसे तथा एक ही संशोधकको संशोधन करनेसे मात्रा तथा पदपार्थक्यादिकी जहाँ तहाँ अशुद्धियाँ रहगयीं हैं। जैसे:—

क्रमभङ्ग—पृ. ५ पं. ८ 'भरी हुई है कीर्ति जिसकी' ऊपरकी पङ्क्तिमें एक जगह जिनकी है यहाँभी वही होना चाहिये।

पृ. २२ पं. ५ वे यूसुन जातिको............विनष्ट करचुके यहाँ वेकी जगह उन्होंने और कर चुके की जगह करदिया होने चाहिये।

पदपार्थक्य—पृ. ४९ प. २० प्राकृतिक रचना, चतुरता यहाँ कौमाकी जगह—हाइफेन चाहिये। ऐसे ही इसकी आगेकी पाँतिमें भी भाव-गाम्भीर्य्य, अलङ्कार सौन्दर्य्य इन समस्त पदोंमें भी अर्द्ध विश्राम (,) पड़गया है। और इसकी क्रिया जो 'कर देती है' वह करदेते हैं चाहिये। पृ. २१ पं. ३ दिखाना है (दिखाने हैं)

श्रीजैनसिद्धान्त-भास्करके नियम।

(१) यह पत्र तीन तीन महीनेपर प्रकाशित हुआ करेगा।

(२) सर्वसाधारणके लिये डाक व्यय-सहित इसका वार्षिक मूल्य ३) रुपया है, किन्तु राजा महाराजाओंके सम्मानार्थ १०) रु. रहेगा। प्रति किरणका मूल्य १) रु. है। बिना अग्रिम मूल्यके यह पत्र नहीं भेजा जा सकता। इसकी पुरानी प्रतियां लेनेके लिये "भवन" बाध्य नहीं होगा। यदि पुरानी प्रति मिलेगी भी तो उसका मूल्य कुछ विशेष लिया जायगा।

(३) यदि किसीको पता बदलवाना हो तो वे सम्पादक कार्य्यालय कलकत्तेसे पत्र व्यवहार कर ठीक कर लेवें।

(४) यदि नियमित तिथिपर पाठकोंके यहां "भास्कर" नहीं पहुंचे तो हमें सूचना दें। हम डाकखानेमें इसकी पूरी खोज करके ठीक कर देंगे।

(५) लेख, समालोचनार्थ लिये पुस्तक, बदलेके पत्र, मूल्य और प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र सम्पादक "श्रीजैन-सिद्धान्त-भास्कर" नं. ९ जगमोहन मल्लिक लेन कलकत्तेके पतेसे आना चाहिये। किन्तु "भवन" के सहायतार्थ द्रव्य, शास्त्र और पुरातत्व-सम्बन्धी शिलालेखादि मन्त्री "श्रीजैन-सिद्धान्त-भवन आरा" के पतेसे भेजना चाहिये।

(६) किसी ऐतिहासिक अथवा सैद्धान्तिक लेख प्रकाशित करने या न करने तथा लौटाने या नहीं लौटानेका पूर्ण अधिकार सम्पादकको है। यदि कोई लेख सम्पादक लौटाना चाहें तो उसका डाकव्यय और रजिष्टरीका खर्च लेखकको देना पड़ेगा। अन्यथा नहीं लौटाया जा सकता।

(७) अधूरे लेख नहीं छापे जावेंगे। स्थानके अनुसार लेख एक या अधिक किरणोंमें भी प्रकाशित होते रहेंगे।

(८) इस पत्रमें ऐतिहासिक अथवा सैद्धान्तिक लेखोंके सिवा राजनैतिक आदि विषयोंकी चर्चा तक भी नहीं की जावेगी।

चित्रसूची.

(१) [illegible] चित्रफलक नं. [illegible]

(२) [illegible] चित्रफलक नं. [illegible]

(३) [illegible] चित्रफलक नं. [illegible]

(४) [illegible] ([illegible])

(५) [illegible]

(६) [illegible]

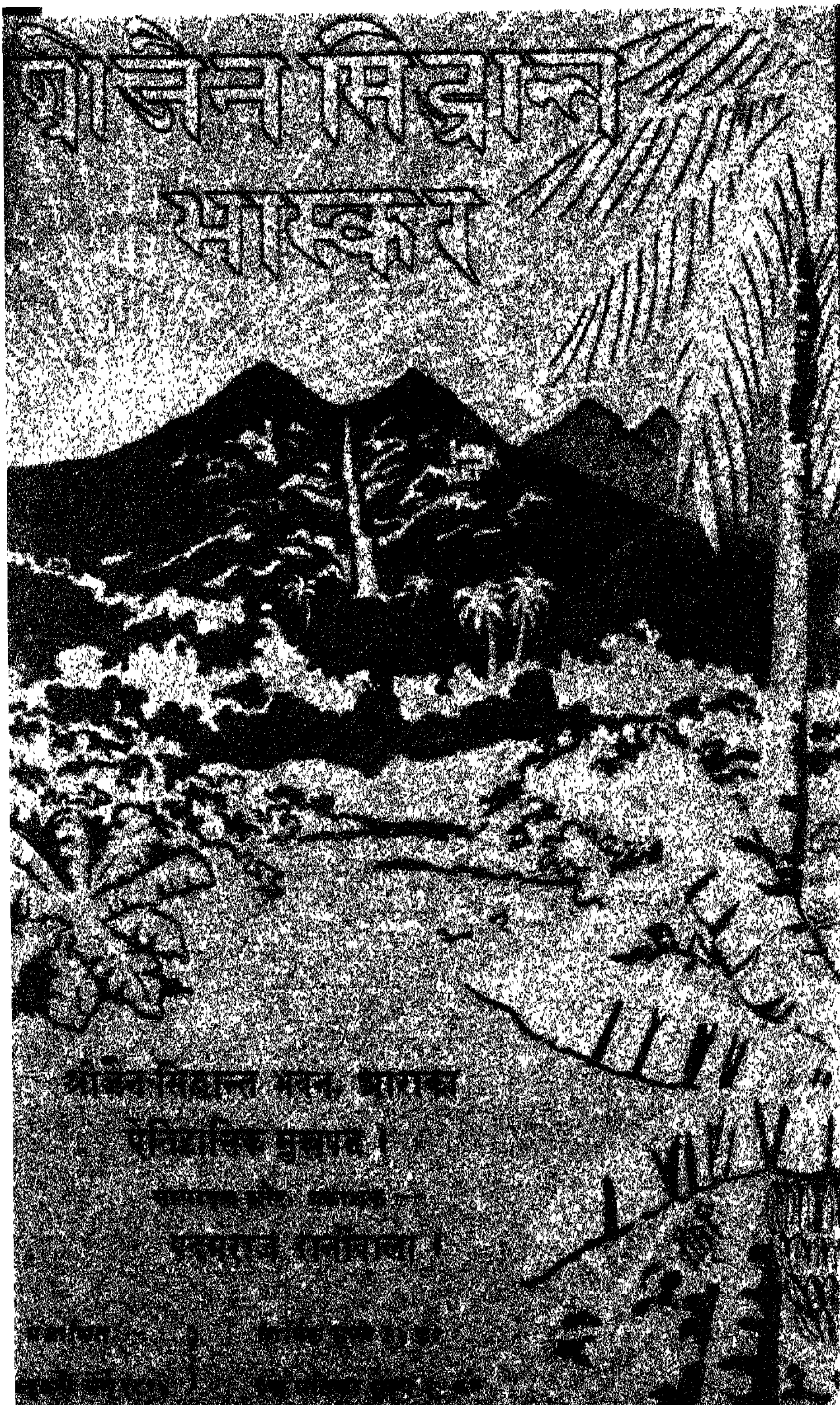
(७) [illegible]

(८) [illegible]

(९) [illegible] १८६८ [illegible]

(१०) [illegible] १९१८ [illegible]

[illegible]


जैन सिद्धान्त
भास्कर

१६. ब्रह्मावर्त्तके अन्तर्गत [illegible] आचार्यों [illegible] पृ० १२० [illegible]

[illegible] पृ० [illegible] आरा। पृ० १११

[illegible] आरा। पृ० ११५

[illegible]

[illegible]

[illegible] साहित्य-समालोचना। ले०—संपादक। पृ० [illegible]

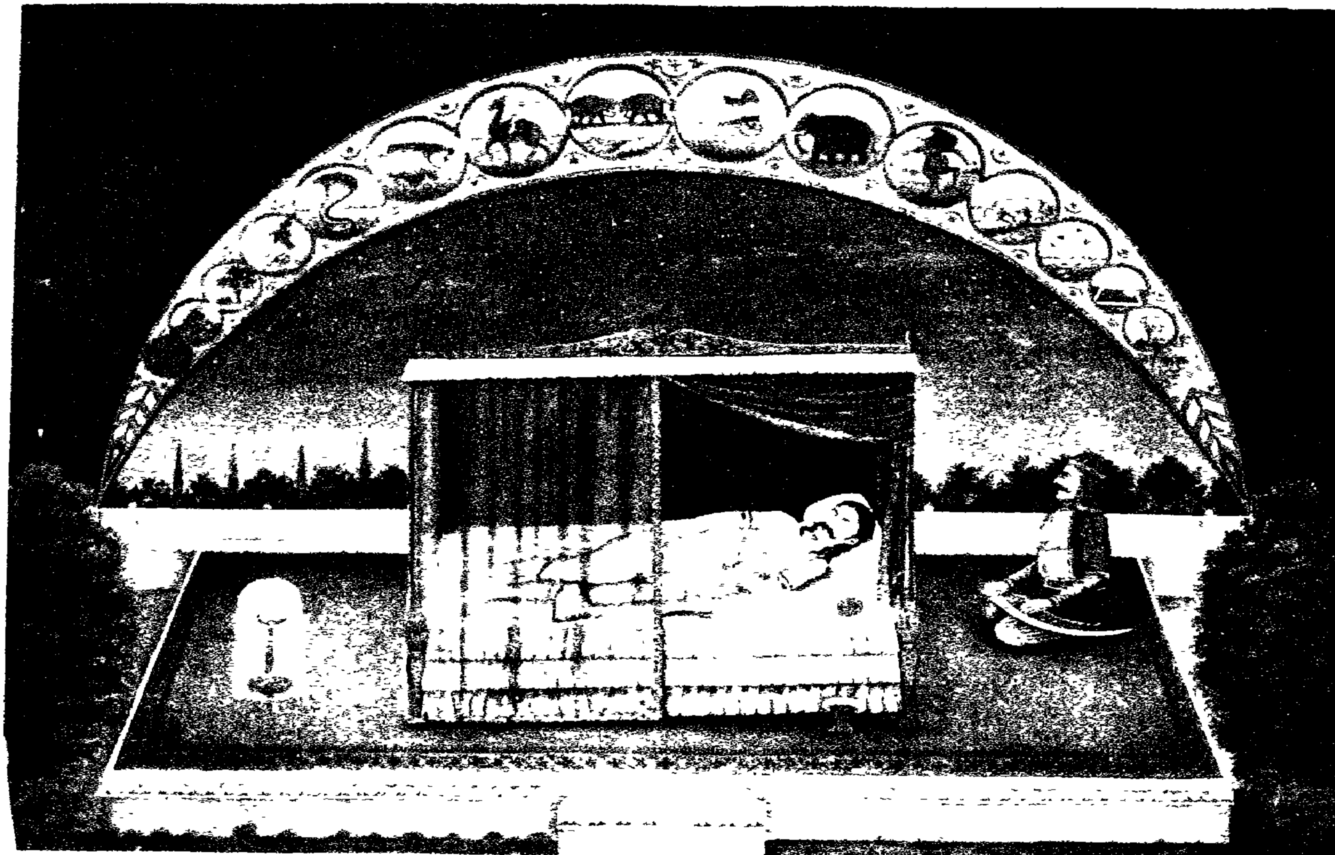
३४. सुभाषितावलि (कविता) ले० पं० [illegible] द्विवेदी [illegible] पृ० १८५

३५. व्याख्यान। ले०—तुकाराम [illegible] ओसवाल, [illegible] एम० आर० [illegible] एम० आर० [illegible] पृ० १८८

३६. विविध-विषय। ले०—संपादक। पृ० २०६

चित्र-सूची।

नोट — * इसका परिचय किरण २ के १४वें पृष्ठपर प्रकाशित हो चुका है। सं०।



मौर्यवंशीय महाराज चन्द्रगुप्तके सोलह स्वप्न

तांते निंतां नुता।

भास्कर

ऐतिहासिक पत्र ।

भाग १] अप्रेलसे जून तक १९१३ चैत्रसे ज्येष्ठ संवत् वि० १९७० [किरण ४

मङ्गलाचरणम्

[illegible]

ॐ — [illegible]

[illegible] ॥ १ ॥

स्रग्धरा छन्दः ।

(२)

नानं नानं नंनन्नं ननानि नन ननां नानि नानं ननमः
ननानानं ननानं ननानि नानिनना नन नंन निनानिः
नांनानांना निनानां ननन्नु निनानिनां नाऽर्न नानू निनूनं
नांते निंनो नुनाना ननुनानि नुनिनुनानिनां नंनु नांनाम ॥२॥

चन्द्रगुप्तके चित्रका परिचय।

इस अनुपम अभिराम चित्रकी छटा निराली है भाई।
आज पूर्व भारतकी महिमा क्या इसने है झलकाई ?
चित्र, चित्रकर, चन्द्रगुप्त की करूं प्रशंसा मैं बहुबार।
जिनके कृपालेशसे अब भी भारत है गुणगरिमागार॥
हे इतिहास विज्ञवर बुधजन चन्द्रगुप्त हैं यही महान
जिन्हें सभी भारतवासीने अपनाया है मान प्रधान॥
बौध बुद्ध जिन जैन सनातन हिन्दू इनको कहते हैं।
पर साधक बाधक प्रमाण भी मिलकर खूब झगड़ते हैं॥
जैन सिद्ध कर दिखा दिया है भास्करने गत किरणोंमें।
शिला लेख बहु लेख प्रमाणित प्रकटित हैं गत किरणोंमें॥
श्रावक कुल चूड़ामणि थे ये भद्रबाहु के शिष्य प्रधान।
"प्रभाचन्द्र" दीक्षित इनका था नाम सभी करते थे मान॥
हा ! जब यह पददलित हुआ था भारत खूब सिकन्दर से।
किया गया उद्धार उसी क्षण इस जिन धर्म धुरन्धरसे॥
सुमन वाटिकामें सुदीर्घ है स्फटिक-वेदिका एक पुनीत।
शीतलता सुन्दरता जिसकी लुभा रही है सबका चित्त॥
शय्या परम रम्य उसपर है बिछी हुई यह सुखमागार।
ग्रीष्मकालकी सुभग रातमें बहता पवन परम सुखकार॥
मगधाधिप श्रीचन्द्रगुप्त सम्राट् उसीपर निद्रित हैं।
पर निज प्रजा हेतु सर्वत्र सुचिन्तित और विनिद्रित हैं॥
वीर अङ्गरक्षक शय्याके पास लगाकर वीरासन।
दृढ़ सन्नाह पहनकर करमें असि लेकर होकर दृढ़ मन॥
निर्निमेष होकर करता है रखवाली मगधेश्वर की।
निज कर्त्तव्यपरायण पर हो कृपादृष्टि होती सबकी॥
शयन भवनके एक कोनमें वही पुराना भारत का।
दीपक जलता है तम नाशक ज्ञान प्रकाशक भारत का॥

रात गयी अब उषःकाल की छवि सरसाती आती है।
दीप ज्योति भारत विभूति सी धीमी पड़ती जाती है॥
उसी समय में चन्द्रगुप्तने देखे सोलह स्वप्न विचित्र
खींच गये मानो ललाटमें भारतके कुसमय का चित्र॥
चित्र लिखित हैं फल समेत ये स्वप्न निराले ही भाई।
जिन्हें देख कहना पड़ता अब समय गया वह सुखदायी॥
"होते अस्त सूर्य को देखा" द्वादशाङ्गविद् रहे न एक।
"रत्नराशि रज में" देखी अब यतियों में हो फूट अनेक॥
"सुरतरु की शाखा टूटी" अब जिनव्रत धरे न क्षत्रिय लोग।
"सीम रहित जलनिधि" देखा नृप देंगे नहीं नीतिमें योग॥
"द्वादश फणी व्याल" है बारह वर्षों तक अब पड़े अकाल।
"सुर विमान उलटा" भारत में आवें नहीं देव यह हाल॥
"चन्द्राहत राजसुत" देखा कहो और इससे क्या शोक?
जिनव्रत छोड़ कुपथगामी होवेंगे भारतके नृप लोक॥
"कृष्ण युगल हाथी लड़ते हैं" होगी वृष्टि समयपर अल्प।
"रथवाही गोवत्स" युवावस्था ही में हो धर्म्म अनल्प॥
"गजारूढ़ कपि" को देखा क्षत्रिय सेवक हो नीच नरेश।
"प्रेत नाचता है" कुदेव की पूजा हो अब हाय विशेष!
"स्वर्णपात्र भोजी कुक्कुर" धनसे धनिकोंके हो दुष्कर्म्म।
"जुगनूकी है चमक" अल्प उद्योतक हो अबसे जिन धर्म्म॥
"शुष्क सरोवर" दक्षिण-दिशि वर्षण होते थोड़ा देखा।
जिनवृष अबसे उसी देशमें होगा फल सबने देखा॥
"रजमें कमल खिला" अजैन हों भूसुर जैन वैश्य धनवान्।
"छिद्रयुक्त शशि" देखा जिन मतमें हों भेद प्रभेद महान्॥
यही स्वप्न इस सुभग चित्रमें चित्रित है अति विशद पवित्र।
जिसे देख सबको भ्रम होता है यह है सजीव या चित्र?
वीर चतुर्विंशति सौ चालिस सम्वत्‌में यह हुआ प्रकाश।
होवे इससे भरतक्षेत्रके जनका अविरल बुद्धि विकाश॥

हरनाथ द्विवेदी "काव्यतीर्थ"।

महाराज चन्द्रगुप्तका इतिहास।

(३)

हम गत तीन किरणों में चन्द्रगुप्त के जैन होने का प्रमाण यथासाध्य पाठकोंके सन्मुख उपस्थित कर चुके हैं। यद्यपि इस विषय के कई और प्रमाण लिखे जा सकते हैं तौभी यह समझ कर कि केवल पिष्टपेषण मात्र होंगे—हम इस विषय को यहीं छोड़कर अपने पाठकों को चन्द्रगुप्त की अब अन्यान्य ऐतिहासिक रंगशालाका अभिनय दिखलाना चाहते हैं।

तक्षशिला (१) में कुछ जैन साधुओं से सिकन्दरको साक्षात्कार होने, उन साधुओं में से एक साधु को उसके साथ चले जाने और इसके अतिरिक्त चन्द्रगुप्त के इतिहास से सिकन्दर के कुछ विशेष सम्बन्ध होने की वजह से चन्द्रगुप्त के इतिहास लिखने के पहले सिकन्दर द्वारा भारत की उत्क्रान्ति की जाने का कुछ उल्लेख कर देना मैं उचित समझता हूं।

लगभग ३२६ ई० सी० में जब सिकन्दर ने भारत पर चढ़ाई की थी उस समय महाराज (२) आमिष तक्षशिलामें राज्य कर रहे थे। इन्होंने पूर्ण सत्कार पूर्वक अपनी बड़ी सेना लेकर तक्षशिला के द्वार पर सिकन्दर का स्वागत किया था। इन्होंने सिकन्दर को भेंट स्वरूप सात सौ घोड़े, तीन सौ हाथी, तीन हजार बैल और प्राय दो सौ (३) टैलेन्ट दिये थे। इतिहासकारों ने भारतवर्षमें पहले पहल सिकन्दर के सम्मानित होने के कई कारण लिखे हैं। भारत वर्ष में उस समय पारस्परिक द्वेषका बीज अंकुरित हो चुका था। और कहा जाता है कि (४) 'पुरु' जिसका नाम

---

(१) नोट—रावलपिण्डीके उत्तर पूर्व हसनअब्दालके दक्षिण पश्चिम कोणमें तक्षशिला का गौरवमय ध्वंसावशेष चिह्न पाया जाता है। महाभारतमें भी लिखा हुआ है कि तक्षशिला पश्चिम पञ्जाबके कोण पर है।

(२) नोट—यह ग्रीक भाषाका नाम है भारतीय भाषामें अभी किसीने इसे परिवर्तित नहीं किया है। और ग्रीक इतिहास लेखक "आमिष" को आम्बिसेस भी कहते हैं।

(३) नोट—"टलेण्ट" ग्रीक भाषामें सिक्कों को कहते हैं।

(४) नोट—क्या हम इन्हें कविवर कालिदास रचित "विक्रमोर्वशी" नाटकके नायक "पुरुरवा" कह सकते हैं।

ग्रीक इतिहासकारोंने "पोरस" लिखा है तथा अन्यान्य कई राजपूत लोग तक्षशिला पर कई बार चढ़ाई किया करते थे।

सिकन्दरको पराक्रमी समझकर तक्षशिलाधीशके हृदयमें उन विद्रोही राजपूतोंका शक्तिको दलित करनेके लिये बड़ी वेगवती इच्छा हो उठी थी। इसीलिये तक्षशिलाधीशने सिकन्दरको सम्मानित किया था। कहा जाता है कि तक्षशिलाधीशकी सहायतासे सिकन्दरने आज पहले ही पहल भारतके लोहकपाटका उद्घाटन किया था। अर्थात् सिकन्दरके पहले किसी विदेशी वीरकी बलोन्मत्ततासे यह भारतवर्ष पदमर्दित नहीं हुआ था। इसीलिये यह समय भारतकी भावी दुर्घटनाके लिये भारतीय इतिहासमें प्रस्तर पत्रपर अमिट रूपसे उल्लिखित है। सिकन्दरने तक्षशिलाधीशको चार लाख रुपये देकर तथा अधीनस्थ बनाकर फिर उन्हें तक्षशिलाके राज्यसिंहासन पर बैठा दिया। देशद्रोही तक्षशिलाधीशने भी अपनी स्वाधीनता तथा निष्कण्टक राज्य करनेकी इच्छाको सिकन्दरके चरणोंमें अर्पित कर दिया। उस समय तक्षशिला नगरीका अभ्युदय-सूर्य्य मध्यान्हावस्थामें था। जिस नगरीका विश्व विद्यालय जीवक और पाणिनि ऐसे छात्रोंका शिक्षक हो चुका था, जिस नगरीमें अगणित जैनसाधु विहार किया करते थे और जिस नगरीमें जैन सिद्धान्त की अप्रतिहत वेगवती नदियाँ नगरवासियों के हृदय को शान्त, पवित्र तथा निष्पाप बना रही थीं; हाय!!! सो आज उसी नगरीने विदेशियोंके आक्रमणसे अपना भयङ्कर दुर्दृश्य रूप धारण कर लिया है।

जब सिकन्दरको * जैन साधुओंसे साक्षात्कार हुआ था तो उनमेंसे एक जैनाचार्य्यने सिकन्दरको बड़ा ही मार्म्मिक उपदेश दिया था। उन्होंने कहा था कि सिकन्दर! तुम इन सांसारिक सुखोंकी आशामें पड़कर चारो तरफ क्यों परिभ्रमण कर रहे हो? तुम्हारे इस परिभ्रमण का कभी अन्त होनेवाला नहीं। तुम इस पृथ्वी पर अपना कितना ही क्यों न अधिकार जमा लो किन्तु मरती बार तुम्हारे शरीरके लिये साढ़े तीन हाथ जमीन ही बस होगी।

* नोट—"Magasthanis India" ग्रीक इतिहास लेखकोंने जैन साधुको जिमनासोफिस्ट कहकर उल्लेख किया है। यह नग्न दिगम्बर जैन साधु ही हो सकते हैं दूसरा नहीं। देखो भास्करकी द्वितीय तृतीय किरण

भला भारत विभव लोलुपी सिकन्दरके हृदय पर इन उपदेशोंका असर कब हो सकता था? जो हो, हम उसको इस गुणग्राहकताकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते कि यह जबतक तक्षशिलामें अपनी छावनी डाले पड़ा रहा बराबर जैन साधुओंका दर्शन करता रहा। बल्कि इसी वजहसे सिकन्दरको कई बार जैन सिद्धान्तोंको सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। एक बार सिकन्दरने ध्यानमग्न दश साधुओंको बलात्कारसे पकड़कर मंगा लिया था। साधुओंसे उसने दश प्रश्न किये और धमकी दी कि यदि इनका ठीक उत्तर नहीं होगा तो हम सबको एक साथ मरवा देंगे। परन्तु साधुओंके संघनायकने बड़ी निर्भीकतासे सिकन्दरसे कहा था कि यद्यपि तुम्हारा शारीरिक और सैनिक बल हमसे बढ़ा चढ़ा है किन्तु आत्मिक बल तुम्हारा हमसे प्रबल नहीं हो सकता। कहा जाता है कि ये नग्न साधु सिकन्दरके सिपाहियों तथा अन्यान्य मनुष्योंके पदचिन्हित पृथ्वीपर ही पैर रखकर चलते थे*। जैनाचार्य्योंने जहां मुनियोंके आचारका कथन किया है वहां विहार वर्णनमें यह स्पष्ट रूपसे लिखा है कि मुनियोंको तथा साधुओंको मर्दित तथा पददलित भूमि पर ही चलना चाहिये। इस कथनसे ग्रीक इतिहास लेखकोंका कथन बहुत अभिन्नतासे मिलता है। सिकन्दर जबतब उन जैन साधुओंसे ज्योतिष विषयक प्रश्न किया करता था, उसका साधुओंसे भावी घटनानुसार उत्तर पाकर, उनकी तार्किक शक्ति तथा भविष्यद्वक्तृत्व शक्ति पर इतना मुग्ध होगया था कि उसने संघनायकसे एकबार कहा था कि यदि आपमेंसे कोई एक साधु मेरे साथ चलें तो उनको मैं बड़े सत्कारसे वहां ले चलकर रक्खूंगा। संघनायकने उसकी बातको अस्वीकार तो किया किन्तु एक महात्मा संघनायकसे बिना कहे ही सिकन्दरके साथ चल दिये। क्योंकि वे विदेशमें अपनी जैनधर्मके प्रचारकी अभिलाषाको दमन नहीं कर सके। ग्रीक इतिहास लेखकोंने इतिहासमें इस महात्माका नाम कालोनस रक्खा है किन्तु भारतीय इतिहासकी उच्छृङ्खलतासे इस घटनाका उल्लेख न मुद्रित भारतीय इतिहासग्रन्थोंमें मिलता और न किसी पुराणहीमें मिलता। सम्भव है कि जैनाचार्य्योंने इनको जैन नियमसे विमुख देखकर इनका कहीं धार्मिक अथवा ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें उल्लेख

* नाट - देखो Arian History Vol II

नहीं किया है किन्तु ग्रीक इतिहासके सभी लेखकोंने इनका वर्णन किया है। भारत विजय कर जब सिकन्दर अपनी मातृभूमिको लौटा जा रहा था तो रास्तेमें पारस्य देशमें इन्हीं महात्मा *कलोनस को एक प्रकार की व्याधि जो अपने देशमें कभी नहीं होती थी हो गई।

यद्यपि इस महात्माने जैनाचार्य्यकी आज्ञाका उल्लंघन किया था और शायद जैन सिद्धान्तानुसार इनके आचरणोंमें भी कुछ फर्क पड़ा हो तोभी ग्रीक इतिहास लेखकोंने आपका वर्णन बड़े महत्वपूर्ण वाक्योंमें किया है। जब इन्होंने यह देखा कि जैन धर्मकी प्रथानुसार प्रवृत्ति करना और धर्मानुकुल इन्द्रिय-दमनकारी भोजनों द्वारा रोगी शरीरका निर्वाह होना असाध्य हो उठा है तो सिकन्दरसे कहा कि मुझे प्राचीन आचार परिवर्त्तन करनेको बाध्य होना पड़े अथवा मुझे उन स्वीकृत आचारोंमें कुछ कष्ट अनुभव हो इसके पहले ही मैं इस संसारको छोड़ देना चाहता हूं। पहले तो सिकन्दरने इस बातको अस्वीकार किया, परन्तु यह विचार कर कि यदि मैं इनके इच्छित पथ द्वारा आत्म विसर्जन न करने दूंगा तो ये अन्यान्य कष्टकारक पथसे अपने प्राण खो बैठेंगे। जब सिकन्दर उनकी सम्मतिसे सहमत हुए तो महात्माने सिकन्दरको चिता प्रस्तुत करनेकी आज्ञा दे दी। सिकन्दर उनके सम्मानार्थ स्वयम् अपनी सेना तथा हाथी घोड़े वगैरह तयार करने लगा। अपने कई सेनापतियोंको भारतीय और विदेशीय सुगन्धित द्रव्यों द्वारा चिता सुसज्जित करनेकी आज्ञा दी। अनेक प्रकारके राजकीय वस्त्राभूषण भी लाये गये।

बीमारीके कारण महात्मा कालोनस बड़े दुर्बल होगये थे इसलिये उन्हें आनेके लिये एक सुन्दर सुसज्जित हृष्टपुष्ट घोड़ा भेज दिया गया। किन्तु जीव दया धर्मके सहज प्रचारक उन महात्माने घोड़े पर चढ़ना अस्वीकार किया तथा भारतीय प्रथानुसार पालकीमें बैठकर चिता स्थान पर आये। आपने अपनी भाषामें कुछ मन्त्रोच्चारण किया। जो घोड़ा आपको लानेके लिये भेजा गया था उसे आपने एक मनुष्यको दे

* नोट—अनुमानतः कलोनसको कल्याणकीर्त्ति अथवा कल्याणसिंह कह सकते हैं। भारतीय भाषामें कोई 'कलोनस' नाम नहीं मिलता। भारतीय नामको जो यौनोंने पलट दिया है उससे कई जगह भारतका इतिहास अस्तव्यस्त हो रहा है।

दिया। यह व्यक्ति महात्माके पास रहकर आपके धार्म्मिक सिद्धान्तों को बड़े प्रेमसे सुनता था। चिताको सुसज्जित करनेके लिये जो चारों तरफसे हीरा मोती तथा सुवर्ण पात्र रक्खे गये थे उन्हें उन्होंने गरीबोंको दे देनेके लिये कहा। आप सब किसीके देखते देखते औदासिन्य भावसे चिता पर लेट गये। यद्यपि सिकन्दरको यह हृदयभेदी दृश्य दुर्द्दश्य हो उठा तौभी उसके सैनिकोंने महात्मा कल्यानसके उस चितारोहणको बड़े आश्चर्यसे देखा। उसी जलती हुई विकराल चितामें उनके शरीरको जरा सी भी हलन चलन नहीं हुई। सिकन्दरने अपनी भक्ति दिखानेके लिये अपने सभी रणवाद्य बजवाये। और सभी सैनिकोंके साथ शोकसूचक शब्द किया तथा हाथियोंसे भी चिग्घाड़ (१) करवाई।

कहा जाता है कि महात्मा कल्यानसने चितारोहण करती बार जब सबसे क्षमा प्रार्थना की और सबसे भेंट की बल्कि धार्म्मिक उपदेश देते हुए देशालोड़ (२) भी किया। उस समय आपसे सिकन्दर मिलनेके लिये आया तो आपने कहा कि मैं अभी आपसे मुलाकात करना नहीं चाहता; अब शीघ्र ही आपसे मुझे भेंट होगी। इस कथनका भावार्थ यद्यपि उस समय किसीको ज्ञान नहीं हुआ तौभी कुछ समयके बाद जब सिकन्दर काल-कवलित होनेसे सम्पन्न हुआ तो उसके प्रायः सभी अनुचरोंको महात्मा कल्यानसकी भविष्यद्वक्तृत्व * शक्तिकी याद हो आई।

हम महात्मा कल्यानसकी जीवन घटनाका उल्लेख करते करते बहुत दूर आ गये परन्तु अब हम अपने पाठकोंको उस उक्त तक्षशिलाको स्मरण कराते हुए सिकन्दरका उत्थापित ऐतिहासिक घटनाकी ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं।

कहा जाता है कि नन्दोंके अत्याचारसे उत्पीड़ित होकर राजपूतश्रेष्ठ चन्द्रगुप्त ने एकबार तक्षशिलामें सिकन्दरसे मुलाकात की थी। परन्तु भला यह कब सम्भव हो सकता था कि विदेशियोंका गौरव तथा उसका विजय-विलास चन्द्रगुप्तको सह्य हो सके। और कहां तक कहा जाय

१ [illegible] Arrian History

२ [illegible] Strabo's [illegible] book page 1045 और plutarch page 42

* [illegible] Arrian Strabo and plutarch

सिकन्दरकी छावनीमें चन्द्रगुप्तसे पूरे एक सप्ताह भी नहीं रहा [1] गया। और वह अपनी प्राकृतिक निर्भीकतासे सिकन्दरको असन्तुष्ट कर चल दिये। ठीक उसी समय इस क्षत्रिय वीरके हृदयमें भारतीय गौरवाग्नि स्फुलिंग चमक उठा। कुछ ही दिनोंके बाद इस अग्निने ऐसा भयङ्कर रूप धारण कर लिया कि जिससे सारे भारत विद्वेषियोंकी विजयाभिलाषा भस्मीभूत होगई। बल्कि इसी कारणसे कई शताब्दियों तक इस पवित्र भारत भूमिकी ओर किसीने विजयाभिलाषाके उद्देश्यसे दृष्टि भी नहीं डाली। कुछ ही दिनोंके बाद [2] ३२६ बी० सी० के एप्रिलमें सिकन्दरने महाराज पुरुके पास एक दूत भेजा कि तक्षशिलाधीशने जिस प्रकार मेरी अधीनता स्वीकृत की है उसी प्रकार आप भी करें। परन्तु महाराज पोरसने अपनी स्वाधीनता सिकन्दरके हाथमें दे देना उचित नहीं समझा और बड़े अभिमानके साथ सिकन्दरको यह कहला भेजा कि मैं झेलम नदीके इस पार अथवा उस पार रणक्षेत्रमें आपका अभिवादन करूंगा। यह सुनकर सिकन्दर आगबबूला हो गया। तक्षशिला में अपने प्रतिनिधि स्वरूप "फिलिप्स को" छोड़कर महाराज पोरस के ऊपर चढ़ाई कर दी। कहा जाता है कि सिकन्दर की सेना में लगभग पांच हजार हिन्दू सैनिक और कई सेनाध्यक्ष तक्षशिलाधिपति की ओरसे सम्मिलित थे। तक्षशिला धीश की यह कलङ्कमय नीति युगयुगान्तर तक भारतीय इतिहास बड़े दुःखके साथ गाया करेगा। सिकन्दरने अपने बीमार सैनिकों को तक्षशिला में छोड़ दिया था। उस समय यह तक्षशिला भारतीय वैद्यविद्या के लिये बड़ा प्रसिद्ध था। इसका उल्लेख कई इतिहास लेखकों ने किया है। बड़ौदा राज्यके भूतपूर्व मन्त्री स्वर्गीय आर० सी० दत्त कहते हैं कि मसिडोनियन अलेक्जेन्डर के साथ कई डाक्टर होनेपर भी उसे बहुधा भारतीय वैद्यों की ही सहायता लेनी पड़ती थी। बल्कि जो रोग ग्रीकवैद्यों द्वारा असाध्य समझा जाता था वह इन भारतीय वैद्योंके लिये बहुत ही सुखसाध्य समझा जाता था।

सिकन्दर ने अपनी सेना को महाराज पुरुपर आक्रमण करने के लिये

[1] नोट—देखो Justinus in H. of A.Lit.

[2] नोट—देखो V. A. Smith early H. of India

आगे बढ़ाया और झेलम नदीके तीरपर अपना शिविर स्थापित किया। इसे ग्रीक इतिहास लेखकोंने "हाइडस पस" नामसे उल्लिखित किया है। महाराज पुरु भी अपनी वीरशालिनी सेना को लिये झेलम नदी के उस पार सिकन्दर के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। कहा जाता है कि नदीके तटपर महाराज पुरुने लगभग ५० हजार पदातिक सेना, कई सहस्र अश्वारोही, कई सहस्र गजदल और रथारोही सैनिकों द्वारा एक अपूर्व वीररसोद्दीपिनी व्यूह रचना कर रक्खी थी। सिकन्दर ने जब 'पुरु' को युद्धकी पूर्ण सामग्री से सुसज्जित पाया तो उसे बड़ा ही भय मालूम हुआ कि यदि ऐसे समयमें मैं अपनी सेना को उस पार ले जाता हूं तो शायद महाराज पुरुके प्रबल आक्रमण से सारी सेना नदी गर्भमें ही विलीन न होजाय। कई दिनों तक यह इसी विचार में रहा किन्तु एक दिन सहसा इसे कूट राजनीतिने हस्तावलम्बन दिया। उसी समय सिकन्दरने अपने सब सेनाध्यक्षों को बुलाकर सेना को कई विभागों में विभक्त करने की आज्ञा दी। और प्रत्येक विभाग का एक एक नायक नियत कर दिया और कहा कि नदीके इसी पार एक एक दल बांधे लम्बे बहुत दूरतक विभक्त हो जावो तथा रातमें आग जलाकर कई बार घोर चीत्कार किया करो। जबतक नयी आज्ञा की घोषणा न हो तब तक बराबर यही क्रम जारी रक्खो। इतिहासवेत्ताओं का कथन है कि सिकन्दर की आज्ञानुसार सभी सेना नदीके इस पारमें कई कोसों तक फैल गयी थी और रातमें कई बार भयानक चीत्कार किया करती थी। पहले तो कई बार इस भयङ्कर शब्दको सुनकर राजा 'पुरु' चौंक उठे और रणवाद्य बजवा कर रणयात्राके लिये अपनी सेना सुसज्जित करने लग जाते थे, किन्तु निरन्तर कई दिनों तक भयानक शब्द होते रहनेके कारण महाराज पुरुने इस ओर गुरुकी ओर लक्ष्य देना ही छोड़ दिया। सिकन्दरकी विश्वासघातिनी इस कूटनीतिने वीर हृदय पुरुकी आर्य्योचित धर्म्म नीति पर विजय पाई। कई दिनों तक शब्द करते रहने पर भी जब सिकन्दरने देखा कि इस कोलाहलका प्रभाव पुरुके हृदय पर कुछ भी नहीं होता तो एक दिन अन्धेरी रातमें मशाल जलाती हुई सेनाको नदी पार होनेकी आज्ञा दे दी। तक्षशिलाके पांच हजार हिन्दू सैनिक और थोड़े से ग्रीक सैनिकोंको छोड़कर सभी ग्रीक सैनिक अर्थात लगभग अट्ठारह हजारको

लेकर सिकन्दर नदी पार हुआ और बहुत थोड़े ग्रीक सैनिक उस पारमें छोड़ रक्खे। प्रातःकाल होते होते पहरेदारोंने ससैनिक सिकन्दरके नदी पार होनेका सम्वाद 'पुरु' को दिया। सुनते के साथ महाराज पुरुने दो हजार हय दल और एक सौ बीस रथोंके साथ अपने प्रिय पुत्रको सिकन्दरको रोकनेके लिये भेजा। किन्तु अफसोस कि इन्होंने यह नहीं समझा था कि इतनी ही देरमें सिकन्दरकी सब सेना पार हो आई होगी। इसीसे उसे सिर्फ रोकनेहीके लिये परिमित सेनाके साथ अपने पुत्रको भेजा था। इधर सिकन्दरकी तो सभी सेना प्रातःकालमें ही नदी पार उतर ही आई थी और जो बची खुची थी वह भी पार हो रही थी। अस्तु, सिकन्दरने पुरुके भेजे हुए इने गिने सैनिकोंकी कुछ भी परवाह नहीं की और ग्रीक सिपाहियोंने उसे बातकी बातमें वहांसे मार भगाया। इस युद्धमें सेनापति महाराज पुरुका लड़का मारा गया। इतिहासकारों ने लिखा है कि इन्हें अपने पुत्रके वियोगसे यद्यपि असह्य दुःख उठाना पड़ा था तौभी उस समय शोक समस्याकी बात प्रायः भूलकर सिकन्दर पर चढ़ाई करनेके लिये अपने सभी सैनिकोंको आज्ञा दे दी। ग्रीक इतिहासकारोंने लिखा है कि पुरुकी व्यूह रचना चातुरीको देखकर सिकन्दर बड़ा ही मुग्ध हो गया था। "डिओडोरस" ने लिखा है कि दो सौ हाथी सौ सौ फीटके अन्तरमें सजाये गये थे और उनकी बीचकी जगह सैनिकोंसे भर दी गयी थी। दूरसे देखने पर यह व्यूह रचना चहार दिवारीसे घिरी हुई एक सुसज्जित शहरकी सी मालुम होती थी। सेनाके दोनों पार्श्वके भागोंको चार हजार रिसाला पलटन और तीन सौ युद्धरथोंके द्वारा सुरक्षित किया था। उस समय धनुष बाण तथा बरछा ही मुख्य शस्त्रोंमे गिने जाते थे। इतिहासमें लिखा हुआ है कि भारतीय सैनिकोंके धनुष मनुष्यके बराबर होते थे। धनुषको जमीन पर रखकर उसकी मौर्वी (तांत) द्वारा जो बाण छोड़े जाते थे उन्हें कवच, ढाल आदि कोई भी अस्त्रावरोधक चीज नहीं रोक सकती* थी। बाण भी तीन चार हाथ लम्बा होता था।

हाय! राजा 'पुरु' के पास ऐसे अनिवार्य्य भयानक अस्त्र रहते हुए भी भारत का भावी दुर्घटना ने "पृथ्वी' को ही भारत के पराजय की

* नोट—देखो Arrian Indica.

सहायिका बना डाली। क्योंकि उसदिन मूसलाधार वृष्टि हुई थी जहां देखिये वहीं पृथ्वी पङ्कमयी हो रही थी। अब जमीन पर धनुष रखने से वह बार बार फिसल जाता था। बस झट कूटनीतिज्ञ सिकन्दरने पुरु की सेना को आगे से और पीछे से घेर लिया। अब तो "भइ गति सांप छुछुन्दर केर।" की कहावत चरितार्थ हुई। जब पुरुकी सेना आगे से लड़ती है तो पीछे से सिकन्दरी की सेना दबाये आ रही है और जब पीछे से लड़ती है तो आगे मौजूद है। इस प्रकार की असुविधा में पड़कर ऐसे रणचतुर वीर 'पुरु' को सिकन्दर से हार माननी पड़ी। सिकन्दर के एक सेनापति ने कहा है कि सिकन्दर बार बार यह कहा करता था कि यदि मुझे पुरुसे लड़ने के लिये ऐसा मौका नहीं मिलता तो शायद ही कभी मुझसे पुरु पराजित होता? और वह यह भी कहा करता था कि मुझे आज ही बराबर के भीम शत्रुसे लड़ना पड़ा है। पुरुने लड़ने में जरा भी कसर नहीं की किन्तु आखीर में जब पुरु बेहोश हो गये तब सिकन्दर ने उन्हें कैद कर लिया। जब पुरु होशमें आये तो सिकन्दर ने उनसे पूछा कि आप क्या चाहते हैं? पुरुने बड़े अभिमानके साथ कहा कि मैं राजोचित सम्मान चाहता हूं। सिकन्दरने फिर पूछा और? उन्होंने फिर भी वही उत्तर दिया कि वीर राजा सदा उचित राज-सम्मान ही चाहता है। अतः मेरी जो आन्तरिक इच्छा थी उसे मैंने आपसे कह सुनाया। इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी मैं नहीं चाहता। पुरुके इस उत्तरसे सिकन्दर बड़ा ही प्रसन्न हुआ। और उन्हें उनका सब राज्य दे दिया। बल्कि सिकन्दरने जो भारतमें अन्यान्य कई राज्य जीते थे, उनके भी कई अंश पुरुके राज्यमें सम्मिलित कर दिये। पुरुके उल्लिखित वाक्योंका उल्लेख एरियन ने बड़े ही गौरवशाली तथा ओजःपूर्ण वाक्योंमें किया है।

इसी विजयोपलक्ष्यमें सिकन्दरने कई स्मृति-स्तम्भ (१) समारोपित किये। इतिहासवेत्ता लिखते जाते हैं कि वे आजतक मौजूद हैं। बल्कि इसी विजयोपलक्ष्यमें जो इन्होंने अपने नामका सिक्का चलाया था वह आज भी ब्रिटिश म्यूजियम (२) में वर्त्तमान है।

(१) नोट—देखो Cunninghams archiological survey report.

(२) नोट—देखो V. A. Smith early history of India

कुछ ही दिनोंके बाद जब वितस्ता, चन्द्रभागा और इरावती के प्रदेशोंपर विजय करता हुआ सिकन्दर विपासा नदीके तीर पर पहुंचा और नदी पार हुआ ही चाहता था कि उसकी विजयनी सेना हतोत्साह होगयी। सिकन्दर ने सेना की उत्साह वृद्धिके लिये कई जोशीले व्याख्यान दिये किन्तु सैनिकों का भग्न हृदय किसी तरह उत्साहित नहीं हो सका।

आखीर में वहां से सिकन्दर को भी ३२६ B. C. के अन्त होते होते लौट आना पड़ा (१)। और लगभग ३२३ B. C के मध्यमें सिकन्दर ने अपनी मानवलीला संवरण की। सिकन्दर का मृत्यु सम्वाद ३२३ B.C के अन्त होते होते भारतवर्ष में फैल गया। उसी समय में यानी ३२२ B. C. के प्रारम्भमें महाराज चन्द्रगुप्तने अपने बड़े भीम पराक्रम से सिकन्दर द्वारा सस्थापित साम्राज्य और उसके सूबेदारों पर आक्रमण किया। इसी युद्धमें मसिडोनियन शक्ति का दीप निर्वाण हुआ। और

१ नोट—बाबू जयशङ्करने "सम्राट् मौर्य चन्द्रगुप्त" नामक पुस्तकमें लिखा है कि "चन्द्रगुप्त विपाशा नदीके तट तक आया और फिर मगधराजका प्रचण्ड प्रताप सुनकर उसने दिग्विजयकी इच्छा छोड़ दी। बाद ३२५ ई० पू० में फिलिप नामक पुरुषको क्षत्रप बनाकर आप बेबिलोनकी ओर गया" मैं तो समझता हूं कि प्रेसकी भूलसे सिकन्दरकी जगह 'चन्द्रगुप्त' लिखा गया है। तौभी यदि मान लें तो मगधसे लड़नेसे सिकंदर कभी हतोत्साह हुआ ही नहीं क्योंकि मगधराजकी शक्ति उस समय प्रबल नहीं थी। प्रबल नहीं होनेका कारण यह था कि महापद्मके अत्याचारसे सारा मगध उत्पीड़ित हो रहा था। क्योंकि उस समय स्वयं चन्द्रगुप्तने भी कहा था कि यदि इस समय सिकंदर मगध पर आक्रमण करता तो बड़ी सुविधासे मगधराजकी प्रासाद अट्टालिका तथा सिंह दरवाजे पर अपनी विजय पताका फहराता। सिकंदरने जो अपनी हतोत्साह हीन सेनाके उत्साह बढ़ानेके लिये बड़े लम्बे चौड़े व्याख्यान दिये थे उनका एरियन और कर्टियसने अपने इतिहास ग्रन्थोंमें पूर्ण रूपसे उल्लेख किया है। बल्कि एरियनने तो यह भी लिखा है कि मगध पर चढ़ाई करनेके लिये नदी पार होनेसे पहले सैनिकोंको उत्साहित करनेके लिये जब सिकंदरने व्याख्यान दिया तो सब सैनिक लड़नेसे कायरपना दिखलाते हुए इतने जोरसे रो उठे कि युद्धाभिलाषी कठिन हृदयवाले सिकंदरको भी रुलाई आ गयी। बल्कि तीन दिनों तक सिकंदर यही प्रतीक्षा करता रहा कि शायद अब भी मेरे सैनिक जोशमें आकर मगध पर आक्रमण करनेके लिये सन्नद्ध हो जाय। परन्तु तीसरे दिन 'कोयनस' नामक सेनापतिने सिकंदरसे कहा कि महाराज! इन सबोंके मनमें राजद्रोहका बीज कभी अङ्कुरित हो ही नहीं सकता। सैनिकोंकी हतोत्साहिताकी वजह यह है कि बराबर युद्ध करते करते युद्धका अन्त नहीं देखकर अब सैनिक हतोत्साह हो रहे हैं। पर मैं नहीं कह सकता कि "प्रसाद" जीने सिकंदरकी हतोत्साहिताकी बात कहांसे लिख डाली है? देखिये Arrian history Vol. II और V. A. smith E. H. of India.

सिकन्दरने जो "क्षत्रप" नियत किया था वह भी इसी युद्धमें मारा गया। सिकन्दर के सभी विजित प्रदेश चन्द्रगुप्त ने अपने अधीन कर लिये। केवल थोड़े से छोटे २ जनपद युडोमस के अधीनस्थ थे। अर्थात् सिकन्दर के भारतविजय के चिन्हस्वरूप ये ही छोटे छोटे जनपद लगभग चार वर्षों तक ग्रीक शासन कर्त्ताओं के आधीन में रहे। कहा जाता है कि इसी फिलिप्सने महाराज पुरु को मार डाला था। इस प्रदेश के विजित होनेसे चंद्रगुप्त का और रसाप्लुत हृदय और दूने वेगसे उत्साहोद्रिक्त हो उठा। फिलिप्सके अधीनमें जो कुछ मसिडोनियन सेना बची हुई थी उसे तथा पार्वतीय देशकी बहुतसी सेनाओंको लेकर चन्द्रगुप्तने मगध राजधानी पाटलिपुत्रको जा घेरा। कहा जाता है कि उस समय धननन्द के उत्पीड़नसे मगधकी सारी प्रजाओंके हृदयमें राजद्रोहका बीज अंकुरित हो चला था। महापद्मने चन्द्रगुप्तके मार डालनेका कई बार आयोजन किया परन्तु सौभाग्यवश चन्द्रगुप्त उसके षड्यन्त्रसे बचते गये। मालूम होता है कि इसी उत्पीड़नसे उत्पीड़ित होकर मौर्य्यवंशी महाराज चन्द्रगुप्तने तक्षशिलामें सिकन्दरसे भेंट करके कहा था कि वर्त्तमान मगधाधीश एक शूद्रा गर्भजात पुरुष है और उसके शासनसे मगधकी सारी प्रजा दुःखित है। ग्रीक इतिहास लेखकोंने इस घटनाका पूर्ण उल्लेख किया है। ज्ञात होता है कि इसी घटनाका उल्लेख करते हुए उनके पीछेके इतिहासकारोंने चन्द्रगुप्त ही को 'शूद्रा गर्भजात' लिख दिया है। चन्द्रगुप्तकी विजयिनी सेनाने पाटलीपुत्रको घेर लिया। बल्कि नगरकी सीमापर होनेवाले कई छोटे छोटे युद्धमें विजयी होनेके कारण चन्द्रगुप्त एक प्रकारका मगध विजेता हो चला था। महानन्दने भी इनके प्रखर प्रतापको अदम्य समझकर सिंहासनको छोड़कर इनसे नगरसे निकल जानेकी आज्ञा मांगी। नीति निपुण उदाराशय चन्द्रगुप्तने भी बड़ी प्रसन्नतासे उन्हें सपरिवार यथेच्छित धनके साथ जानेकी आज्ञा दी। चन्द्रगुप्तने पाटलिपुत्र पर अधिकार तथा नन्दोंकी बड़ी सेनाको अपने हाथमें कर लिया। कई इतिहासकारोंने लिखा है कि चंद्रगुप्त ने थोड़े ही दिनों में अपनी सेना की संख्या इतनी बढ़ायी कि छः लाख पैदल, नौ हजार गजदल और तीस हजार हय दल तथा कई हजार रिसाले और रथवाही सैनिक हो चले। इसी विजयनी सेना को लेकर चंद्रगुप्तने सारे

भारतवर्ष को विजित कर लिया। इनके राज्य की सीमा बंगाल सागरोपकूल से लेकर ओरेबियन समुद्र तक फैली हुई थी। इतिहासकारोंने लिखा है कि चंद्रगुप्त ही सारे भारतवर्ष के प्रथम ऐतिहासिक सम्राट् (१) हुए हैं।

जब सम्राट् चंद्रगुप्त पश्चिम और मध्य एसिया में अपने राज्य की मूलभित्ति स्थापित कर रहे थे तो सिकन्दर के राज्य कर्म्मचारियों में मृत सिकन्दर का राज्य भाग लेकर घोर विप्लव हो रहा था। मैं अपने उद्दिष्ट इतिहास से इस प्राकरणिक इतिहास का कुछ सम्बन्ध नहीं रहने के कारण इसकी कुछ भी विवृति करना नहीं चाहता। लगभग ३१२ B.C. में कई घोर युद्धों के उपरान्त जब सिकन्दर के एक प्रधान सेना नायक ने बैबिलोन को अपने अधिकार में कर लिया तो फिर एकबार उसके हृदय मे भारत की विजयाभिलाषा जागृत हो उठी। लगभग ३०५ B.C. में सिन्धु नदी को पार कर उसने फिर भारत में प्रवेश किया। किन्तु अब की बार भारत का विजय करना तो कुछ सामान्य बात थी ही नहीं क्योंकि भारत शासन की सुवर्णमयी शृङ्खला चंद्रगुप्तके हाथमें जा चुकी थी।

चन्द्रगुप्तने सल्यूकसकी शक्ति यहां तक पददलित की कि उसे बड़ी नम्रतासे चन्द्रगुप्तसे सन्धि करनेकी प्रार्थना करनी पड़ी। केवल सन्धि प्रार्थना ही तक नहीं बल्कि सल्यूकसने चन्द्रगुप्तको सिन्धु नदके अपर पारवर्त्ती बहुतसे जनपद भेंट रूपमें दिये। कहा जाता है कि वर्त्तमान समयके काबुल, हीरात और कान्धार इत्यादि उन्हीं जनपदोंमेंसे हैं। और मासिडोनियन सल्यूकसने अपनी एक परम सुन्दरी कन्याका विवाह महाराज चन्द्रगुप्तके साथ कर दिया। इतिहासकारोंने लिखा है कि इस सन्धिका समय लगभग ३० बी० सी० हो सकता है इसके कुछ ही दिन पीछे ३०३ बी० सी० में ही मेगेस्थनिज नामक एक ग्रीक विद्वान् सल्यूकसकी ओरसे पाटलीपुत्रमें रहा करता था। इसी मेगेस्थनिजने भारत सम्बन्धी जो कुछ वर्णन किया है उसीके आधार पर इतिहास लेखक सिकन्दरके भारताक्रमण तथा अन्यान्य भारत सम्बन्धी बहुतसी बातें लिखते आते हैं।

बल्कि उस समय चन्द्रगुप्तकी मित्रतासे ग्रीक, सीरिया और मिस्र

(१) नोट—देखो V. A. Smith E. H. of India

आदि देशोंके राजा अपना गौरव समझते थे। इसी लिये सारे विदेशीय राजगण इनसे मेल करनेके लिये सदा उत्सुक रहा करते थे।

चन्द्रगुप्तके मौर्य्यत्वका परिचय।

महाराज चन्द्रगुप्तके मौर्य्यत्वका अन्वेषण करने पर यह ज्ञात होता है कि "मौर्य्य" यह परमार क्षत्रिय वंशकी एक विशुद्ध शाखा है। इसका अस्तित्व बिम्बसारके पहले भी था। बौद्धोंकेग्रंथोंसे भी मालूम होताहै कि पिप्पली काननके मौर्य्य राजाओंने भी महात्मा बुद्धके शरीरकी राखका एक हिस्सा लिया था।

यद्यपि विशाखाचार्य्यने महाराज चन्द्रगुप्तको शूद्रागर्भजात वृषल लिखा है, परन्तु ऐतिहासिक दृष्टिसे यह कथन अक्षरशः निर्मूल ज्ञात होता है। दूसरी बात यह है कि मुद्राराक्षस एक नाटक है, इसलिये नाटक तथा उपन्यासोंसे किसी ऐतिहासिक घटनाकी सत्यताकी सिद्धि करना "टेढ़ी खीर" है और न इनका प्रमाण ही किसी ऐतिहासिक घटनाकी सत्यतामें दिया जा सकता है। तीसरी बात यह है कि चन्द्रगुप्त ने सिकन्दरके यहां जाकर मगधराज महापद्मको वृषल कहा था जिसका उल्लेख हम पहले कर आये हैं, उसी समयसे यूनानी इतिहास लेखकोंने उस समयके मगधराजको "वृषल" लिखना प्रारम्भ कर दिया। इसीके आधार पर मगध राजसिंहासनारूढ़ शुद्ध क्षत्रिय मौर्य्यवंशीय चन्द्रगुप्तको भी यूरोपीय इतिहासके जाननेवाले विद्वानोंने वृषलताके अहातेमें घेर लिया है।

पिप्पली(१) कानन मौर्य्योंका आदि निवासस्थान था। इसवंशमें सबसे

१ म० म० पं० रामचन्द्र शुक्लजीने भी [illegible] लिखा है कि पिप्पली कानन रूपी नेपालकी सीमा पर है। यहां ईंट और रूपके सिवा और कुछ नहीं है। लोग इसे आजकल पिपरहिया का कोट कहते हैं। फाहियानने स्तूप आदि देखकर भ्रमवश इसीको कपिल वस्तु समझा था। गण्डकीके किनारे पर जो बस्तियोंके [illegible] हैं उनमें सबसे उत्तर एक नन्दनगढ़ कस्बा है। उसीके निकट जिला चम्पारन थाना शिकारपुरमें एक गांवका नाम पिपरहिया है। इसीको लोग पिपरहियाका कोट कहते हैं। मैं तो समझता हूं कि इस पिपरहियाको यदि पुराना पिप्पली कानन मान लिया जाय तो कोई आपत्ति नहीं होगी। सम्भव है कि मौर्य्योंने अपने पूर्व पुरुषोंका आदि निवास समझ कर यहां एक बड़ा स्तूप स्थापित कर दिया है।

प्रसिद्ध राजा चन्द्रगुप्त ही हुए हैं। अतएव सबोंको समझ है कि चन्द्रगुप्तके आदि पुरुषकी राजधानी पिप्पली कानन ही है। यह बात तो सभीको माननी ही होगी कि महाराज चन्द्रगुप्त सा प्रभावशाली राजा इस वंशमें उस समय तक कोई नहीं हुआ था किन्तु यह भी बात सप्रमाण सिद्ध है कि चन्द्रगुप्त "मौर्य्य" वंशमें उत्पन्न हुए थे न कि चन्द्रगुप्तसे मौर्य्य-वंश। टाड साहबने भी अपने राजस्थानमें लिखा है कि "जिस चन्द्र-गुप्तकी कीर्त्ति आज दिगन्तव्यापिनी हो रही है उसका वर्णन भारतके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखा हुआ है। इनका जन्म परमार कुलकी मौर्य्य शाखामें हुआ था। मान मौर्य्यके बनवाये हुए मानसरोवरमें लिखा है कि महेश्वर (१) नामक राजाको भोज (२) नामक पुत्र हुआ।

और भी टाड साहबने लिखा है कि यह पवित्र परमार वंश ३५ शाखा-ओंमें विभक्त है। इनमें "भिहित" और "मौर्य्य" वंश सर्व प्रसिद्ध है। टाड साहब ने जो राजपूत जाति की उत्पत्ति का कथन किया है वह प्रायः पुराणों के आधार पर किया है।

यही भोज धारा और मालव का अधिपति हुआ। इसी से मान-मौर्य्य हुए। मानमौर्य्य के पिता द्वितीय भोज भी परमार ही थे। इसका समय प्राचीन जैन ग्रन्थ तथा शिला लिपि से टाड साहब ने निश्चय किया है कि यह सम्वत् ७२१ में था। और इसी का पुत्र मानमौर्य्य था। इस से सं० ७८४ में बप्पा रावलने चित्तौड़ लिया था।

अतः सभीको यह निर्विवाद स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रमार क्षत्रिय-कुलकी मौर्य्यवंश एक बड़ी शाखा है। इसका सबसे प्रथम स्थान पिप्पली

१ नोट—जिस महेश्वर का नाम मानसरोवरके शिलालेखमें आया है उसके विषयमें प्रमार आदिके राजगणकी वंशावलीमें बहुतसी बातें लिखी हुई मिलती हैं। जैसे—"इसने नर्मदाके तट पर विख्यात महेश्वर नामक नगर बसाया था।" इससे भी मालूम होता है कि प्रमार वंशमें दूसरा भोज पैदा हुआ था। इसीका पुत्र मान था। यही मान ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें मानमौर्य्य नामसे प्रसिद्ध है। यह लेख मानसरोवरके स्तम्भमें सम्वत् ७७० का खुदा हुआ है। इससे यह निश्चय हो जाता है कि इसीसे सम्वत ७८४ में बप्पारावलने चित्तौड़को लिया था।

२ नोट—टाड साहबने जो महाराज भोजको परमारवंशी लिखा है वह बहुत ही ठीक है क्योंकि भोज राजके समकालीन अर्जुन वर्म्मदेवने दानपत्रमें स्पष्ट रूपमें लिखा है कि—

'परमार कुलोत्तंसः कंसजिन्महिमा नृपः।
श्रीभोजराज इत्यासीद्‌ द्वाराक्रान्त भूतलः॥

कानन है। इस वंशमें अधिक प्रसिद्ध सम्राट् चन्द्रगुप्त ही हुए हैं। बल्कि इन्होंने ही इस मौर्य्यवंशका समुज्वल यश चारों तरफ फैलाया है।

इस वंशका मौर्य्य नाम क्यों पड़ा? इसका मूल कारण यह है कि बुद्धदेवकी जीवनावस्थामें ही जब शाक्य लोगोंको विधुधावोंसे युद्ध हुआ था तो कुछ शाक्य लोग वहांसे विरक्त होकर हिमवान(१)के एक प्रदेशमें जाकर रहने लगे। यहां पर इन लोगोंने एक नगर पर आधिपत्य जमाया। यहांके मकानों पर मोर और क्रौञ्च आदि पक्षियोंका चित्र अङ्कित था।

सम्भव है कि मयूराङ्कित गृहमें रहनेके कारणसे ही लोग इन्हें मौर्य्य कहने लग गये होंगे। इसीसे इस वंशकी एक शाखाका नाम मौर्य्य पड़ गया। मेरी समझमें तो मौर्य्य शाखाके नामकरणका यह कारण बड़ा ही दुरुस्त है। क्योंकि इस प्रकारके अनेक प्रमाण वानरवंशी और राक्षसवंशी राजाओंके वंशके सम्बन्धमें मिलते (२) हैं।

राजस्थानके अच्छे अच्छे नगरोंमें भी मौर्य्योंका अधिकार था। राजस्थानमें (३) इन मौर्योंकी प्रतिष्ठा वि० स० ७८० तक खूब थी। इसी प्रकार पिप्पलीकाननसे मौर्य्य लोगोंने पाटलीपुत्र, उज्जैन, धारा चित्रकूट और अर्बुदगिरि आदि प्रदेशोंमें अलग अलग राजधानियां स्थापित कीं और लगभग १०५० वर्षों तक वे लोग मौर्य्यवंशीय कहकर पुकारे गये। मौर्य्यकुलमें उत्पन्न चन्द्रगुप्त भोज तथा विक्रमादित्य आदि नरपतिगण बड़े सम्माननीय महाराज गिने जाते हैं। पाश्चात्य विद्वद्गण तो महाराज चन्द्रगुप्तकी राज्यमहिमा तथा शासनप्रणाली देखकर यहांतक मुग्ध हुए थे कि इन्हें भारतका एक सर्वश्रेष्ठ मौर्य्यसम्राट् कहा है। इन्होंने ही उस समय मौर्य्यवंशकी विख्याति भारतसे लेकर ग्रीक तक विस्तारित की।

---

१ नोट— इस लेखसे भी स्पष्ट प्रगट होता है कि पिप्पली कानन ठीक हिमवानके ही किसी प्रदेशमें है।

२ नोट— जैन पट्टावलियोंको देखो।

३ नोट— कोटाके कण्वास्रमके शिलालेखमें एक शिला लेख सं० ७९५ का है। इससे मालूम होता है कि आठवीं शताब्दीतक राजपूताना और मालवा पर मौर्यों का अधिकार था। Ind. Ant. Vol. 19-57.

चन्द्रगुप्तका क्षत्रियत्व ।

यों तो हमारे भद्रबाहु चरित्र आदि दिगम्बर जैन ग्रन्थोंमें चन्द्रगुप्तके उच्चवंश (क्षत्रियता) का वर्णन बड़े ही विशदरूपसे किया है किन्तु अब मैं पाठकोंको अन्यान्य ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें जो इन्हें स्पष्ट रूपसे पवित्र-वंशोद्भुत क्षत्रिय लिखा है :—

मत्स्यपुराणके २७२ वें अध्यायमें लिखा है कि :—

"महानन्दि सुतश्चापि शूद्रायां कलिकांशजः ।
उत्पत्स्यते महापद्मः सर्व क्षत्रान्तको नृपः ॥
ततः प्रभृति राजानो भविष्याः शूद्रयोनयः ।
एक राट् च महापद्मः एकच्छत्रो भविष्यति ॥
महापद्मस्य पर्य्याये भविष्यन्ति नृपाः क्रमात ।
उद्धरिष्यति कौटिल्यः समैं द्वादशभिः सुतान् ॥
भुक्त्वा महीं वर्षशतं ततो मौर्य्यान् (?) गमिष्यति ।"

इसका भावार्थ यह है कि क्षत्रियोंका अन्त करनेवाला महानन्दका लड़का शूद्रागर्भजात महापद्म नामका एक चक्रवर्त्ती राजा होगा। इसके वंशमें कई राजा होंगे जिन्हें कौटिल्य (चाणक्य) विनष्ट कर सौ वर्षों तक स्वयं राज्य करेगा। बाद यह राज्य मौर्य्यों के हाथ लगेगा।

विष्णु पुराणमें लिखा है कि :—"महानन्दि स्ततः शूद्रागर्भोद्भवोऽति-लुब्धोऽतिबलो महापद्म नामानन्द परशुराम इवाऽपरोऽखिल क्षत्रिय विनाशकारी भविष्यति ॥"

यह भी विष्णुपुराणका वाक्य मत्स्यपुराणसे अभिन्नरूपसे मिल जाता है।

मैक्समूलर साहबने भी लिखा है कि आजतक किसीने यह प्रमाणित नहीं किया कि "मौर्य्य" का अर्थ शूद्र यानी मुरा नाम्नी नाइनका लड़का होता है। क्योंकि मुरा गर्भजात मौर्य्यका अर्थ माना जाय तो व्याक-रणके नियमानुसार मौर्य्य नहीं होकर "मौरेय" हो जाना चाहिये।

टाड साहबने लिखा है कि महाराणा बप्पारावलकी माताने कहा था कि तुम वर्त्तमान समयके एक चित्तौड़ मौर्य्यवंशीय राजाके भगिना हो।

यद्यपि हेमचन्द्राचार्य्यने मौर्य्यको मोर पालनेवाली जाति माना है किन्तु बौद्धोंके प्रसिद्ध महावंश ग्रन्थमें लिखा हुआ है कि:—

"मौरियानं खत्तियानं वंसजातं सिरी धरं। चन्द्रगुत्तोऽति पञ्ञातं चाणक्को ब्राह्मणो ततो। नवमं धननन्दं घातेत्वा चण्डकोधसा सकले जम्बुद्दीपे रज्जे समभिसिञ्चमो"

इसका भावार्थ यह है कि मौर्य्य क्षत्रिय कुलोत्पन्न चन्द्रगुप्तको चाणक्य ब्राह्मणने बड़े क्रोधसे नौवें धननन्दको मारकर जम्बूद्वीपीय भारतखण्डके राज्यके ऊपर अभिषिक्त किया।

अब मैं समझता हूं कि उल्लिखित भारतीय इतिहासके आदर्श ग्रन्थोंके प्रमाणको देखकर हमारे पाठक तथा अन्यान्य इतिहास प्रेमी विद्वान् मौर्य्य चन्द्रगुप्तको शुद्ध क्षत्रिय होने तथा महापद्मके शूद्र होनेमें जरा सा भी सन्देह नहीं करेंगे।

चन्द्रगुप्तका बाल्य जीवन।

मौर्य्यवंशीय राजाओंकी राजधानी पिप्पली कानन थी। जिस समय पिप्पली काननमें मौर्य्यवंशी क्षत्रिय राजा राज्य करते थे ठीक उसी समय सौभाग्य सोपानारोहणोन्मुख मगध देशकी शासन डोर, शूद्रा गर्भजात निर्दयी घोर अत्याचारी महापद्मके हाथमें थी। इसने अपने सभी निकटवर्ती क्षत्रिय सामन्त राजाओं पर आक्रमण कर उन्हें तहस नहस कर डाला। पिप्पली काननके मौर्य्य क्षत्रियों पर भी इसकी क्रूर दृष्टि पड़ी। इसीसे इन्हें भी अपनी स्वाधीनताका विसर्जन करना पड़ा। पीछे अपने अधीनस्थ देश महानन्दके अधीन कर आप पाटलीपुत्रमें आ बसे। कुछ ही दिनोंके बाद मौर्य्योंकी अलौकिक वीरता और कई अद्भुत गुणोंने मौर्य्य नृपतियोंको सामन्त सेनापति बनाया। परन्तु शूद्रागर्भजात क्षत्रियान्तकारी नन्दको इनकी सामन्तता कब सहय हो सकती थी? बस अब देर क्या थी। सत्यनन्द आदिकोंने इकट्ठे हो कूटमन्त्रणा द्वारा मौर्य्योंको मार डाला। मौर्य्य चन्द्रगुप्तके पिता और भ्राताओंने भी इन्हीं दुष्टोंके



MAHAMAHOPADHYAYA Dr. [illegible] VIDYABHUSHANA
M.A., Ph.D., M.R.A.S., [illegible]
[illegible]
[illegible] All India [illegible] City December 1914

The [illegible]

महामहोपाध्याय, डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषण, एम्० ए०, पीएच० डी०,
एम्० आर० ए० एस०, एफ० ए० एस० बी०, सिद्धान्तमहोदधि।

षड्यन्त्रमें पड़कर सदाके लिये अपने प्राणपक्षीको उड़ा डाला। किसी प्रकार केवल एक मात्र चन्द्रगुप्त ही इन दुष्टोंके षड्यन्त्रसे बच सके। इनकी हत्या करनेके लिये कई बार प्रयत्न किया गया किन्तु इनकी विधवा माताके प्रयत्नसे कहिये अथवा चन्द्रगुप्तके हो भाग्यसे कहिये चन्द्रगुप्त बाल बाल बच गये। इस कथनकी पुष्टि बौद्ध शास्त्रों द्वारा भी होती है। क्योंकि बौद्धोंके "अर्थ कथा-कोश" में लिखा हुआ है कि पिप्पलीकाननमें चन्द्रगुप्तके जो पिता थे वे अपने शत्रुओंसे मारे गये। और उनकी निस्सहाय विधवा स्त्री अपने भाग्यपालित एक मात्र पुत्र चन्द्रगुप्तको इन दुष्टोंके षड्यंत्रसे बचाती हुई अपना दिन काटती थी। "मुद्राराक्षस" के प्रधान टीकाकार ढुण्ढीने भी लिखा है कि नन्दोंका सेनाध्यक्ष एक मौर्य्य था। द्वेषबुद्धिसे नन्दोंने उसे मार डाला और उसके कई पुत्रोंको मरवा डाला। एक मात्र पुत्र चन्द्रगुप्त बच गया था यह पाटलीपुत्रमें नन्दोंकी सभामें रहा करता था।

जो हो यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि चन्द्रगुप्तका बाल्य जीवन बड़ा ही शोचनीय तथा विपत्तिपूर्ण था। चन्द्रगुप्तकी वयोवृद्धिके साथ साथ पिताकी गुप्त हत्याकी बात और उसके प्रतिकारकी अनिवार्य्य इच्छा चन्द्रगुप्त का हृदय विदीर्ण करने लगी। चन्द्रगुप्त भी समय की ही प्रतीक्षा कर रहे थे कि बदला लेनेका कब मौका मिलता है। जब चन्द्रगुप्तने यौवनावस्था में पदार्पण किया। उस समय आपकी वीरोचित क्रिया की वासनाएं भी मध्याह्नावस्था को प्राप्त हो चुकी थीं। युवक चन्द्रगुप्त से अब अधिक नन्दों का घृणित अत्याचार सह्य न हो सका। अब ये अपनी हार्द्दिक वृत्तियां रोकने में सर्वथा असमर्थ हो चले। कहा जाता है कि इसी समय में नन्दों ने भी किसी कारण से चन्द्रगुप्त का अपमान किया था बल्कि चन्द्रगुप्त इसी अपमान से रुष्ट होकर तक्षशिला में जाकर सिकन्दर से मिले थे। इसका पूर्ण उल्लेख हम पीछे कर (१) आये हैं।

इतिहासकारोंने लिखा है कि आप जब पहले पहल सिकन्दरसे मिले थे तो उस समय आपकी अवस्था लगभग २५ वर्ष की थी। इतनी थोड़ी

(१) नोट—देखो Arrian history.

अवस्था में भी आप के हृदय का प्रत्येक अंश आर्य्य गौरवसे ओत प्रोत हो रहा था। कहा जाता है कि तक्षशिला में आप को एक चाणक्य (२) नामका ब्राह्मण मिला। यह किसी कारणसे महानन्द को सभामें अपमानित हुआ था इसने चन्द्रगुप्तको युद्ध में बड़ी सहायता दी थी।

२ नोट—ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें लिखा हुआ है कि नौ नन्द धननन्दके राजसभामें एक बार एक तक्षशिला निवासी कुरूप ब्राह्मण आकर सबसे ऊँचे आसन पर बैठ गया। इसे धननन्द देखकर चिढ़ गया। बल्कि उसे बड़े तिरस्कार [illegible] बालोंसे पकड़ कर अपनी यज्ञशालासे निकाल दिया। परन्तु सहज कोपनशील [illegible] चाणक्यने धननन्दका समूल नाश करनेकी प्रतिज्ञा की। वहांसे वह तुरन्त चल दिया। दैवात [illegible] कुमार नामक राजकुमारसे मुलाकात हो गयी। चाणक्यने उसे अपना सहायक बना डाला। [illegible] सञ्चित धन लेकर विन्ध्याटवीके किसी प्रदेशमें रहने लगा। अब चाणक्यने एक दूसरा सहायक [illegible] आरम्भ कर दिया। पुष्पपुरीमें गुप्त रीतिसे रहते हुए बुद्धिमान महाशूरवीर चन्द्रगुप्तको [illegible] अपना सहायक बनाकर साथमें ले लिया। चाणक्यने प्रभातके सञ्चित धनसे चन्द्रगुप्तके लिये एक सेना इकट्ठी कर दी। बल्कि चन्द्रगुप्त वहीं पर लूट पाट करने लगा किन्तु नन्दको [illegible] कारण कुछ सफलता नहीं हुई। हेमचन्द्राचार्यकी व्याख्यानमें भी इसकी पुष्टि होती है [illegible] लिखा हुआ है कि—"चन्द्रगुप्त थोड़ी सेना इकट्ठी करके नन्दसे लड़ने लगा, किन्तु नन्दसे पराजित होकर उसे रणसे भागना पड़ा। बौद्धके इतिहाससे भी यह बात ज्ञात होती है कि तक्षशिला निवासी ब्राह्मण चाणक्यने धननन्दको मारकर मौरियन नगरके राजकुमार चन्द्रगुप्तको सारी राज्य सम्पत्ति दे दी।

चाणक्यको [illegible] इसे देशवासी ब्राह्मण कहते हैं और बौद्ध तक्षशिला निवासी तथा अन्यान्य [illegible] कहते हैं।

चन्द्रगुप्तके समयका भारतवर्ष।

उस समय की भारत वसुन्धरा की उपज शक्ति खूब बढ़ी चढ़ी थी। खेती के सुभीते के लिये राजकीय विभाग से जहां तहां कृत्रिम जल का प्रबन्ध होता था। बड़ी बड़ी नदियों के बहने के कारण आस पास की भूमि की उपज अटूट होती थी। पृथ्वी सदा धान्य शालिनी बनी रहती थी। जव, मकई, धान, कपास, आदि की फसल बहुत ही अच्छी होती थी। वर्ष में दो फसल काटी जाती थी। कहीं विशेष कारणवश फसल ठीक नहीं उतरती थी तो दूसरी फसल से आशातीत अन्न होते थे जिससे भारतवर्ष पर कभी अकाल राक्षस का कुटिल कटाक्ष नहीं पड़ता था। कृषक बड़े ही शान्तिसेवी होते थे। युद्ध आदिके समय में भी कृषक गण बड़े मजे में अपना कृषिकर्म किया करते थे। इनके कार्य्य में किसी प्रकार की बाधा नहीं होती थी। वे जो अन्न उत्पन्न करते थे उसमें से चतुर्थांश राजकोष में जाता था। राजा लोग भी कृषि की उन्नति की ओर विशेष ध्यान देते थे।

नदीके किनारेकी जमीनमें अथवा दलदलोंमें फल मूल खूब होते थे। यूनानियोंने यहां जानवर भी कई तरहके देखे थे। उनका कहना था कि भारतीय पशु बड़े बलिष्ठ और सुन्दर होते हैं। बल्कि यहांसे कुछ अच्छे अच्छे बैलोंको सिकन्दरने यूनान भी भेजा था। यहां सब तरहके जानवर होते थे। पक्षी भी भिन्न भिन्न प्रकारके यहां कई प्रदेशोंमें थे। यहां सब प्रकारके धातुओंकी खान थी। जैसे—सोना, चांदी, तांबा, लोहा और जस्ता आदि। यहांकी शिल्पकला बड़ी ही उन्नतावस्थामें थी। कारण यह था कि यहांके व्यवसाइयों पर किसी प्रकारका 'कर' नहीं लगाया जाता था। यहीं तक नहीं बल्कि उनको राजासे सहायता भी मिलती थी। यहांकी शिल्पकला ऐसी बढ़ी चढ़ी थी कि जिसे देख कर यूनानियोंने यह मुक्तकण्ठसे कहा था कि "भारतकी राजधानी पाटलीपुत्रको देखकर पारसकी राजधानी कुछ भी नहीं मालूम होती।"

शिल्पकार जो राज करसे वञ्चित रहते थे इसलिये राजा और प्रजाके हितकारी अच्छे अच्छे यंत्र बनाते थे। उस समय मनुष्योंकी पांच श्रेणियां

थीं। एक तो ब्राह्मण थे। ये बड़ी नीतिपटुतासे राजसभामें धर्म्माधिकारीका काम करते थे। दूसरी श्रेणीके सिपाही थे। सैनिकविभागमें सदा क्षत्रिय लोग नियुक्त किये जाते थे। तीसरी श्रेणीके व्यापारी लोग थे। व्यापारका काम उस समय सदा वणिक् जाति ही किया करती थी। चौथी श्रेणीके कृषक थे। खेतीका काम शूद्र करते थे। पांचवीं व्यक्ति भी ब्राह्मण ही थी। ये ब्राह्मण सांसारिक कृत्योंसे तटस्थ होकर ईश्वराराधनमें ही अपना काल यापन करते थे, व्याख्यान देते थे और दैवज्ञका भी काम करते थे। किन्तु इनके भविष्य कथनमें जब किसी प्रकारकी त्रुटि होती थी तो लोग उन्हें पुज्य दृष्टिसे नहीं देखते थे। भारतवासियोंका रहन सहन बहुत अच्छा थी। यहांके लोग ऐसे परिमितव्ययी होते थे कि उन्हें किसीसे कभी सूद पर रुपया लेनेकी आवश्यकता नहीं होती थी। इनके भोजन करनेका समय नियत नहीं रहता था। ये अकेले ही भोजन करते थे। इन्हें असत्यसे इतनी घृणा थी कि ये व्यवहारमें भी कभी झूठ नहीं बोलते थे। मईन मलमलका कामदार कपड़ा पहना करते थे। आपसमें मुकदमे बहुत कम होते थे। गरीब लोग जोड़ा बैल देकर ही अपनी लड़कीकी शादी कर लेते थे। उत्सव बड़े समारोहके साथ होता था। अभिप्राय यह कि महाराज चन्द्रगुप्तके राजत्वकालमें प्रजाएं बड़ी प्रसन्न रहती थीं। शिल्प वाणिज्यकी बड़ी उन्नति थी। प्रजाओंकी नस नसमें राजभक्तिकी विद्युतशक्ति बड़े वेगसे प्रवाहित हुआ करती थी।

चन्द्रगुप्तके शासनका संक्षिप्त वर्णन।

मौर्य्य राजधानी पाटलीपुत्र गंगा और सोन के तटपर बसा हुआ था यह उस समय के भारतवर्ष की प्रधान राजधानी थी। शहर सोन के उत्तरी किनारे पर गंगा से कुछ दूर हट कर बसा था। आज कल यहीं पर पटना और बांकीपुर बसा हुआ है। नदियों की धारा कई सौ वर्ष से बदलती चली आती है। जिससे सूचित होता है कि पुराने पाटली-पुत्र का बहुत सा हिस्सा गंगा के उदर में चला गया है। नदियों का पुराना संगम स्थान अब दानापुर के पास में है। यह पटना से १२ मील पश्चिम है। पुराना शहर जिसके ऊपर आज कल नये शहर बसे हुए हैं, नौ मील लम्बा डेढ़ मील चौड़ा था। चारों ओर काठ का शहर पनाह बना हुआ था। इसमें ६४ फाटक और ५७० बुर्ज थे। शहर पनाह के बाहर चारों ओर चौड़ी और गहरी खांई थी। इसमें सोन नदी का जल बराबर भरा रहता था। यह पाटलीपुत्र लकड़ी, ईंट और पत्थर की बनी हुई चहार दिवालियों से घिरा हुआ था प्रासादपंक्ति, राजमार्ग, और सुविस्तृत पण्यवीथिका से यह शहर सुसज्जित रहता था। व्या-पारियों की दुकानें भी खूब सजी रहती थीं। धनी लोग अलंकृत अच्छे अच्छे घोड़ों पर चढ़कर सड़कों में टहलते थे। महाराज चन्द्रगुप्त गंगा के किनारे पर बसे हुए एक परम सुन्दर राजमन्दिर में रहते थे। केवल तीन कार्य्यों के लिये इन्हें बाहर आना पड़ता था। पहला काम तो यह कि प्रजाओं की प्रार्थना सुनना। इसके लिये इन्हें एकबार अवश्य विचारासन पर बैठना पड़ता था। उस समय आभूषणों से सुसज्जित एक घोड़े पर चढ़ते थे और प्रतिदिन अपनी प्रजाओं का शासन करते थे। दूसरा काम यह था कि धर्म्मानुष्ठान करना किन्तु यह पर्व तथा उत्सव के उपलक्ष्य में होता था। आप पुष्प तथा मणियों से समलंकृत शीविका पर चढ़ते थे।

तीसरा कार्य्य वनक्रीड़ा था। इसके लिये महाराज हाथी पर चढ़-कर जाते थे। इनके साथ धनुर्बाण और अस्त्र शस्त्र लेकर स्त्रियां ही

जाती थीं। उस समय सड़कें डोरी से घिरी रहती थीं। अन्यान्य मनुष्य उस सड़क से उस समय नहीं जाते आते ।

महाराज चन्द्रगुप्त के राजसभा में बैठने पर चार नौकर आबनूस की बेलनों से उनकी देह दबाते थे। प्रबल पराक्रमी होने पर भी चन्द्रगुप्त को शत्रुओं से सदा षड्यन्त्र की आशङ्का रहा करती थी। इसीलिये इनके दैनिक कृत्य तथा रात्रि में सोने के लिये कोई नियत स्थान नहीं रहता था। ये हाथी, पहलवान, मेढ़ा और गैंड़ों को आपस में लड़वाते थे। इसे बड़े चाव से आप तथा अपनी प्रजाओं को दिखाते थे। अन्यान्य देशों की खरीदी गयी स्त्रियां ही महाराज चन्द्रगुप्त के शरीर की रक्षा करती थीं। ये रथ, घोड़े तथा हाथियों पर चढ़ कर राजा के साथ बाहर भी जाती थीं। राज दरबार की सजावट बड़ी ही दर्शनीय होती थी। दरबार की सजावट की बात मेगेस्थेनिज ने लिखी है कि मौर्यों की राजधानी होने ही से पुष्पपुरी नगरी इतनी श्रीसम्पन्न ज्ञात होती थी।

पाटलीपुत्र राजधानी में नगर का प्रबन्ध छः हिस्सों में बंटा था। मेगेस्थिनिज का कथन है कि प्रथम विभाग बिकनेवाली वस्तुओं का मूल्य निर्धारण, श्रमजीवियों की तनख्वाह और कारीगरों की कारीगरी की देख भाल करता था। बल्कि जो कारीगर किसी काम को बिगाड़ता था तो उसे यह विभाग उचित दण्ड भी देता था।

दूसरा विभाग विदेशियों के व्यवहार का निरीक्षण करता था। पीड़ित विदेशियों की सहायता, इनके जाने के लिये सवारी आदि का प्रबंध, इनके मरने पर इनकी सम्पत्ति का उचित प्रबन्ध और इन्हें कष्ट देनेवालों को कठिन दण्ड देता था।

इससे मालुम होता है कि उस समय भारतवर्ष में विदेशीय जन व्यापारादि के लिये बहुत आते थे।

तीसरा विभाग प्रजाओंके जन्म मरणकी गणना कर उसपर कर निर्द्धारित करता था। अर्थात् मनुष्यकी संख्याके अनुसार एकदृष्टिसे सब पर कर लगाया जाता था।

चतुर्थ विभाग वाणिज्य व्यवसायका निरीक्षण और उसके नाप तौलकी पूरी जांच करता था। वणिक व्यवसायी पर कर लगानेका काम भी

इसी विभागके हाथमें था। यदि एक ही बनिया भिन्न भिन्न प्रकारकी चीजें अपनी एकही दुकानमें बेचता था तो यह विभाग उस पर अधिक कर निर्द्धारित करता था।

पांचवा विभाग मुद्रा (रुपया आदि) बनाने तथा उसकी रक्षाका प्रबन्ध करना।

छठवां विभाग राजकीय कर का था। यह विभाग व्यापारियोंके लाभसे दशमांश लेता था। व्यापारियोंको बड़ी सावधानीसे काम करना पड़ता था। जो व्यापारी अपने लाभसे दशमांश कर देनेमें आनाकानी करते थे उन्हें पूर्ण दण्ड दिया जाता था।

नगरकी सफाई कराना, घाट, बाट, हाट और मन्दिर आदिका भी यथोचित प्रबन्ध इन्हीं नगराधिकारियोंके हाथमें था।

राज्यके अन्यान्य कर्म्मचारीगण जमीन नापकर उसपर मालगुजारी (कर) निश्चित करते थे। कृषकोंकी भलाई तथा सुभीतेके लिये ये नहर का भी समुचित प्रबन्ध करते थे। बल्कि "रुद्रदामा" के गिर्नारवाले लेखसे यह भी ज्ञात होता है कि महाराज चन्द्रगुप्तके राजत्वकालमें ही सुदर्शन द बना था।

राज्यके सच्चे समाचार पानेके लिये महाराज चन्द्रगुप्तने राज्यके प्रत्येक प्रान्तमें चरोंको नियुक्त किया था। पृथ्वी तो युद्धादिके समयमें भी बराबर जोती जाती थी।

चन्द्रगुप्तके पास बहुत सी सेना थी। इसलिये सेना विभागमें बहुतसा धन खर्च होता था। प्रयोजनानुसार यह सेना कभी घटाई बढ़ाई नहीं जाती थी। सैनिक लोगोंके वेतनके अतिरिक्त हाथी, घोड़े अस्त्र शस्त्र सभीके लिये प्रायः बहुत द्रव्य व्यय हुआ करता था। चन्द्रगुप्तके समयमें सेनाकी संख्या निम्न लिखित प्रकारसे थी :—

३०००० घोड़े, २००००० पैदल, ८००० रथ, और ६००० हाथी थे। प्रत्येक सवारको दो बर्छे एक ढाल दी जाती थी। पैदल सिपाहियोंका मुख्य शस्त्र चौड़े दलकी तलवार थी। इसके साथ किसीको भाला और किसीको धनुर्बाण भी मिलते थे। धनुषकी एक छोरको बायें अंगूठेसे दबाना पड़ता था ; फिर प्रत्यञ्चा खैंचकर सैनिक लोग इतने जोरसे बाण चलाते थे कि उसे न कवच रोक सकता था और न ढाल ही। प्रत्येक

रथमें सारथिको छोड़कर दो योद्धा रहते थे। प्रत्येक हाथी पर महावत को छोड़कर तीन तीन तीरन्दाज (चापधारी) रहते थे। इस क्रमसे सेनाकी पूरी संख्या ६00000 पैदल, 30000 सवार, ३६000 गजारोही, २४000 रथी थी। अर्थात् सब मिल करके ६90000 योद्धा बराबर सेनामें रहा करते थे। इसके सिवाय सैनिकोंके नौकर चाकर सईस और घसियारे आदिकी तो कुछ गिनती ही नहीं थी।

इस विशाल सेनाका प्रबन्ध एक अलग युद्ध विभाग द्वारा होता था। इस विभागमें तीस कर्म्मचारी थे। उन्होंने अपनी सुव्यवस्थाके लिये पाँच पाँच मनुष्योंकी छः छः पञ्चायतें नियत कर दी थीं।

प्रथम विभाग नौसेनाका था। दूसरा विभाग युद्धसम्बन्धी भोजन, वस्त्र, छकड़े बाजा, सेवक और जानवरोंके चाराका प्रबन्ध करता था।

तीसरे विभागके अधीन पैदल सैनिक रहते थे। चौथा विभाग अश्वारोहियोंका था। पांचवां विभाग रथकी देख भाल करता था। छठवां विभाग हाथियोंका प्रबन्ध करता था। इसी प्रकार सुशिक्षित सेना और उत्तमत्तम प्रबन्धसे चन्द्रगुप्त मध्य युगके एक प्रथम सम्राट् बने हुए थे।

महाराज चन्द्रगुप्तके राजत्वकालमें भारतवासी सत्यता और ईमानदारीके लिये सर्वत्र प्रसिद्ध थे। मैगेस्थनिजको पाटलीपुत्रमें बहुत दिनों तक रहने पर भी एक व्यक्ति ऐसा नहीं मिला जो कभी झूठ बोला हो? उसे इस बात पर बड़ा आश्चर्य होता था कि पाटलीपुत्रके चार लाख आदमियोंमें कभी ८०) रु० से अधिक चोरी नहीं हुई। साधारण अपराधके लिये भी उस समय बड़ा कठिन दण्ड दिया जाता था। अङ्ग भङ्ग करनेवालेका वही अङ्ग काट दिया जाता था। इसके सिवा उसका हाथ भी कटवा दिया जाता था। यदि मुद्दई राजाकी नौकरी करनेवाला कारीगर हुआ तो उसे प्राणदण्डकी आज्ञा होती थी। झूठी गवाही देनेवालोंकी अंगुलियां कटवा ली जाती थीं। कई अपराधोंमें तो दोषी के शिरके बाल मुड़वा दिये जाते थे। ये सब उल्लिखित दण्ड बड़े कठोर तथा घृणित समझे जाते थे। किन्तु दण्ड विधानमें इतनी सख्ती होने की वजहसे ही किसीको दुष्कर्म करनेका साहस नहीं पड़ता था।

महाराज चन्द्रगुप्तकी दीक्षा।

महाराज चन्द्रगुप्त उज्जयिनी (१) जैसी समृद्धशालिनी राजधानी में अपनी आज्ञावशवर्तिनी प्रजाओं को पाकर बड़े सुखपूर्वक रहने लगे। एक दिन आप बहु कुसुमितकुसुमोद्यान में स्फटिक के चबूतरे पर भारतीय कला की सर्वोत्कृष्टता सूचक एक परम रमणीय सुसज्जित शय्या पर सोये हुए थे। रात बहुत थोड़ी रह गयी थी। प्रातःकाल की शीतल-मन्द सुगन्ध स्वच्छ वायु सुख निद्रा की मात्राको और बढ़ा रही थी दीपककी ज्योति मन्द हो चली थी। ठीक उसी समय में भारतकी भावी अवनति सूचक चन्द्रगुप्तने सोलह स्वप्न देखे। चन्द्रगुप्त की शयनावस्था का रंगीन चित्र सोलह स्वप्नके साथ साथ इस किरणमें प्रकाशित है पाठक-ध्यान पूर्वक देखें। क्रमशः निम्न लिखित स्वप्न हैं।— (१) सूर्य्य अस्त हो रहा है (२) रत्नोंका ढेर धूलमें पड़ा है (३) कल्पवृक्ष की डाल टूट गयी (४) समुद्र मर्य्यादा रहित हो गया (५) बारह फणका सर्प (६) देवताओंका विमान उलट गया (७) राजपुत्र ऊंट पर चढ़ा हुआ है (८) दो काले हाथी आपसमें लड़ रहे हैं (९) गायके छोटे छोटे बछरे गाड़ीमें जोते गये हैं (१०) बन्दर हाथीके ऊपर चढ़ा हुआ है (११) प्रेत नाच रहा है (१२) सोनेके पात्रमें कुत्ता क्षीर खा रहा है (१३) जुगनू देदीप्यमान हो रहे हैं (१४) तालाब सूख गया है (१५) धूलमें कमल खिला हुआ है (१६) चन्द्रमामें कई छिद्र हो गये हैं।

इन उपर्युक्त स्वप्नों को देखकर महाराज चन्द्रगुप्त को इनके फल पूछनेकी बड़ी उत्कण्ठा हुई। ठीक उसी समयमें श्रीभद्रबाहुस्वामी अनेक देशोंमें विहार करते हुए हजारों मुनियोंके साथ उज्जयिनीमें पहुंच गये। महाराज चन्द्रगुप्तके सौभाग्यसे ये इन्हीं की फुलवारीमें ठहरे। उद्यान-

१ नोट—चन्द्रगुप्तका राज्य अवन्ती स्वर्णगिरि, टोसाली और तक्षशिला इन चार प्रादेशिक शासकोंसे शासित होता था। इनमें तक्षशिला और उज्जयिनी येही प्रदेश प्रधान थे। उज्जयिनीके आधीन प्रायः सम्पूर्ण राजपूताना और भारतका मध्यदेश था। पाटलीपुत्रके बाद मौर्य्योंने इसी अवन्तीको राजधानी बनाया। "मारश्मैन" साहबका मत है कि मौर्य्यवंशके आठवें राजा सोमशर्माके किसी वंशधरने उज्जयिनीको प्रधानता दी थी। इससे स्पष्टतया ज्ञात होता है कि महाराज चन्द्रगुप्त कभी पाटलीपुत्र और कभी उज्जयिनीमें रहते थे।

पालकने भद्रबाहुस्वामीका अनन्य तेजःपुंज तथा तपः प्रभाव को देख-कर महाराज चन्द्रगुप्तसे इनके ठहरनेकी सूचना दी। महाराज चन्द्रगुप्त अपनी राजधानीमें ऐसे तपःप्रभावशाली महात्माका आना सुनकर तत्क्षण दर्शन करनेके लिये भद्रबाहुस्वामी की शरणमें गये। दर्शन होनेके साथ भद्रबाहुस्वामीमें महाराज चन्द्रगुप्त की असीम भक्ति हुई। पीछे बड़ी भक्तिके साथ उनके चरणारविन्द की जलगन्धादि द्रव्योंसे पूजा की। महाराज चन्द्रगुप्तने पिछली रातके स्वप्नोंका फल किसी असाधारण दैवीशक्तिसम्पन्न महात्मासे पूछनेवाले थे ही कि अकस्मात् उन्हें यह सुअवसर प्राप्त हुआ। अब देर किस बातकी थी, झट उन्होंने जो स्वप्न देखे थे उन्हें भद्रबाहुस्वामीसे निवेदन किया। भद्रबाहुस्वामीने कहा कि राजन्! तुम स्वस्थ चित्त होकर अपने स्वप्नोंका फल सुनो। क्योंकि इनके फल संसारसे विरक्त करनेवाले और भारतकी भावी अवनतिकी सूचना करनेवाले हैं।

क्रमशः स्वप्नोंके फल निम्न लिखित हैं:-

१ द्वादशाङ्गका जाननेवाला कोई नहीं रहेगा। २ यतियोंमें एकता नहीं रहेगी। ३ क्षत्रिय जिन धर्म्मको नहीं मानेंगे। ४ राजा नीतिपटु नहीं होंगे। ५ बारह बारह वर्षतक अकाल पड़ेगा। ६ देवता भारत-भूमि पर नहीं आवेंगे। ७ राजा मिथ्यात्व धर्म्मके अनुयायी होगा। ८ समय समय वर्षा कम होगी। ९ तरुणावस्थामें ही धर्म्म होगा। १० क्षत्रिय नीचवृत्ति करेंगे तथा शूद्र राजा होगा। ११ कुदेवकी पूजा अब अधिक होगी। १२ धनिकोंके धनसे दुष्कर्म्म अधिक होगा। १३ अब जिन धर्म्म बहुत कम अपना प्रभाव उद्योत करेगा। १४ दक्षिण देशमें वर्षा बहुत कम होगी और जिनधर्म्म अधिक माननीय वहीं उसी देशमें होगा। १५ ब्राह्मण अजैन होंगे और वैश्य जैन। १६ जिन मतमें भेद प्रभेद होगा।

चन्द्रगुप्तने स्वप्नोंके फल सुनकर सांसारिक भविष्य भयसे त्रस्त होकर अपने पुत्र सिम्बसारको राज्याभिषिक्त कर स्वयं भद्रबाहुस्वामीसे दीक्षा ले ली। भद्रबाहुस्वामीने भी आनेवाले दुर्भिक्षके घोर उपद्रवके कारण यहां धर्म्म रक्षा होनी असम्भव समझकर सभी सङ्घोंको बुलाकर दक्षिण देशमें जानेके लिये कहा। यह बात उज्जयिनी निवासी श्रावकोंको जब

मालुम हुई तो उन सबोंने आकर भद्रबाहुस्वामीसे नहीं जानेके लिये प्रार्थना की। इन्होंने श्रावकोंको समझा दिया कि यहां बड़ा भारी दुष्काल पड़नेवाला है। यदि हम सब यहां रहते हैं तो मुनियोंका धर्म्म बड़ा ही कठिन है; अवश्य इस भावी दुष्कालमें मुनि धर्म्मभ्रष्ट हो जांयगे। लोगोंने बहुत प्रार्थना की किन्तु धर्म्म विचलित हो जानेके भयसे भद्रबाहु स्वामीने उनको एक भी नहीं मानी। अन्तमें लोगोंने कहा कि हम श्रावकोंको दिगम्बर यतिको सेवाके लिये स्थूलाचार्य्य को उज्जयिनीमें छोड़ जाइये। लोगोंकी बात मान कर कुछ सङ्घोंके साथ अपने समकालीन स्थूलाचार्य्यको वहां रखकर, सब सङ्घोंको साथ लेकर भद्रबाहुस्वामी दक्षिण देशको चले गये। इनके साथ चन्द्रगुप्त दीक्षा नाम प्रभाचन्द्र, तथा विशाखाचार्य्य भी गये। वहां भद्रबाहुस्वामीने अपनी अन्तिमावस्था बहुत निकटवर्त्ती जान विशाखाचार्य्यके साथ और मुनि सङ्घोंको चोलपाण्ड्य देशमें भेज श्रवणवेलगुल के कटवप्र पर्वत पर समाधिमरणपूर्वक अपनी इस भौतिक नश्वर देहका विसर्जन किया। चन्द्रगुप्तने भद्रबाहु स्वामीके साथ साथ रहकर उनकी अन्तिमावस्था तक सेवा की। जब बारह वर्ष व्यतीत होगये तो विशाखाचार्य्य मुनिसङ्घोंको लेकर उज्जयिनीकी ओर चले। जब स्थूलाचार्य्यने सुना कि विशाखाचार्य्य आ रहे हैं तो विशाखाचार्य्यके यहां एक मुनिसे कहला भेजा कि स्थूलाचार्य्य आपके दर्शनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। विशाखाचार्य्य सङ्घके साथ साथ उज्जयिनीमें पहुंचे। किन्तु यहां स्थूलाचार्य्यने दुर्भिक्ष तथा कालदोषसे सत्यनिर्ग्रन्थ जैन धर्म्ममें कुछ परिवर्त्तन कर दिया था। आपने एक श्वेत वस्त्र ऊपरसे ओढ़ लिया था। और भी कुछ परिवर्त्तन हुआ जिसका पूर्ण उल्लेख दोनों सम्प्रदायोंके ग्रन्थोंमें है। विशाखाचार्य्यने इस नूतन परिग्रहके ऊपर खेद प्रकट करते हुए इसे प्रायश्चित्तपूर्वक छोड़नेके लिये कहा। किन्तु स्थूलाचार्य्यने नहीं माना। बल्कि अपने साथके अन्यान्य मुनियोंको भी इस वस्त्रको स्वीकार करनेके लिये बाध्य किया। और तबसे धीरे धीरे इसका एक सम्प्रदाय ही श्वेताम्बर नामका अलग खड़ा हो गया जो आजतक वर्त्तमान है।

महाराज चन्द्रगुप्तकी सर्वमान्यता।

यह प्राचीन प्रणाली आजतक भी अबाधितरूपसे चली आती है कि, यदि कोई राजा राजनैतिकदृष्टिसे अपनी अन्यान्य प्रजाओंके भिन्न भिन्न धर्म्मोंमे सहानुभूति रखते थे तो उनका उल्लेख आचार्य्य लोग सभी धर्म्म सम्बन्धी ऐतिहासिक लेखोंमें करते थे। किन्तु जो अपने धर्म्मके पक्षपाती थे, उनका उल्लेख उन्हींके धर्म्म ग्रन्थोंमें होता था। दूसरे ग्रन्थोंमें उनका नाम ही निशान नहीं।

इसी लिये ऐतिहासिकदृष्टिसे राजाओंके मौलिक धर्म्मका निर्णय करनेमें एकाध ऊपरी बात लेकर और प्रकृततत्वको छिपाकर उन्हें अन्यान्य धर्म्मका अनुयायी बना देना बड़ी भूल है। क्योंकि बिना ऐतिहासिक प्रमाण शिलालेख, ताम्रपत्र तथा अन्यान्य धर्म्मोंके ग्रन्थोंके देखे धर्म्म निर्णय नहीं हो सकता। भारतीय इतिहास लिखनेमें ऐसी भूलें पाश्चात्य विद्वानोंने प्रायः बहुत की हैं और भारतीय विद्वान् भी इस प्रकारकी भूलें अब बड़े धड़ाकेसे कर रहे हैं। क्योंकि सबसे बड़ी भूल तो यह हुई कि जैन धर्म्मके ग्रन्थोंको बिना देखे ही इन लोगोंने भारतका इतिहास लिखनेका साहस किया है। यह भूल इतिहास लेखकोंने अपनी अथवा औरोंकी ही असावधानीसे क्यों न की हो परन्तु जैन ऐतिहासिकग्रन्थोंके नहीं देखनेसे भारतीय इतिहासका एक भाग ही अन्धकारमें पड़ा हुआ है।

इसके प्रमाणमें पहले चन्द्रगुप्त ही के इतिहास पर विचार कीजिये। क्योंकि सभी धर्म्मग्रन्थोंमें इनका कुछ न कुछ उल्लेख है। इससे यह साफ साफ मालुम होता है कि यह महाराज चन्द्रगुप्त बड़े उच्च विचारके थे और सभी धर्म्मोंसे सहानुभूति रखते थे। इसीसे बौद्ध हिन्दू आदि अन्यान्य मतावलम्बियोंने प्रसंगानुसार अपने ग्रन्थोंमें इनका कुछ न कुछ उल्लेख किया है। इसी प्रकार शिलालेखादि ऐतिहासिक सामग्रियोंमें भी इनके वंशका कहीं कहीं वर्णन पाया जाता है। परन्तु सन् सम्वत्का कहीं भी उल्लेख नहीं है। अब आपही कहें कि एकाध शिला लेखमें अथवा किसी एक धर्म्म पुस्तकमें इनका कुछ कुछ उल्लेख पढ़कर बिना

तीनों धार्म्मिक पुराणों और ऐतिहासिक सामग्रियोंका पर्य्यालोचन किये क्योंकर इनका सर्वमान्य सच्चा इतिहास हो सकता है?

इनके सम्बन्धमें ऐतिहासिक सामग्री, शिलालेख, ताम्रपत्र आदि जितनी मिलती है उसको देखकर हमारे निष्पक्ष विद्वत्पाठक बड़ी आसानीसे इस बातका निर्णय कर सकते हैं कि वास्तवमें चन्द्रगुप्त कौन थे? मैंने जो भास्करकी प्रथम किरणसे लेकर इस किरण तक "चन्द्रगुप्त जैन हैं" यह निश्चय करनेके लिये जो अत्यन्त प्राचीन अनेक शिलालेख और ऐतिहासिक प्रमाण प्रकाशित किये हैं, उनसे स्पष्टतया यह निर्णय हो जाता है कि वास्तवमें चन्द्रगुप्त जैन ही थे।

क्योंकि अभीतक इनके अन्यधर्म्मी होनेका कोई ऐसा प्रबल प्रमाण नहीं मिला है कि जिसपर विश्वास किया जाय। इसके सिवाय इनके समयमें जैन धर्म्ममें कई ऐतिहासिक घटना हो गई है जिसका संक्षिप्त वर्णन प्रथम किरणमें हो चुका है।

ठीक उसी समयमें जैनधर्म्म 'श्वेताम्बर' और 'दिगम्बर' इन दो विभागोंमें विभक्त हुआ है। जो अभीतक प्रचलित है। इन सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें चन्द्रगुप्तका उल्लेख है। इनके अतिरिक्त चन्द्रगुप्त राजाने जो सोलह स्वप्न देखे हैं, जिनका चित्र इस किरणमें अन्यत्र प्रकाशित है। इन स्वप्नोंका भी फल विचारनेसे यह बात ज्ञात होती है कि जैन धर्म्मकी भविष्य घटना क्या होगी? प्रायः अभीतक स्वप्नोंका फल प्रत्यक्ष देखनेमें आता है।

अशोक(१) के भी जीवन चरित्रसे यह बात मालुम होती है कि अशोकके पहले भारतवर्षके किसी राजाने बौद्ध धर्म्मको राष्ट्रधर्म्म नहीं बनाया। बौद्ध धर्म्मका पहला नेता भारतवर्षीय राजाओंमें एक अशोक ही होगया है कि जिसने जैनधर्म्मको छोड़कर बुद्ध धर्म्मको अपनाया।

उपसंहार।

यह चन्द्रगुप्तका इतिहास निम्न लिखित सामग्री जो इस समय तक प्राप्त है उसके आधार पर लिखा गया है जो महाशय और विशेष जाननेको इच्छा करें वह इन सामग्रियों द्वारा जान सकते हैं। जैन शिला लेख,

(१) नोट—देखो "Life of Buddha".

वसुनन्दी श्रावकाचार, श्रवणबेलगुल (By Lewis Rice) लुइस राइस साहब (Historian's History of the world) संसारका इतिहास मेगस्थनीज इण्डिया (By mc. crindle) (History of India By V. A. smith) स्मिथका भारतवर्षका इतिहास, मुद्राराक्षस, विष्णुपुराण, सम्राट् मौर्य्य, ऐरियन स्ट्रबोकी हिस्ट्री ओफ इण्डिया, आर० सी० दत्तका भारतवर्षका इतिहास इत्यादि तथा यथासम्भव हमने जहांतक हो सका है नोटमें भी प्रायः सर्वत्र उल्लेख कर दिया है। हमारे सुहृद् पाठकोंको यह सुनकर बड़ा हर्ष होगा कि प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मिष्ट० "भिनसेण्टस्मिथने" जो पहिले यह लिखा था कि चन्द्रगुप्तके जैन होनेके लिये अभी बड़े प्रमाणोंकी आवश्यकता है तथा एक मात्र लुइस साहबके कहने पर यह नहीं माना जा सकता। अब आपने अपने भारतवर्षके प्राचीन इतिहास नामक पुस्तकका तृतीय संस्करण निकाला है। उसमें आपने भी हमारे उक्त सिद्धान्तकी पुष्टि की है। तथा बड़े जोरके साथ यह लिखा है कि वास्तवमें महाराज चन्द्रगुप्त जैन ही थे।

आपकी इस सत्यप्रियताके लिये हम आपको कोटिशः धन्यवाद देते हैं। "सत्यमेव जयति" के कथनानुसार आखिरमें सत्यकी जय होना अनिवार्य्य है। इस लेखको समाप्त करते करते पाठकोंको हम यह और बतला देना चाहते हैं कि वर्त्तमान राज्यशासनप्रणाली चन्द्रगुप्तके समयमें भी थी। यह प्रणाली अर्थात् कृषकोंके लिये नहरोंका प्रबन्ध ग्रामों में सफाई वगैरहके लिये जुदी पञ्चायतोंका प्रबन्ध (म्यूनीसिपल) तथा सहरकी गुप्त बातोंकी खबर देनेके लिये गुप्त चरोंका प्रबन्ध (अर्थात् क्रिटेक्रिम) इत्यादि यह सब प्राचीन भारतशासनप्रणाली में भी पाये जाते हैं। अस्तु हमारे पाश्चात्य विद्याविमोहित जो यह कहा करते हैं कि यह सुप्रबन्ध अङ्गरेजी विद्या बिना होही नहीं सकता। उनको इससे समझ लेना चाहिये कि अब इस समयमें जो सभ्यश्रेष्ठ माने जाते हैं उन्होंने भी हमारे इस भारतसे ही सभ्यताकी शिक्षा ग्रहण की है। और वह देश इस सभ्यताके लिये भारतवर्षके चिरऋणी रहेंगे।

समय ।

(मालिनी)

(१)

समय ! सरस तू है शुष्क तू है प्रभु है
प्रणयपर तू ही है रुक्ष तू है विभु है ।
दिनकर किरणोंको शीत तू ही बनाता
शशि सुखद सुधासे ताप तुही बुलाता ॥

(२)

फलदल कुसुमोंसे वृक्ष हा ! जो लदे थे
शुक पिक कलकण्ठोंका बसेरा बने थे ।
तव गति महिमासे शुष्क वे हो गये हैं
उदय सुतरुके हा ! आजही सो गये हैं ॥

(३

विपुल विभवशाली या सुधी शूर भी हो
विनय सदनसेवी शान्त या क्रूर भी हो ।
समय तव महत्ता पर कभी जा दबाती
विनय धमिकतादि दूर हा ! भाग जाती ॥

(४)

प्रकृति नियम चलते हैं कराक्रान्त तेरे
विविधि विधि प्रथा पै हैं प्रभुत्वादि तेरे ।
नव-रस वनिताके हो तुम्हीं प्राण-नाथ
विजय अजय तेरे हैं सदा देव ! साथ ॥

(५)

पर अब इस भू की उन्नति प्रेमसे तू
कर परम यशस्वी हो तथा श्रेष्ठ भी तू ।
अधिकृत जनताको दीनता जो हटाते
सकल बुध प्रशंसी साधु वे ही कहाते ॥

हरनाथ द्विवेदी, "काव्यतीर्थ" ।

श्रीपाण्डवपुराणका मंगलाचरण और प्रशस्ति।

अनुक्रम संख्या ५

विषय—ऐतिहासिक (प्रथमानुयोग)

ग्रन्थकार—श्री शुभचन्द्राचार्य्य।

भाषा—संस्कृत और हिन्दी।

लिपि—नागरी (बालबोधी)

ग्रन्थ विवरण—प्राचीन, हस्तलिखित और शुद्ध प्रति।

पत्र संख्या—१४४ श्लोक संख्या १८६२ अध्याय २।

ग्रन्थ रचनाका समय सम्वत् १६०८ और ग्रन्थकी प्रतिलिपि करनेका समय सम्वत् १८२०

भाषा पाण्डव पुराण—रचयिता बुलाकीदास रचना काल वि० सं० १७३५।

मङ्गलाचरण.

श्रीपरमात्मने नमः.

सिद्धिं सिद्धार्थं सर्वस्वं सिद्धिदं सिद्धिसत्पदम्।
प्रमाणनयसंसिद्धं सर्वज्ञं नौमि सिद्धये ॥ १ ॥

* * * * * * *

भद्रबाहु र्महाभद्रो महाबाहु र्महातपाः।
स जीयात् सकलं येन श्रुतं ज्ञातं कलौ विदा ॥१२॥
विशाखो विश्रुताशाखा सुशाखो यस्य पातु माम्।
स भूतले विलक्ष्मौलिहस्तभूलोकसंस्तुतः ॥ १३ ॥
कुन्दकुन्दोगणी येन ऊर्ज्जयन्तगिरि मस्तके।
सोऽवताद्वादिता ब्राह्मी पाषाणघटिता कलौ ॥१४॥

समन्तभद्रो भद्रार्थो भातु भारतभूषणः ।
देवागमेन येनात्र व्यक्तो देवागमः कृतः ॥ १५ ॥
पूज्यपादः सदापूज्यपादः पूज्यैः पुनातु माम् ॥
व्याकरणार्णवो येन तीर्णो विस्तीर्णसद्गुणः ॥ १६ ॥
अकलङ्कोऽकलङ्कः स कलौ कलयतु श्रुतम् ।
पादेन ताडिता येन मायादेवी घटस्थिता ॥ १७ ॥
जिनसेन यतिर्जीयात् जिनसेनः कृतंवरम् ।
पुराणपुरुषाख्यार्थपुराणं येन धीमता ॥ १८ ॥
गुणभद्र भदन्तोऽत्र भगवान् भातु भूतले ।
पुराणाद्रौ प्रकाशार्थं येन सूर्य्यायितं लघु ॥ १९ ॥
तत्पुराणार्थ मालोक्य धृत्वासारस्वतं श्रुतम् ।
मानसे पाण्डवानांहि पुराणं भारतं ब्रुवे ॥ २० ॥

प्रशस्ति.

श्रीमूलसङ्घेऽजनि पद्मनन्दी तत्पट्टधारी सकलादिकीर्त्तिः ।
कीर्त्तिः कृता येन च मर्त्यलोके शास्त्रार्थकर्त्री सकला पवित्रा ॥ ६७ ॥
भुवनकीर्त्तिरभूद्भुवनाद्भुतै भवनभासनचारुमतिः स्तुतः ।
वरतपश्चरणोद्यतमानसो भवभयाहिखगेट् क्षितिवत्समी ॥ ६८ ॥
चिद्रूपवेत्ता चतुरश्चिरन्तन श्चिद्भूषणश्चर्चितपादपद्मकः ।
सूरिश्च चन्द्रादिवचये श्चिनोतुवै चारित्रशुद्धिं खलु नः प्रसिद्धिदां ॥६९॥
विजयकीर्त्तियति-र्मुदितात्मको जितमताच्यमनः सुगतैः स्तुतः ।
अवतु जैनमतं सुमतोमतो नृपतिभिर्भवतो भवतो विभुः ॥ ७० ॥
पट्टे तस्य गुणाम्बुधि र्व्रतधरो धीमान् गरीयान् वरः
श्रीमच्छ्रीशुभचन्द्र एष विदितो वादीभसिंहो महान् ।
तेनेदं चरितं विचार-सुकरं चाकारि चञ्चद्रुचा
पाण्डोः श्रीशुभसिद्धिसातजनकं सिद्ध्यै सुतानां सदा ॥ ७१ ॥
चन्द्रनाथचरितं चरितार्थं पद्मनाभचरितं शुभचन्द्रम् ।
मन्मथस्य महिमानमतन्द्रो जीवकस्य चरितञ्चचकार ॥ ७२ ॥

चन्दनायाः कथा येन दृब्धा नान्दीश्वरी तथा ।
आशाधरकृताचार्या वृत्तिः सद्वृत्तिशालिनी ॥ ७३ ॥
त्रिंशच्चतुर्विंशतिपूजनं च सद्वृत्त सिद्धार्चनमव्यधत्त ।
सारस्वतीयार्चनमत्र शुद्धं चिन्तामणीयार्चन मुच्चरिष्णुः ॥ ७४ ॥
श्रीकर्मदाहविधिबन्धुरसिद्धसेवां नानागुणौघगणनाथसमर्चनं च ।
श्रीपार्श्वनाथवरकाव्यसुपञ्जिकाञ्च यः सञ्चकार शुभचन्द्रयतीन्द्रचन्द्रः ॥७५॥
सद्यापन सदोपिष्ट पल्योपम विधेश्चयः ।
चारित्र शुद्धितपस श्चतुस्त्रिंद्वादशात्मनः ॥ ७६ ॥
संशयवदनविदारण मपशब्दसुखण्डनं परं तर्कम् ।
सत्तत्वनिर्णयं वरस्वरूपसंबोधिनीं वृत्तिम् ॥ ७७ ॥
अध्यात्मपद्यवृत्तिं सर्वार्थापूर्वसर्वतो भद्रम् ।
योऽकृत सद्व्याकरणं चिन्तामणि नामधेयञ्च ॥ ७८ ॥
कृता येनांगप्रज्ञप्तिः सर्वाङ्गार्था प्ररूपिका ।
स्तोत्राणि च पवित्राणि षड्वादाः श्रीजिनेशिनां ॥ ७९ ॥
तेन श्रीशुभचन्द्रदेवविदुषा सत्पाण्डवानां परम्
दीव्यद्वंशविभूषणं शुभभरभ्राजिष्णु शोभाकरम् ।
शुम्भद्भारतनाम निर्मलगुणं सच्छन्दचिन्तामणिम्
पुण्यप्रपुण्यपुराणमत्र सुकरं चाकारि प्रीत्या महत् ॥ ८० ॥
शिष्यस्तस्य समृद्धिबुद्धिविशदो यस्तर्कवेदीपरो
वैराग्यादिविशुद्धिवृन्दजनकः श्रीपालवर्णी महान् ।
संशोध्याखिलपुस्तकं वरगुणं सत्पाण्डवानामिदं
तेनालेखि पुराणमर्थनिकरं पूर्वं वरे पुस्तके ॥ ८१ ॥
श्रीपालवर्णिना येनाकारि शास्त्रार्थसंग्रहे ।
साहाय्यं स चिरं जीयाद्वरविद्याविभूषणः ॥ ८२ ॥
ये शृण्वन्ति पठन्ति पाण्डवगुणं संलेखयन्त्यादरा
लक्ष्मीराज्य-नराधिपत्य-सुखता-चक्रित्व-शक्रेशितां ।
भुक्त्वाभोगमिदं पुराणमखिलं संशोधयन्त्युन्नता
मुक्तौ ते भवभीकनिष्कजलधिं सन्तीर्य यान्तंगताः ॥ ८३ ॥
अर्हन्तो ये जिनेन्द्रा वरवचनचयैः प्रीणयन्तः शुभव्यान्
सिद्धाः सिद्धिं समृद्धिं ददतु इह शिवं साधवः सिद्धिशुद्धाः ।

दृक्सम्बोधं सुवृत्तं जिनवरवचनं तीर्थराट् मोक्षधर्म्म
स्तत्सच्चैत्यानि रम्या जिनवरनिलयाः सन्तु मस्ते सुसिद्ध्यै ॥८४॥
यावच्चन्द्रार्कताराः सुरपतिसदनं तोयधिः शुद्धधर्म्मो
यावद्भगर्भदेवाः सुरनिलयगिरिर्देवगंगादिनद्यः।
यावत्सत्कल्पवृक्षा स्त्रिभुवनमहिता भारते वै जगत्याम्
तावत्स्थेयात्पुराणं शुभशतजनकं भारतं पान्डवानाम् ॥ ८५ ॥
श्रीमद्विक्रमभूपतेर्द्विकहते स्पष्टाष्ट संख्येशते
रम्येऽष्टाधिकवत्सरे सुखकरे भाद्रे द्वितीयातिथौ।
श्रीमद्वाग्वरनिर्वृतीदमतुले श्रीशाकवाटेपरे
श्रीमच्छ्रीपुरुषाभिधे विरचितं स्थेयात्पुराणं चिरं ॥ ८६ ॥

इति श्रीपाण्डवपुराणे भारतनाम्नि श्रीशुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्म श्रीपाल साहाय्यसापेक्षे पाण्डवोपसर्ग--सहनकेवलोत्पत्ति--मुक्ति--सर्वार्थसिद्धि--गमन वर्णनं नाम पञ्चविंशतितमं पर्व ॥ २५ ॥

श्रीमूलसङ्घेनन्द्याम्नाये बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्रीपद्मनन्दिदेवास्तत्पट्टे, भट्टारक श्रीशुभचन्द्रदेवास्तत्पट्टे, भट्टारक जिनचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्रीप्रभाचन्द्रदेवास्तत्पट्टे मण्डलाचार्य्य श्रीधर्म्मकीर्त्ति देवास्तत्पट्टे भट्टारक विशालकीर्त्तिदेवा स्तत्पट्टे, भट्टारक लक्ष्मीचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भट्टारक सहस्त्रकीर्त्तिदेवास्तत्पट्टे, मण्डलाचार्य्य श्रीनेमिचन्द्रस्तस्मै सत्पात्राय पुराणमिदं लेखित्वा प्रदत्तम्।

पाण्डवपुराणके मङ्गलाचरण और प्रशस्तिका भाषानुवाद।

मङ्गलाचरण.

सिद्धस्वरूप, सिद्धार्थके सर्वस्व, मोक्षप्राप्तिके मुख्यकारणभूत, सिद्धिके देनेवाले, सिद्धिके समीचीनस्थान और जिनसे प्रमाणनयकी सिद्धि होती है ऐसे सर्वज्ञको मैं सिद्धिके लिये वन्दना करता हूं अथवा सिद्धार्थ सर्वस्वादि विशेषण युक्त सिद्धोंको नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

आजानुबाहु, महातपस्वी तथा महान् मङ्गलकारक, भद्रबाहु स्वामीकी जय हो। क्योंकि इस कलिकालमें इन्होंने ही अपने प्रकर्ष ज्ञानसे सम्पूर्ण श्रुत (शास्त्र) को जाना (अर्थात् श्रुतकेवली हुए) ॥ १२ ॥

शुद्धमुनिवंशोद्भूत श्रीविशाखाचार्य्य हैं। इनको प्रसिद्ध शाखा मुझे रक्षा करें। क्योंकि संसारमें सभी लोगोंने इनकी बद्धाञ्जलि होकर स्तुति की है ॥ १३ ॥

कुन्दकुन्द गणी मेरी रक्षा करें। इन्होंने ही कलिमें जयन्त-पर्वत-पर पाषाण-निर्मित सरस्वती (ब्राह्मी) से विवाद कराया ॥ १४ ॥

भद्र अर्थका सम्पादन करनेवाले और भारतवर्षके भूषण श्रीसमन्तभद्राचार्य्य प्रकाशमान रहैं। क्योंकि जिन्होंने देवागम स्तोत्रसे देवताओंका आगम साफ साफ प्रकाशित कर दिया है ॥ १५ ॥

समीचीन-गुणवाले जगद्विख्यात, पूज्योंसे सदा अर्चितपादपद्मवाले श्रीपूज्यपाद स्वामी मुझे पवित्र करें। जिन्होंने व्याकरणरूपी समुद्र को फैलाया (अर्थात् महाजैनेन्द्र व्याकरण बनाया) ॥ १६ ॥

जिसने घटस्थित मायादेवी को पैरसे दबाया है (अर्थात् भगाया है) वे निष्कलङ्क अकलङ्कस्वामी कलिकालमें श्रुतका प्रचार करें ॥ १७ ॥

जिन्होंने त्रिषष्ठिशलाका पुरुषोंका एक सर्वसुन्दर पुराण बनाया है। उस जिनसेन यतिकी जय हो ॥ १८ ॥



प्रोफेसर डाक्टर हरमन जी. येकोबि, एम० ए०, पी० एच० डी०, डि० लिट्,

जैनदर्शनदिवाकर

सभापति स्याद्वाददर्शनमहोत्सव, काशी, दिसम्बर १९१३

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

भदन्त गुणभद्रस्वामी भूतलपर देदीप्यमान होवें। क्योंकि इन्होंने पुराणादिके ऊपर प्रकाशके लिये छोटे छोटे कवियोंको अथवा काव्योंको भी सूर्य्यके समान बना दिया है ॥ १९ ॥

इन्हींके पुराणकी अर्थालोचना करके और सरस्वतीके श्रुतको मनमें धारण करके भारत नामक पाण्डवोंका पुराण मैं बनाता हूं ॥ २० ॥

प्रशस्ति.

श्रीमूलसङ्घमें पद्मनन्दी मुनि हुए। इनके पट्टधारी सकलकीर्त्ति आदि मुनि हुए। इन्होंने मर्त्यलोकमें शास्त्रोंके अर्थको विवेचन करनेवाली नभी पवित्रकीर्त्तिको विस्तारा ॥ ६७ ॥

इनके पट्टधारी श्रीभुवनकीर्त्ति आचार्य्य हुए। वे बड़े भारी तपस्वी तथा जैनधर्म्मको भूतलमें प्रकाश करनेवाले थे। बल्कि सांसारिक भयरूपी सर्पको गरुड़के समान थे ॥ ६८ ॥

आत्मस्वरूपको जाननेवाले, चतुर, चिरन्तन, और चन्द्रादिकों करके पूजित पादपद्मवाले, ऐसे ज्ञानभूषणसूरि प्रसिद्धिको देनेवाली हम सबोंकी चारित्रशुद्धि करें ॥ ६९ ॥

अजेय बौद्धोंसे स्तुति किये गये, लोकप्रसिद्ध, स्वच्छबुद्धिवाले, राजाओंसे पूजित विजयकीर्त्तिस्वामी आप सबोंकी और जैनसिद्धान्तकी रक्षा करें ॥७०॥

इनके पट्टधर, गुणके समुद्र, वादिरूपी हस्तिओंके लिये बड़े भारी सिंह, तथा प्रसिद्ध, श्रीशुभचन्द्राचार्य्य ने शुभसिद्धिजनक पाण्डवपुराण बनाया ॥ ७१ ॥

निरलस होकर श्रीशुभचन्द्राचार्य्यने चन्द्रनाथचरित, (चन्द्रप्रभुचरित) पद्मनाभचरित, प्रद्युम्नचरित, और जीवककाचरित, (जीवन्धरचरित) बनाया ॥ ७२ ॥

इन्होंने ही चन्दना कथा, नान्दीश्वरी कथा, और अच्छे अच्छे छन्दों से शोभायमान, आशाधरका बनाया हुआ आचार्य्यशास्त्रकी टीका करी। (अर्थात् इससे यह मालुम होता है कि शायद आपने आशाधरजीके अनागार धर्म्मामृतकी टीका की है) ॥ ७३ ॥

तीश चौबीशी पूजनविधान, मद्रूतसिद्धोंकी पूजा (अर्थात् सिद्ध-चक्रपूजा) सारस्वत यन्त्र पूजन, तथा चिन्तामणि यन्त्र पूजनके कर्त्ता आप ही है ॥ ७४ ॥

यतिराज श्रीशुभचन्द्राचार्यजीने ही श्रीकर्मदाहविधि, (अर्थात् कर्म-दहन पाठ) सिद्धपूजन बड़े गुणशाली गणनाथकी अर्चना, (अर्थात् गण-धर वलय पूजन) और श्रीपार्श्वनाथस्वामीकी एक मनोहर काव्यपञ्जिका की रचना की ॥ ७५ ॥

जिन्होंने पल्यविधान उद्यापन (अर्थात् पल्यव्रतोद्यापन) चरित्र शुद्धिव्रत १२३४ का उद्यापन, संशयरूपी मुखका विदारण करनेवाला अपशब्दखण्डन, प्रकृतितत्वका निर्णय करनेवाला तत्वनिर्णय, तर्कशास्त्र, तथा इसके स्वरूपको भली भांति समझानेवाली स्वरूपसम्बोधिनी नाम टीका, सर्वाङ्गसुन्दर अपूर्व सर्वतोभद्र पूजा, अध्यात्मपद्यवृत्ति और अत्यन्त मनोहर चिन्तामणि नामक व्याकरण बनाया ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

जिन्होंने सभी अङ्गोंके अर्थको प्ररूपण करनेवाली अङ्गप्रज्ञप्ति जिनेन्द्र-देवके पवित्र स्तोत्र, और षड्वाद बनाये ॥ ७९ ॥

उन्हीं विद्वद्वर्य शुभचन्द्रदेवने तेजोमय पाण्डववंशभूषण, और पवित्र चरित्रसे प्रकाशमान शोभाका आकर निर्म्मलगुण, और सुन्दर शब्दरूपी रत्नोंसे भरा हुआ यह सुलभ महापवित्र भारत पाण्डवपुराण प्रीतिपूर्वक बनाया ॥ ८० ॥

समृद्धबुद्धिसे विशद, न्यायशास्त्रके परमज्ञाता वैराग्य आदि विशुद्धियों के जाननेवाले श्रीशुभचन्द्राचार्यके शिष्य श्रीपालवर्णी ने इस अर्थ समूह-वाले पाण्डवपुराणको सुन्दर पुस्तकमें लिखा ॥ ८१ ॥

जिस श्रीपालवर्णी ने शास्त्रोंके अर्थसंग्रहमें सहायता की तथा जो अच्छी अच्छी विद्याओंको विभूषित करनेवाले ऐसे श्रीपालवर्णी चिर-जीवी हों ॥ ८२ ॥

जो इस पाण्डव पुराणको आदरपूर्वक पढ़ते पढ़ाते सुनते सुनाते और लिखते लिखाते हैं वे अखिल भोगोंको भोगकर संसाररूपी भयङ्कर समु-द्रसे पार होकर शान्ति पाते हैं ॥ ८३ ॥

भव्योंको अपनी दिव्य ध्वनिसे तृप्त करते हुए श्रीअर्हन्त जिनेन्द्र, सिद्ध-परमेष्ठी चरित्रसिद्धिकर शुद्ध सर्वसाधु इस लोकमें सिद्धि समृद्ध और मोक्षको

दें। और सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चरित्र, जिनशास्त्र, सर्वज्ञकथित जिनधर्म, जिनचैत्य, जिनचैत्यालय, यह सब हम लोगोंकी सिद्धिके लिये हों ॥ ८४ ॥

जबतक भारतवर्षमें सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, इन्द्रभवन, शुद्धधर्म भूगर्भ-देव, समुद्र, गङ्गादि नदियां, सुमेरु पर्वत और त्रिभुवनमें प्रसिद्ध कल्पवृक्ष रहें तबतक शुभशान्तिको करनेवाला यह पाण्डवोंका भारत (पाण्डव-पुराण) रहे ॥ ८५ ॥

विक्रम सम्वत् १६०८ भाद्र द्वितीयाको श्रीशाकवाटपुरमें यह पाण्डव-पुराण रचा गया ॥ ८६ ॥

शुभचन्द्राचार्यकी पट्टावली।

स्वस्ति श्रीजिननाथाय स्वस्ति श्रीसिद्धसूरयः।
स्वस्ति पाटकसूरिभ्यां स्वस्ति श्रीगुरवे नमः ॥ १ ॥
मङ्गलं भगवानर्हन् मङ्गलं सिद्धसूरयः।
उपाध्यायस्तथासाधोर्जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम् ॥ २ ॥
स्वस्तिश्री मूलसङ्घेऽवनितिलकनिभे मोक्षमार्गैकदीपे
स्तुत्ये भूखेचराद्यैर्विशदतरगणे श्रीबलात्कारनाम्नि ॥
गच्छे श्रीशारदायाः पदमगमचरित्राद्यलङ्कारवन्तो
विख्याता गौतमाद्या मुनिगणवृषभा भूतलेऽस्मिञ्जयन्तु ॥ ३ ॥

स्वस्ति—श्रीमन्महावीर तीर्थङ्कर-मुखकमलविनिर्गत-दिव्यध्वनिधरण प्रकाशप्रवीण-गौतमगणधरान्वय-श्रुतकेवलि-समालिङ्गित-श्रीभद्रबाहु योगीन्द्राणाम् ॥ ४ ॥

तद्वंशाकाशदिनमणिश्रीसीमन्धरवचनामृतपानसन्तुष्टचित्तश्रीकुन्दकुन्दाचार्याणाम् ॥ ५ ॥

तदाम्नायधरणधुरीण-कविगमकि-वादिवाग्मि-चतुर्विध-पाण्डित्यकला-निपुण-बौद्धनैयायिकसांख्यवैशेषिक भट्टचार्वाकमताङ्गीकार-मदोद्धत-परवादिगजगर्व भेदकश्रीपद्मनन्दि-भट्टारकाणाम् ॥ ६ ॥

तच्छिष्याग्रेसरानेकशास्त्रपयोधिपारप्राप्तानाम्, एकावलि, द्विकावलि, कनकावलि, रत्नावलि, मुक्तावलि सर्वतोभद्र, सिंहविक्रमादिमहातपोवज्र-विनाशितकर्म्मपर्वतानाम्, सिद्धान्तसार, तत्त्वसारयत्याचाराद्यनेकराद्धान्त विधातृणाम्, मिथ्यात्वतमोविनाशनेकमार्त्तण्डानाम्, अभ्युदयपूर्वनिर्वाण सुखावश्यविधायि-जिनधर्म्माम्बुधिविवर्द्धनपूर्णचन्द्राणाम्, यथोक्तचरित्राचरण समर्थनिर्ग्रन्थाचार्य्यवर्य्याणाम्, श्री श्री श्री सकलकीर्त्ति-भट्टारकाणाम् ॥ १ ॥

तत्पट्टाभरणानेकदक्षमौर्य्यानिष्पादन-सकलकलाकलापकुशल-रत्नसुवर्णरौप्य-पित्तलाश्मप्रतिमा यन्त्रप्रासाद प्रतिष्ठायात्रार्चन विधानोपदेशार्ज्जित कीर्त्तिकर्पूरपूरित-त्रैलोक्यविवराणानाम् महातपोधनानां श्रीमद्भुवनकीर्त्ति देवानाम् ॥ १ ॥

तत्पट्टोदयाचलभास्कराणां गुज्जरदेश-प्रथमसागरधर्म्मवरिष्ठ-सद्धर्म्म-निष्ठानाम्, अहीरदेशाङ्गीकृतैकादशप्रतिमापवित्रीकृतगात्राणां, वाग्वरदेश स्वीकृतदुर्द्धरमहाव्रतभारधुरन्धराणाम्, कर्णाटदेशोत्तुङ्ग चैत्यचैत्यालयावलोकनार्जितमहापुण्यानाम्, तौलवदेश-महावादीश्वर-राजवादिपितामह सकलविद्वज्जनचक्रवर्त्याद्यनेकविरुदावलिविराजमान-यतिसमूहमध्यसंप्राप्त-प्रतिष्ठानाम्, तैलङ्गदेशोत्तमनरवृन्दवन्दितचरणकमलानां, द्राविडदेशाप्त विदग्धवृन्दसारविन्दविनिर्गतस्तवनानाम्, महाराष्ट्रदेशार्ज्जितेन्दुकुन्दकुड्मलेयोज्ज्वलयशोराशीनाम्, सौराष्ट्रदेशोत्तमोपासक-वर्गविहिता--पूर्व महामहोत्सवानाम्, रायदेशनिवासिसम्यग्दर्शनोपेत-प्राणिसङ्कलित-प्रमाणीकृत वाक्यानां, मेदपाटदेशानेकमुग्धाङ्गीवर्गप्रतिबोधकानाम्, मालवदेशभव्य-चित्तपुण्डरीकप्रबोधन दिनकरावताराणाम्, मेवातदेशागमाध्यात्मरहस्य व्याख्यानरञ्जितविविधविबुधोपासकानां, कुरुजाङ्गलदेशप्राणयज्ञानरोगापहरणवैद्यानाम्, तूरवदेश षट्दर्शनतर्काध्ययनोद्भूताखर्वगर्वाकुलितहृदय प्रज्ञावदनलब्धविजयानां, विराटदेशोभयमार्गदर्शकानां, नमियाड देशाधिकृतजिनधर्म्मप्रभावानां, नवसहस्राद्यनेकधर्म्मोपदेशकानां, टगराटहड़ौबटी नागरचलप्रमुखाऽनेक जनपद प्रतिबोधन-निमित्त-विहित-विहाराणां, श्रीमूलसङ्घे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे दिल्ली (Delhi) सिंहासनाधीश्वराणां, प्रतापाक्रान्तदिङ्मण्डलाऽऽखण्डलसमानभैरवनरेन्द्रविहितातिभक्तिभाराणां अष्टाङ्गसम्यक्त्वाद्यनेकगुणगणालङ्कृत श्रीमदिन्द्रभूपालमस्तकन्यस्त-

चरणसरोरुहाणां, गजान्तलक्ष्मी-ध्वजान्तपुण्य-मात्यान्तभोग-समुद्रान्तभूमि-भाग-रक्षक सामन्तमस्तकघृष्ट क्रमाग्रमेदिनीपृष्ठ राजाधिराज श्रीदेवरायस-माराधित चरणवारिजानां, जिनधर्म्माराधक मुदिपालराय-रामनाथराय-बोमरसराय-कलपरायराय-पाण्डुरायप्रभृति अनेकमहीपालार्चित कनकमल-युगलानाम्, विहितानेकतीर्थयात्राणां, मोक्षलक्ष्मी वशीकरणानर्घ्यरत्नत्रया-लंकृत गात्राणां, व्याकरणछन्दोलङ्कार साहित्यतर्कागमाध्यात्म प्रमुखशास्त्र सरोजराजहंसानां, शुद्धध्यानामृतपानलालसानां, वसुन्धराचार्य्याणाम श्रीमद्भट्टारकवर्य्य श्रीज्ञानभूषण भट्टारक देवानां ॥ ८ ॥

तत्पट्टाम्भोजभास्कराणां, कारितानेक सविवेक श्रीर्णनूतनजिनप्रासादो द्धरणधीराणां, समुपदिष्ट—विशिष्टाक्लिष्ट प्रतिष्ठ जिनबिम्बप्रकाराणां, अङ्ग बङ्गकलिङ्ग तौलवमालवमरहठसौराष्ट्रगुर्ज्जरवागवररायदेश मेदपाटप्रमुखजन-पदजनजेगीयमान यशोराशीनां, जैनराजान्यराजपूजित पादपयोजानां, अभिनवबालब्रह्मचारि श्रीभट्टारक विजयकीर्त्ति देवानां ॥ ९ ॥

तत्पट्टप्रकटचतुर्विधसंघसमुद्रोल्लासनचन्द्राणां, प्रमाणपरीक्षा-पत्रप-रीक्षा-पुष्पपरीक्षा-परीक्षामुख प्रमाण निर्णय-न्यायमकरन्द-न्यायकुमुदचन्द्रो दय-न्यायविनिश्चयालङ्कार-श्लोकवार्तिक-राजवार्तिकालङ्कार-प्रमेयकमल मार्तण्ड-आप्तमीमांसा-अष्टसहस्री-चिन्तामणिमीमांसाविवरण-वाचस्पति तत्त्वकौमुदी प्रमुखकर्कशतर्क जैनेन्द्रशाकटायनेन्द्रपाणिनिकलापकाव्यरूपष्ट-विशिष्ट सुप्रतिष्ठाष्ट सुलक्षणविचक्षण त्रैलोक्यसार-गोम्मटसार-लब्धिसार-क्षप-णसार--त्रिलोकप्रज्ञप्ति--सुविज्ञप्त्याध्यात्माष्टसहस्रीछन्दोलङ्कारादिशास्त्र-सरित्पतिपारप्राप्तानां, शुद्धचिद्रूपचिन्तनविनाशितनिद्राणां, सर्वदेशविहारा वाप्तानेकभद्राणां, विवेकविचारचातुर्य्यगाम्भीर्य्यधैर्य्यवीर्य्यगुणगणसमुद्राणां, उत्कृष्टपात्राणां, पालितानेकशच्छात्राणां, विहितानेकोत्तमपात्राणाम्, सक-लविद्वज्जनसभाशोभितगात्राणां, गौडवादितमः सूर्य्य-कलिङ्गवादिजलदसदा गति-कर्णाटवादि प्रथमवचनखण्डनसमर्थ-पूर्ववादिमत्तमातङ्गमृगेन्द्र-तौलवा दिविडम्बनवीर-गुर्जरवादिसिन्धुकुम्भोद्भव--मालववादिमस्तकशूल-जितानेका खर्वगर्वाटनवज्राधराणां, ज्ञानसकलसमयपरसमयशास्त्रार्थानां, अङ्गी-कृतमहाव्रतानाम्, अभिनवसाधकनामधेय श्रीशुभचन्द्राचार्य्याणां ॥ १० ॥

तत्पट्टप्रवीणोत्कृष्टमतिविराजमानसुनिश्चिताक्ष्मवाधक प्रमाणादि-

साधननिकरसंसाधिता साधारणविशेषणत्रयालिङ्गित परमात्मराजकुञ्जरव-न्धुरवदनाम्भोजप्रकट भूतपरमागमवार्द्धिवर्द्धनसुधाकाराणाम्, परवादिद-न्दारकवृन्दवन्दितविशदपादपङ्करुहाणां, बालब्रह्मचारि भट्टारक श्रीसुमति-कीर्त्तिदेवानाम् ॥ ११ ॥

तत्पट्टाम्बुजविकाशन मार्त्तण्डानां, पञ्चमहाव्रत पञ्चसमिति त्रिगुप्त्यष्टा-विंशतिमूलगुणसंयुक्तानां, व्याख्यामृतपोषितजिनवर्गाणां, निजकर्मभूरुह दारु-णपरणप्रवीणानाम्, परमात्मगणातिशयपरीक्षापरीक्षित-विस्वस्वरूपाणाम्, विशदविज्ञानविनिश्चित-सामान्यविशेषात्मकार्थसमर्थानां, परमपवित्र भट्टा-रक श्रीगुणकीर्त्ति देवानाम् ॥ १२ ॥

तत्पट्टकुमुदप्रकाशनशुद्धाकराणां, अंगवंगतिलंगकलिंगवेटभोटलाट-कुं-कण-कर्णाट-मरहट्ट-चीन-चोल-हब्श-खुरासाण आरवतीलव--तिलात मेदपाट मालव पूर्व--दक्षिण-पश्चिमोत्तर गुर्जरवाग्वरराजदेशनागर वालमरुस्थल स्फूर दंगिकोशल-मगधपल्लवकुरुजांगलकांची लाभुमपुट्टोट काशीकलिंगसौराष्ट्र-काश्मीरद्राविड़गौड़कामरूमलताण तुंगी पटाणमुगलाण हट्टावट्ट सपादलक्ष सिन्धुसिन्धलकुन्तल केरल मंगल जालौर गंगल सुंतल कुरल जांगल पंचा-लन भट्ट घट्ट खेट्ट कोरट्ट वेणुतट कलिंकोट मरहट्ट कौरट्ट चैरट्ट वैरट्ट स्मैरतट्ट महाराष्ट्र विराट किराट नमेद सिन्धुतट गंगेतट पञ्चट मञ्जवार कपोट गौड़-वाड़ तिगल किंगल मलयम मतमेखल नेपाल हैवलरुल संखल करल वरल मोरल मंमालने खलपिञ्छल मारल हाहल ताल तमाल सौमाल गोमाल रोमाल तोमल केमाल हेमाल देहल टेहल टमाल कमालि किरात मेवात चित्रकूट हेमकूट चूरंड कुरंड उद्र्याण आद्रभाद्र पुलिन्द्र सुराद्र प्रमुख देशा-र्जितेन्द्र कुवलोज्ज्वलयशोराशीनां, सकलशास्त्रसमुद्रपार प्राप्तानां, समय-विद्वज्जननमितचरणपङ्केरुहाणां, व्याख्यामृतपोषित--सकलभव्यवर्गाणां, सकलतार्किकशिरोमणीनां, दिल्ली (Delhi) सिंहासनाधीश्वराणाम्, सार्थक नामविराजमान अभिनव भट्टारक श्रीवादिभूषण देवानाम् ॥ १३ ॥

पट्टावलीका भाषानुवाद ।

श्रीजिननाथ को स्वस्ति हो, सिद्धाचार्यों को स्वस्ति हो, पाठक और आचार्यों को स्वस्ति हो, तथा श्रीगुरुजी को स्वस्ति हो ॥ १ ॥

अर्हन्तदेव मङ्गल स्वरूप हैं। सिद्धाचार्य गण मंगल स्वरूप हैं और कहां तक कहा जाय उपाध्याय और जैन धर्म्म ही मंगलमय है ॥ २ ॥

मोक्ष की राह दिखाने के लिये अनन्य प्रदीप, भूखेचरों से प्रशंस्य, भूतल में तिलक स्वरूप स्वस्तिश्रीमूलसङ्घ, अत्युज्वल बलात्कार नामक गण, सरस्वतीगच्छमें सम्यक् दर्शन, सम्यक्चरित्र तथा सम्यग्ज्ञान से समलंकृत जो गौतमादि गणधर प्रसिद्ध हो गये हैं वे इस भूतलमें जयशाली होवें ॥ ३ ॥

स्वस्ति श्री महावीर स्वामीके मुखकमल से निकले हुए दिव्य शब्दको धारण और प्रकाश करने में जो प्रवीण गौतम गणधर हो गये हैं उनके वंशधर श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहु स्वामी हुए ॥ ४ ॥

इनके वंशाकाशके सूर्य्य श्रीसीमन्धर के वचनामृतके पानसे सन्तुष्ट चित्तवाले श्रीकुन्दकुन्दाचार्य्य हुए ॥ ५ ॥

इनके आम्नाय के धारण करनेमें धुरीण, कविता गमकिता वादिता और वाग्मिता आदि चार प्रकार की पाण्डित्यकला में निपुण, बौद्ध, नैयायिक, सांख्य, वैशेषिक और चार्वाकके मत माननेवाले गजके लिये सिंह के समान श्रीपद्मनन्दी भट्टारक हुए ॥ ६ ॥

इनके शिष्योंमें से अग्रगण्य और अनेक शास्त्र समुद्रको पार हुए, एकावली, द्विकावली, कनकावलि, रत्नावलि, मुक्तावलि, सर्वतोभद्र और सिंह विक्रमादि बड़ी बड़ी तपस्या रूपी वज्रसे कर्म्म रूपी पर्वतों को नष्ट करनेवाले, सिद्धान्तसार, तत्त्वसार, और अनेक पत्याचार के सिद्धान्तको बनानेवाले, मिथ्यात्व रूपी अन्धकार को दूर करनेके लिये एक सूर्य्य, कुशलपूर्वक मोक्षलक्ष्मी के मुखको प्रकटित करनेवाले, जिनधर्म्म रूपी समुद्र को बढ़ाने के लिये पूर्णचन्द्रमा के सदृश, यथोक्त चरित्र का

आचरण और समर्थन करनेवाले दिगम्बराचार्य्य. श्री श्री सकलकीर्त्ति भट्टारक हुए ॥ ७ ॥

इनके पट्टके भूषण तुल्य. सभी कलाओं में कुशल रत्न सुवर्ण, रौप्य, पित्तल पत्थर की प्रतिमा, यन्त्र और प्रासाद की प्रतिष्ठा और अर्चन विधान जन्य कीर्त्ति कपूर से त्रिभुवन विवरको पूरित करनेवाले. महा-तपस्वी श्री भुवनकीर्ति देव हुए ॥ ८ ॥

इनके पट्टोदयाचल के लिये सूर्य्य के से, गुर्जर देशमें पहले पहले सागार धर्म्म का प्रचार करनेवाले, अहीर देशमें स्वीकृत एकादश प्रतिमा से पवित्र शरीरवाले, वाग्वर देशमें अंगीकृत जो दुर्द्धर महाव्रत है उसके भारको धारण करनेवाले. कर्णाटक देशमें ऊंचे ऊंचे चैत्यालयोंके दर्शन से महापुण्य को उपार्जित करनेवाले, तौलव देशके महा वादीश्वर विद्वज्जनों और चक्रवर्तियों के बीचमें प्रतिष्ठा को पानेवाले. तिलंग देश के सज्जनों से चरणकमल पूजनेवाले द्राविड़-देशके सुविज्ञों से स्तुति किये गये. महाराष्ट्र देशमें शुभ्रयशका विस्तार करनेवाले. सौराष्ट्र देशके उत्तम उपासक वर्गों से महोत्सव मनाये गये. सम्यग्दर्शन से युक्त राय देशके निवासी प्राणि समूहों से प्रमाणीकृतवाक्यवाले. मेदपाट देशके अनेको मूढ़ों को समझाने वाले मालवदेश के भविकों के हृदय पुण्डरीक को खिलाने के लिये सूर्य्य के से, मेवात देशके अन्यान्य विज्ञ उपासकों को अपने आध्यात्मिक व्याख्यानों से रंजित करनेवाले, कुरुजांगल देशके प्राणियों के अज्ञान रूपी रोगको हटाने के लिये सद्वैद्य के से, तुरव देशमें षट्दर्शन न्याय आदि पढ़नेसे उत्पन्न जो असर्व गर्व हैं उनको दबाकर विजय प्राप्त करनेवाले. विराट देशमें उभय मार्ग को दिखानेवाले. नमियाड़ देशमें जिनधर्म्म की अत्यन्त प्रभावना और नव हजार उपदेशकों को नियत करनेवाले, टग, राट, हड़ी, बटो, नाग और चाले आदि अनेक जनपदों में ज्ञान प्रचार के लिये विहार करनेवाले. श्रीमूलसङ्घ बलात्कार गण. सरस्वतीगच्छके दिल्ली सिंहासनाधीश्वर. अपने प्रताप से दिङ्मण्डल को आक्रमण करनेवाले, अष्टांग तथा सम्यक्त्वादि अनेक गुण गणसे अलंकृत और श्रीमदिन्द्र भूपालोंसे चरणकमल पूजेजानेवाले, गजान्त लक्ष्मी, ध्वजान्त पुण्य, साम्राज्य, समुद्रान्त, भूमिभागके रक्षक, सामन्तोंके मस्तकसे घृष्टचरणकमल श्रीदेवरायराजसे पूजित पादपाथोजवाले, जिनधर्म्मके

आराधक मुदिपालराय रामनाथराय बोमरसराय कलपराय, पाण्डुराय आदि अनेक राजाओंसे अर्चित किये गये चरणयुगलवाले, अनेक तीर्थ-यात्राको करनेवाले, मोक्षलक्ष्मीको वशीभूत करनेवाले रत्नत्रयसे सुशोभित शरीरवाले, व्याकरण, छन्द, अलङ्कार, साहित्य, न्याय और अध्यात्म प्रमुख शास्त्ररूपी मानस सरोवरके राजहंस, शुद्ध ध्यानरूपी अमृत पानकी लालसा करनेवाले, और वसुन्धराके आचार्य्य श्रीमद्भट्टारकवर्य्य श्रीज्ञान-भूषणजी हुए ॥ ८ ॥

इनके पट्टरूपी पद्मके लिये सूर्यकेसे, विवेकपूर्वक अनेक जीर्ण अथवा नूतन जिन प्रासादका उद्धार करानेवाले, अनेक प्रकारके जिन बिम्बकी प्रतिष्ठाका उपदेश देनेवाले, जिनकी यशोराशिका गान अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, तौलव, मालव और मेदपाट आदि देशोंके निवासियोंने किया है ऐसे, जैन राजाओं तथा अन्य राजाओंसे पूजित चरणकमल वाले और अभिनव बालब्रह्मचारी श्रीभट्टारक विजयकीर्त्ति देव हुए ॥ ९ ॥

इनके पट्ट पयोनिधिको उल्लसित करनेके लिये चन्द्रमाकेसे, प्रमाण परीक्षा, पत्रपरीक्षा, पुष्पपरीक्षा, परीक्षामुख, प्रमाणनिर्णय, न्यायमकरन्द, न्यायकुमुद चन्द्रोदय, न्याय विनिश्चयालङ्कार, प्रमेयकमलमार्त्तण्ड, आप्त-मीमांसा, श्लोक वार्तिक, राजवार्त्तिकालङ्कार, अष्टसहस्री, चिन्तामणि मीमांसा विवरण, वाचस्पति तत्त्वकौमुदी आदि कर्कश न्याय, जैनेन्द्र, शाकटायनेन्द्र, पाणिनि, कलाप, काव्यादिमें विचक्षण, त्रैलोक्यसार, गोमट्ट-सार, लब्धिसार, क्षपणकसार, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, सुविज्ञप्ति, अध्यात्मसहस्री और छन्द अलङ्कारादिशास्त्र समुद्रके पारगामी, शुद्धात्माके स्वरूप चिन्त-न करनेहीसे निद्राको विनष्ट करनेवाले, सब देशोंमें विहार करनेसे अनेक कल्याणोंको पानेवाले, विवेक, विचार, चतुरता, गम्भीरता, धीरता, वीरता और गुणगणके समुद्र, अकृष्ट पात्रवाले, अनेक छात्रोंका पालन करनेवाले, कई उत्तम उत्तम यात्राओंके करनेवाले, सभी विद्वन्मण्डलीमें सुशोभित शरीरवाले, गौड़वादियोंके अन्धकारके लिये सूर्य्यकेसे, कलिङ्ग-वादिरूपी मेघके लिये वायुकेसे, कर्णाट वादियोंके प्रथम वचन खण्डन करनेमें परम समर्थ, पूर्ववादिरूपी मातङ्गके लिये सिंहकेसे, तौलवादियोंकी विडम्बनाके लिये वीर, गुजरवादिरूपी समुद्रके लिये अगस्त्यकेसे, मालव

वादियोंके लिये मस्तकशूल, अनेक अभिमानियोंके गर्वका नाश करनेवाले, स्वसमय तथा परसमयके शास्त्रार्थको जाननेवाले और महाव्रतका अंगीकार करनेवाले अभिनव सार्थक नाम श्री शुभचन्द्राचार्य्य हुए॥ १०॥

इनके पट्टमें अलौकिक बुद्धिसे विराजमान, सुनिश्चित और असम्भवके बाधक, प्रमाणादि साधनसमूहसे संसाधित जो विशेषणत्रय है उससे आलिङ्गित, परमागमरूपी समुद्रको बढ़ानेके लिये चन्द्रमाकेसे और परवादि वृन्दारकोंके वृन्दसे अर्चित स्वच्छ चरणकमलवाले, बाल ब्रह्मचारी श्रीभट्टारक सुमतिकीर्त्ति देव हुए॥ ११॥

इनके पट्टाम्बुजके लिये भास्करसे, पञ्चमहाव्रत, पञ्चसमिति, त्रिगुप्ति और अट्ठाइस मूलगुणोंसे युक्त, अपने उपदेशपीयूषसे जैनियोंको परिपुष्ट करनेवाले, कर्म्मरूपी भयङ्कर पर्वतको चूर्ण करनेमें समर्थ, परमात्मगणको अतिशयतासे परीक्षित विशद ज्ञानके स्वरूपवाले और समुज्ज्वल विज्ञान बलसे साधारण और विशेष कार्य्यके समझनेवाले परम पवित्र भट्टारक श्रीगुणकीर्त्ति देव हुए॥ १२॥

इनके पट्ट कुमुदको प्रकाशित करनेके लिये चन्द्रमाकेसे, अङ्ग, बङ्ग, तैलङ्ग, कलिङ्ग, वेटभोटलाट, वंकण, कर्णाट, मरहट, पंचम, चोल, हब्स, खुरसाण, आरब, तौलव, तिलात, मेदपाट, मालव, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर गुर्जर, बाग्वर, राजदेश, नागर, चाल, मरुस्थल, स्फुरद्रंगिकोशल, मगध, पल्लव, कुरुजांगल काञ्चि, लाभुस, पुट्टोट, काशी, कलिङ्ग, सौराष्ट्र, काश्मीर द्राविड़, गौड़, कामरूप, ताग, तुंगी, पटाग, बुगलाण, हहावह, सिन्धु सिन्धुल, कुन्तल, केरल, मंगल, आलोर गंगल, सुंतल, कुरल, जांगल, पंचालम, नह, घह, रेह, कौरह, वेणुतट, कलिंकोट, मरहट, कौरट, चैरह, खैरह, स्मैरतह, महाराष्ट्र, विराट, किराट, नर्मद, सिन्धुतट, गंगेतट, पल्लट, मलवार, कपोट गोड़वाड़, तिंमल, किंगल, मलयम, मरुमेखल, नेपाल, हैबनरल, खल, करल, बरल मोरल, श्रीमाल, नेखल, पिच्छल, मारल, गहल, ताल, तमाल, सोमाल, गौमाल, रोमाल, तोमल, केमाल, हेमाल, देहल, सेहल, टमाल, कमाल, किरात, मेवात, चित्रकूट, हेमकूट, धुरंड, मुरंड, उद्रंपाण, आद्रमाद्र, पुलिन्द्र और सुराद्र आदि देशोंमें इन्दु और कुवलय की सी स्वच्छ यशोराशिको उपार्ज्जित करनेवाले, सभी शास्त्ररूपी समुद्रको

पार होनेवाले, अपनी व्याख्या-सुधाधारासे सभी भव्य वर्गोंको पुष्ट करनेवाले और सभी तार्किकोंके शिरोमणि, दिल्ली सिंहासनाधीश्वर सार्थक नाम विराजमान अभिनव भट्टारक श्रीवादिभूषण देव हुए ॥ १३ ॥

श्रीशुभचन्द्राचार्य्यकी गुर्वावली।

श्रीमानशेषनरनायक-वन्दितांघ्रिः
श्रीगुप्तिगुप्त (१) इतिविश्रुत-नामधेयः ॥
यो भद्रबाहु (२) मुनिपुङ्गव-पट्टपद्मः
सूर्य्यःस वो दिशतु निर्म्मलसङ्घवृद्धिम् ॥ १ ॥
श्रीमूलसङ्घेऽजनि नन्दिसङ्घ
स्तस्मिन् बलात्कारगणोऽतिरम्यः ॥
तत्राऽभवत्पूर्व-पदांशवेदी
श्रीमाघनन्दी (३) नर-देव-वन्द्यः ॥ २ ॥

पट्टे तदीये मुनिमान्यवृत्तो जिनादिचन्द्र(४)स्समभूदतन्द्रः
ततोऽभवत्पञ्चसुनामधाम श्रीपद्मनन्दी मुनिचक्रवर्त्ती ॥ ३ ॥
आचार्य्यः कुन्दकुन्दाख्यो (५) वक्रग्रीवो महामुनिः।
एलाचार्य्यो गृद्धपिच्छः पद्मनन्दीति तन्नुतिः ॥ ४ ॥
तत्त्वार्थ-सूत्रकर्तृत्व-प्रकटीकृतसन्मनाः।
उमास्वाति (६) पदाचार्यो मिथ्यात्वतिमिरांशुमान् ॥ ५ ॥
लोहाचार्य(७)स्ततोजातो जातरूपधरोऽमरैः।
सेवनीयः समस्ताऽर्थविबोधनविशारदः ॥ ६ ॥
ततः पट्टद्वयीजाता प्राच्युदीच्युपलक्षणात्।
तेषां यतीश्वराणां स्युर्नामानीमानि तत्त्वतः ॥ ७ ॥
यशःकीर्त्ति (८) र्यशोनन्दी (९) देवनन्दी (१०) महामतिः।
पूज्यपादः पराख्येयो गुणनन्दी (११) गुणाकरः ॥ ८ ॥

वज्रनन्दी (१२) वज्रलसितार्किकाणां महेश्वरः।
कुमारनन्दी(१३) लोकेन्दुः(१४) प्रभाचन्द्रो(१५) वचोनिधिः ॥९॥
नेमिचन्द्रो (१६) भानुनन्दी (१७) सिंहनन्दी (१८) जटाधरः।
वसुनन्दी (१९) वीरनन्दी (२० रत्ननन्दी (२१) रतीशभित् ॥१०॥
माणिक्यनन्दी (२२) मेघेन्दुः (२३) शान्तिकीर्त्ति २४) महायशाः।
मेरुकीर्त्ति (२५) महाकीर्त्ति (२६) विश्वनन्द्र (२७) विदाम्बरः ॥११॥
श्रीभूषणः (२८) शीलचन्द्रः (२९) श्रीनन्दी (३०) देशभूषणः (३१)।
अनन्तकीर्ति (३२) धर्मादि नन्दी (३३ नन्दीति शासनः ॥ १२ ॥
विद्यानन्दी (३४) रामचन्द्रो (३५) रामकीर्ति (३६) रनिन्द्यवाक्।
अभयेन्दु [३७] नरचन्द्रो [३८] नागचन्द्रः [३९] स्थिरव्रत ॥ १३ ॥
नयनन्दी [४०] हरिश्चन्द्रो [४१] महीचन्द्रो [४२] मलोज्झितः।
माघवेन्दु [४३] लक्ष्मीचन्द्रो [४४] गुणकीर्ति [४५] गुणाश्रयः ॥ १४ ॥
गुणचन्द्रो [४६] वासवेन्दु [४७] लोकचन्द्रः [४८] स्वतत्त्ववित्।
त्रैविद्यः श्रुतकीर्त्याख्यो [४९] वैयाकरण भास्करः ॥ १५ ॥
भानुचन्द्रो [५०] महाचन्द्रो [५१] माघचन्द्रः [५२] क्रियाग्रणीः।
ब्रह्मनन्दी [५३] शिवनन्दी [५४] विश्वचन्द्र [५५] स्तपोधनः ॥ १६ ॥
सैद्धान्तिको हरिनन्दी [५६] भावनन्दी [५७] मुनीश्वरः।
सुरकीर्ति [५८] विद्याचन्द्रः [५९] सुरचन्द्रः [६०] श्रियांनिधिः ॥ १७ ॥
माघनन्दी [६१] ज्ञाननन्दी [६२] गङ्गनन्दी [६३] महत्तमः।
सिंहकीर्ति (६४) हेमकीर्ति (६५) चारुनन्दी (६६) मनोभवः ॥१८॥
नेमिनन्दी (६७) नाभिकीर्ति (६८) नरेन्द्रादि (६९) यशः परम्।
श्रीचन्द्रः (७०) पद्मकीर्तिश्च (७१) वर्द्धमानो (७२) मुनीश्वरः ॥१९॥
अकलङ्क (७३) श्चन्द्रगुरु र्ललितकीर्ति (७४) रुत्तमः।
त्रैविद्यः केशवश्चन्द्र (७५) श्चारुकीर्त्तिः (७६) सुधार्मिकः ॥ २० ॥
सैद्धान्तिकोऽभयकीर्ति (७७) र्वनवासी महातपाः।
वसन्तकीर्ति (७८) र्व्याघ्राहि सेवितः शीलसागरः ॥ २१ ॥
तस्यश्रीवनवासिनस्त्रिभुवनप्रख्यात (७९) कीर्तेरभूत्
शिष्योऽनेक गुणालयः समयमध्यानापगासागरः।
वादीन्द्रः परवादि-वारणगण-प्रागल्भ-विद्रावणः
सिंहः श्रीमति मण्डपेति विदित स्त्रैविद्यविद्यास्पदम् ॥ २२ ॥

विशालकीर्ति (८०) र्वरवृत्तमूर्ति स्तपोमहात्मा शुभकीर्ति (८१) देवः ॥
एकान्तराद्युग्र तपोविधाता ह्रातेव सन्मार्गविधेर्विधाने ॥ २३ ॥
श्रीधर्म(८२)चन्द्रोऽजनि तस्य पट्टे हमीरभूपाल समर्चनीयः।
सैद्धान्तिकः संयमसिन्धुचन्द्रः प्रख्यात माहात्म्य कृतावतारः ॥२४॥
तत्पट्टेऽजनि रत्नकीर्ति (८३) रनघः स्याद्वादविद्यांबुधिः।
नानादेश-विवृत्तशिष्यनिवह प्राच्यांघ्रियुग्मो गुरुः॥
धर्माधर्मकथासुरक्तधिषण पापप्रभा बाधको।
बालब्रह्म तपः प्रभावमहितः कारुण्यपूर्णाशयः ॥ २५ ॥
अस्ति स्वस्तिसमस्तसङ्घतिलकः श्रीनन्दिसंघोऽतुलो
गच्छस्तत्र विशालकीर्ति कलितः सारस्वतीयः परः॥
तत्र श्री शुभकीर्ति कीर्ति महिमा व्याप्ताम्बरः सन्मतिः।
जीयादिन्दु समानकीर्तिरमलः श्रीरत्नकीर्तिर्गुरुः ॥ २६ ॥
पट्टे श्रीरत्नकीर्ते रनुपमतपसः पुज्यपादीयशास्त्र।
व्याख्या विख्यातकीर्त्ति गुणगणनिधिपः सत्क्रिया चारुचंचुः॥
श्रीमानानन्दधाम प्रतिबुधनुत मामान संदायिवादो।
जीयादाचन्द्रतारं नरपतिविदितः श्रीप्रभाचन्द्र (८४) देवः ॥ २७ ॥
श्रीमत्प्रभाचन्द्रमुनीन्द्रपट्टे शश्वत् प्रतिष्ठा प्रतिभा गरिष्ठः।
विशुद्धसिद्धान्त रहस्यरत्न रत्नाकरो नन्दतु पद्मनन्दी (८५) ॥२८॥
हंसोज्ञान मरालिका समसमा श्लेषप्रभूताद्भुता-
नन्दं क्रीडति मानसेति विशदे यस्यानिशं सर्वतः॥
स्याद्वादामृतसिन्धुवर्द्धनविधौ श्रीमत्प्रभेन्दुप्रभाः
पट्टे सूरिमतल्लिका स जयतात् श्रीपद्मनन्दी मुनिः ॥ २९ ॥
महाव्रत पुरन्दरः प्रशमदग्धरागाङ्कुरः
स्फुरत्परमपौरुषः स्थितिरशेषशास्त्रार्थवित्॥
यशोभरमनोहरीकृत समस्त विश्वम्भरः
परोपकृतितत्परो जयति पद्मनन्दीश्वरः ॥ ३० ॥
पद्मनन्दि मुनीन्द्रेण वंशवाणी वसुन्धरा॥
सन्न्यासपदवीन्यास पादन्यासैः पवित्रिता ॥ ३१ ॥
श्रीपद्मनन्दि पदपङ्कज-भानुकल्पो
जम्बोनिताद्भुतमदोविदितार्थ बोधः॥

ध्वस्तान्धकार निकटो जयतान्महात्मा
भट्टारकः सकलकीर्त्तिरतिप्रसिद्धः [८६] ॥ ३२ ॥
सुयति-भुवनकीर्ति [८७] स्तत्पदाब्जार्कमूर्तिः
परम तपसिनिष्ठः प्राप्त सर्वप्रतिष्ठः ।
मुनिगणनुतपादो निर्जितानेकवादः
स्त्ववतु सकलसङ्घान् नाशिताऽनेकविघ्नान् ॥ ३३ ॥
प्रोद्यज्ज्ञानकरस्तपोभरधरः सद्बोधताधौंधुरो
नानान्यायवरो यतीश्वरतरो वादीन्द्रभूभृत्स्वरुः ।
तत्पट्टोन्नति कृत्निरस्तनिकृतिः श्रीज्ञानभूषो [८८] यतिः
पायाद्वो निहताहितः परमसज्जैनावनीशैः स्तुतः ॥३४॥
विजयकीर्ति (८९) यतिर्जितमत्सरो
विदित गोम्मटसार परागमः ।
जयति तत्पद भासतशासनो
निखिलतार्किकतर्क विचारकः ॥ ३५ ॥
य पूज्योनृपमल्लिभैरवमहा देवेन्द्र मुख्यैर्नृपैः
षट्तर्कागम शास्त्रकोविदमति र्जाग्रद्यशश्चन्द्रमाः ।
भव्याम्भोरुहभास्करः शुभकरः संसारविच्छेदकः
सोऽव्याच्छ्रीविजयादि कीर्ति मुनिपो भट्टारकाधीश्वरः ॥३६॥
तत्पट्टकैरव विकाशन पूर्णचन्द्रः
स्याद्वादभाषित विबोधितभूमिपेन्द्रः ॥
अव्याद्गणान् सुशुभचन्द्र (९०) इतिप्रसिद्धो
रम्यान् बहून् गुणवतो हि सुतत्वबोधः ॥ ३७ ॥
आयात् षट्तर्कचंचुप्रवणगुणनिधिस्तत्पदाम्भोजभृङ्गः
शुम्भद्वादीभकुम्भोद्भट विकटसटाकुण्ठकण्ठीरवेन्द्रः ।
श्रीमत्सु सौभचन्द्रः स्फुटपटुविकटाटोपवेत्तुतनुः
हन्ता विद्रूपवेत्ता विदित सकल सच्छास्त्रसारः कृपालुः ॥ ३८ ॥
तत्पट्टवारुशतपत्रविकाशनेन
पुण्यप्रवाल घनवृद्धन मेघतुल्यः ।
व्याख्यामृतावलिसुतोषित भव्यलोको
भट्टारकः सुमतिकीर्ति (९१) रतिप्रबुद्धः ॥३९॥

ज्ञात्वा संसारभावं विहितवरतपो मोक्षलक्ष्मी सुकांक्षी
स्याद्वादी शान्तिमूर्तिं र्मदनमदहरो विश्वतत्त्वैकवेत्ता।
सुज्ञानं दानमेव द्विसरति गुणनिधि र्मोहमातङ्गसिंहो
जीयाद्भट्टारकोऽसौ सकलयतिपतिः श्रीसुमत्यादिकीर्तिः॥ ४०॥

तत्पट्टतामरसरंजन भानुमूर्तिः
स्याद्वादवादकरणेन विशालकीर्तिः॥
भाषासुधारस सुपूरित भव्यवर्णो
भट्टारक. सुगुणकीर्ति(९२) गुरुर्गणार्च्यः॥ ४१॥

प्राज्ञोवादीभसिंह. सकलगुणनिधि र्ध्वस्तदोषः कृपालुः।
शान्तोमोक्षाभिकाङ्क्षी विशदतरमतिः कम्रकान्तिः कलावान्॥
क्षिप्राशस्तर्कवेत्ता शुभतरवचनः सर्वलोकस्थितिज्ञः।
श्रीमानीशः कृतज्ञो जयति जगति सः श्रीगुणाद्यन्तकीर्तिः॥ ४२॥

तत्पट्टपङ्कज विकाशन पद्मबन्धु
र्जीयात्कुवादिमुखकैरवपद्मबन्धुः
कान्त्या क्षमा तिमिरनाशन पद्मबन्धुः
श्रीवादिभूषण (९३) गुरुर्जित पद्मबन्धुः॥ ४३॥

यो नानागमशब्दतर्क निपुणो जैनैर्नृपैः पूजितः।
कर्णाटे कलिकालगौतमसमो भट्टारकाधीश्वरः॥
हेयाहेय विचार बुद्धिकलितो रत्नत्रयालंकृतः।
सः श्रीमान् शुभचन्द्रवद्विजयते श्रीवादिभूष्योगुरुः॥ ४४॥

तत्पट्टपुष्पकर भासन मित्रमूर्तिः
कुज्ञानपङ्क परिशोषण मित्रमूर्तिः।
निःशेषभव्यहृदयाम्बुज मित्रमूर्तिः
भट्टारको जगतिभाति सुरामकीर्तिः (९४)॥ ४५॥

स्याद्वादन्यायवेदी हतकुमतिमद स्त्यक्तदोषो गुणाढ्यः।
श्रीमच्चिद्रूपवेत्ता विमलतरसुवाक् दिव्यमूर्तिः सुकीर्तिः॥
साक्षाच्छ्री शारदाया. गच्छपति गरिमा भूपवन्द्यो गुणज्ञः।
पायाद्भट्टारकोऽसौ सकलसुखकरो रामकीर्ति र्गणेन्द्रः॥ ४६॥

शास्त्राभ्यासनिबन्धनादिषु पटू रामादिकीर्तेः सत-
स्तत्पट्टेयशकीर्ति नाम सततं विभाजति धर्म्मभाक्।

ध्यानाभ्यासकरः सुनिर्मलमना स्तर्कादिकाव्यायतः
भव्यानां प्रतिबोधनार्थं निपुणः सर्वाकलायांरतः ॥ ४७ ॥

तत्पट्टपङ्कज विकाशनभानुमूर्त्ति-
र्विद्याविभूषित-समन्वित बोधचन्द्रः।
स्याद्वाद्-शास्त्र-परितोषित सर्वभूपो-
भट्टारक समभवद्यशपूर्वकीर्त्तिः (९५) ॥ ४८ ॥

तत्पट्टवारिजविकाशन तिग्मरश्मिः
पापावबोधतिमिर-क्षय-तिग्मरश्मि
पायात्सुभव्य-भर-पद्मसुतिग्मरश्मिः
श्रीपद्मनन्दि मुनिपो जित तिग्मरश्मि ॥ ४९ ॥

नानाऽनेकान्तनीत्या जितकुमतशठो विश्वतत्त्वैकवेत्ता
शुद्धात्मध्यानलीनो विगतकलिमलो रामसेव्यः क्रमाब्जः।
शास्त्राब्धि पोतप्रख्यो विमलगुणनिधी रामकीर्त्तै सुपट्टे
पायाद्भ. श्रीप्रसिद्धयै जगतियतिपति पद्मनन्दी(९६)गणीशः ॥५०॥

तत्पट्टपद्मविकचीकरणैकमित्रः
सद्बोधबोधितनृपोविलसच्चरित्रः।
भट्टारको भुवि विभात्यवबोधनेत्रः
देवेन्द्रकीर्त्ति (९७) रति शुद्धमति. पवित्रः ॥ ५१ ॥

श्रीसर्वज्ञोक्तशास्त्राऽध्ययनपटुमतिः सर्वथैकान्तभिन्ना.
चिद्रूपो भांतिवेत्ता क्षितिपतिमहितो मोक्षमार्गस्यनैता।
भव्याब्जोद्बोधभानु. परहितनिरत. पद्मनन्दीन्द्रपट्टे
जीयाद्भट्टारकेन्द्र. क्षितितलविदितो देवदेवेन्द्रकीर्त्तिः ॥ ५२ ॥

तत्पट्टनीरजविकाशनकर्मसाक्षी
पापान्धकार विनिवारणकर्मसाक्षी।
दुर्वादिदुर्वदनकैरवकर्मसाक्षी
श्रीक्षेमकीर्त्ति (९८) मुनिपोजितकर्मसाक्षी ॥ ५३ ॥

हेयाहेयविचारणाङ्कितमति र्वादीन्द्रचूडामणिः
स्फुर्यद्विश्वजनीनहर्त्तिरनिशं सम्यक्त्वतालंकृतः।
सद्वाक्यामृततर्पिताखिलनृपो देवेन्द्रकीर्त्तेः पदे
जीयाद्वर्षपर. शतं क्षितितले श्रीक्षेमकीर्त्ति गुरु. ॥ ५४ ॥

तत्पट्टकोकनद-मोदन-चित्रभानुः
दुःकर्मदुस्तरसुनाशन-चित्रभानुः।
भव्यालि-तामरस-रंजन-चित्रभानुः
जीया नरेन्द्र वरकीर्ति (९९) मुचित्रभानुः॥ ५५॥

श्रीमत्स्याद्वादशास्त्रावगमवरमतिः शान्तमूर्तिर्मनोज्ञः
दिव्यत्स्वात्मोपलब्धिः प्रहतकलिमलो मोक्षमार्गस्यनेता।
सर्वज्ञाभासवेदालिमकलमदहत् क्षेमकोर्तेः सुपट्टे
सूरिः श्रीमन्नरेन्द्रो जयति पटुगुणः कीर्तिशब्दाभियुक्तः॥ ५६॥

तत्पट्टवारिधिविवर्द्धन पूर्णचन्द्रः
पुण्यायुधेभहरिणाधिपतिर्जितेन्द्रः।
सद्बोधवारिजविकाशनवामरेन्द्रः
भट्टारको विजयकीर्ति (१००) रसौमूर्तीन्द्रः॥ ५७॥

स्याद्वादामृतवर्षणैकजलदो मिथ्यान्धकारांशुमान्
भास्वन्मूर्ति नरेन्द्रकीर्तिसुसूरी पट्टावलीक्ष्माधिपः।
नानाशास्त्रविचारचारुचतुरः सन्मार्गसंदर्शको
जीयात् श्रीविजयादिकीर्ति रमलो दद्याच्चमन्मंगलं॥ ५८॥

तत्पट्टपंकजविकाशनपंकजेन्द्रः
स्याद्वादसिन्धुपरवर्द्धन पूर्णचन्द्रः।
वादीन्द्रकुम्भमदवारणमन्मृगेन्द्रः
भट्टारको जयति निर्मलनेमिचन्द्रः (१०१)॥ ५९॥

नानान्यायविचारचारुचतुरो वादीन्द्र चूडामणिः
षट्तर्कागमशब्दशास्त्रनिपुणो स्फुर्जद्यशश्चन्द्रमाः।
स्वात्मज्ञानविकाशनैकतरणिः श्रीनेमिचन्द्रोगुरुः
सद्भट्टारकमौलिमण्डनमणि र्जीव्यात्सहस्रं समा॥ ६०॥

तत्पट्टपंकज-विकाशन-सूर्यरूपः
शास्त्रामृतेन परितोषित-सर्वभूपः।
सच्छास्त्रकैरव-विकाशन-चन्द्रमूर्तिः
भट्टारकः समभवत् वरचन्द्रकीर्तिः (१०२)॥ ६१॥

श्रीमान्नाभिनरेन्द्रसुनुचरणाम्भोजद्वये भक्तिमान्
नानाशास्त्रकलाकलापकुशलो मान्यःसदा भूभृतां।
नित्यं ध्यानपरो महाव्रतधरो दाता दयासागरः
ब्रह्मज्ञान-परायणस्समभवत् श्रीचन्द्रकीर्त्तिः प्रभुः ॥ ६२ ॥

पद्मनन्दी गुरुर्जातो बलात्कारगणाग्रणीः
पाषाणघटिता येन वादिता श्रीसरस्वती।
उज्जयन्तगिरौ तेन गच्छः सारस्वतोऽभवत्
अतस्तस्मै मुनीन्द्राय नमः श्रीपद्मनन्दिने ॥ ६३ ॥

* * * * * * *

श्रीशुभचन्द्राचार्य्यकी गुर्वावलीका भाषानुवाद।

समस्त राजाओंसे पूजित पादपद्म वाले, मुनिवर भद्रबाहु स्वामीके पट्टकमलको उद्योत करनेमें सूर्य्यके समान श्रीगुप्तिगुप्त मुनि आप लोगोंको शुभमङ्गल दें ॥ १ ॥

श्रीमूलसङ्घमें नन्दिसङ्घ हुआ, नन्दिसङ्घमें अति रमणीय बलात्कार-गण हुआ, और उस गणमें पूर्वके जाननेवाले मनुष्य और देवों कर वन्दनीय श्रीमाघनन्द स्वामी हुए ॥ २ ॥

उनके पट्ट पर मुनिश्रेष्ठ जिनचन्द्र हुए, और इनके पट्ट पर पांच नाम-धारक मुनि चक्रवर्त्ती श्रीपद्मनन्दि स्वामी हुए ॥ ३ ॥

कुन्दकुन्द, वक्रग्रीव, एलाचार्य्य गृद्धपिछ, और पद्मनन्दी इनके ये पांच नाम हुए ॥ ४ ॥

इनके पट्ट पर दशाध्यायि-तत्वार्थ-सूत्रके प्रसिद्ध कर्त्ता मिथ्यात्व-तिमिर को सूर्य्य समान उमास्वाति (* उमास्वामी) आचार्य्य हुए ॥ ५ ॥

इनके पट्ट पर देवोंसे पूजित समस्त अर्थके जाननेवाले लोहाचार्य्य हुए ॥ ६ ॥

यहांसे इस नन्दिसङ्घमें दो पट्ट हो गये पूर्व और उत्तर भेदसे (अर्थात् यहांसे लोहाचार्य्यकी पट्टावलीका क्रम काष्ठासङ्घमें चला गया और यह अनुक्रम नन्दिसङ्घका रहा) जिनके नाम क्रमसे यह हैं ॥ ७ ॥

यशःकीर्त्ति, यशोनन्दी, देवनन्दी, पूज्यपाद, अपर नाम गुणनन्दी. हुए ॥ ८ ॥

तार्किक शिरोमणि वज्रवृत्तिके धारक वज्रनन्दी, कुमारनन्दी, लोक-चन्द्र, और प्रभाचन्द्र हुए ॥ ९ ॥

नेमिचन्द्र, भानुनन्दी, सिंहनन्दी, वसुनन्दी, वीरनन्दी, और रत्ननन्दी हुए ॥ १० ॥

माणिक्यनन्दी, मेघचन्द्र, शान्तिकीर्त्ति, मेरुकीर्त्ति, महाकीर्त्ति, विश्व-नन्दी हुए ॥ ११ ॥

श्रीभूषण, शीलचन्द्र, श्रीनन्दी, देशभूषण, अनन्तकीर्त्ति, धर्म्मनन्दी, हुए ॥ १२ ॥

विद्यानन्दी, रामचन्द्र, रामकीर्ति, अभयचन्द्र, नरचन्द्र, नागचन्द्र हुए ॥ १३ ॥

नयनन्दी, हरिश्चन्द्र, (हरिनन्दी) महीचन्द्र, माधवचन्द्र, लक्ष्मीचन्द्र, गुणकीर्ति हुए ॥ १४ ॥

---

* नोट—वर्त्तमान समय तक प्रायः यह प्रसिद्ध है कि श्रीतत्वार्थसूत्रकी अन्तमें जो यह वाक्य श्लोक पढ़ा जाया करता है कि "तत्वार्थसूत्र-कर्त्तारं गृद्धपिच्छोपलक्षितम्" का यह अर्थ समझा जाता है कि श्रीउमा-स्वामी मुनि जो कि इस तत्वार्थ सूत्रके कर्त्ता हैं वह गृद्धपिच्छ रखते थे और लोगोंने इसकी परपुष्टिके लिये कई प्रकारकी किम्वदन्तियां भी कर रखी हैं। परन्तु हमारे पाठकोंको इस पट्टावलीसे समझ लेना चाहिये कि उक्त श्लोकका वास्तविक भाव और अर्थ क्या है उक्त श्लोकसे साफ साफ प्रगट होता है कि "गृद्धपिच्छ" यह विशेषण श्रीउमास्वामीका नहीं है परन्तु यह साफ दिखलाता है कि आप जगत्पूज्य श्रीपद्मनन्दी अपर नाम गृद्धपिच्छके शिष्य थे। और उनके शिष्य होनेसे ही आपकी बड़ी भारी प्रसिद्धि थी और यही कारण है कि आपके अनेक गुणोंके साथ साथ "गृद्धपिच्छोपलक्षितम्" भी विशेषण रहा करता था जो कि आपके पूज्य गुरुजीका आदरके साथ साथ आपका महत्व भी प्रकट करता था।

गुणचन्द्र, वासवेन्दु (वासवचन्द्र) लोकचन्द्र, और त्रैविध्यविद्याधीश्वर वैयाकरण भास्कर श्रुतकीर्त्ति हुए ॥ १५ ॥

भानुचन्द्र, महाचन्द्र, माघचन्द्र, ब्रह्मनन्दी, शिवनन्दी, विश्वचन्द्र, हुए ॥ १६ ॥

सैद्धान्तिक हरनन्दी, भावनन्दी, सुरकीर्त्ति, विद्याचन्द्र, सूरचंद्र, हुए ॥१७॥

माघनन्दी, ज्ञाननन्दी, गङ्गनन्दी, सिंहकीर्त्ति, हेमकीर्त्ति और चारुकीर्ति, हुए ॥ १८ ॥

नेमिनन्दी, नाभिकीर्त्ति, नरेन्द्रकीर्ति, श्रीचन्द्र, पद्मकीर्ति, वर्द्धमानकीर्ति हुए ॥ १९ ॥

अकलङ्कचन्द्र, ललितकीर्ति, त्रैविध्यविद्याधीश्वर केशवचन्द्र, चारुकीर्ति हुए ॥ २० ॥

सैद्धान्तिक महातपस्वी अभयकीर्ति, और वनवासी महापूज्य वसन्तकीर्ति हुए ॥ २१ ॥

जगत्प्रख्यातकीर्त्ति उन श्रीवनवासी वसन्तकीर्ति आचार्य्यके शिष्य हुए। अनेक गुणोंके स्थान, यम नियम तपश्चरण महाव्रतादि-मणियोंके सागर परवादिगज विदारणसिंह और वादीन्द्र भुवनविख्यात त्रिविद्याधीश्वर श्रीविशालकीर्ति हुए और उनके पट्टधर श्रेष्ठचारित्र मूर्त्ति एकान्तरादि उग्र तपोविधानसे ब्रह्मा सन्मार्गप्रवर्त्तक श्रीशुभकीर्ति हुए ॥२२॥२३॥

इनके पट्टपर हम्मीर महाराजसे पूजनीय संयम समुद्रके चन्द्रमा समान प्रसिद्ध सैद्धान्तिक श्रीधर्मचन्द्र हुए ॥ २४ ॥

उनके पट्टपर यतिपति स्याद्वाद विद्यासागर अनेक देशोंमें विस्तरित हैं शिष्य जिनके धर्म कथाओंके कर्त्ता बाल ब्रह्मचारी श्रीरत्नकीर्ति हुए ॥ २५ ॥

समस्त सङ्घोंमें तिलक श्रीनन्दिसङ्घमें विशालकीर्तिसे प्रसिद्ध निर्म्मल सारस्वतीय गच्छमें चन्द्रमा समान दिगन्त विश्रान्तकीर्ति श्रीरत्नकीर्त्ति गुरु जयवन्त रहैं ॥ २६ ॥

इनके पट्टपर, श्रीपूज्यपाद स्वामीके ग्रन्थोंकी टीका करनेसे पाई है प्रसिद्धि जिन्होंने नाना गुण विभूषित, वादविजेता अनेक राजाओंसे पूजित श्रीप्रभाचन्द्र देव चन्द्रतारास्थिति-पर्य्यन्त जयवन्त रहैं ॥ २७ ॥

श्रीप्रभाचन्द्रके पट्टपर विशुद्धसिद्धान्तरत्नाकर, और अनेक जिन प्रतिष्ठाओंसे प्रतिष्ठा प्राप्त करनेवाले, * श्रीपद्मनन्दी हुए ॥ २८ ॥

जिनके शुद्ध हृदयमें अभेद भावसे आलिङ्गन करती हुई ज्ञानरूपी हंसी आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करती है। और जिन्होंने जिन-दीक्षा धारण कर जिनवाणी और पृथ्वीको पवित्र किया है। वह परमहंस निर्ग्रन्थ पुरुषार्थशाली अशेष शास्त्रज्ञ सर्व हितपरायण मुनिश्रेष्ठ ‡ श्रीपद्मनन्दी मुनि जयवन्त रहें ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

श्रीपद्मनन्दीके शिष्य अनेक वादियोंमें प्राप्तविजय उपदेशसे अज्ञान-तम-दमन करनेवाले जगत्प्रसिद्ध श्रीसकलकीर्ति भट्टारककी जय रहै ॥ ३२ ॥

श्रीमान् सकलकीर्ति-आचार्य्यके पट्टधर श्रीभुवनकीर्ति मुनि, परम तपस्वी अनेक मुनिगण सेवित, अनेक वादोंमें जिनधर्मकी प्रभावना करने वाले समस्त सङ्घोंकी रक्षा करें ॥ ३३ ॥

उनके शिष्य ज्ञानशाली तपोभूमि नीतिज्ञ अनेक जैन राजाओंसे स्तुत, श्रीज्ञानभूषण यति सबकी रक्षा करें ॥ ३४ ॥

तत्पदसेवी निखिल-तार्किकचूड़ामणि श्रीगोमट्टसार आदि महाशास्त्रज्ञ विजयकीर्ति हुए ॥ ३५ ॥

मल्लिभैरव, महादेवेन्द्र प्रभृति मुख्य राजाओं द्वारा पूजित, तर्कादि षट शास्त्रके ज्ञाता, यशःशाली, भवदुःखभञ्जन, वह श्रीविजयकीर्ति मुनि हम सबकी रक्षा करें ॥ ३६ ॥

भव्योंको आनन्द देनेमें पूर्णचन्द्र, स्याद्वाद न्यायसे अनेक राजाओंको जैन बनानेवाले, श्रीविजयकीर्तिके शिष्य, जगत्प्रसिद्ध, भारतेन्दु, षट् तर्क-वागीश, वादिरूप हस्तियोंको सिंह, प्रकट-दुःखप्रद भयङ्कर कर्म्मसन्ततिको नाश करनेवाले, आत्मानुभावी, समस्त शास्त्र पारङ्गत, दयालु, श्रीशुभचन्द्राचार्य्य, समस्त मुनिगणोंकी रक्षा करें ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

---

* नोट—यह ही पाण्डवपुराणके कर्ता श्रीशुभचन्द्राचार्य्यकी पट्टावली प्रारम्भ हुई।

‡ नोट—इस श्लोकका यह अर्थ भी होता है "पवन प्रेरित बांस बनकर जहां मधुर ध्वनि होती है" ऐसी देश (पृथ्वी) को सुशोभित करनेवाले इससे यह भाव भी प्रतीत होता है कि शायद आपसे ही बलात्कार-गणकी पट्टावली चली हो क्योंकि इस बलात्कारगणमें बांसोंकी उत्पत्ति बहुतायतसे होती है और शायद इतिहास लेखकोंने इसकी उपमा भी इसी प्रकारसे दी है। तथा साहित्यमें भी बड़े बड़े कवियोंने ऐसी अनेक उपमायें दी है। यथा कवि कालिदास "सकीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः" इत्यादि।

श्रीशुभचन्द्राचार्य्यके पट्टधर भट्ट लोगोंको उपदेशामृतवर्षी, श्रीसुमति कीर्ति भट्टारक हुए ॥ ३९ ॥

संसारको क्षणभंगुर जानकर मोक्षाभिलाषी हो तपस्वी हुए वह यति-पति, श्रीसुमतिकीर्ति देव मोह-कामादि-शत्रु-विजयी जयवन्त रहैं ॥ ४० ॥

उनके पट्टधर सूर्य्य समान, स्याद्वादविद्यामें निपुण विशालकीर्तिवाले, और उनके शिष्य, अपनी अमृतवाणीसे भव्यगणोंको पुष्ट करनेवाले, मुनिगणसे पूजित श्रीगुणकीर्ति आचार्य्य हुए ॥ ४१ ॥

विद्वद्भट, विशुद्धमति, मुमुक्षु, मधुरवचन, व्यवहारवेत्ता तर्कशास्त्रज्ञ, वह श्रीमान् गुणकीर्ति इस जगतमें जयवन्त रहैं ॥ ४२ ॥

उनके पट्ट कमलको विकाश करनेमें पद्मबन्धु, कुवादियोंके मुख कुमुदों को मुद्रित करनेमें सूर्य्य, अन्धकार नष्ट करनेमें तपन, सूर्य्यसे भी अधिक तेजस्वी श्रीमान् वादिभूषण यतिवर चिरंजीवी रहै।

अनेक न्यायशास्त्रवेत्ता, अनेक जनन्यायोंसे पूरित, कर्णाटक देशको सुशोभित करनेवाले कलिकालमें गौतमगणधरसे रत्नत्रयविभूषित, श्रीशुभ-चन्द्राचार्य सम प्रभाशाली, श्रीवादिभूषण गुरु वर्त्तमान रहैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

उनके पट्ट कमलको विकाशित करनेवाले अज्ञानको शोषणेवाले, भव्य-कमलोंको सूर्य्य श्रीरामकीर्ति भट्टारक हुए ॥ ४५ ॥

यह व्याकरणादि सर्वशास्त्रनिपुण, श्रीस्याद्वादन्यायवेदी, राजमान्य, सरस्वतीय गच्छपति रामकीर्ति भट्टारक इस जगतमें अलंकृत रहैं ॥ ४६ ॥

उनके पट्टपर सर्व शास्त्रके जाननेवाले, सर्व कलासम्पन्न, * श्रीयशःकीर्ति हुए ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अज्ञान तिमिरनाशक, भव्य-जीव प्रतिबोधक, श्रीयशःकीर्तिके पट्टको प्रसारनेवाले, सूर्यातिशायी तेजस्वी, श्रीपद्मनन्दी हुए ॥ ४९ ॥

यह श्रीमान पद्मनन्दी मुनि कुवादिवाद विजयी, शुद्धात्मलीन, निर्म-

* नोट—नम्बर ४८ के श्लोकमें लिखा है कि "श्रीरामकीर्त्ति सुपट्टे पद्मनन्दी गणीशः" और ४७वें श्लोकमें उन कीर्तिको लिखते हैं "रामादिकीर्त्ति स्तत सत्पट्टे यशःकीर्त्तिनाम सततं विभाजते धर्मभाक्" इन दोनों श्लोकोंसे कुछ भ्रम पड़ता है कि श्रीरामकीर्तिके पट्टपर एक जगह यशकीर्ति और एक जगह पद्मनन्दी लिखा है इससे यह मालूम होता है कि श्रीयशःकीर्ति श्रीरामकीर्तिके शिष्य हों परन्तु पट्टाधीश शिष्य न हों रामकीर्तिसे शायद आप विद्याध्ययन करते हों। पट्टाधीश शिष्य आपके पद्मनन्दी ही हों। श्लोकोंसे भी कुछ ऐसाही भाव निकलता है परन्तु हम इसपर कुछ जोर नहीं दे सकते जबतक इसको कोई प्रमाण न मिल जाय।



स्वर्गीय दानवीर जैन-कुल-भूषण श्रीमान सेठ माणिकचन्द हीराचन्द, जे० पी०, बम्बई।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

लचरित्र, शास्त्रसमुद्रपारगामी, राजमान्य, श्रीरामकीर्त्तिके पट्टको अलंकृत करें ॥ ५० ॥

उनके पट्टधर अनेक राजाओंको सम्बोधनेवाले, बुद्धिशाली, श्रीदेवेन्द्र-कीर्त्ति हुए। वह श्रीदेवेन्द्रकीर्त्ति गुरु जगत्प्रसिद्ध अनेक राजाओंसे मानित, सदा कल्याण करें ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

उनके पट्टपर पापतिमिर विनाशक, श्रीक्षेमकीर्त्ति मुनि हुए। वह क्षेमकीर्त्ति मुनि वस्तुके हेयोपादेयतामें प्रवर बुद्धि, प्राणिमात्र-हितवाञ्छक, वचन माधुरीसे समस्त राजाओंको अनुरञ्जित करनेवाले इस पृथ्वीतल पर अनेक शतवर्ष गोयमान रहें ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

उनके पट्टपर दुष्कर्म्मंहर्त्ता, भव्य-कमलोंको अपूर्व सूर्य्य, श्रीनरेन्द्रकीर्त्ति जयवन्त रहें। जो कि श्रीस्याद्वाद शास्त्रज्ञ स्फूर्यमाण, अध्यात्म-रसा-स्वादी, मोक्षमार्गको दिखानेवाले, सर्वज्ञमन्य-कुवादि-वादियोंके मदहर्त्ता हुए ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

इनके पट्टरूपी समुद्रको बढ़ानेमें पूर्णचन्द्र समान, कामहस्तिविदारण-गजेन्द्र, सम्यक् ज्ञानपद्मविकाशी-सूर्य्य, उपदेश वृष्टि करनेमें मेघतुल्य, मिथ्यान्धकार नष्ट करनेमें अतिशायी भानु, अनेक शास्त्र पारगामी श्रीविजयकीर्त्ति हमारा मङ्गल करें ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

उनके पट्टपर वादीन्द्रचूड़ामणि, श्रीनेमिचन्द्राचार्य्य हुए। वह षट्-शास्त्र पारंगत दिक्प्रसरित यशोभागी, आत्मज्ञान-रस-निभर यति शिरो-मणि, हजारों वर्ष जीवित यश रहें ॥ ५९ ॥ ६० ॥

उनके शिष्य अनेक राजसभा-सम्मानित, श्रीचन्द्रकीर्त्ति भट्टारक हुए। जो कि श्रीऋषभदेव-चरण-भक्तिपरायण, नित्य ध्यानाध्ययनमें लीन, दया के समुद्र, महाव्रती, आत्मानुभवी, इत्यादि गुणशाली इस भारतभूमिको सुशोभित किया ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

जिन श्रीपद्मनन्दी गुरुने बलात्कारगणमें अग्रसर होकर पट्टारोहण किया है और जिन्होंने पाषाण घटित सरस्वतीको उज्जयन्त गिरि पर वादियोंके साथ वादित कराया है, तबहीसे सारस्वत गच्छ चला। इसी उपकृति स्मरणार्थ उन श्रीपद्मनन्दी मुनिको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ६३ ॥

मूलसङ्घके अन्तर्गत श्रीशुभचन्द्राचार्य्यकी पट्टावलीकी केवल नामावली।

१ भद्रबाहु, २ गुप्तिगुप्त ३ माघनन्दी, ४ जिनचन्द्र, ५ कुन्दकुन्द, ६ उमास्वाति, ७ लोहाचार्य्य, ८ यशःकीर्ति, ९ यशोनन्दी, १० देवनन्दी, ११ गुणनन्दी (अपर नाम पूज्यपाद) १२ वज्रनन्दी, १३ कुमारनन्दी, १४ लोकचन्द्र, १५ प्रभाचन्द्र, १६ नेमिचन्द्र, १७ भानुनन्दी, १८ सिंहनन्दी, १९ वसुनन्दी, २० वीरनन्दी, २१ रत्ननन्दी, २२ माणिक्यनन्दी, २३ मेघचन्द्र, २४ शान्तिकीर्ति, २५ मेरुकीर्ति, २६ महाकीर्ति, २७ विश्वनन्दी, २८ श्रीभूषण, २९ शीलचन्द्र, ३० श्रीनन्दी, ३१ देशभूषण, ३२ अनन्तकीर्ति, ३३ धर्म्मनन्दी, ३४ विद्यानन्दी, ३५ रामचन्द्र, ३६ रामकीर्ति, ३७ अभयचन्द्र, ३८ नरचन्द्र, ३९ नागचन्द्र, ४० नयनन्दी, ४१ हरिश्चन्द्र, ४२ महीचन्द्र ४३ माधवचन्द्र, ४४ लक्ष्मीचन्द्र, ४५ गुणकीर्ति, ४६ गुणचन्द्र, ४७ वासवचन्द्र, ४८ लोकचन्द्र, ४९ श्रुतकीर्ति, ५० भानुचन्द्र, ५१ महाचन्द्र, ५२ माघचन्द्र, ५३ ब्रह्मनन्दी, ५४ शिवनन्दी, ५५ विश्वचन्द्र, ५६ हरिनन्दी, ५७ भावनन्दी, ५८ सुरकीर्ति, ५९ विद्याचन्द्र, ६० सुरचन्द्र, ६१ माघनन्दी, ६२ ज्ञाननन्दी, ६३ गंगनन्दी, ६४ सिंहकीर्ति, ६५ हेमकीर्ति, ६६ चारुनन्दी, ६७ नेमिनन्दी, ६८ नाभिकीर्ति, ६९ नरेन्द्रकीर्ति, ७० श्रीचन्द्र, ७१ पद्मकीर्ति, ७२ वर्द्धमान, ७३ अकलङ्क, ७४ ललितकीर्ति, ७५ केशवचन्द्र, ७६ चारुकीर्ति, ७७ अभयकीर्ति, ७८ वसन्तकीर्ति, ७९ प्रख्यातकीर्ति, ८० विशालकीर्ति, ८१ शुभकीर्ति, ८२ धर्म्मचन्द्र, ८३ रत्नकीर्ति, ८४ श्रीप्रभाचन्द्र, ८५ * पद्मनन्दी ८६ सकलकीर्ति, ८७ भुवनकीर्ति, ८८ ज्ञानभूषण, ८९ विजयकीर्ति, ९० † शुभचंद्र, ९१ सुमतिकीर्ति, ९२ गुणकीर्ति, ९३ वादिभूषण, ९४ रामकीर्ति, ९५ यशःकीर्ति, ९६ पद्मनंदी, ९७ देवेन्द्रकीर्ति, ९८ क्षेमेन्द्रकीर्ति, ९९ नरेन्द्रकीर्ति १०० विजयकीर्ति, १०१ नेमिचन्द्र, १०२ चन्द्रकीर्ति।

---

* नोट—यहांसे शुभचन्द्राचार्य्यकी आचार्य नामावली चली।

† नोट—यही पाण्डवपुराणके रचयिता हैं।

पाण्डवपुराणके रचयिता श्रीशुभचन्द्राचार्य्यका संक्षिप्त परिचय ।

मैं जब अपने जैनसाहित्यकी ओर दृष्टि फेरता हूं तो मुझे जैन साहित्य-कोषकी अपूर्तिकी किम्वदन्ती तथा जैनाचार्य्योंकी अलभ्य और सर्वोत्कृष्ट कृतियां, दोनों आकुल व्याकुल किये देती हैं। सबसे बढ़कर आश्चर्य तो मुझे इस बातका है कि जैनाचार्य्योंके बनाये हुए अनेक अन्यान्य विषयोंके ग्रन्थ होते हुए भी न मालूम क्यों इस कोषमें लोग भिन्न भिन्न विषयोंके अभावकी आशङ्का करते हैं? इसके दो ही कारण हो सकते हैं। एक तो लोगोंकी अन्यान्य साहित्योंसे अरुचि और दूसरा सर्व प्रधान कारण यह कि जैनियोंकी असावधानता। किन्तु आज मैं पाण्डवपुराणके रचयिता श्रीशुभचन्द्राचार्य्यकी गुरुपरम्परा तथा उनके साहित्यिक कार्य्यका संक्षिप्त परिचय प्रकाशित कर साहित्य-प्रेमी विद्वद्गणोंका ध्यान आकृष्ट करता हूं कि वे देखें कि जैनाचार्य्योंका भिन्न भिन्न विषयों पर कैसा आधिपत्य था, और वे कैसी विद्वत्ताके साथ अन्यान्य विषयोंके ग्रन्थ रचना किया करते थे।

हमारे चरित्रनायक शुभचन्द्राचार्य्य "मूलसङ्घ" के उद्योतक थे। यह वि० सं० १६०८ में छोटे "सांगवाड़े" के भट्टारक पट्टपर अभिषिक्त थे। इनकी गुरुपरम्परा श्रीपद्मनन्दी मुनिसे प्रारम्भ होती है। पद्मनन्दी आचार्य्य मूलसङ्घ, नन्दी आम्नाय, बलात्कारगण और सरस्वती गच्छकी पट्टावलीके ८५ वें पट्टाधीश थे। इनका पट्ट दिल्लीमें था। यह १० वर्ष ७ महीने गृहस्थाश्रममें, २३ वर्ष ५ महीनों तक साधु अवस्थामें रहकर पीछे वि० सं० १३८५ में पौष शुक्ल सप्तमीको दिल्लीके मूलसङ्घीय पट्टपर बैठे थे। इस पट्टपर ६५ वर्ष तक रहकर वि० सं० १४५० में इन्होंने स्वर्गारोहण किया। अर्थात् इनकी अवस्था ९९ वर्षकी थी। इन्हींसे एक दूसरा मूलसङ्घीय पट्ट सांगवाड़ेमें स्थापित हुआ।

पाण्डवपुराणकी प्रशस्ति तथा शुभचन्द्राचार्य्यकी पट्टावलीमें निम्न लिखित क्रमसे पद्मनन्दीकी शिष्य परम्परा दी गयी है :—

पद्मनन्दीके शिष्य सकलकीर्ति आचार्य्य हुए। इन्होंने वि० सं० १४९५ तक * "सांगवाड़े" के पट्टको अपनी दैदिप्यमान धार्म्मिक तथा ज्ञानकान्तिसे समुद्योतित किया था। ये बड़े ही दद्दुर्ष विद्वान् थे। इन्होंने सिद्धान्तसार, महापुराण, उपदेश सिद्धान्त-रत्नमाला तथा सिद्धान्त मुक्तावली आदि ४० ग्रन्थोंका प्रणयन किया था। इनके शिष्य भुवन कीर्ति आचार्य्य हुए हैं अभी तक इनका ऐतिहासिक वृत्तान्त कुछ नहीं मिला है इसी लिये इनके बारेमें और कुछ नहीं लिखा जा सकता। भुवनकीर्तिके शिष्य श्रीज्ञानभूषणाचार्य्य हुए हैं। ये इस पट्टपर वि० सं० १५५५ तक आसीन रहे। ये भी अपने समयके एक अच्छे प्रसिद्ध आचार्य्य थे। इन्होंने पञ्चास्तिकाय टीका, गोमट्टसार टीका, नेमिनिर्वाण, काव्य पञ्जिका और परमार्थोपदेश आदि कई ग्रन्थोंका प्रणयन किया है। इनके सांगवाड़के पट्टपर विजयकीर्ति आचार्य्य बैठे। इनके भी ग्रन्थ आदिका कुछ पता नहीं लगता। किन्तु श्रीशुभचन्द्राचार्य्यने आपही जैसे यशस्वी आचार्य्यको पाकर अपनी इतनी उदात्तकीर्ति चारो तरफ फैलाई।

इन्होंने निम्न लिखित ग्रंथ बनाये हैं —

तत्त्वसार १ चतुर्विंशति पूजा २ सार्द्धद्वीपपूजा ३ तेरह द्वीपपूजा ४ पञ्चपरमेष्ठी पूजा ५ चतुर्विंशति महाराज पूजा ६ सारस्वतयन्त्र पूजा ७ श्रुत पूजा ८ सहस्त्रनाम ९ सम्यक्त्व-कौमुदी १० सुभाषित-रत्नावली ११ सुभाषितार्णव १२ चन्द्रप्रभु पुराण १३ पाण्डवपुराण १४ जीवन्धर चरित्र १५ श्रेणिक-चरित्र १६ काकुण्ड चरित्र १७ चन्दना चरित्र १८ विमान शुद्ध शान्ति १९ चिन्तामणि व्याकरणलघु २० नन्दीश्वर कथा २१ आशाधर कृत पूजन टीका २२ चिन्तामणि यन्त्र पूजा २३ कर्म्मदहन पूजन २४ पार्श्वनाथ काव्य पञ्जिका २५ सहस्त्रगुणी पूजन २६ गणधर वलय पूजन २७ पल्य विधान उद्यापन २८ चरित्र शुद्धि तप उद्यापन २९ अपशब्द खण्डन ३० तर्कशास्त्र ३१ संस्कृत सम्बोधिनी टीका ३२ अध्यात्म पद्य टीका ३३ सर्वतोभद्र पूजन ३४ अंगप्रज्ञप्ति ३५ स्तोत्र ३६ पद ३७ अम्बिका कल्प ३८ प्रद्युम्न चरित्र ३९ जिन यज्ञकल्प ४० स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षा टीका ४१

* नोट—पाण्डवपुराणकी प्रशस्तिमें लिखित "शाकवाटपुर" सांगवाड़ा हो सकता है। भाषा-तत्वज्ञ लोग यदि सङ्गतीय स्वीकार कर लेंगे।

अष्टप्राभृत टीका ४२ त्रैलोक्य-प्रज्ञप्ति ४३ षोडशकारणोद्यापन ४४ पद्मनन्दि पञ्चविंशति टीका ४५ श्रीपाल चरित्र ४६ पद्मनाभपुराण ४७ तत्त्वार्थ टीका ४८ इत्यादि इन ग्रंथोंके विषय तथा इयत्ता देखकर हमारे पाठक सहज हीमें अनुमान कर सकते हैं कि शुभचन्द्राचार्य्य कितनी उच्च श्रेणीके विद्वान् थे। पाण्डवपुराणकी प्रशस्ति तथा इस पट्टावलीमें शुभचन्द्राचार्य्यकी गुरुपरम्परा एकही क्रमसे दी गई है। जैसे—पद्मनन्दी १ सकलकीर्ति २ भुवनकीर्ति ३ ज्ञानभूषण ४ विजयकीर्ति ५ शुभचन्द्राचार्य्य। पद्मनन्दीके स्वर्गारोहणके समय वि० सं० १४५० से शुभचन्द्राचार्य्यके समय वि० सं० १६०८ तक सकलकीर्ति तथा ज्ञानभूषणके उल्लिखित समयके अनुमानसे १५८ वर्षोंमें पांच आचार्य्योंका होना सर्वथा सम्भव है। पाण्डव पुराणकी प्रशस्तिमें लिखा हुआ है कि शुभचन्द्राचार्य्यके शिष्य श्रीपालवर्णीने पाण्डवपुराणकी रचनाके समयमें प्रतिलिपि आदि करनेमें पूरी सहायता दी थी। किन्तु श्रीपालवर्णीका नाम पट्टावलीमें नहीं आया है। कार्त्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीका शुभचन्द्राचार्य्यने वि० सं० १६०० में बनायी है। क्योंकि उसकी प्रशस्तिमें लिखा हुआ है कि :-

श्रीमद्विक्रम भूपतेः परिमिते वर्षे शते षोडशे।
श्रीमच्छ्रीशुभचन्द्रदेव रचिता टीका सदा नन्दतु॥

इससे साफ साफ मालूम होता है कि पाण्डवपुराण और कार्त्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीकाके रचना कालमें केवल आठ वर्षका अन्तर है। अर्थात् पाण्डवपुराणके आठ वर्ष पहले उक्त ग्रन्थकी टीका बनी है। क्योंकि इस पुराणकी प्रशस्तिमें लिखा ही हुआ है —

"श्रीमद्विक्रमभूपतेर्द्विकहते स्पष्टाष्ट-सङ्ख्ये शते"

इन दो ग्रन्थोंकी प्रशस्तियोंमें दी हुई आचार्य्य नामावलियां भी बराबर मिल जाती हैं। इनकी विद्वत्ताके अनुसार इन्हें आचार्य्योंने त्रिविद्य-विद्याधर और षट्-भाषा-कवि-चक्रवर्त्ती की उपाधि दी थी। यह बात कार्त्तिकेयानुप्रेक्षाकी धर्म्मानुप्रेक्षा नामवाली टीका की। इति श्री स्वामिकार्त्तिकेय टीकायां त्रिविद्यविद्याधर षट्भाषाकविचक्रवर्त्ति भट्टारक श्रीशुभचन्द्राचार्य्य विरचितायां धर्म्मानुप्रेक्षायां द्वादशोऽधिकारः॥ इस प्रशस्तिसे स्पष्टतया ज्ञात होती है।

श्रीशुभचन्द्राचार्य्यके नामसे प्रायः सारी जैन समाज परिचित है।

और जैन समाजमें आपका नाम बड़े आदरपूर्वक लिया जाता है। श्रीशुभचन्द्राचार्य्यके नाम स्मरण मात्रसे ही हमारे अन्तःकरणमें एक प्रकारकी अद्भुत भक्ति और प्रेमका सञ्चार हो जाता है। इसका खास कारण यह है कि श्रीज्ञानार्णवके प्रसिद्धकर्त्ता भी श्रीशुभचन्द्राचार्य्य हो गये हैं। और उनका वह योगार्णव जैन समाजमें बड़ी आदरकी दृष्टिसे देखा जाता है। यद्यपि पाण्डवपुराणके कर्त्ता दूसरे शुभचन्द्राचार्य्य हैं परन्तु हम लोग हमारी ऐतिहासिक अनभिज्ञताके कारण प्रायः दोनों शुभचन्द्रोंको एकही गिन लेते हैं, यह बड़ी भारी भूल है। आज पर्य्यन्त हमको अथाह जैन-इतिहास-सागरकी खोजमें जैन-साहित्य-भण्डारके प्रकाशमान रत्न जैन-सिद्धान्ताकाशके उज्वल चन्द्र ३ शुभचन्द्राचार्य्यों का पता लगा है। हमें बड़े शोकके साथ कहना पड़ता है कि जैन इतिहास-सूर्य्यके मेघाच्छन्न रहनेसे हम हमारे पाठकोंको इन तीनों आचार्य्योंका पूर्ण परिचय नहीं दे सकते. क्या? ऐसे ऐसे आचार्य्योंका परिचय नहीं पानेपर भी हम लोगोंका चित्त व्याकुल नहीं होता कि जिन्होंने एक दिन जैन साहित्यकी पूर्तिके लिये अपने अमूल्य जीवनका स्वार्थ त्यागकर भी दिन रात परिश्रम कर इसके भण्डारकी पूर्ति की। भवन यथासम्भव प्रयत्न कर रहा है कि जहां तक हो इनका पूर्ण परिचय देनेका प्रबन्ध किया जाय। और यत्किञ्चित् जो कुछ सफलता भी प्राप्त की है वह समय समय हम पाठकोंको सादर भेट करेंगे। आज भी हम पाठकोंको सिर्फ ३ आचार्य्योंका नाम और पाण्डवपुराणके कर्त्ताका सामान्य परिचय देते हैं यदि हो सकेगा तो हम पाठकोंको फिर अगली किरणोंमें इनका पूर्ण परिचय देनेका प्रयत्न करेंगे।

१ ज्ञानार्णवके कर्त्ता धाराधिपति महाराज मुंजके समकालीन श्रीशुभचन्द्राचार्य्य।

२ पाण्डवपुराणके कर्त्ता श्रीशुभचन्द्राचार्य्य।

३ श्रीखण्डगिरि उदयगिरिके शिलालेखोंमें उल्लिखित श्रीकुलचन्द्राचार्य्य के शिष्य श्रीशुभचन्द्राचार्य्य।

यदि कोई महाशय इन उपर्युक्त आचार्य्योंका कुछ विशेष परिचय लिखनेकी कृपा करेंगे तो भास्कर सादर उनके लेखको स्थान देगा।

सङ्घोंके स्थापित होनेके कारण
तथा
अन्यान्य सङ्घोंके आचार्य्योंकी उपाधियोंमें विभिन्नता ।

पूर्व देशके पुण्ड्रवर्द्धन पुरमें भद्रबाहु द्वितीयके शिष्य वि० सं० २६ में श्री अर्हद्बली आचार्य्य अवतीर्ण हुए। इनके गुप्तिगुप्त और विशाखाचार्य्य दो नाम और हैं। ये अङ्गपूर्वदेशके एक देशके ज्ञाता, प्रसारणा धारणा विशुद्धि आदि उत्तम क्रियासम्पादनमें कटिबद्ध, अष्टाङ्गनिमित्तज्ञानके वेत्ता, और निग्रहानुग्रहपूर्वक मुनिसङ्घके शासन करनेमें समर्थ थे। इसके अतिरिक्त ये प्रत्येक पांचवर्षके अन्तमें सौ योजनमें निवास करनेवाले मुनियोंको इकट्ठे करके युग-प्रतिक्रमण कराते थे। एक समय अर्हद्बल्याचार्य्यने युग प्रतिक्रमणके समय मुनिगणोंसे पूछा कि "सब यति आगये?" मुनियोंने कहा कि—"भगवन् हम सब अपने अपने सङ्घ सहित आगये।" इस वाक्य में अपने अपने सङ्घके प्रति मुनियोंकी निजत्व बुद्धि (पक्षबुद्धि) प्रकटित होती थी। इसलिये तत्काल ही अर्हद्बल्याचार्य्यने निश्चय किया कि अब इस कालमें जैन धर्म्म भिन्न भिन्न गणोंके पक्षपातसे ठहर सकेगा, उदासीन भावसे नहीं। अर्थात आगेके मुनिगण अपने अपने सङ्घका, गणका और गच्छका पक्ष धारण करेंगे। सबको एकरूप समझकर सन्मार्गकी प्रवृत्ति नहीं करेंगे ऐसा ही विचारकर उन्होंने निम्न लिखित कारणसे चार सङ्घ स्थापित किये :—

(१) नन्दी नामक वृक्षके मूलमें जिसने वर्षायोग धारण किया उसने नन्दीसङ्घ अर्थात् मूलसङ्घ स्थापित किया।

(२) जिनसेन नामक तृणतलमें जिसने वर्षायोग धारण किया उसने वृषभसंघ अर्थात् सेनसंघ स्थापित किया।

(३) सिंहकी गुफामें जिसने वर्षायोग धारण किया उसने सिंहसंघ स्थापित किया।

(४) जिसने देवदत्ता नामक वेश्याके नगरमें वर्षायोग धारण किया उसने देवसंघ स्थापित किया।

(१) नन्दीसङ्घ (मूलसङ्घ) में नन्द्याम्नाय, सरस्वतीगच्छ अथवा पारिजातगच्छ और बलात्कारगण है। मूलसंघके आचार्य्योंकी चार उपाधियां हैं जैसे:—नन्दी १ चन्द्र २ कीर्ति ३ भूषण ४ इस सङ्घके आदि प्रवर्त्तक आचार्य्य माघनन्दी हुए हैं।

(२) सेनसङ्घमें पुष्करगच्छ और सुरस्थगण हैं। सेनसङ्घके आचार्य्योंकी भी चार उपाधियां हैं। जैसेः—राज, वीर, भद्र और सेन। इस संघके आदि प्रवर्तक आचार्य्य प्रथम जिनसेन हुए हैं।

(३) सिंहसङ्घमें चन्द्रकपाट गच्छ और केनूर गण है। इस सङ्घके आचार्य्योंको भी वे ही चार उपाधियां हैं जैसे:—सिंह, कुम्भ, आस्रव और सागर।

(४) देवसंघमें पुस्तक गच्छ और देशीय गण हैं। इसके भी वे ही चार उपाधियां हैं जैसे:——देव, दत्त, नाग और तुङ्ग, जैसे अकलङ्कदेव इत्यादि।

इसी प्रकार श्रीपद्मनन्द्याचार्य्यने जब उज्जयन्तिगिरि (गिरनार पर्वत) पर पाषाणनिर्मित सरस्वतीदेवीसे वादियोंसे वाद कराया, तबसे ही श्रीमूलसङ्घमें सरस्वती गच्छ स्थापित हुआ। इसका उल्लेख पाण्डवपुराण के कर्ता श्रीशुभचन्द्राचार्य्य ने पाण्डवपुराणके मङ्गलाचरण में "कुन्दकुन्दोग्रणी येन उज्जयन्तगिरिमस्तके। सोऽवताद्वादिता ब्राह्मी पाषाणघटिता कलौ॥" इस श्लोकसे किया है और नन्दीसङ्घकी पट्टावली तथा शुभचन्द्राचार्य्यकी गुर्वावलीमें "पद्मनन्दिगुरुर्जातो बलात्कारगणाग्रणी, पाषाणघटिता येन वादिता श्रीसरस्वती॥ उज्जयन्तगिरौगच्छः स्वच्छ सारस्वतोऽभवत्। अतस्तस्मै मुनीन्द्राय नमस्ते पद्मनन्दिने" इस श्लोकद्वारा किया है।

इन चार संघोंकी शाखा प्रशाखाओंका अवलम्बन कर समय समय पर भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें अन्यान्य गण गच्छके कई पट्ट स्थापित हुए हैं। सभी पट्टोंकी पट्टावलियां एकत्रित होनेपर जैन इतिहासका पूर्ण परिचय दिया जा सकता है। भवनमें कई पट्टावलियां संगृहीत हैं उनमें प्रथम किरणसे लेकर तृतीय किरण तक सेनसङ्घकी पट्टावली प्रकाशित हुई है। इस किरण में भी मूलसङ्घ और काष्टासङ्घकी भिन्न भिन्न प्रकारकी पांच पट्टावलियां प्रकाशित होती हैं।

बाबू करोड़ीचन्द जैन
मंत्री
श्री जै० सि० भ० आरा।

नन्दीसङ्घ बलात्कारगण सरस्वतीगच्छ की पट्टावली।

श्रीत्रैलोक्याधिपं मत्वा स्मृत्वा सद्गुरुभारतीम्।
वक्ष्ये पट्टावलीं रम्यां मूलसङ्घगणाधिपाम्॥ १॥
श्रीमूलसङ्घप्रवरे नन्द्याम्नाये मनोहरे।
बलात्कारगणोत्तंसे गच्छे सारस्वतीयके॥ २॥
कुन्दकुन्दान्वये श्रेष्ठं उत्पन्नं श्रीगणाधिपम्।
तमेवात्र प्रवक्ष्यामि श्रूयतां सज्जना जनाः॥ ३॥

प्रथम पट्टावलीमें युगादि चौदह कुलकर हुए, पश्चात् युगल धर्म्म निवारक संसार तारक श्री १००८ आदिनाथ प्रथम तीर्थङ्कर हुए। पीछे अन्यान्य बाइस तीर्थङ्कर हो जाने पर चौबीसवें तीर्थङ्कर श्री १००८ महावीर स्वामी हुए। इसके बाद ६२ वर्षों तक तीन केवली रहे।

गाथा

अन्तिमजिणणिव्वाणे केवल णाणीय गोयम मुणींदो।
बारह वासेय गये सुधम्म सामीय संजादो॥ १॥
तह बारह वासे पुण संजादो जम्बुसामि मुणिणाथो।
अठतीस वास रहियो केवल णाणीय उक्किट्ठो॥ २॥
वासट्ठि केवलि वासे तिण्हि मुणि गोयम सुधम्म जम्बुअ
बारह बारह दो जण तिय दुगहीणं च चालीसं॥ ३॥

गौतम स्वामी १२ वर्षतक रहे इनके बाद सुधर्म्माचार्य्य बारह वर्षों तक केवली रहे। बारह वर्षके बाद जम्बूस्वामी ३८ वर्षों तक केवली बने रहे। इस प्रकारसे ६२ वर्षों तक उल्लिखित तीनों केवलियोंकी केवलिता रही।

तत्पश्चात् पांच श्रुतकेवली हुए.—

गाथा।

सुयकेवलि पंच जणा बासठि वासे गये सु संजादा।
पढमं चउदह वासं विण्हुकुमारं मुणेयव्वं॥ ४॥

नन्दि मित्त बास सोलह तिय अपराजीय वासवा वीसं।
वगहीण वीस वासं गोवद्धन भद्दबाहु गुणतीसं ॥ ५ ॥
सद सुय केवलणाणी पंच जणा विण्हु नन्दिमित्तो य।
अपराजिय गोवद्धण तह भद्दबाहुय संजादा ॥ ६ ॥

सौ वर्षों में निम्नलिखित पांच श्रुतकेवली हुए। १४ वर्षों में विष्णुनन्दी, १६ वर्षों में नन्दिमित्र, २२ वर्षों में अपराजित, १९ वर्षों में गोवर्द्धन और २९ वर्षों में महात्मा भद्रबाहु हुए।

इसके बाद श्रीमहावीर स्वामी के १६२ वर्ष पीछे-दश पूर्वधारी ग्यारह ११ मुनि हुए —

गाथा।

सद्यासट्ठि सुवासे गएसु उप्पण दहसु पूव्वधरा।
सदलिरासि वामाणिय एगादह मुणिवरा जादा ॥७॥
आयरिय विशाख पोट्ठल खत्तिय जयसेण नागसेण मुणी।
सिद्धत्थ धित्ति विजयं वुद्धिलिङ्ग देव धमसेणं ॥ ८ ॥
दह उगणीसय सत्तर इकवीस अट्ठारह सत्तर।
अट्ठारह तेरह बीस चउदह चोदय कमेणयं ॥ ९ ॥

श्रीमहावीर स्वामीके १६२ वर्ष बाद बिशाखाचार्य्य १० वर्षों तक, १७२ वर्ष के बाद प्रोष्ठिलाचार्य्य १९ वर्षों तक, १९१ वर्षों के बाद क्षत्रियाचार्य्य १७ वर्षों तक, २०८ वर्षों के बाद जयसेनाचार्य्य २१ वर्षों तक, २२९ वर्षों के बाद नागसेनाचार्य्य १८ वर्षों तक, २४७ वर्षों के बाद सिद्धार्थाचार्य्य १७ वर्षों तक, २६४ वर्षों के बाद धृतसेनाचार्य्य १८ वर्षों तक, २८२ वर्षों के बाद विजयाचार्य्य १३ वर्षों तक, २९५ वर्षों के बाद बुद्धिलिंगाचार्य्य २० वर्षों तक, ३१५ वर्षों के बाद देवाचार्य्य १४ वर्षों तक और ३२९ वर्षों के बाद धर्म्मसेनाचार्य्य १४ वर्षों तक रहे। अर्थात् १८३ वर्षों तक दशपूर्वके धारी रहे।

इस स्थितिके पीछे २२० वर्षों में एकाशाङ्गके धारी ग्यारह मुनि रहे, तत्पश्चात् १२३ वर्षों तक पांच एकादशाङ्गके पाठक रहे।

गाथा।

अन्तिम जिण णिव्वाणे तियसय पण चालवास जादेसु।
एगादहंग धारिय पंच जणा मुणिवरा जादा ॥ १० ॥

नक्खत्तो जयपालग पंडव धुवसेन कंस आयरिया।
अठारह वीसवासं गुणचालं चोद बत्तीसं ॥ ११ ॥
सद तेवीस वासे एगादह अङ्गधरा जादा।

श्री वीरसे ३४५ वर्ष बाद १८ वर्षों तक नक्षत्राचार्य्य, ३६३ वर्ष बाद २० वर्षोंतक जयपालाचार्य्य ३८३ वर्ष बाद ३९ वर्षों तक पाण्डवाचार्य्य ४४२ वर्ष बाद १४ वर्षों तक ध्रुवसेनाचार्य्य और ४५६ वर्षबाद ३२ वर्षों तक कंसाचार्य्य एकादशांगके धारी थे।

१२३ वर्षों के बाद ९७ वर्षों में दशाङ्गके धारी हुए।

गाथा।

वास सत्तावणदिय दसग नव अंग अट्ठधरा ॥ १२ ॥
सुभद्दं च जसोभद्द भद्दबाहु कमेण च।
लोहाचग्य मुणीसंच कहियंच जिणागमे ॥ १३ ॥
छह अट्ठारहवासे तेवीस बावण वास मुणिणाहं।
दसनव अट्ठंग धरा वास दुस द्वीस सधेसु ॥ १४ ॥

९७ वर्षों में चार पाठी हुए। श्री वीर ४६८ वर्षबाद ६ वर्षों तक श्री शुभद्राचार्य्य, ४७४ वर्ष बाद १८ वर्षों तक यशोभद्राचार्य्य, ४९२ वर्षबाद २३ वर्षों तक भद्रबाहु और ५१५ वर्षबाद ५० वर्षों तक लोहाचार्य्यजी अङ्गधारी रहे। इसी प्रकार ९७ वर्ष तक अङ्ग घटता घटता चला आया। २२० वर्षों तक इसकी यह अवस्था रही।

उल्लिखित आचार्यों को जब पाठ कण्ठस्थ था तो उस समय पुस्तक नहीं थी।

इसके बाद ११८ वर्षों तक एकाङ्ग धारी रहे।

गाथा।

पंचसये पणसठे अन्तिम जिण समय जादेसु।
उप्पण्णा पंच जणा इयंगधारी मुणेयव्वा ॥ १५ ॥
अहिवल्लि माघनन्दिय धरसेणं पुप्फयंत भूतबली।
अडवीसे इगवीसं उगणीसं तीस वीस वास पुणो ॥ १६ ॥

एकांगके धारी पांच हुए।

श्री वीरसे ५६५ वर्षबाद २८ वर्षों तक अर्हद्बल्याचार्य्य, ५९३ वर्षबाद २१ वर्षों तक माघनन्द्याचार्य्य, ६१४ वर्ष बाद १९ वर्षों तक धरसेनाचार्य्य और ६३३ वर्षबाद २० वर्षों तक भूतबल्याचार्य्य रहे। अर्थात् ११८ वर्षों

तक एकाङ्ग धारी घटते घटते श्रुतज्ञानी हुए। इन्हीं दो उपर्युक्त महर्षियों ने ग्रन्थ रचनाकी जिसका पूर्ण विवरण भास्करकी प्रथम किरणके ५१ पृष्ठमें है।

गाथा।

इगसय अठारवासे इयंगधारीय मुणिवराजादा।

उसय तिरासिय वासे णिव्वाणा अंगद्दित्ति कहिय जिणे॥ १७॥

अब मूलसङ्घका पाठ वर्णित होता है।

श्री महावीर के निर्वाणके ४७० वर्ष बाद विक्रमादित्यका जन्म हुआ। विक्रम जन्मके दो वर्ष पहले सुभद्राचार्य्य और विक्रम राज्यके ४ वर्षबाद भद्रबाहु स्वामी पट्ट पर बैठे। भद्रबाहु स्वामीके शिष्य गुप्तिगुप्त। इनके तीन नाम—गुप्तिगुप्त, अर्हद्बली और विशाखाचार्य्य। इनके द्वारा निम्न लिखित चार संघ स्थापित हुए:—

नन्दी वृक्षके मूलसे वर्षा योग धारण करने से नन्दिसङ्घ हुए इसके नेता माघनन्दी हुए अर्थात इन्होंने ही नन्दीसङ्घ स्थापित किया। जिनसेन नामक तृणतलमें वर्षा योग करनेसे एक ऋषिका वृषभ नाम पड़ा इन्होंने ही वृषभसङ्घ स्थापित किया। जिन्होंने सिंहकी गुफामें वर्षा योग का धारण किया उसने सिंहसङ्घ स्थापित किया, और जिसने देवदत्ता नामकी वेश्याके नगरमें वर्षा योग धारित किया उसीने देवसङ्घ स्थापित किया।

इसी प्रकार नन्दिसङ्घ पारिजात गच्छ बलात्कार गण में नन्दी, चन्द्र, कीर्ति और भूषण नामके चार मुनि हुए।

उनमें श्री वीरसे ४९२ वर्ष बाद, सुभद्राचार्य्य से २४ वर्ष बाद, विक्रम जन्मसे बाइस वर्षबाद और विक्रमराज्यसे ४ वर्षबाद द्वितीय भद्रबाहु हुए।

गाथा।

सत्तरि चउसद युत्तोतिणकाला विक्कमो हवईजम्मो।

अठवरस बाललीला सोडस वासेहि भम्मिए देसे॥ १८॥

पणरस वासे रज्जं कुणन्ति मिच्छोवदेश संयुत्तो।

चालीस वरस जिणवर धम्मं पालीय सुरपयं लहियं॥ १९॥

अर्थात् श्रीवीर निर्वाणके ४७० वर्ष बाद विक्रमका जन्म हुआ। आठ वर्षों तक इन्होंने बाल लीला की। सोरह वर्षों तक देश भ्रमण किया और ५६ वर्षों तक अन्यान्य धर्म्मोंसे निवृत होकर जिन धर्म्मका पालन किया।

विक्रम सम्वत्की समस्या ।

"वसुनन्दी श्रावकाचार" में "मूलसङ्घ" की पट्टावली दी गई है, उसमें "विक्रम प्रबन्ध" की निम्न लिखित गाथा विक्रमादित्यके सम्बन्धमें लिखी हुई है :—

"सत्तरि चउसद जुतो तिणकाला विक्कमो हवइजम्मो ।
अटवरस बाललीला सोडस वासेहि भम्मिए देसे ॥
पणरस वासे जज्जं कुणंति मिच्छोपदेश संजुत्तो ।
चालीस वरस जिणवर धम्मं पालीय सुरपयं लहिअं ॥"

इससे ज्ञात होता है कि वी० नि० सम्वत् ४७० में विक्रमादित्यका जन्म हुआ। और इस समय विक्रम सम्वत् १९७० प्रचलित है (४७० + १९७० २४४०) इन दोनोंके जोड़नेसे प्रचलित वी० नि० सं० २४४० मिल जाता है, जिससे मालुम होता है कि सम्वत् विक्रमके जन्महीसे प्रचलित है। परन्तु लोगोंका विश्वास है कि सम्वत् प्रायः राजाओंके राज्याभिषेक ही से प्रचलित होता है, इसी प्रकार विक्रम सम्वत् विक्रमके राज्याभिषेक ही से प्रचलित है। किन्तु इस हिसाबसे तो वीर नि० सं० ४७० इनके राज्याभिषेकका समय हो जाता है। मूलसङ्घकी पट्टावलीमें भद्रबाहु द्वितीयका समय विक्रम राज्य ४ से प्रारम्भ लिखा हुआ है। इससे मालुम होता है कि मूलसङ्घकी पट्टावलीका क्रम भी राज्याभिषेक सम्वत्से ही प्रारम्भ हुआ है। परन्तु इसमें और उपर्युक्त कथनमें १८ वर्षका अन्तर पड़ता है। क्योंकि भद्रबाहु द्वितीय के पट्टपर बैठनेका समय वी० नि० सं० ४९२ और विक्रमादित्यके राज्याभिषेकसे ४ वर्ष बाद लिखा गया है इस हिसाबसे विक्रमजन्मसे भद्रबाहु द्वितीयके पट्टपर बैठने तक २२ वर्ष हुए। जिसमेंसे ४ वर्ष विक्रमादित्यके राज्यकाल निकाल देने से विक्रमादित्यका राज्याभिषेक १८ वर्षकी अवस्था में होना निश्चित होता है। यदि हमलोग राज्याभिषेकसे सम्वत माने तो १८ वर्षकी कमी रह जाती है दूसरी अड़चन यह है कि यदि हमलोग वि० नि० सं० ४७० को विक्रमका जन्मकाल न मानकर राज्याभिषेक काल माने तो इनके राज्यसे ४ वर्ष बाद अर्थात वी० नि० सं० ४७४ में यशोभद्रके पाटपर बैठनेका समय हो

जाता है। और इनके अट्ठारह वर्ष बाद भद्रबाहु पाटपर बैठे तो इस हिसाबसे विक्रमादित्यके राज्यकालसे २२ वर्ष बाद भद्रबाहुके पट्ट पर बैठनेका समय हो जाता है। किन्तु ऊपर भद्रबाहु द्वितीय को विक्रमादित्य के राज्याभिषेकसे ४ वर्ष बाद पट्टारूढ़ होनेको लिखा हुआ है अतः दोनो मत परस्पर विरुद्धसे मालूम पड़ते हैं। इस प्रकारकी ऐतिहासिक उलझनमें भद्रबाहु द्वितीयका पाटपर बैठनेका समय विक्रम सम्वत ४ नहीं सिद्ध होता है। उपर्युक्त दोनो मतो के मिलाने से प्रचलित विक्रम सम्वत् १९७० जन्मही से समारम्भ होना सम्भव मालूम होता है। ऐसी सन्देहावस्था में पट्टावली के सम्वत में १८ जोड़ देनेसे तो प्रचलित संवत में ठीक यह पट्टावली मिल जायगी।

"भास्कर' की गत किरणोंमें इसके सम्पादक महोदयने "शाका सम्वत की उलझन" और कालिदास के समय निर्णयवाले लेखमें विक्रमादित्य जिनका १९७० सम्वत है उनका अस्तित्व नहीं माना है। ये इनका अस्तित्व छठवीं शताब्दी (६०० A.D.) निश्चय करते हैं। विक्रमादित्यके सम्वतके निर्णयार्थ बंगाल एसिआइटिक सुसाइटीकी १९११ ई० दिसम्बर Vol VII नं०२ की जर्नलमें टामस डब्ल्यू किंगस मिल आनरेरी मेम्बर और वाइस प्रेसीडेन्ट चायना रोयाल एसीआटिक सुसाइटीका एक बहुत ही महत्वपूर्ण और विस्तारपूर्वक आजतकके सभी अनुसन्धानोंका निचोड़ प्रचलित सम्वत १९७०की परिपुष्टिके लिये एक लेख प्रकाशित हुआ है। इन्होंने विक्रमादित्यको प्रचलित सम्वतके प्रकृत परिचालक सिद्ध करनेके लिये कई एक शिला लेख तथा ऐतिहासिक सामग्रियां प्रकाशित की है। आपने कुशानवंशीय महाराज कनिष्क तथा हविष्कको विक्रमादित्य निश्चित किया है इस राजाके शिलालेख मथुराके ककाली टीलेसे जैनमूर्तियों पर पाये गये हैं। जिनसे यह सिद्ध होता है कि विक्रमादित्य जैन थे। और उल्लिखित विक्रम प्रबन्धकी गाथासे तो यह एक प्रकारसे निश्चित होही गया है कि विक्रमादित्यने हिन्दू धर्म्म को छोड़कर जैन धर्म्मको स्वीकार किया। उक्त साहेबके लेखकी सिद्धिही में बाबू परेशचन्द्र बन्द्योपाध्याय एम० ए० बी० एल० सब जजने भी इसी किरणमें "विक्रमादित्य सम्वत " शीर्षक लेख प्रकाशित किया था। इसके पढ़ने से प्रचलित सम्वत वाले विक्रमादित्यका अस्तित्व पूर्ण रूपसे सिद्ध होता है यदि जैन समाज

विक्रमादित्यका अस्तित्व प्रचलित सम्बतके अनुसार नहीं मानेगी तो बड़ी गड़बड़ी मच जायगी। क्योंकि उत्तर प्रान्तकी प्रतिमाओंमें और अन्यान्य जैन ग्रन्थों में विक्रमादित्य ही के सम्बत् का उल्लेख है। ऐसी अवस्थामें हम किंगसमिल साहेब और सदर आला साहेबके लेखके सहमत हैं। सम्पादक महोदयने जिस विक्रमादित्यका अस्तित्व ६०० A. D. में सिद्ध किया है और उनकी सभामें नवरत्नान्तर्गत कालिदासका उल्लेख किया है वह सम्भव है कि ठीक हो। क्योंकि विक्रमादित्य नामके कई राजा गुप्तवंशमें और अन्यान्य भी हुए हैं, सो उनमें से ६०० A.D. में भी किसी एक विक्रमका होना सम्भव पर ज्ञात होता है जिसके समयमें कालिदास आदि कवि हुए हैं।

बाबू करोड़ीचन्द जैन
मन्त्री
श्रो० जै० सि० भ० आरा।



इण्डियनएण्टीक्वेरीमें प्रकाशित नन्दीसङ्घकी पट्टावलीके आचार्य्योंकी नामावली।

(निम्न लिखित आचार्य्यों के पाटपर बैठनेका समय विक्रमके राज्याभिषेकसे लिया गया है।)

१ भद्रबाहु द्वितीय (४) २ गुप्ति गुप्त (२६) ३ माघनन्दी (३६) ४ जिनचन्द्र (४०) ५ कुन्द कुन्दाचार्य्य (४९) ६ उमा स्वामी (१०१) ७ लोहाचार्य्य (१४२) ८ यश कीर्ति (१५३) ९ यशोनन्दी (२११) १० देवनन्दी (२५८) ११ जयनन्दी (३०८) १२ गुणनन्दी (३५८) १३ वज्रनन्दी (३६४) १४ कुमारनन्दी (३८६) १५ लोकचन्द्र (४२७) १६ प्रभाचन्द्र (४५३) १७ नेमचन्द्र (४७८) १८ भानुनन्दी (४८७) १९ सिंहनन्दी (५०८) २० श्रीवसुनन्दी (५२५) २१ वीरनन्दी (५३१) २२ रत्ननन्दी (५६१) २३ माणिक्यनन्दी (५८५) २४ मेघचन्द्र (६०१) २५ शान्तिकीर्ति (६२७) २६ मेरुकीर्ति (६४२)

ये उपर्युक्त छब्बीस आचार्य्य दक्षिण देशस्थ भद्दिलपुरके पट्टाधीश हुए।

२७ महाकीर्ति (६८६) २८ विष्णुनन्दी (७०४) २९ श्रीभूषण (७२६) ३० शीलचन्द्र (७३५) ३१ श्रीनन्दी (७४९) ३२ देशभूषण (७६५) ३३ अनन्त कीर्ति (७६५) ३४ धर्म्मनन्दी (७८५) ३५ विद्यानन्दी (८०८) ३६ रामचन्द्र (८४०) ३७ रामकीर्ति (८५७) ३८ अभयचन्द्र (८७८) ३९ नरचन्द्र (८९७) ४० नागचन्द्र (९१६) ४१ नयनन्दी (९३९) ४२ हरिनन्दी (९४८) ४३ महीचन्द्र (९७४) ४४ माघचन्द्र (९९०)

उल्लिखित महाकीर्ति से लेकर माघचन्द्र तकके अट्ठारह आचार्य्य उज्जयिनीके पट्टाधीस हुए ४५ लक्ष्मीचन्द्र (१०२३) ४६ गुणनन्दी (१०३७) ४७ गुणचन्द्र (१०४८) ४८ लोकचन्द्र (१०६६)

उल्लिखित चार आचार्य्य चन्देरी (बुन्देलखण्ड) के पट्टाधीश हुए ४९ श्रुतकीर्ति [१०७९] ५० भावचन्द्र [१०९४] ५१ महाचन्द्र [१११५]

उल्लिखित तीन आचार्य्य भेलसेके [भूपाल सी० पी०] पट्टाधीश हुए
५२ माघचन्द्र [११४०]

यह आचार्य्य कुण्डलपुर [दमोह] के पट्टाधीश हुए।

५३ ब्रह्मनन्दी [११४४] ५४ शिवनन्दी [११४८] ५५ विश्वचन्द्र [११५५]
५६ हृदिनन्दी [११५६] ५७ भावनन्दी [११६०] ५८ सूरकीर्ति [११६७]
५९ विद्याचन्द्र [११७०] ६० सूरचन्द्र [११७६] ६१ माघनन्दी [११८४]
६२ ज्ञाननन्दी [११८८] ६३ गंगकिर्ति [११९९] ६४ सिंहकिर्ति [१२०६]
उपर्युक्त बारह आचार्य्य बाराके पट्टाधीश हुए। ६५ हेमकिर्ति [१२०९]
६६ चारुनन्दी [१२१६] ६७ नेमिनन्दि [१२२३] ६८ नाभिकिर्ति [१२३०]
६९ नरेन्द्रकीर्ति [१२३२] ७० श्रीचन्द्र [१२४१] ७१ पद्मकीर्ति [१२४८]
७२ वर्द्धमानकीर्ति [१२५३] ७३ अकलंकचन्द्र [१२५६] ७४ ललितकीर्ति
[१२५७] ७५ केशवचन्द्र (१२६१) ७६ चारुकिर्ति [१२६२] ७७ अभयकिर्ति
[१२६४] ७८ वसन्तकीर्ति [१२६४]

इण्डियन ऐण्टिक्वेरीकी जो पट्टावली मिली है उसमें उपर्युक्त चौदह आचार्य्योंका पट्ट ग्वालियरमें लिखा है, किन्तु वसुनन्दी श्रावकाचारमें इनका होना चित्तौड़में लिखा है, पर चित्तौड़ के भट्टारकोंकी अलग भी पट्टावली है जिनमें ये नाम नहीं पाये जाते। सम्भव है कि ये पट्ट ग्वालियरमें ही हों। इनको ग्वालियरकी पट्टावलीसे मिलानेपर निश्चय होगा।

७९ प्रख्यातकीर्ति (१२६६) ८० शुभकीर्ति (१२६८) ८१ धर्म्मचन्द्र (१२७१) ८२ रत्नकीर्ति (१२९६) ८३ प्रभाचन्द्र (१३१०)

ये उल्लिखित ५ आचार्य्य अजमेरमें हुए है।

८४ पद्मनन्दी (१३८५) ८५ शुभचन्द्र (१४५०) ८६ जिनचन्द्र (१५०७)
ये तीन आचार्य्य दिल्लीमें पट्टाधीश हुए हैं।

इनके बाद पट्ट दो भागोंमें विभक्त हुआ। एक नागौरमें गद्दी स्थापित हुई और दूसरी चित्तौड़में निम्न लिखित आचार्य्योंके नाम चित्तौड़ पट्टके हैं। प्रभाचन्द्रजीसे चित्तौड़का पट्ट प्रारम्भ होता है।

८७ प्रभाचन्द्र १ (१५७१) ८८ धर्म्मचन्द्र (१५८१) ८९ ललितकीर्ति (१६०३)
९० चन्द्रकीर्ति (१६२२) ९१ देवेन्द्रकीर्ति (१६६२) ९२ नरेन्द्रकीर्ति (१६९१)
९३ सुरेन्द्रकीर्ति (१७२२) ९४ जगत्कीर्ति (१७३३) ९५ देवेन्द्रकीर्ति (१७७०)
९६ महेन्द्रकीर्ति (१७९२) ९७ क्षेमेन्द्रकीर्ति (१८१५) ९८ सुरेन्द्रकीर्ति

(१८२२) ९९ सुखेन्द्रकीर्ति (१८५९) १०० नयनकीर्ति (१८७९) १०१ देवेन्द्रकीर्ति (१८८३) १०२ महेन्द्रकीर्ति (१९३८)

नागौरके भट्टारकोंकी नामावली।

१ रत्नकीर्ति (१५८१) २ भुवनकीर्ति (१५८६) ३ धर्म्मकीर्ति (१५९०) ४ विशालकीर्ति (१६०१) ५ लक्ष्मीचन्द्र ६ सहस्रकीर्ति ७ नेमिचन्द्र ८ यशःकीर्ति ९ भुवनकीर्ति १० श्रीभूषण ११ धर्म्मचन्द्र १२ देवेन्द्रकीर्ति १३ अमरेन्द्रकीर्ति १४ रत्नकीर्ति १५ ज्ञानभूषण १६ चन्द्रकीर्ति १७ पद्मनन्दी १८ सकलभूषण १९ सहस्रकीर्ति २० अनन्तकीर्ति २१ हर्षकीर्ति २२ विद्याभूषण २३ हेमकीर्ति यह आचार्य्य १९१० माघ शुक्ल द्वितीया सोमवारको पट्टपर बैठे।

इनके बाद क्षेमेन्द्रकीर्ति हुए इनके पट्ट पर मुनीन्द्रकीर्ति हुए और अब नागौरकी गद्दी पर श्रीकनककीर्ति महाराज विराजमान हैं।

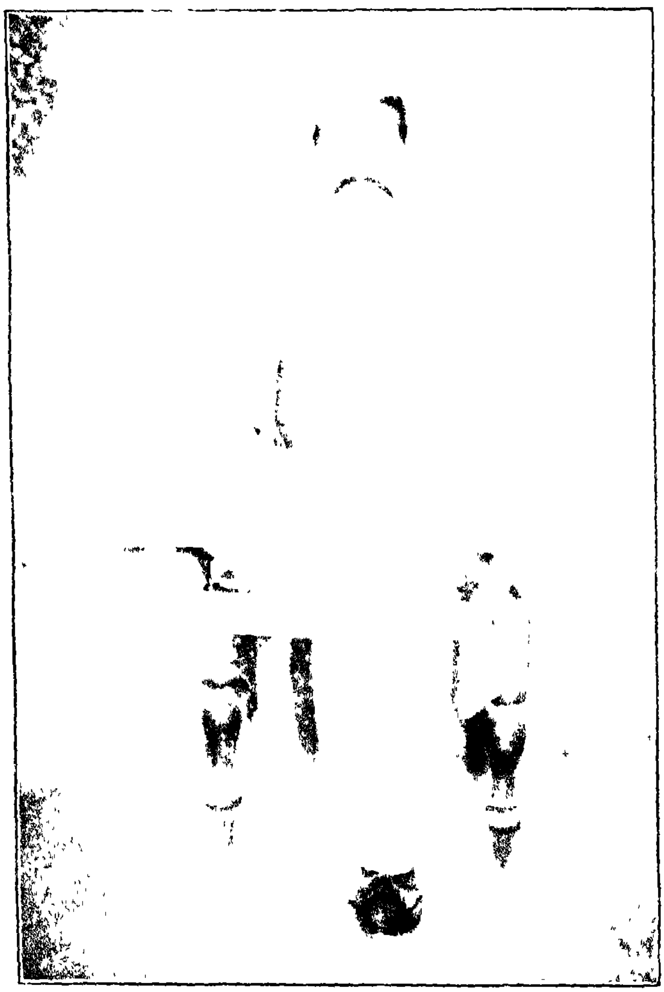
मूल (नन्दी) सङ्घकी दूसरी पट्टावली ।

पट्टे श्रीरत्नकीर्ति (र्ते) रनुपमतपसः पूज्यपादीय शास्त्र-
-व्याख्या विख्यातकीर्ति र्गुणगण निलय सत्क्रियाचारचंचुः ॥
श्रीमानानन्दधामा प्रतिबुधनुत मामान-संदायिवादो-
जीयादाचन्द्रतारं नरपति-विदित श्रीप्रभाचन्द्रदेव ॥ २६ ॥
हंसो ज्ञान मरालिका समसमा श्लेष प्रभूताद्भुता-
-नन्दः क्रीडति मानसेति विशदे यस्यानिशं सर्वतः ।
स्याद्वादामृत सिन्धुवर्द्धनविधौ श्रीमत्प्रभेन्दुप्रभोः
पट्टे सूरिमतल्लिका स जयतात श्रीपद्मनन्दी मुनिः ॥ २७ ॥

महाव्रति पुरन्दरः प्रशमदग्धरागाङ्कुरः
स्फुरत्परम पौरुष स्थितिरशेष-शास्त्रार्थवित ।
यशोभर मनोहरी-कृतसमस्त-विश्वम्भरः
परोपकृत(ति)तत्परो जयति पद्मनन्दीश्वरः ॥ २८ ॥

स्याद्वादामृत सिन्धुवर्द्धनकरः सौम्यैर्गुणैर्भ्राभ्रमः
षट्तर्कागम जैन शासन महाम्र (ल ब्ध प्रतिष्ठोत्सव ।
पट्टे श्रीमुनि-पद्मनन्दि विदुषः कल्याणलक्ष्मीकरः
सोऽयं श्रीशुभचन्द्रदेव मुनिपो भव्यैर्जनैर्वन्दितः ॥ २९ ॥
पट्टे श्रीशुभचन्द्रदेव गणिनः श्रीपद्मनन्दीश्वर
स्तर्क-व्याकरणादिग्रन्थ (गुम्फ) कुशलो विख्यातकीर्तिर्गुणी ।
श्रीमान् श्रीजिनचन्द्रसूरि रभव द्रत्नत्रयालंकृतो
हेयादेय विचारमार्ग-चतुर-श्चारित्रचूडामणिः ॥ ३० ॥
प्रकटित जिनमार्गो ध्वस्तमोहान्धकारो
जितनय परवादो सप्तभंगेद्धबोधः ।
विधुतविषयसङ्गः स्वीकृतात्मप्रसंगो
जयति सततधामा श्रीजिनेन्द्रर्यतीन्द्रः ॥ ३१ ॥
तत्पट्टोदय भूधरे जनि मुनिः श्रीमत्प्रभेन्दुर्वशी

हेयादेय विचारणैक चतुरो देवागमालंकृतौ।
मेयाम्भोज-दिवाकरादि विविधे तर्के च चंचुश्चणो
जैनेन्द्रादिक लक्षण प्रणयने दक्षोऽनुयोगेषु च ॥ ३२ ॥
त्यक्त्वा सांसारिकीं भूतिं किंपाकफल सन्निभाम्।
चिन्तारत्न निभां जैनीं दीक्षां संप्राप तत्त्ववित् ॥ ३३ ॥
शब्दब्रह्मसरित्पतिं स्मृतिबलादुत्तीर्य्य यो लीलया
षट्तर्कागमसार्क्क कर्कशगिरा जित्वाखिलान् वादिनः।
प्राच्यादिग्विजयी भवन्निव विभु जैन प्रतिष्ठाकृते
श्रीसम्मेदगिरौ सुवर्णकलशैः पट्टाभिषेकः कृत ॥ ३४ ॥
श्रीमत्प्रभाचन्द्र गणेन्द्र पट्टे भट्टारक श्रीमुनिचन्द्रकीर्त्तिः।
संस्नापितो योऽवनिनाथ वृन्दैः सम्मेदनाम्नीह गिरीन्द्रमूर्ध्नि। ३५।
जीयात्सौ विधुकिर्ति पट्टमुघरः प्रौढ्याद् (द्र) ढः सन्मणिः
सर्वेज्ये वरवंशशुद्धजलधौ चन्द्राश्चिरं चित्रमान्।
तर्क व्याकरणादि नीति निपुणो देवेन्द्रकीर्तिः कृती
भट्टारक एव सर्वगणभृद्भूपाल लब्धाङ्कक ॥ ३६ ॥
श्रीचन्द्रकीर्ति पट्टसंवराब्धौ कुजत्कलापी सकलो हरित्सु।
देवेन्द्रकीर्ति धृतकान्तकीर्तिः भट्टारको भट्ट विवृत्तवादः ॥३७॥
पट्टे श्रीदिविजेन्द्रकीर्ति गणिनो निष्कादि कुम्भाम्बुभिः
स्नातः सूरि नरेन्द्रकीर्ति रसतं स्त्रीगीतकीर्त्यङ्कितः।
स्वस्ति व्यस्त समस्तशास्त्रकुशलार्हद्भक्तिशक्तोऽनिशम्
जीयात्द्ब्रह्मयुगं जगद्गुरु सताम्भोराशिशीतांशुभिः ॥३८॥
क्षोणीमण्डल मण्डनामलगुणा लङ्कार हीरस्य च
चारित्रादि यशोहिमांशुकिरणै स्तस्य क्षमा शोभते।
सर्पात्सौगत सर्प शोषँदगनं विद्याविनोदं दध-
ज्जीयात्सूरिनरेन्द्रकीर्ति रिहसो (रमिशं) नन्द्यादिसंघेऽनघे ॥३९॥
गाम्भीर्य्य निर्ज्जित पयोध (धि) रपि स्थिरात्मा
मोहौघ दारुदहनानलता मवाप।
भव्यं तनोतु सुधियाञ्च नरेन्द्रकीर्तिः
सुग्रीवभूप मनरञ्जन कान्तकीर्तिः ॥ ४० ॥
पद्मनन्दी गुरुर्ज्जातो बलात्कार गणाग्रणीः।



Late Babu Permesteedas Jaina
Raniwalla

स्वर्गीय सेठ परमेष्ठीदासजी रानीवाले कलकत्ता।

पाषाणघटिता येन वादिता श्रीसरस्वती ॥ ४१ ॥
उज्जयन्तगिरौगच्छः स्वच्छ सारस्वतोऽभवत्।
अत तस्मै मुनीन्द्राय नमस्ते पद्मनन्दिने ॥ ४२ ॥

इति श्री मूलसङ्घे भट्टारक श्रीभद्रबाह्वादि गुरूणां नामावली समाप्ता।

नन्दी (मूल) सङ्घकी दूसरी पट्टावलीका भाषा (भाषा) नुवाद।

इस पट्टावलीमें १ से २५ तकके श्लोक और श्रीशुभचन्द्राचार्यकी गुर्वावलीके पहले २५ श्लोक एक है क्योंकि उनकी भी वश परम्परा नन्दीसङ्घसे ही चली है पीछे आगे आकर उनका भेद पड़ गया इसलिये वहां तक कुछ फरक नहीं है। अस्तु, हमने भी २५ के बादके श्लोकसे ही यह पट्टावली प्रकाश की है और इसका अर्थ भी ऐसे ही किया है पूर्व का अर्थ जिनको देखना हो वहां देख सकते हैं।

अनुपम तपःशाली श्री रत्नकीर्ति आचार्य्य के पट्टपर पूज्यपाद स्वामी कृत शास्त्रकी व्याख्या से प्रसिद्धकीर्ति, सच्चारित्रपरायण, वाक्पटुतामें— प्राप्तगौरव, प्राज्ञपूज्य, राजमान्य, श्रीप्रभाचन्द्र-देव हुये। वह इस पृथ्वीपर चन्द्र तारा पर्य्यन्त गीत कीर्ति रहें॥ २६॥

जिनके शुद्धहृदय में निरन्तर सर्वत्र ज्ञानरूपी हंसी अभेद भावसे आलिङ्गन करती हुई आनन्द पूर्वक क्रीड़ा करती है [अर्थात जो ज्ञानानन्दमें लीन हैं] और स्याद्वाद श्रुतसमुद्रको बढ़ानेमें चन्द्रमाकेसे श्रीप्रभाचन्द्राचार्य्य के पट्टपर मुनिप्रवर श्री पद्मनन्दी मुनि हुए। वह मुनि श्रेष्ठ, परम वीतराग, पुरुषार्थशाली और परोपकार परायण, जयवन्त रहें॥२७॥२८॥

उन श्रीपद्मनन्दी मुनिके पट्टपर षटशास्त्रवेत्ता, प्रगट किया है जैन सिद्धान्तका मत जिन्होंने, ससारके कल्याण करने वाले, भव्यों कर वन्दित, श्रीशुभचन्द्राचार्य्य हुये॥ २९॥

उनके पट्टधर श्री पद्मनन्दी हैं बड़े गुरु जिनके ऐसे—श्रीशुभचन्द्राचार्य्यके शिष्य व्याकरणादि शास्त्रके रचयिता, प्रसिद्ध है कीर्ति जिनकी ऐसे श्रीजिनचन्द्र सूरि हुये।

वह चारित्र चूड़ामणि, इन्द्रियविजयी, परवादिवारण मृगेन्द्र, सप्तभंगीके प्रसिद्धवेत्ता, श्रीजिनचन्द्र यति चिरञ्जीवी रहैं॥ ३० ॥ ३१ ॥

उनके पट्ट पर्वतको विभूषित करनेवाले, प्रमेय-कमल-मार्तण्डादिक तर्क शास्त्रके जानने वाले, और जैनेन्द्रादि व्याकरणके वेत्ता, श्रीप्रभाचन्द्र संसारकी विभूतिको छोड़कर जिनदीक्षा धारण की ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

जिन प्रभाचन्द्रने लीलामात्रमें प्रबलस्मृतिसे शब्द समुद्रको पारकर तार्किकबुद्धिसे समस्त वादियों को वादमें जीता, पूर्वदिशामें जिन्होने अनेक जिन प्रतिष्ठा कराई, और श्रीसम्मेदाचल पर सुवर्ण कलशोंसे जिनका पट्टाभिषेक किया गया, उन श्रीप्रभाचन्द्रके पट्टपर श्री मुनि चन्द्रकीर्ति हुये इनका भी पट्टाभिषेक अनेक जैन राजाओं द्वारा श्रीसम्मेद शिखर पर हुआ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

उनके पट्टधर श्री देवेन्द्रकीर्ति हुये। जिन्होंने राजाओंकी प्रार्थनासे सब पट्टोका आधिपत्य स्वीकार किया आप अनेक गुणसम्पन्न, और प्रसिद्ध वाद विजेता, हुये॥ ३६ ॥ ३७॥

श्रीदेवेन्द्रकीर्तिके पट्ट पर समस्त शास्त्रों में प्रवीण, श्रीअर्हन्तकी भक्ति कर शोभित श्रीनरेन्द्रकीर्ति हुये। वह बहुत काल तक जीवित रहैं। ॥ ३८ ॥

पृथ्वी मण्डलके भूषण, अमलगुणालङ्कार-मोहित, चरित्रयशः कर शोभनीय उन नरेन्द्रकीर्तिसे पृथ्वी शोभायमान है। महाराज सुग्रीवके मनोरञ्जन करनेमें परम चतुर, वह श्रीनरेन्द्रकीर्ति नन्दिसङ्घमें चिरञ्जीवी रहैं॥ ३९ ॥ ४० ॥

४१ और ४२ वाले दोनो श्लोक और श्रीशुभचन्द्राचार्य्य की गुर्व्वावली के अन्तिम श्लोक एकही हैं अस्तु, अर्थ वहांसे देख लेना।

मूलसङ्घकी पट्टावलीके प्रमाणमें शिला लेख।

श्रीमत्परमगम्भीर स्याद्वादामोघलाञ्छन।
जीयात्त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनं ॥ १ ॥

श्रीमद्यादवान्वयार्णवपूर्णचन्द्रस्य श्रीबुक्कभूपालस्य पुण्यपरिपाकपरिणत मूर्तेस्समस्तकीर्तेर्हरिहरमहाराजस्य पर्यायावतारादीराट्टेवराजनरेश्वरादेव- राजादिव विजयश्रीवीरविजयनृपतिस्समजातस्तस्माद्रोहणाद्रेरिव महा माणिक्यप्ररोहो नीतिप्रतापस्थिरीकृतसाम्राज्यसिंहासनः राजाधिराजराज परमेश्वरादिविरुदविख्यातो गुणनिधिरभिनव देवराजमहाराजो निजाज्ञा- परिपालित कर्णाटदेशमध्यवर्तिनः स्वावासभूतविजयनगरस्य क्रमुकपर्णापण वीथ्यामाचन्द्रतारमात्मकीर्तिधर्मप्रवृत्तये सकलजगत्साम्राज्य विराजमा- नस्यस्याद्वादविद्याप्रकटनपटीयसः पार्श्वनाथस्यार्हत शिलामयं चैत्यालय- मचीकरत्।

देशः कर्णाटनामाभूद्धाम सर्वसम्पदाम्।
विडम्बयति यः स्वर्गं पुरोडाशाशनाश्रय ॥ २ ॥
विजयनगरीति तस्मिन्नगरी नगरीति रम्यहर्म्यास्ति।
नगरेषु नगरीयस्या नगरीयस्यैव गुरुभिरैश्वर्यैः ॥ ३ ॥
कनकोज्वल सालरश्मि जालैः
परिखाम्भ प्रतिबिम्बितै रलया।
वसुधेव विभाति साम्बुराशि—
कृतरत्नाकरमेखला परीता ॥ ४ ॥

श्रीमानुद्दामधामा यदुकुलतिलकस्सारसौन्दर्यसीमा
धीमान्रामाभिरामा कृतिरवनितले भातिभाग्याभिरामा।
विक्रान्त्याक्रान्तदिक्को विमलधरणिभृत्पद्मश्रेणिचक्रः
क्षोण्यां जागर्ति बुक्कक्षितिपतिररिभूभृच्छिरश्छिन्नपृषत्कः ॥५॥
तत्पादात्मावतार स्फुरति हरिहरक्ष्मापतिश्शीलसारो
दारिद्र्यस्फारवारां कतरणविधौ विस्फुरत्कर्णधार।

भूदामस्वर्णदामानु-कृतपरशु-धृतपद्मिनीबन्धुपुत्रनु—
स्फाराकूपार-नीराञ्जलिनिहित-जयस्तम्भ-विन्यस्तकीर्तिः ॥ ६ ॥
तेनाजन्यरिराजनम्रज-शिरस्तोमस्फुरच्छेखर—
प्रत्युप्तोपलदीपिका परिणमत्पादाब्ज नीराजन ।
विद्वत्कैरवशशाङ्कली हिमकरो विख्यातवीर्याकरः
श्रेयान्वीर रमास्वयम्वृतवर श्रीदेवराजेश्वरः ॥ ७ ॥
तज्जन्मास्मिन्वदान्यो जगतिविजयते पुण्यचारित्रमान्यो
दानध्वस्तार्थिदैन्यो विजयनरपतिः खण्डितारातिसैन्य ।
प्रत्युद्यज्जैत्रयात्रासम समय समुद्भूत केतु प्रसूत—
स्त्रायद्वात्योपहत्या प्रतिहतविमतौघप्रतापप्रदीप ॥ ८ ॥
तस्मादस्मार्जितात्माजनि जगति यथा जम्भजेतुर्जयन्तो
राजा श्रीदेवराजो विजयनृपतिवाराशिशका शशाङ्कः ।
कोपाटोपाप्रवृत्त प्रबलरणमिलद्विप्रतीपक्षमाप —
प्राणश्रेणीनभस्व न्निवहकबलनव्यग्र खड्गोनरेन्द्र ॥ ९ ॥
वीर श्रीदेवराजो विजयनृपतपस्सारसजातमूर्ति—
र्भ्रंशांभूमेर्विभाति प्रणतरिपुततेरार्तिजातस्य हर्ता ।
क्रूरक्रोधेद्धयुद्धोद्धुरकरटिघटा कर्णमूर्णप्रसर्पा —
द्वातव्रातोपघातप्रतिहत-विमतादभ्रधृत्यभ्रसङ्घ ॥ १० ॥
यद्धाटीघोरघोटी खुरदलितचलद्रेणु भिर्वीर्यवह्नि —
द्धूमस्तोमायमानै प्रतिनृपतिगणस्त्रीदृश साश्रुधारा ।
प्रोद्यद्दर्पप्रभूतप्रतिभट सुभटा स्फोटनाटोपजाग्र -
द्दोषोत्कर्षान्धकार द्युमणिरुदयते देवराजेश्वरोऽयम् ॥ ११ ॥
विश्वस्मिन्विजयाक्षितीशतनुज श्रीदेवराजेशितु —
र्नर्मोकीर्तिसिताम्बुजं कलयते शौर्योरुयमूर्योदयात ।
आशायत्रपलाशतामुपगता स्वर्णाचलः कर्णिका
भृङ्गादिक्षुमतङ्गजा जलधयो मारन्दबिन्दूत्कराः ॥ १२ ॥
विख्याते विजयात्मजे वितरति श्रीदेवराजेश्वरे
कर्णास्याजनि वर्णनाविगलिता वास्यादधीच्यादय ।
मेघामार्गपमोघता परिणता चिन्ता न चिन्तामणे
स्वल्पा कल्पमहीरुहा प्रथयते स्वर्धेनुकी नीचताम् ॥ १३ ॥

सोऽयं कीर्ति सरस्वती वसुमती वाणीवधूभिस्समम
भव्यो दीव्यति देवराजनृपतिर्भूदेवदिव्यद्रुमः ।
यश्शौरिर्बलियाचना विरहितश्चन्द्रः कलङ्कोज्झितः
शक्रस्सत्य मगोत्रभि द्दिनकरश्चासत्यधोज्झकः ॥ १४ ॥
मदनमनोहरमूर्त्तिः महिलाजनमानसार संहरणः ।
राजाधिराजराजादिमपद परमेश्वरादि निज विरुद ॥ १५ ॥
शक्रो बुक्कमहीपालो दाने हरिहरेश्वरः ।
शौर्ये श्रीदेवराजेशो ज्ञाने विजय भूपतिः ॥ १६ ॥
सोऽय श्रीदेवराजेशो विद्याविनय विश्रुत ।
प्रागुक्तपुरवीश्यन्तः पर्णपूर्णाफलापणे ॥ १७ ॥
शाकेऽब्दे प्रमितेयाते वसुसिन्धु गुणेन्दुभिः ।
पराभवाब्दे कार्त्तिक्यां धर्मकीर्त्ति प्रकल्पये ॥ १८ ॥
स्याद्वादमतसमर्थन खर्विन दुर्वादिगर्वभाग्विततेः ।
अष्टादश दोषमहा मदगजनिकुरम्ब महित मृगराजः ॥ १९ ॥
भव्याम्भोरुहभानोरिन्द्रादि सुरेन्द्रवृन्दवन्द्यस्य ।
मुक्तिवधूप्रिय भर्त्तु श्रीपार्श्वजिनेश्वरस्य करुणाब्धे. ॥ २० ॥
भव्यपरितोषहेतु शिलामयं सेतुमखिलधर्मस्य ।
चैत्यागारमचीकरदाधरणि द्युमणिहिमकर स्थैर्य्यं ॥ २१ ॥

शिला लेखका अनुवाद ।

परम गम्भीर तथा अमोघ स्याद्वाद सिद्धान्तसे चिन्हित त्रिभुवनपतिका जो श्री जिनशासन है वह जयशाली होवे । १ ।

श्रीयादववंशरूपी समुद्रके लिये पूर्णचन्द्र श्रीबुक्कराज के, पुण्य परिणाम से सुन्दर आकारवाले सत्कीर्तिवाले हरिहरमहाराजकी वंशपरम्परागत चन्द्र तुल्य श्रीदेवराज नरेश्वरसे श्रीविजय राजा हुए । इनके वंशज नीति प्रतापसे

साम्राज्य सिंहासनको स्थिर करनेवाले राजाधिराज और परमेश्वरादि उपाधियोंसे प्रख्यात, गुणोंकेनिधि नूतन महाराज देवराजने अपनी आज्ञासे पालित कर्णाटक देशके मध्यवर्ती निज वासस्थान वाले विजय नगरके पानी सुपारी बिकनेवाले बाजारमें चन्द्रमापर्यन्त अपनीकीर्त्ति और धर्म्म की प्रवृत्तिके लिये सकल साम्राज्यमे विराजमान, स्याद्वाद सिद्धान्तके प्रचार करनेमें परम समर्थ श्री पार्श्वनाथ अर्हन्तका पत्थरका चैत्यालय बनवाया।

यह कर्णाटक देश सभी सम्पत्तियोंका वासस्थान और देवताओंके आश्रय स्वर्गकी भी विडम्बना करनेवाला है। २।

इस कर्णाटकदेशमें विजय नगरी अतुल सम्पत्तियोंसे सब नगरियोंमें बढ़ी चढ़ी थी॥ ३ ॥

अनेक स्वर्णवत उज्वल धानोंकी राशिमशालोंमे प्रतिविम्बित जलसे भरी हुई खाइयोंसे वेष्टित यह नगरी ऐसी मालूम होती है मानो बड़वानल सहित समुद्र मेखलासे परिवेष्टित पृथ्वी ही है ॥ ४ ॥

उत्कृष्ट तेजवाले, यदुकुलतिलक और सौन्दर्य्यकीसीमा अभिराम आकृतिवाले और शत्रु राजारूपी पर्वतोंके शिर छेदन करनेके लिये बाण अथवा वज्रकेसे यह बुक्क महाराज भूतलमें जागत हैं ॥ ५ ॥

उन बुक्क महाराजसे हरिहर महाराज हुए (अर्थात् महाराज बुक्कके पुत्र हरिहर हुये) यह दुस्तर दारिद्र्य समुद्रसे पार होनेवालों के लिये कर्णधार (पतवार) भूदान तथा स्वर्णदान देनेसे परशुरामका अनुकरण करनेवाले (अर्थात बड़े दानी) और समुद्रके किनारों पर विजयस्तम्भारोपण द्वारा कीर्त्ति लताको फैलानेवाले हुये ॥ ६ ॥

इनके पुत्र श्रीदेवराजेश्वर शत्रु राजाओंकी मुकुटमणिसे अपने चरणकमल की आर्त्ती (निराजन) करानेवाले, पण्डित कुमुदमण्डलीके लिये चन्द्रमा, प्रसिद्ध वीर्य्यशाली, और साक्षात् वीर लक्ष्मीसे आलिङ्गन करते थे (अर्थात वीर लक्ष्मीसे स्वयं वरे हुये) ॥ ७ ॥

इनके बाद इनके वंशधर बड़े वदान्य, पुण्यचारित्रसे परममाननीय, दान से याचकोंकी दीनता ध्वस्त करनेवाले और शत्रुओंकी सेनाको खण्डित करनेवाले, विजयराज संसारमें बड़ी उत्कृष्टताके साथ रहे। दिग्विजय

के समयमें इनकी विजयवैजयन्तीकी फड़फड़ाहटसे उत्पन्न जो प्रकाण्ड वायु है उसके प्रतिघातसे कुमन समूहका प्रतापरूपी दीपक निर्वाण हो जाता था ॥ ८ ॥

तत्पश्चात इनके वंशधर विजयराज-कुलरूपी समुद्र और चकोरके लिये चन्द्रमा, जितेन्द्रिय, और प्रतिपक्षियोंके प्राण पखेरूका ग्रास करनेके लिये बड़ी तीक्षण तलवार, श्रीदेवराज हुये ॥ ९ ॥

यह देवराज विजयराजाके तपस्तत्त्वसे उत्पन्न पृथ्वीके स्वामी और अधीनस्थ रिपुगणोंके कष्टोंका हरण करनेवाले हैं ॥ युद्धमें इनके हाथियोंके कर्णजन्य वायु समूहसे शत्रुरूपी मेघमण्डल तितर बितर होजाते थे ॥१०॥

जिनके वीर्यरूपी वह्निके धूम्रसमूह समान युद्धके भयङ्कर घोड़ोंकी टापोंसे उड़ती हुई मर्द्दित धूली द्वारा सदैव प्रतिपक्षी राजाओंकी स्त्रियां गलदश्रुलोचना बनी रहती हैं। और यही देवराजेश्वर अभिमानी शत्रु राजाओंके क्रोधरूपी अन्धकारको हटानेके लिये सूर्य्यकेसे हैं ॥ ११ ॥

संसारमें विजय राजाके पुत्र देवराजके सौन्दर्यरूपी सूर्य्यके उदयसे कीर्त्ति रूपी श्वेत कमल विकशित हो जाता है। जिस कमलमें दशो दिशा रूपी तो पत्र हैं और सुमेरु पर्वत कर्णिका (कली) है और दिग्गज भ्रमर और समुद्र मकरन्दविन्दु अर्थात् पुष्परस सरीखे हैं ॥ १२ ॥

विजयात्मज श्रीदेवराजके दान देनेपर दान-शिरोमणि कर्णका भी नाम दब गया परोपकारैकव्रती दधीच्यादि विगत महिमा होगये। मेघ भी निष्फल हो चले, चिन्तामणिमें भी किसीको चिन्ता नहीं रही, कल्पवृक्ष भी स्वल्प हो चले और मेरुपर्वत भी छोटा होगया ॥ १३ ॥

भव्यदेवराज भूतलमें कल्पवृक्षकेसे थे। कृष्णजीने वलियाचनाकी थी किन्तु इन्होंने कर याचना नहीं की चन्द्रमा सकलङ्क है और यह कलङ्कसे रहित है। इन्द्रगोत्र भृत् है किन्तु यह अपनी गोत्र [वंशों] की रक्षा करने वाले हैं। सूर्य्य सदा एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाता है। और यह सदा असत् पथका उलङ्घन करते है। इस प्रकार इन्होंने कीर्ति तथा पृथ्वीरूपी सरस्वती से बहुत दिनोंतक रमण किया ॥ १४ ॥

मदनकोसी सुन्दर मूर्तिवाले और स्त्रियोंके अभिमानके हरणकरनेवाले देवराजको "राजाधिराज" और "परमेश्वर राज" आदि विरुदों (उपा-

थियों) से सर्व सन्मानित करते थे अर्थात् आपका विरुद बखाना जाता था ॥ १५ ॥

बुक्कराजा शक्तिमें, हरिहरेश्वरराज दानमें, श्रीदेवराज शूरतामें, और विजयराजा ज्ञानमें, विख्यात थे ॥ १६ ॥

विद्या और विनयसे प्रसिद्ध, उसी देवराजने उसी पूर्वोक्त नगरके सुपारी और पानके बजारमें पराभव नामक शाका सम्वत् १३४८ में कार्तिकी पूर्णिमाकेदिन धर्म्म और कीर्तिकीप्रवृत्तिके लिये स्याद्वाद मत समर्थनसे ध्वस्त किया है कणादियोंका गर्वित वाग्जाल जिन्होने, अट्ठारह दोषरूपी बड़े बड़े मतवाले हाथियोंके समूहके लिये प्रसिद्ध मृगराज, भविक जनरूपी कमलके लिये सूर्य्य इन्द्रादि देवताओंसे वन्दनीय, मुक्तिरूपिणी स्त्रीके प्रिय भर्ता और करुणाके समुद्र श्रीपार्श्वनाथ तीर्थङ्करका भविकोंकी सन्तुष्टि के हेतु सभोधर्म्मके सेतु पृथ्वी सूर्य्य और चन्द्रमाकी स्थिति तकके लिये यह पत्थरका चैत्यालय बनवाया ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

मूलसङ्घकी पट्टावलियोंके प्रमाणमें शिला लेख।

नं० २

यत्पादपङ्कजरजो रजो हरति मानसं।
स जिनः श्रेयसे भूयाद्भूयसे करुणालयः ॥ १ ॥
श्रीमत्परमगम्भीर स्याद्वादामोघ लाञ्छनं।
जीयात्त्रैलोक्य-नाथस्य शासनं जिनशासनं ॥ २ ॥
श्रीमूलसङ्घेऽजनि नन्दिसङ्घ
स्तस्मिन् बलात्कारगणोऽति रम्यः।
तत्रापि सारस्वतनाम्निगच्छे
स्वच्छाशयोऽभूदिहपद्मनन्दी ॥ ३ ॥
आचार्यः कुन्दकुन्दाख्यो वक्रग्रीवो महामुनिः।
एलाचार्य्यो गृद्ध्रपिच्छ इति तन्नाम पंचधा ॥४॥

केचित्तदन्वये चारुमुनय खनयो गिराम् ।
जलधाविवरत्नानि बभूवुर्दिव्यतेजसः ॥ ५ ॥
तत्रासीच्चारु चारित्ररत्नरत्नाकरो गुरुः ।
धर्म्मभूषणयोगीन्द्रो भट्टारकपदांचितः ॥ ६ ॥
भाति भट्टारकोधर्म्मभूषणो गुणभूषणः ।
यद्यश कुसुमामोदे गगनं भ्रमरायते ॥ ७ ॥
शिष्यस्तस्यमुनेरासीदनर्गल-तपोनिधि. ।
श्रीमानमरकीर्त्याचार्यो देशिकाग्रेसरः शमी ॥ ८ ॥
निजपक्षपुटकवाटं घटयित्वानिलनिरोधतो हृदये ।
अविचलितबोधदीपं तममरकीर्ति भजे तमोहरणं ॥ ९ ॥
केऽपिस्वोदर पूरणोपरिणता विद्याविहीनान्तरा
योगीशा भुवि संभवन्तु बहव. किं तैरनन्तैरिह ।
धीरः स्फूर्जति दुर्जयातनुमदध्वंसी गुणै रुर्जितै-
राचार्यामरकीर्ति शिष्यगणभृच्छ्री सिंहनन्दी व्रती ॥ १० ॥
श्रीधर्म्मभूषोऽजनितस्यपट्टे श्रीसिंहनन्द्यार्य्य गुरोस्सधर्म्मा ।
भट्टारकः श्रीजिनधर्म्महर्म्यस्तम्भायमान. कुमुदेन्दुकीर्तिः ॥११॥
पट्टे तस्यमुनेरासीद्वर्द्धमानमुनीश्वरः ।
श्रीसिंहनन्दी योगीन्द्र चरणाम्भोजषट्पद. ॥ १२ ॥
शिष्यस्तस्य गुरो रासीद्धर्म्मभूषणदेशिकः ।
भट्टारकमुनिः श्रीमान् शल्यत्रयविवर्जितः ॥ १३ ॥
भट्टारकमुने पादावपूर्व कमले स्तुम. ।
यदग्रे मुकुली भावं यान्तिराजकराः परं ॥ १४ ॥
"एवं गुरुपरम्परायागतनिच्छेदेन वर्तमानायायां"
आसीदसीम महिमा वंशे यादव भूभुजाम् ।
अखण्डित गुणोदारः श्रीमान्बुक्क महीपतिः ॥ १५ ॥
उदभूद्भूभृतस्तस्माद्राजा हरिहरेश्वर ।
कलाकलापनिलयो विधुः क्षीरोदधेरिव ॥ १६ ॥
यस्मिन् भर्तरि भूपाले विक्रमाक्रान्त विष्टपे ।
चिराद्राजन्वती हन्त भवत्येषा वसुन्धरा ॥ १७ ॥
तस्मिन् शासति राजेन्द्रे चतुरम्बुधिमेखलाम् ।

धराम धरिताशेष पुरातनमहीपतौ। १८।
आसीत्तस्य महीजानेः शक्तित्रय समन्वितः।
कुलक्रमागतोमन्त्री चैचदण्डाधिनायक.। १९।
द्वितीयमन्तः करणं रहस्ये बाहुस्तृतीय स्समराङ्गणेषु।
श्रीमन्महाचैचपदण्ड नाथो जागर्ति कार्य्येहरिभूमिभर्त्तः॥ २०॥
तस्य श्रीचैचदण्डाधिनायक स्योर्जितश्रियः।
आसीदिरुगदण्डेशो नन्दनो लोकनन्दन.॥ २१॥
न मूर्त्तो नामूर्त्तो निखिल भुवनाभोगिकतया
शरद्राजद्राकाविट निटिल नेत्रद्युतितया।
प्रभूताकीर्तिस्ता चिरमिरुगदण्डेश कथय-
-त्यनेकान्तात्कान्तात्परमिह न किञ्चिन्मतमिति॥ २२॥
सद्वंशजोऽपि गुणवानपि मार्गणाना-
माधारता मुपगतोऽपि च यस्य चापः।
नम्रः परान्विनमयन्निरुगक्षितीश-
-स्थोन्नैर्जनाय खलु शिक्षयतीपनीतिं॥ २३॥
हरिहर धरणीश प्राज्य साम्राज्यलक्ष्मी-
कुवलयहिम धामा शौर्य्य गाम्भीर्य्य सीमा।
इरुगपधरणीशस्सिंह नन्द्यार्य्यवर्य्य-
प्रपदन लिन भृङ्गस्सप्रतापैक भूमिः॥ २४॥

स्वस्ति शक वर्षे १३०७ प्रवर्त्तमाने क्रोधनवत्सरे फाल्गुन मासे कृष्ण पक्षे द्वितीयायां तिथौ शुक्रवासरे।

अस्ति विस्तीर्ण कर्णाट धरामण्डल मध्यगः।
विषयः कुन्तलो नाम्ना भूकान्ताकुन्तलोपमः॥ २५॥
विचित्ररत्न रुचिरं तत्रास्ति विजयाभिधं।
नगरं सौधसन्दोह दर्शिताकाशचन्द्रिकम्॥ २६॥
मणिकुट्टिमवीथीषु मुक्ता सैकतसेतुभिः।
दानाम्बुनि निरुन्धाना यत्रक्रीडन्ति बालिका॥ २७॥
तस्मिन्निरुगदण्डेशः पुरे चारु शिलामयम्।
श्रीकुन्थु जिननाथस्य चैत्यालय मचीकरत्॥ २८॥

भद्रमस्तु जिनशासनाय।

दूसरे शिला लेखका भाषानुवाद।

जिनके चरणकमलकी धूलि मानसिक मालिन्यको दूर करती है वही करुणामय जिनेन्द्र भगवान भूरि कल्याणके लिये हों॥ १॥

श्री त्रैलोक्यनाथ जिन भगवानके परम गम्भीर अनेकान्त सिद्धान्तके अमोघ लाञ्छन वाला जिनशासन नामक शासन जयशाली होवे॥ २॥

श्रीमूलसङ्घमें नन्दिसङ्घ हुआ, उसमें बलात्कार नामका परम रम्य 'गण' हुआ। उसमें भी सारस्वत नामका एक 'गच्छ' हुआ कि जिसमें पद्मनन्दी आचार्य्य हुए॥ ३॥

इनके 'कुन्दकुन्द' 'वक्रग्रीव' 'एलाचार्य्य' और 'गृद्धपिच्छ' ये पांच नाम हुए॥ ४॥

इनके वंशमें बड़े भारी बुद्धिशाली दिव्य तेजवाले जिस प्रकार समुद्रमें रत्न होते हैं वैसे सरस्वतीकी खानकेसे सुन्दर मुनि हुए॥ ५॥

इनमें सुन्दर चारित्ररत्नके लिये रत्नाकर समुद्रके तुल्य भट्टारक पदाधिकारी योगीन्द्र श्री धर्म्मभूषणजी हुए॥ ६॥

गुण ही है भूषण जिसके ऐसे धर्म्मभूषण भट्टारक शोभायमान हुए। इनके यशरूपी कुसुमके आमोदमें आकाश भ्रमरके ऐसा मालुम होता है॥ ७॥

इन महात्माके शिष्य उपदेशिकोंमें अग्रेसर शमी तपोनिधि श्रीमान् अमरकीर्ति आचार्य्य हुए॥ ८॥

पक्ष्म (आंखकी पपनी) रूपी किवाड़को लगाकर प्राणवायुको रोकनेसे जिनके हृदयमें ज्ञानरूपी प्रदीप जाज्वल्यमान हो रहा है ऐसे अन्धकारापहारक अमरकीर्ति देवकी मैं स्तुति करता हूं॥ ९॥

केवल अपनेही उदरकी पूर्त्ति करनेवाले ज्ञानरहित बहुतसे योगीश्व भूतलमें हों, उनसे क्या? अमरकीर्त्याचार्य्यके शिष्य गणी श्रीसिंहनन्द्याचार्य्य बड़े बड़े दुर्ज्जय अभिमानियोंके मद चूर्ण करनेवाले उन्नत गुणोंसे बड़ी धीरतासे देदीप्यमान हो रहे हैं॥ १०॥

इनके पट्टमें भट्टारकश्रीधर्म्मभूषणजी हुए। ये जैनधर्मरूपी हर्म्मके लिये स्तम्भके ऐसे चन्द्रमाकी जैसी उज्वल कीर्तिवाले थे॥ ११॥

इन मुनिवरके पट्टमें श्रीसिंहनन्दी योगीन्द्रके चरणकमलके लिये भ्रमर-जैसे मुनीश्वर बहुमान हुए। १२।

इनके शिष्य शल्यत्रय से रहित श्रीमान् श्रीभट्टारक मुनि धर्मभूषण पूर्व गुरुके उपदेशसे हुए॥ १३॥

इन भट्टारक मुनिके चरण कमलको मैं बार बार स्तुति करता हूं। क्योंकि इनके सामने सभी राजकर मुकुलताको प्राप्त होजाते हैं॥ १४॥

इसी प्रकारकी स्थिर गुरुपरम्परामें यादववंशी राजाओंके वंशमें निस्सीम महिमावाले और अखण्डित गुणोंसे उदार बुक्कराजा हुए॥१५॥

इस राजासे क्षीर समुद्रसे चन्द्रमाकेसे कलासमूहके स्थान राजा हरिहरेश्वर हुए॥ १६॥

अपने पराक्रमसे स्वर्गपर भी आक्रमण करनेवाले जिनके राजत्वमें यह पृथ्वी बहुत दिनों तक राजन्वती कहलाई॥ १७॥

इनके, चारों समुद्रोंकी करधनी वाली पृथ्वीका शासन करने पर पृथ्वी पुरातन राजाओंको भूल गयी॥१८॥

इस राजाके "प्रभावोत्साह मन्त्रजा" इत्यादि शक्तित्रयके साथ राजपरम्परागत मन्त्री चैच अधिनायक थे। १९।

ये महाचैचपदण्डनाथ राजाके एकान्तमें द्वितीय अन्तःकरण, युद्ध क्षेत्रमें तीसरी बाहु होकर हरिहरेश्वर राजाके कार्य्यमें सदा सावधान रहते थे॥ २०॥

सम्बर्द्धित विभूतिवाले उस चैच दण्डाधिनायक को संसारको प्रसन्न करनेवाला पुत्र इरुगदेशका अधिनायक था।। २१॥

हे इरुगदेशके अधिनायक! शरत्कालीन, चन्द्रमाको शिरपर धारण करनेवाले शिवजीकी आंखकी द्युति की सी जो आपकी बहुतसी कीर्तियां हैं वेही कह रहीहैं कि यहां अनेकान्त मत अर्थात् स्याद्वाद सिद्धान्तके सिवा दूसरा कोई मत याही नहीं॥ २२॥

जिस इरुगदेशाधिपतिका धनुष सद्वंशमें उत्पन्न होकर भी, गुणवान् अर्थात् प्रत्यञ्चा युक्त होकर भो, बाणोंकी आधारताको प्राप्त होकर भी और स्वयं नम्र होकर भी शत्रुओंको दबाता हुआ यानी वशीभूत करता हुआ

लोगोंको बहुत ही उच्च कक्षाकी नीति सिखला रहा है। इसमें श्लेषालङ्कार है इसलिये इसके दो अर्थ हैं एक अर्थ स्पष्ट है अतः नहीं लिखा गया ॥२३॥

हरिहर नृपतिके बड़े भारी राज्यकी लक्ष्मी, कुवलय और हिमकेसे उज्वल शूरता और गम्भीरताकी सीमा, प्रतापकी एकभूमि और आर्य्यवर्य्य सिंह नन्दी स्वामीके चरणकमलके भक्त इरुगदेश नरेश हैं ॥ २४ ॥

विस्तीर्णकर्णाटक प्रान्तके बीचमें, भूनायिकाके कचकेसमान एक कुन्तल-नामक देश है। २५।

वहांपर अनेक प्रकारके रत्नोंसे शोभनेवाला, कोटोंकी उत्तुङ्गतासे अकाण्ड-चन्द्रिकाको दरशानेवाला वहां विजय नामक एक नगर है। २६।

जहां मणिकुट्टिमकी वीथियोंमें मुक्तारूपी वालुकाके पुलोंसे दानरूपी जलोंको रोकती हुई बालिकाएं खेल रही हैं। २७।

उसी नगरमें इरुगदण्डेशने १३०७ शकवर्षमें, क्रोधन नाम वत्सरमें फाल्गुन कृष्ण द्वितिया शुक्रवारको श्रीकुन्थु जिननाथका सुन्दर पत्थरका चैत्यालय बनवाया*। २८। भद्रमस्तु जिनशासनाय।

शिला लेख नं० ८२

(यह शिला लेख सन् १३६२ A. D. का है)

[श्रवणवेलगुलके इस शिलालेखमें लिखाहुआ है कि विजय नगरके बुक्क-राजाकी अधीनतामें एरुगप्पाने गोमटेश्वरके दानपत्रकी स्वीकृतिकी पुष्टि की।]

श्रीबुक्करायके मन्त्री चैचदण्डेश्वर थे। इन्हें एरुगप्पा, बुक्काना और मंगप्पा नामके तीन पुत्र हुए इनमें अन्तिम पुत्र बड़े ही प्रख्यात हुए। इन्हें भी चैचप्पा और एरुगप्पा नामके दो पुत्र थे। अन्तिम पुत्र अन्यान्य

* नोट—इन शिलालेखोंकी गुरुपरम्परा नन्दीसङ्घकी किसी दूसरी शाखाके आचार्योंकी है इसकारण यह मूलसङ्घकी पट्टावलीकी नामावली नहीं मिलती है। केवल इनमें यहां ऐतिहासिक लेख और मूलसङ्घकी पट्टावलीकी सर्वमान्यता तथा प्राचीनताके प्रभावमें इन शिलालेखोंको प्रकाशित किया है।

कई विजयोंको प्राप्तकर बड़े ही प्रसिद्ध होचले थे। पण्डिताचार्य नामक एक सर्वमान्य यति थे विद्वन्मण्डलीमें यह श्रुतमुनि यति नामसे प्रसिद्ध थे। इनके समक्ष संसारके सर्व प्रसिद्ध बेलगुलके गौमटेश्वरकी पूजाके लिये एरुगप्पादण्डनाथ ने यह बेलगोल नामक बहुत उत्तम ग्राम दिया। यह दान शुभकृत नामक सम्वतको कार्तिक शुक्ल एकादशीको हुआ। इन राजमन्त्रीके वंशजने अपनी ओरसे इस तीर्थमें एक परम रमणीय पुष्पवाटिका लगवा दी तथा एक तालाब खुदवा दिया।

शिला लेख नं० १३६

(यह शिला लेख शाका सम्वत् १२९० किलाक नाम सम्वत्सर भाद्र शुक्ल दशमी गुरुवारका लिखा हुआ है)

स्वस्ति !

महामण्डलेश्वर, समरविजयी, उच्छृङ्खल राजाओंके दमनकर्त्ता, और माङ्गलिक राजा श्री बुक्कराय इस देशका राज्यशासन कर रहे थे। इनके राज्यशासन कालमें भक्त मतावलम्बियों से मतभेद होनेके कारण जैनियों से विरोध होगया था। अनगोण्डी, होसापाटन, पेनगोंडी, कल्हणपाटण आदि नगर निवासियोंने बुक्करायके यहां निवेदन किया कि भक्त मतावलम्बीगण बड़ाही उपद्रव मचा रहे हैं। महाराज बुक्करायने अट्टारह प्रान्त के बैष्णवोंको और खासकर, कोविल, तिरुमेल, पेरुमेलकोविल और तिरुनारायणपुरके मठाधिवासी आचार्य और संन्यासी तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियोंको बुलाकर और जैनियोंका हाथ हिन्दू धर्म्मावलम्बियोंके हाथमें रखकर "हिन्दूदर्शन" और जैनदर्शन" में कोई मतान्तर नहींहै" ऐसी घोषणा देतेहुए अपना स्वतन्त्र विचार प्रकट किया कि "जैनदर्शनकी प्राचीन प्रथाके अनुसार जो पञ्चमहाशब्द और कलश प्रचलित होता आया है वह क्रम सदा प्रचलित रहे। और आप लोग भक्तों (अजैनों) से जैनदर्शन पर किसी प्रकार हानि पहुंचाई जाती हुई देखें तो उसकी रक्षा प्रतिकार ऐसी करें कि

जैसी हिन्दूधर्म्म अपने धर्म्म पर हानि होनेसे करते हों। और वैष्णव लोग (अजैन आप लोग) इस जैन प्रथाके सम्बन्धमें जो विचार (न्याय) हुआ है उसको घोषणा (सूचना) राज्यके सभी अन्यान्य मन्दिरोंमें दे दें। जब तक चन्द्रमा और सूर्य्य वर्तमान रहैं तब तक वैष्णवसङ्घ जैन दर्शनकी रक्षा करें। और वैष्णव धर्म्म (हिन्दू धर्म्म) जैन धर्म्मको कभी अपने धर्म्मसे विरुद्ध धर्म्म नहीं समझे। पवित्र तिरमूलके ताता और राज्यके सभी उत्तम उत्तम पात्रोंकी सम्मतिसे यह बात निश्चित हुई कि राज्यके सभी जैनी लोग अपने अपने घरके द्वारके हिसाबसे वेलगोला के तीर्थङ्कर देवकी शरीर रक्षाके लिये प्रतिवर्ष एक फनम सिक्का दें। इस आयसे महीनेमें सत्ताइस नौकर भगवानकी शरीर रक्षाके लिये रक्खे जायँ। और शेष जो द्रव्य है वह मन्दिरकी रक्षामें व्यय हो। जब तक सूर्य्य और चन्द्रमाकी स्थिति रहे तब तक इस प्रथामें कोई त्रुटि न हो॥ प्रतिवर्ष यह धार्म्मिक कर देनेसे बड़ी कीर्ति तथा बड़ी प्रख्याति होवेगी। इस नियमका उल्लङ्घनकर्त्ता राजद्रोही, समाजद्रोही तथा समुदायद्रोही समझा जायगा। इस नियमके तोड़नेवाले चाहे साधु हों अथवा ग्रामीण, उन्हें गंगा तटपर गो-ब्राह्मण हत्या करनेका कलङ्क लगेगा। जो कोई अपनी दी हुई अथवा दूसरोंकी दी हुई इस धर्म्मभूमिमें बाधा पहुचावेंगे वे साठ हजार वर्षों तक नरकके कीड़े बने पड़े रहेंगे॥

शिला लेख नं० १५२

(यह शिला लेख विजय नगरके एक दीपस्तम्भ पर अङ्कित मिला।)

इस शिला लेखका एक भावानुवाद १८३६ ई० के एशियाटिक रिसर्चमें प्रकाशित हुआ था। यह शिला लेख विजय नगरके एक जैन मन्दिरके दीपस्तम्भ पर अङ्कित है। यह मन्दिर गनगिट्टी अर्थात् तेलिनके मन्दिरके नामसे आजकल विख्यात है। अट्ठाइस संस्कृत श्लोकोंमें यह शिलालेख लिखा हुआ है। इसके प्रारम्भमें जिनदेव तथा इनके जैनधर्म्मकी

प्रशंसा की गयी है। इसके बाद् जैनाचार्य्यों की पट्टावली जो सिंहनन्दी नामसे प्रसिद्ध है दी गई है। निम्न लिखित पट्टक्रम है :—

मूलसङ्घ
।
नन्दीसङ्घ
।
वलात्कारगण
।
सरस्वतीगच्छ
।
पद्मनन्दी
।
धर्म्मभूषण (प्रथम भट्टारक)
।
अमरकीर्ति
।
सिंहनन्दी (गणभृत्)
।
धर्म्मभूषण (भट्टारक)
।
वर्द्धमान
।
धर्म्मभूषण द्वि० (भट्टारक मुनि)

उपर्युक्त आचार्य्यों का सम्बोधन निम्न लिखित उपाधियोंसे किया गया है :—

'आचार्य्य' 'आर्य्य' 'गुरु' 'देशिक' 'मुनि' और 'योगीन्द्र'।

जैनाचार्य्यों की पट्टावलीके वर्णनके बाद् विजय नगरके प्रथम दो राजाओंका वर्णन है। वे राजा बुक्क और हरिहर हैं। इनकी उत्पत्ति यदुवंशियोंसे है।

सेनापति बैचा अथवा बैचप्पा हरिहर राजाकी खान्दानी (वंश-क्रमागत) मन्त्री था बैचप्पा का पुत्र सेनापति इंदेशा अथवा एरगप्पा उल्लिखित आचार्य्यों के मतका अनुयायी बना। १३०७ शाका व्यतीत होनेपर क्रोधन नामक सम्वत्सरमें विजय नगरमें एरगप्पाने कुन्थु जिननाथ का पाषाणमय मन्दिर बनवाया। यह मन्दिर कर्णाटक प्रान्तके किसी एक कुप्पल नगरमें भी था।

शिलालेख नं० १५३

(यह शिलालेख विजयनगरके एकजैन मन्दिरमें खुदाहुआ है)

१५२ नम्बरवाले शिलालेखके बाद यही १५३ नं० का विजयनगरका सब से प्राचीन शिला लेख है। यह एक जीर्ण जैन मन्दिरके पश्चिमोत्तर द्वारके दोनों बगलमें खुदा हुआ है। यह जैनमन्दिर मद्रास सर्वे मेपमें ३५ नं०के मन्दिरके दक्षिण और पश्चिमके कोणमें है। इसकी सावधानतापूर्वक की हुई प्रतिलिपि तथा सविस्तर व्याख्या एसिआइटिक रिसर्चमें (इतिहास पुरातत्वान्वेषणमें) इतनी लाभदायकी हुई कि जिसने आर सि वेल साहबको विजयनगरकी पूर्व राजवंशावली पूरी करनेमें पूर्ण सहायता मिली है। यह शिलालेख बड़े बड़े तथा सुन्दर अक्षरोंमें खुदा हुआ है। किन्तु यह मन्दिर चूनेसे पोते जानेकी वजहसे इसके अक्षर चूनेसे भरसे गये हैं। यह संस्कृत गद्य पद्यमें लिखाहुआ है। यह पराभव नामक संवत्सरमें लिखा गया यह संवत्सर शाका सम्वत् १३४८ खतम होनेपर प्रचलित था। बुक्कराजके वंशधर देवराज द्वितीयने कर्णाटक देशान्तर्गत विजय नगरीमें पान सुपारी वाले बाजारकी गलीमें श्री पार्श्वनाथका प्रस्तरमय चैत्यालय बनवाया इस शिलालेखका विशेष महत्व इसी से प्रकटित होता है कि इसमें विजयनगरकी राजवंशावलीका तीन बार उल्लेख है।

यादववंशकी वंशावली जो फ्लीट साहेबने उतारी है उसमें बुक्करायके पिता तथा बड़े भ्राताका नाम है। बल्कि शक और मितियां भी दी हुई हैं निम्न लिखित देवराजकी वंशावली इसीसे ली गई है :—

सङ्गम

हरिहर प्र० (शक १२६१)

बुक्कराय (शक १२७६ वर्तमान १२७७, १२७८ और १२९० है)

हरिहर द्वि० (शक १३०१, १३०७, १३१७ और १३२१)

देवराज प्र०
(शक १३३२, १३३४)
।
विजय
।
देवराज द्वि०
(शक १३४६, १३४७, १३४८, १३५३ वर्तमान १३७१)

देवराज द्वितियके राजत्वकालमें ही विजयनगरमें अब्दुल रज़ाक नामका एलची सुलतान शाहरुख समरकन्द तैमूरका लड़का आया था। अब्दुल रजाक अपने भ्रमणवृत्तान्तमें लिखता है कि "मैं विजयनगरमें आकर ठहरा। यह नगर देवराज द्वितीयकी राजधानी था। इसका समय "जुलहिज्ज' A-H ८४६ = एप्रिल १४४३ A-D का अन्त है। अब्दुल रज़ाककी यात्राका पूर्ण वृत्तान्त अङ्गरेजी इलियट (Elliot) और डासन साहेबकी हिस्टरी आफ इण्डियन (Down's History of Indian) में हैं। अब्दुल रजाकके लिखनानुसार अपने राज्यमें देवराज द्वितीयने निम्न लिखित सिक्के प्रचलित किये थे.—सुवर्ण (१ वराह) दूसरा प्रताप — $\frac{1}{2}$ आधा वराह तीसरा फनम $\frac{1}{10}$ प्रतापके बराबर। एक चांदीका सिक्का तार जो कि $\frac{1}{6}$ फनमके बराबर है। तीसरा ताम्बेका सिक्का जटिल $\frac{1}{3}$ तारके बराबर। अब्दुल रजाकने जिस प्रताप नामक सिक्केका उल्लेख किया है उसपर आधे मन्दिरका आकार है। प्रायः ऐसेही आकार प्रकार विजय नगरके राज्यवंशोंके सिक्कों पर भी रहता है। बल्कि एक ऐसाही सिक्का बैंगलोरके डाक्टर बैंगके पास भी है। ठीक इसी तरहका आधे मन्दिरके साथ प्रताप राजका सिक्का है। इस शिलालेखके अनुसन्धानी महोदय भी कहते हैं कि एक ऐसाही सिक्का हमारे पास भी है। इसकी दूसरी तरफ एक हस्ती बाईं ओर मुँह किये हुआ है और एक ओर देवरायका नाम है। फनाम नामका चांदीका सिक्का अभी तक कोई नहीं मिला है। किन्तु देवरायका ताम्बका सिक्का दक्षिण देशमें अब तक भी मिलता है। उसके एक ओर हाथी अथवा वृषभका चिन्ह है। दूसरी तरफ देवराय, प्रताप देवराय. रायगजगवड़ भेहयड़, या श्रीनीलकण्ठ लिखा हुआ है।

(शिला लेख ।)

ये चार शिलालेख कर्णाटक देशान्तर्गत विजय नगरके अधिपति श्रीबुक्कराजाके सम्बन्धके हैं। इसमें मूलसङ्घकी कुछ गुरुपरम्पराका उल्लेख है। और उनके समयकी कई धार्म्मिक ऐतिहासिक घटनाओंका उल्लेख है। जैसे कि एक समय श्रीगोमटेश्वरजीकी प्रतिमाके ऊपर भक्तमतावलम्बियोंसे उपसर्ग होना, और इन्होंसे मेलकर इन्होंसे बुक्कराज द्वारा प्रतिमाजीकी रक्षा आदि करानेका उल्लेख है।

इसके अतिरिक्त संस्कृत साहित्यके रसिकोंके समक्ष मैं उस समयकी संस्कृत भाषाका सौन्दर्य्य, तथा उसकी रचना प्रणालीकी भी छटा दिखाये देता हूं। उस समय संस्कृत साहित्य कैसी समुन्नतावस्थामें था और अलङ्कार शास्त्रका कैसा उपयोग होता था इसके दृष्टान्तभूत ये शिला लेख ही हैं। मेरी तो समझ है कि वह समय संस्कृत साहित्यकी बड़ी ही समुन्नतावस्था सूचित कर रहा है। इन दो शिला लेखोंका शब्द सौन्दर्य्य, अलङ्कार वैचित्र्य तथा भाव गाम्भीर्य्य बड़े ही पाण्डित्यपूर्ण हैं।

पट्टावलीके अन्तर्गत सेनगणके आचार्य्योंकी नामावली।

(इसकी पट्टावली गत तीनों किरणोंमें प्रकाशित हो चुकी है)

१	जिनसेन	२७	कमलभद्र
२	रविषेण	२८	देवेन्द्रसेन
३	शिवायन	२९	कुमारसेन
४	रामसेन	३०	दुर्लभसेन
५	कनकसेन	३१	श्रीधरसेन
६	बन्धुषेण	३२	श्रीषेण
७	विष्णुषेण	३३	लक्ष्मीसेन
८	मल्लिषेण	३४	सोमसेन
९	महावीराचार्य्य	३५	श्रीश्रुतवीर स्वामी
१०	भावसेन	३६	श्रीधरसेन
११	अरिष्टनेमी	३७	देवसेन
१२	अर्हद्बल्याचार्य्य	३८	श्रीदेवसेन
१३	अजितसेन	३९	सोमसेन
१४	गुणसेन	४०	गुणभद्र
१५	सिद्धसेन	४१	श्रीदेवसेन
१६	समन्तभद्र	४२	श्रीवीर भट्टारक
१७	शिवकोटि	४३	माणिकसेन
१८	वीरसेन	४४	गुणसेन
१९	जिनसेन	४५	लक्ष्मीसेन
२०	गुणभद्राचार्य्य	४६	सोमसेन
२१	नेमिसेन	४७	माणिक्यसेन
२२	श्रीछत्रसेन	४८	गुणभद्र भट्टारक
२३	आर्य्यसेन	४९	सोमसेन
२४	लोहसेन	५०	जिनसेन
२५	ब्रह्मसेन	५१	समन्तभद्र
२६	सूरसेन	५२	छत्रसेन

काष्ठासङ्घस्य गुर्वावली।

संप्राप्तसंसारसमुद्रतीरं जिनेन्द्रचन्द्रं प्रणिपत्य वीरम्।
सम्मोहितान्मैये सुमनस्तरूणां नामावलीं वच्मितमां गुरूणाम् ॥१॥
श्रीवर्द्धमानस्यजिनेश्वरस्य शिष्यास्त्रयः केवलिनोबभूवुः।
जम्बूस्वकस्त्रूज्ज्वलकीर्त्तिपूरः श्रीगौतमः साधुवरः सुधर्म्मा ॥ २ ॥
विष्णुस्ततोऽभूद्गणभृत्सहिष्णुः श्रीनन्दिमित्रोऽजनि नन्दिमित्रं।
गणिश्च तस्मादपराजिताख्योगोवर्द्धनः साधुसुभद्रबाहुः ॥ ३ ॥
पञ्चापिनाथं यममौलिरत्नान्येतेनकेषांमुनयो नमस्याः।
यत्कण्ठपीठेषु चतुर्दशापिपूर्वाणिसर्वैः सुखमाभजन्ति ॥॥ ४ ॥
ततोविशाखोऽन्धतगच्छशाखं वन्देमुनिंप्रोष्ठिलनामकञ्च।
गणेश्वरौक्षत्रियनागसेनौ जयाभिधानं मुनिपुंगवञ्च ॥ ५ ॥
सिद्धार्थसंज्ञो ऽयजनिष्टशिष्ट-स्तस्मात्प्रकृष्टो धृतषेणनामा।
अभून्मुनीशो विजयः सुधीमान् श्रीगंगदेवोऽपिचधर्म्मसेनः ॥ ६ ॥
अभूवन्मुनयस्सर्वे दशपूर्वधरा इमे।
भव्याम्भोजवनोद्बोधानन्य मार्त्तण्डमण्डलाः ॥ ७ ॥
ततःनक्षत्रमुनिस्तपस्वी जयोदितोभूज्जयपालसंज्ञः।
अनीमनोहां परिपूरयन्तु भयोऽपिपाण्डु ध्रुवसेनकंसा ॥ ८ ॥
एत एकादशाङ्गानां पारं गमयति प्रथा।
काष्ठसंघे श्रियांहारा माथुरेपुष्करेगणे ॥ ९ ॥
सुभद्रोयशोभद्रो भद्रबाहुर्गणाग्रणीः।
लोहाचार्य्येतिविख्याताः प्रथमाङ्गाब्धिपारगा. ॥ १० ॥
जगत्प्रियोऽभूज्जयसेनसाधुः श्रीवीरसेनोहतकर्म्मवीरः।
ब्रह्मसेनोऽपिचरुद्रसेनस्ततोप्यभूतां मुनिकुञ्जरौतौ ॥ ११ ॥
श्रीभद्रसेनो मुनिकीर्त्तिरिन्द्रस्तपोनिधानं जयकीर्त्तिसाधुः।
चद्विश्वकीर्त्तिं सं तविश्वकीर्तिः यस्यत्रिसन्ध्यं समबेक्षणस्य ॥ १२ ॥
ततोप्यभयकीर्त्याख्यो भूतिसेनो महामुनिः।
भावकीर्तिः तपश्चावो विश्वचन्द्राभिधः सुधीः ॥ १३ ॥

अभूत्ततोऽसावभयादिचन्द्र. श्रीमाघचन्द्रो मुनिवृन्दवन्द्यः ।
तंनेमिचन्द्रं विनयादिचन्द्रं श्रीबालचन्द्रं प्रणतः प्रणौमि ॥ १४ ॥
यश्चे त्रिभुवनचन्द्रं त्रिभुवनभवनोपगूढविमलयशा ।
गणिरामचन्द्रनामा गणिभिगणः परिहृतैरेव ॥ १५ ॥
त्रिविद्यविद्याविशदाशयोयः सिद्धान्ततत्त्वामृतपानलीनः ।
धन्योमुनिः श्रीविजयेन्दुनामा ततोऽभवद्भावितपुण्यमार्गः ॥ १६ ॥
मुनिः यशःकीर्तिरभूद्यशस्वी विश्वाभयाद्योभयकीर्तिरासीत् ।
ततोमहासेनमुनिः सकुन्दकीर्तिश्च कुन्दोपमकीर्तिभारः ॥ १७ ॥
त्रिभुवनचन्द्र-मुनिन्द्रमुदारं रामसेनमपिदलितविकारं ।
हर्षषेणनवकल्पविहारं वन्देसंयमलक्ष्मीधारम् ॥ १८ ॥
तस्मादजायतसदायतचित्तवृत्ति-कल्पवल्लततमनोरथचञ्चरीकः ।
संसारवारिनिधि पारगबुद्धिभारो गच्छाधिपोगुणनिर्गुणसेननामा
॥ १९ ॥
ततस्तपः श्रीभरभाविताङ्ग. कन्दर्पदर्पापहचित्तचारः ।
कुमारवच्छीलकलाविशालः कुमारसेनोमुनिरस्त दुष्टः ॥ २० ॥
प्रतापसेनः स्वतपः प्रतापी सन्तापितः शिष्टतमान्तरराशिः ।
तत्पट्टशृङ्गारस्ववर्णभूषा बभूव भूयः प्रसरत्प्रभावः ॥ २१ ॥
श्रीमन्माहवसेनसाधुमनहं ज्ञानप्रकाशोल्लसत्
स्वात्मालोकनिलीय मानमपरमानन्दोर्मि संवर्मिनम् ।
ध्यायामिस्फुरदुग्रकर्मनिगणो-च्छेदाय विश्वम्भवा
वर्तेगुप्तिगृहे वसन्महरहर्मुक्तयैस्पृहावानिव ॥ २२ ॥
ममजनिजनताशः छिन्नदुष्कर्मपाशः
कृतशुभगतिवास. प्रोद्गतात्मप्रकाशः ।
जयतिविजयसेनः प्रास्तकन्दर्पसेन.
तदनुमनुजवन्द्यः सर्वभावैरनिन्द्यः ॥ २३ ॥
अधिगताखिलशास्त्ररहस्यहक् ममतजाननमार्गपिसेवितः ।
बहुतपश्चरणोमलधारिणो विजयसेनमुनिः परिवर्धते ॥ २४ ॥
तत्पट्टपूर्वाचलचन्द्ररश्मिर्मुनीश्वरो भूजयसेननामा ।
तपोयदीयं जगतांत्रयेऽपि जेगीयते साधुजनैरजस्रम् ॥ २५॥
यद्यस्ताखिलगुणवर्णनायां मुनीशातुः श्रीमयसेनसूरेः ।



स्वर्गीय बाबू धन्नूलालजी अटर्नी कुछ जातीय नेतागण और बंगालके छोटेलाट फ्रेजर महोदयके साथ २ पर्वतपर घूम रहे हैं।

तदा विहायान्यकथां समस्तां मासोपवासं परिवर्णयन्तु ॥ २६ ॥
शिष्यस्तदीयोऽस्ति निरस्तदोषः श्रेयांससेनो मुनिपुण्डरीकः।
अध्यात्ममार्गे खलु येन चित्तं निवेशितं सर्वमपास्य कृत्यं ॥ २७ ॥
श्रेयांससेनस्य मुनेर्महीयस्तपःप्रभावाः परितः स्फुरन्ति।
यद्दर्शनाद्दर्पविलं(?) प्रयाति दारिद्र्यमाशु प्रणतस्य(?) गेहात् ॥२८॥
तत्पट्टधारी सुकृतानुसारी सन्मार्गचारी निजकृत्यकारी।
अनन्तकीर्तिर्मुनिपुङ्गवोऽत्र जीयाज्जगल्लोकहितप्रदाता ॥ २९ ॥
अनन्तकीर्त्तिःस्फुरितोरुकीर्त्तिः शिष्यस्तदीयो जयतीह लोके।
यस्याशये मानसवारितुल्ये श्रीजैनधर्म्मोऽम्बुजवत्प्रफुल्लः ॥३०॥
प्रसमरवरकीर्त्तेः सर्वतोऽनन्तकीर्त्तेः
गगनवसनपट्टे राजते तस्य पट्टे
सकलजनहितोक्तिः जैनतत्वार्थवेदी
जगति कमलकीर्तिः विश्वविख्यातकीर्त्तिः ॥ ३१ ॥
जयति कमलकीर्त्तिः विश्वविख्यातकीर्त्तिः
प्रकटितयतिमूर्त्तिः सर्वसंघस्य पूर्तिः।
यदुदयमहिमानं प्राप्य सर्वेऽप्यमानं
दधति भविकलोकाः प्रीतिमुत्तानयोगाः ॥ ३२ ॥
अध्यात्मनिष्ठः प्रसरत्प्रतिष्ठः कृपावरिष्ठः प्रतिभावरिष्ठः।
पट्टे स्थितस्तस्य त्रिजगत्प्रशस्यः श्रीक्षेमकीर्तिः कुमुदेन्दुकीर्त्तिः ॥३३॥
तत्पट्टोदयभूधरेऽतिमहति प्राप्तोदयादुज्जयं
रागद्वेषमदान्धकारपटलं सञ्चिन्वद्धन्स्करैर्दोषपाम्।
श्रीमान् राजितहेमकीर्त्तितरणिः स्फीतां विकाशश्रियं
भव्याम्भोजचये दिगम्बरपथालङ्कारभूतां दधत् ॥ ३४ ॥
कुमुदविशदकीर्ति-हेमकीर्ति (?) सुपट्टे
विजितमदनमायः शीलसम्पत्सहायः।
मुनिवरगणवन्द्यो विश्वलोकैरनिन्द्यो
जयति कमलकीर्तिः जैनसिद्धान्तवादी ॥ ३५ ॥
महामुनिपुरन्दरः शमितरागद्वेषाङ्कुरः
स्फुरत्परमचिन्तनः स्थितिरशेषशास्त्रार्थवित्।
यशःप्रसरभासुरो जयति हेमकीर्त्तीश्वरः
समस्तगुणमन्दिरः कमलकीर्त्तिसूरिर्महान् ॥ ३६ ॥

एवमपूज्यगुरुक्रमोत्तमलसन्नामावलीपद्धती
र्यजिह्वाधिगतां दधाति परमानन्दामृतोत्कण्ठुलाम्।
सोऽवश्यं भवसंभवं परिभवं त्यक्त्वा विवादाशयम्
प्राप्नोत्याशु पदं परं विलभते चानन्तकीर्तिश्रियम् ॥ ३७ ॥
श्रीमत्काष्ठोदयगिरिहरिर्वादिमाभंगसिन्धुः
मिथ्यात्वागाशनिरिवगतो शेषजोवादितत्वः।
कामक्रोधावृदयमकृतश्रीकमारादिमेनः
स्यात् श्रीमान् जयति सुपदो हेमचन्द्रो मुनीन्द्रः ॥ ३८ ॥
शास्त्रप्रवीणो मुनिहेमचन्द्रः
तत्त्वार्थवेत्ता यतिनायकोऽभूत्।
तत्पट्टचन्द्रो मुनिपद्मनन्दिः
जीयात्समो सेवितपादपद्मः ॥ ३९ ॥
ब्राह्मी-सिन्धु-कमद्युतिपतिरसौ जैनाब्धजोऽहस्करः
स्याद्वादामलवर्द्धकः शशधरः रत्नत्रयालिङ्गितः।
जीयाच्छ्रीमुनिपद्मनन्दिसगुरो पट्टोदयाद्रौ हरिः
शान्तिकीर्तिभृतांवरो गुणनिधिः सूरिर्यशः कीर्तिराट् ॥ ४० ॥
यशःकीर्तिमरीन्द्रपट्टाब्जभानु
शुभे काष्ठसंघान्वये शोभमानः।
शरच्चन्द्रकुन्दस्फुरत्कान्तकीर्ति
जयीक्षीतसूरीश्वर क्षेमकीर्तिः ॥ ४१ ॥
विद्वान् साधुशिरोमणिर्गुणनिधिः सौजन्यरत्नाकरो
मिथ्यात्वाचलछेदनैककुलिशो विख्यातकीर्तिर्भुवि।
श्रीमच्छ्रीयशकीर्तिसूरिसुगुरोः पट्टाम्बुजाहस्करः
श्रीसंघस्य सदा करोतु कुशलं श्रीक्षेमकीर्तिः गुरुः ॥ ४२ ॥
श्रीमच्छ्रीक्षेमकीर्तिः सकलगुणनिधिर्विष्टपे भूरिपूज्यः
तेषां पट्टे समोदःसमजममुनिभिः स्थापितो शास्त्रविद्भिः।
श्री रे हिंसारे [illegible] सुयतितनिवराः सत्क्रियोद्योतपुञ्जो
सोऽनन्दं तातु सेव्यस्त्रिभुवनपुरतः कीर्तिपः सूरिराजः ॥ ४३ ॥
श्रीमन्माथुरगच्छभालतिलकः स्फुर्ज्यत्स्वतामग्रणी
सद्बोधादिगुणैरतुच्छसुखदैः युक्तः श्रियालङ्कृतः।

पाताले दिवि भूतले च भविकैस्संसेव्यमानोऽनिशम्
जीयात्स्त्रीत्रिभुवनकीर्ति सुरुगुरुर्वन्द्यो बुधैस्सर्वदा ॥ ४४ ॥
धात्रीमण्डलमण्डनस्तु जयतात् श्रीसहस्रकीर्तिर्गुरुः
राजद्राजकयातिसाह्विविदितो भट्टारकाभूषणः।
वर्षेवह्निनगांकचन्द्रकमिते शुभ्रायने दिने
पट्टे भूत्सचयस्य वै त्रिभुवनाद्याकीर्तिपट्टे क्रियते ॥ ४५ ॥
महस्रवस्कानुलपक्षभावा महस्रारश्मिस्तु चकास्ति नित्यं।
महस्रकीर्तिस्समगतैकमूर्ति र्गम्भमाभः खलु रत्नपूर्तिः ॥४६॥
यत्पाणिद्वयमवेत्य मण्डितमहीखण्डप्रचण्डोद्भटम्
मद्भव्यव्यवहारनिर्गणविदं कामैकगम्याशयम्।
सर्वैः सौगतिकैः समेत्य विधिवत् भट्टारकाख्ये वरे
पट्टे पण्डितमण्डलीनतमयः पूज्य प्रपूज्यैरपि ॥ ४७ ॥
महीचन्द्रश्चन्द्र सुहृदयहृद्दान्तो हि सुधिया
स्वकान्तेर्वासिभ्योऽविरतमनघं दानविहितम्।
निजे दीव्यन्ज्ञाने सुगतिविदुषां पुण्यपरिधि
यशोराशिं लोकेष्वखिलममना पूर्णमकरोत् ॥ ४८ ॥
पट्टस्यास्य महीचन्द्रशिष्यो देवेन्द्रकीर्तिराट्
ख्यातिमुद्घोषयामास जगत्यद्भुतसद्गुणैः ॥ ४९ ॥
विदितसुकृतकीर्तेर्दिव्यदेवेन्द्रकीर्ते
मुनिवरशुभपट्टं धर्मसत्कान्तिखण्डम्।
तदनुभविकपूज्य. श्रीजगत्कीर्तिपूज्यः
शुभसदनमकार्षीद्दिव्यसद्राशिरासीत् ॥ ५० ॥
अनन्तस्याह्लादाटविषु कलकण्ठः पिकवरः
प्रसादः पुण्यानां गुणसरसिजानां मधुकरः।
जगत्कीर्तेश्शिष्यो ललितसत्कीर्तिर्बुधवरः
समायत्तत्पट्टं सुकृतनिजपट्टं यतिवर. ॥ ५१ ॥
जिनमतशुभद्रुर्वीचिच्छनिशं मज्जन् प्रमाणनयवेदी।
तदनु च पट्टेऽध्यासच्छ्रीमान् राजेन्द्रकीर्तिसुधिरेषः ॥ ५२ ॥
एषोनिजगुरुपट्टं प्राप्याध्यासीन्मुनीन्द्र शुभकीर्तिः।
युगयुगश्वेह्निकवर्षे वीरस्याहो ! गतो हि सुरलोकं ॥ ५३ ॥

काष्ठासङ्घ(१)की पट्टावलीका भाषानुवाद।

पाया है संसाररूपी समुद्रका पार जिन्होंने ऐसे जिनेन्द्र श्रीवीरनाथस्वामीको नमस्कार कर मैं अपने अर्थकी सिद्धिके लिये अपने गुरुओंका नाम कहता हूं ॥ १ ॥

(१) नोट— काष्ठासङ्घकी पट्टावलीमें काष्ठासङ्घकी उत्पत्ति प्रथम लोहाचार्य्य जो वी० नि० सं० ५१५ में पट्टपर बैठे थे उनसे ही प्रचलित मालूम होती है। किन्तु वसुनन्दीश्रावकाचारमें द्वितीय लोहाचार्य्य जो वि० सं० १४२ में पट्टपर बैठे थे, उन्हींसे काष्ठासङ्घकी उत्पत्ति लिखी गई है। वसुनन्दीश्रावकाचारमें द्वि० लोहाचार्य्य उमास्वामीके बाद नन्दीसङ्घके आठवें पट्ट पर बैठे थे।

हमारी समझमें पट्टावलीका क्रम ठीक मालूम होता है क्योंकि प्रथम लोहाचार्य्य वी० नि० सं० ५१५ में पट्टपर बैठे तथा पट्टपर ५० वर्षों तक रहे अर्थात् ५६५ वी० नि० सं० तक पट्टासीन रहे इनके बाद वी० नि० सं० ५६५ में अर्हद्बली पट्टपर बैठे। और इन्होंने ही नन्दीसङ्घ, सेनसङ्घ, सिंहसङ्घ और देवसङ्घ स्थापित किये। सर्वथा सम्भव है कि लोहाचार्य्यजी इन्हींके पहले हुए हों और उत्तर भारतमें हिसारकी तरफ विहार करते हुए काष्ठासङ्घकी स्थापना की हो। अनुमानतः ज्ञात होता है कि अर्हद्बल्याचार्य्यने भी इन्हींकी देखादेखी संघोंकी स्थापना की हो। इस अनुमानसे "वसुनन्दी श्रावकाचार" का मत मुझे असम्पूर्ण मालूम होता है।

दूसरी बात यह है कि "मूलसंघ" की पट्टावलीमें भी यही सिद्ध होता है कि प्रथम लोहाचार्य्यसे ही काष्ठासंघकी स्थापना हुई है मूलसंघकी पट्टावलीमें यह श्लोक—

* लोहाचार्य्यस्ततो जातो जातरूपधरोऽमरैः । सेवनीयः समस्तार्थविबोधनविशारदः ॥
ततः पट्टद्वयीजाता प्राच्युदीच्युपलक्षणात् । तेषां यतीश्वराणां स्युर्नामानीमानि तत्त्वतः ॥

इस प्रमाणको पाठक ग्रहण करेंगे।

और वि० सं० ५६५ के पट्टासीनवाले लोहाचार्य्यसे लेकर वीर नि० सं० २४४० के पट्टासीनवाले मुनीन्द्रकीर्ति तक ५३ पट्ट हुए और इतने पट्टोंके पट्टकाल १८७५ वर्ष हुए। तिरपन आचार्य्योंमें प्रत्येकका पट्ट पर बैठनेका भोग्य समय (औसत) ३५-३६ वर्ष हुए। पट्टावलियां और आचार्योंकी जीवनघटनाओंको देखकर प्रत्येक आचार्य्यका पट्टकाल ३६ वर्ष निस्सन्देह समुचित जान पड़ता है। इसी प्रकार सेनसंघके भी पट्टाधीश आचार्य्य ५३, ५४ हुए हैं और उनका भी पट्टका भोग्य समय यही छत्तीस छत्तीस वर्ष होता है। दूसरी बात यह है कि मूलसंघके आचार्यों के पट्ट समय ३०, ४०, ५० और ६० वर्षों तकके मिलते हैं। इसी लिये इस पट्टावलीका क्रम असम्बद्ध नहीं ज्ञात होता।

* नोट—देखो इसी किरणमें पेज ५१ श्लोक नम्बर ६-७

श्रीवर्द्धमान भगवानके तीन शिष्य केवली हुये । जम्बूस्वामी, गौतमस्वामी और सुधर्म्माचार्य्य ॥ २ ॥

इनके बाद नमस्कार करने योग्य श्रीविष्णुमुनि, श्रीनन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु, ये पांच समस्त चौदह पूर्वके वेत्ता हुये अर्थात् श्रुतकेवली हुये ॥ ३ ॥ ४ ॥

इनके विशाखाचार्य्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रियाचार्य्य, नागसेन, जयसेन, धृतसेन, विजय, गङ्गदेव, धर्म्मसेण, ये सब मुनि दशपूर्वके धारी, और भव्य-कमल प्रकाशन सूर्य्य हुये ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

इनके नक्षत्राचार्य्य, जयपालाचार्य्य, मुनीन्द्र पाण्डुनामाचार्य्य, ध्रुवसेनाचार्य्य, कंशाचार्य्य, ये मुनि एकादशांग अर्थात् ग्यारह अङ्गके धारी हुये ॥ ८ ॥ ९ ॥

इनके समुद्राचार्य्य, यशोभद्र, भद्रबाहु और लोहाचार्य्य ये एक अङ्ग के धारी हुये ॥ १० ॥

इन लोहाचार्य्यस्वामीके (१) जयसेन (२) श्रीवीरसेन (३) ब्रह्मसेन (४) रुद्रसेन (५) भद्रसेन (६) कीर्तिसेन (७) जयकीर्ति (८) विश्वकीर्ति (९) अभयसेन (१०) भूतसेन (११) भावकीर्ति (१२) विश्वचन्द्र (१३) अभयचन्द्र (१४) माघचन्द्र (१५) नेमिचन्द्र (१६) विनयचन्द्र (१७) बालचन्द्र (१८) त्रिभुवनचन्द्र (१९) रामचन्द्र (२०) ॥ ११ ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

इनके त्रैविद्यविद्याधीश्वर सिद्धान्ततत्वामृतपानमें लीन मुनिश्रेष्ठ-विजयचन्द्र हुए । (२१)

इनके यशःकीर्ति (२२) अभयकीर्ति (२३) महासेन (२४) कुन्दकीर्ति (२५) त्रिभुवनचन्द्र (२६) रामसेन (२७) हर्षसेन (२८) गुणसेन (२९) हुये ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

इनके कामदर्पदलन श्रीकुमारसेन (३०) प्रतापसेन (३१) हुये ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥

इनके पट्टपर महातपस्वी, परमउत्कृष्ट आत्मध्यानके ध्याता *श्रीमाहवसेन (३२) हुए ॥ २२ ॥

---

* नोट—१२९५ ईस्वीमें जब चालाक शाह जलालुद्दीन दिल्लीके सिंहासनपर बैठे तब दिल्लीके सिंहासन परिवर्तनके साथ साथ भारतवर्षमें भी एक बड़ा भारी परिवर्तन हो चला ठीक इसी समय भारतवर्षमें बीर

इनके पट्टपर विजयसेन (३३) नयसेन (३४) श्रेयांससेन (३५) अनन्तकीर्त्ति (३६) इन दिगम्बर मुनियोंके पट्टपर सर्वलोकहितकारी जैनसिद्धान्तके अपूर्वज्ञाता, विस्तरित है कीर्त्ति जिनकी ऐसे श्रीकमलकीर्त्ति (३७) हुये। ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

यह कमलकीर्त्ति सर्व सङ्घकी रक्षा करनेवाले और इनकी महिमा पाकर बड़े बड़े मानियोंने भी मान छोड़ दिया और भव्योंको प्रीति उपजानेवाले हुये। उनकी जय हो ॥ ३२ ॥

इनके पट्टपर क्षेमकीर्त्ति (३८) इनके अति महान् पट्टरूपी पर्वतपर उदय होकर दुर्जय मोहान्धकारका नाश करनेवाले दिगम्बर-मुनि-मार्गके अलंकारभूत, भव्यकमलोंको प्रसन्न करनेवाले श्रीहेमकीर्त्ति (३९) हुये ॥३३॥३४॥

इनके कमलकीर्त्ति (४०) कुमारसेन (४१) हेमचन्द्र (४२) पद्मनन्दि (४३) यशःकीर्त्ति (४४) क्षेमकीर्त्ति (४५) त्रिभुवनकीर्त्ति (४६) सहस्रकीर्त्ति (४७) महीचन्द्र (४८) देवेन्द्रकीर्त्ति (४९) जगत्कीर्त्ति (५०) ललितकीर्त्ति (५१) राजेन्द्रकीर्त्ति (५२) मुनीन्द्रकीर्त्ति (५३) हुए ॥ ३३ से ५३ ॥

इस पट्टावलीके भावानुवादमें जिन आचार्योंके विशेषणोंसे कुछ ऐतिहासिक सम्बन्ध है उनके तो वे दे दिये गये हैं औरोंके सिर्फ नाममात्र लिख दिये हैं जिनको इनके पूर्ण विशेषण जानने हों वे संस्कृत पट्टावलीसे जान सकते हैं।

धर्मविप्लव उपस्थित हुआ। इतिहासकारोंने लिखा है कि अलाउद्दीन कहा करता था कि * "राज्य-शासनके साथ धर्मका कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्म एक उदरपोषणका उपाय अथवा एक दिल्लगी सामग्री है" इसीसे हमारे पाठक समझ सकते हैं कि उसका धर्मकी तरफ कैसा ख्याल था। तथा उस समय उसके पास राघव और चेतन नामके दो ब्राह्मण रहा करते थे, इन्होंने भी अलाउद्दीनके धर्मशून्य हृदयको और भी दृढ़तर बना दिया। ये दोनों ब्राह्मण भी प्रायः सभी मतमतान्तरोंसे द्वेष रखते थे तथा ये लोग उस समयमें अच्छे मसखरों गिने जाया करते थे और कभी व्यवहारादिकी सहायताके कारण ये लोगोंके अत्यन्त माननीय हो रहे थे। इन लोगोंने अच्छा सुअवसर समझ अलाउद्दीनसे कहा कि सब धर्मोंकी परीक्षा होनी चाहिये जो धर्म परीक्षामें उत्तीर्ण हो अर्थात् सत्य प्रमाणित हो उसके सिवाय और सब धर्मावलम्बी मुसलमान बना दिये जांय। बस देर क्या थी? बादशाहने सबको यह आज्ञा जारी की कि सबको अपने अपने धर्मकी परीक्षा देनी होगी।

* नोट—देखो फिरिश्ता हिस्ट्री Vol 1. page 82

काष्ठासङ्घकी उत्पत्ति ।

जैनाम्नायमें देशकालानुसार कई सङ्घ प्रचलित हैं। किन्तु भिन्न भिन्न पट्टावलियां, धर्म्मग्रन्थ, सैद्धान्तिकग्रन्थ और पुराणोंका मंगलाचरण तथा प्रशस्ति देखनेसे यह निश्चित होता है कि सब सङ्घोंका आदि सङ्घ "मूल सङ्घ" ही है। शायद इसी सङ्केतसे इस सङ्घके आदि में "मूल" शब्द जोड़ दिया गया है। बल्कि हमारे इस कथनकी पुष्टि इन्द्रनन्दीसिद्धान्तीकृत "नीतिसार" ग्रन्थके निम्न लिखित श्लोकोंसे भी होती है:—

"पूर्वं श्रीमूलसङ्घस्तदनु सितपटः काष्ठसङ्घस्ततो हि
तत्राभूद्राविगच्छाः पुनरजनि ततो यापुलीसङ्घ एकः।
तस्मिन् श्रीमूलसङ्घे मुनिजनविमले सेननन्दी च सङ्घौ
स्यातां सिंहाख्यसङ्घोऽभवदुरुमहिमा देवसङ्घश्चतुर्थः॥

अर्थात् पहले मूलसङ्घमें श्वेतपट्टीगच्छ हुआ पीछे काष्ठासङ्घ हुआ। इसके कुछही समयके बाद यापनीयगच्छ गया। तत्पश्चात् क्रमशः "नन्दीसङ्घ", "सिंहसङ्घ" और "देवसङ्घ" हुआ। अर्थात् मूलसङ्घसे ही काष्ठासङ्घ, सेनसङ्घ, नन्दीसङ्घ, सिंहसङ्घ और देवसङ्घ हुए।

"अर्हद्बलीगुरुश्चक्रे सङ्घसङ्घट्टनं परम्।
सिंहसङ्घो नन्दिसङ्घः सेनसङ्घस्तथापरः।
देवसङ्घ इति स्पष्टं स्थानस्थितिविशेषतः।

अर्थात् अर्हद्बल्याचार्य्यने देशकालानुसार सिंह, नन्दी, सेन और देवसङ्घकी स्थापना की।

इसी विपत्तिमें पड़कर अर्थात् अनेक धर्मों की संसारमें अपना अस्तित्व ही उठा लेना पड़ा।

उसी समय जैनियोंको भी आज्ञा हुई कि तुम लोग भी अपने गुरुओंको लाकर उनके द्वारा अपने धर्मकी उत्कृष्टताका प्रमाण प्रकटित करो नहीं तो हमारे धर्म (ब्राह्मण धर्म) को स्वीकार करना पड़ेगा। इस कठोर आज्ञाको सुनकर जैनियोंका हृदय विचलित हो उठा। इसका विशेष कारण यह था कि उस समय दिल्ली प्रान्तमें प्रायः दिगम्बर मुनियोंका अभाव हो चला था परन्तु शास्त्रके इस कथनसे कि—"दक्षिणमें धर्म और मुनियोंका सङ्घ पञ्चमकालतक भी रहेगा" श्रावकोंको आशाका संचार हो आया कि दक्षिण देशमें कहीं दिगम्बर मुनियोंका सङ्घ अवश्य पाया जा सकता है। अस्तु, जैनियोंने बादशाहसे छः महीनेका समय मांगा जिससे कि हम लोग अपने गुरुओंको ला सकें। बादशाहने छः महीनेका समय दे दिया। कुछ धर्मात्मा भी

इससे स्पष्टतया ज्ञात होता है कि मूलसङ्घ पूर्वोक्त संघोंका स्थापक है। पीछे लोहाचार्य्यजीने काष्ठासङ्घकी स्थापना की। यह "काष्ठासङ्घ खास करके अग्रोहे" नगरके अग्रवालोंके ही सम्बोधार्थ स्थापित किया गया।

बल्कि इसके कई लेख दिल्लीकी गद्दियोंमें अबतक मौजूद हैं, उन्हींके आधारपर यह संक्षिप्त परिचय लिखा जाता है।

दिगम्बराचार्य्य लोहाचार्य्यजी दक्षिणदेश भद्दलपुरमें विराजमान थे। विहार करते करते अग्रोहेके निकटवर्ती हिसारमें पहुंचे। वहां उन्हें कोई असाध्य रोग हुआ था जिसमे कि वे मूर्छित होगये। वहांके श्रावकोंने उनको सन्यास-मरण स्वीकार कराया। इसके बाद कर्म्मसे स्वतः लङ्घन होनेके कारण त्रिदोष पाक होनेसे अपने आप निरोगी होगये। निरोगी होनेपर जब इन्हें होश हुआ तो इन्होंने भ्रामरीवृत्ति (भिक्षावृति) से आहार करना विचारा। पीछे "श्रीसङ्घ"ने उनसे कहा कि महाराज ! हम लोगोंने आपकी रुग्णावस्था तथा मूर्छितावस्थामें यावज्जीवन आपसे संन्यास-मरणकी प्रतिज्ञा करवाई है और आहारका भी परित्याग कराया है। अतः यह सङ्घ आपको आहार नहीं दे सकता। यदि आप नवीन सङ्घ स्थापित कर कुछ जैनी बनावें तो वहां आप आहार कर सकते हैं तथा वे लोग दान दे सकते हैं। तत्पश्चात् प्रायश्चित्तादि शास्त्रोंके प्रमाणसे उक्त वृत्तान्त सत्य जान

श्रावक, मुनियोंको साथ ले दक्षिण देशको चल दिये और अनेक कष्ट सहते सहाते तीन महीनेमें दक्षिण देश पहुंचे और वहां इन्होंने दिगम्बर जैनाचार्य श्रीमाङ्कसेन (महासेन) स्वामीका दर्शनकर उन श्रावकोंकी इच्छा और इन्होंने साथ महाराजसे अपना दुःख और धर्म्मसङ्कट निवेदन किया परन्तु महासेन स्वामीने उत्तरमें केवल अच्छा कह दिया और कुछ उत्तर नहीं दिया। दिल्लीके जैनियोंने बाकीके तीन महीने इन्हींके सेवामें बिताये। अब जब उन लोगोंको स्मरण हुआ कि हम लोगोंने बादशाहसे ६ महीनेका समय मांगा था उसकी अवधि कलह ही तक है तो उन लोगोंको बड़ी चिन्ता हुई। सब लोगोंने १०८ श्री महासेन स्वामीसे पुनः निवेदन किया कि महाराज! बादशाहका निर्धारित समय कलह ही तक है तो स्वामीने उत्तर दिया कि तुम लोग घबराओ मत, कल्ह अवश्य श्रीजैनधर्मका उद्योत होगा तुम लोग निःशंक होकर आनन्दसे रहो श्रीगुरुकी ऐसी आज्ञा पाकर सब लोग आनन्दसे अपने अपने स्थानपर जाकर सो रहे। प्रातःकाल ही जब सब लोग उठे तो सब लोगोंने अपनेको अपने अपने घरोंमें दिल्ली पाया और मुनि महाराजको श्मशानमें ध्यानमग्न पाया। इधर दिल्लीमें उसी रात्रिको यह घटना हुई कि वहांके एक बड़े प्रसिद्ध सेठका पुत्र रात्रिको सख्त अपने महलमें सो रहा था अचानक उसकी स्त्रीकी चोटी पलङ्गसे नीचे लटक पड़ी उस चोटी परसे सर्प चढ़कर सेठके पुत्रको काट खाया। सारे दिल्लीमें हाहाकार मच गया, सारा नगर कोला-हलमय हो गया। जिस श्मशानमें पूर्वोक्त मुनि ध्यानमें विराजमान थे उसी श्मशानमें वह मृतक लड़का

लोहाचार्य्यजी वहांसे विहार कर अग्रोहे नगरके बाह्य स्थानमें पहुंचे। वहां एक बड़ा पुराना ऊंचा ईंटका पजाया था उसीके ऊपर बैठकर ध्यान निमग्न हुए। अनभिज्ञ लोग अद्वितीय साधुको वहां आये हुए देखकर दूरसे ही बड़े आदरके साथ प्रणाम करने लगे। मुनि महाराजके आनेकी धूम सारे नगरमें फैल गयी। हजारों स्त्री पुरुष इकट्ठे होगये। कारण-विशेषसे एक बुढ्ढा श्राविका भी किसी दूसरे नगरसे आई थी। यह भी नगरमें महात्मा आये हुए सुन उनके दर्शनोंके लिये वहां आई। यह बुढ़िया दिगम्बराचार्य्यके वृत्तान्तको जानती थी इसलिये ज्योंही इसने महात्माको देखा त्योंही समझ गई कि ये तो हमारे श्रीदिगम्बरगुरु हैं। बस अब देर क्या थी धीरे धीरे वह पजायेपर चढ़ गई और मुनि महाराजके निकट जाकर बड़ी विनयके साथ "नमोऽस्तु,नमोस्तु" कह कर यथा-स्थान बैठ गई। मुनिराज लोहाचार्य्यजीने भी "धर्म्मवृद्धि" कह कर धर्म्मोपदेश दिया। यह घटना देख सबोंको बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि अहोभाग्य इस बुढ़ियाका कि ऐसे महात्मा इससे बोले। अब सब मुनि महाराजके निकट उपस्थित हुए। मुनि महाराजने सबोंको श्रावकधर्म्मका उपदेश दिया। व्याख्यान सुनने के साथ ही सबका चित्त व्रत ग्रहण करनेकेलिये उतारू हो गया। पहिले अग्रवंशीय राजा दिवाकरने अपने कुटुम्बियोंके

भी लाया गया। चिता बनाई गयी। लोग एक महात्माको यहां देखकर उनके निकट गये। मुनिने पूछा कि तुम लोग यहां क्यों आये हो? लोगोंने अपने आनेका कारण मुनिसे कहा। मुनिने उत्तर दिया कि देखो। कुमार जी गया। जिस प्रकार अनेक देवोंने अनेक मुनियोंकी सहायता की उसी प्रकार आज भी "श्रीपद्मावती देवी" ने कुमारको निर्विष कर दिया। कुमार घोर निद्रासे जागकर बैठ गया। मुनिका यह महत्व देख सब लोग उनके चरणोंमें लोटने लगे और सारे नगरमें हल्ला मच गया। हजारों आदमी दर्शनको आने लगे। बादशाहने भी इनके ऐसे ऐसे चमत्कार सुनकर और तपःप्रभाव देख इनकी बड़ी भक्ति और नम्रताके साथ अपने यहां बुलवाया। ये भी अपने अनेक श्रावकोंको लेकर बादशाहके यहां गये। सभामें तो वे दोनों ब्राह्मण राघो और चेतन मौजूद थे ही, मुनि महाराजको देखते ही वे बोल उठे कि आपने कमण्डलुमें मच्छी क्यों पकड़ रखी है? मुनि तुरन्त समझ गये कि इन लोगोंने जाल बिछाया है। आपने बड़ी निर्भीकतासे उत्तर दिया कि "मच्छी नहीं है जिनेन्द्रदेवकी पूजाके लिये गुलाबके पुष्प है" सभामें कमण्डलु देखा गया तो पुष्प ही निकले। इत्यादि॥ फिर महासेन स्वामी और राघो, चेतनका षट् मतपर बड़ा भारी शास्त्रार्थ हुआ। इसमें भी आपने विजय पाई। इससे सब लोगोंकी जिन धर्म्ममें अगाढ़ श्रद्धा हो गई। बादशाहने भी जैनधर्मकी बड़ी प्रशंसा की। उस दिन महासेन स्वामीने पुनः एक बार स्याद्वादकी पताका अखंड भारतवर्षकी राजधानी दिल्लीमें आरोपित कर दी और इसीलिये अर्थात् श्रावक

साथ श्रावकधर्म्मको स्वीकार किया और पीछे इनकी देखादेखी सवालाख अग्रवालोंके घर जैनी होगये।

पहिले छानकर पानी पीना, रात्रिमें भोजन नहीं करना, और देवदर्शन कर भोजन करना येही तीन मुख्य व्रत जैनियोंके बतलाये गये। उसी समय सवा लाख अग्रवालोंके घरोंमें छन्ने रक्खे गये, रात्रि भोजनका त्याग कराया गया और दर्शनके लिये एक काष्ठकी प्रतिमा बनाकर स्थापित की गई। उसी समयसे अग्रोहके अग्रवाल श्रावकोंकी संज्ञा काष्ठासङ्घी पड़ी। इनका काष्ठासङ्घ, माथुरगच्छ, पुष्करगण, हिसारपट्ट और लोहाचार्य्याम्नाय प्रचलित हुई। यह नवीन काष्ठासङ्घ जब स्थापित किया गया तो इस सङ्घसे लोहाचार्य्यजीको आहारका लाभ हुआ और जैनधर्म्मकी वृद्धि हुई। इस सङ्घकी पट्टावली अन्यत्र प्रकाशित है। इस सङ्घके पट्टपर उस समयसे लेकर आज तक बराबर अग्रवाल जातिके ही भट्टारक अभिषिक्त होते आते हैं।

और जिनधर्मकी रक्षाके लिये ही महामेनाचार्य्य पृथिवी मण्डल पर विख्यात हुए और जैन इतिहास भी आपका अखण्ड यश चिरकाल तक बड़े अभिमानके साथ गाया करेगा और जैनियोंके बच्चे २ भी आपके नामको बड़े महत्वके साथ रटा करेंगे। थोड़े ही दिनोंके बाद इसी दिल्लीमें आपका स्वर्गवास हो गया। यद्यपि वर्तमान दिल्ली वह दिल्ली नहीं है वह नयी बसी है तौभी आज पर्यन्त पुरानी दिल्लीके गौरवमय चिन्ह पाये जाते हैं। इसी अलाउद्दीन और इसके बाद होनेवाले अर्थात् सन् १३१५ में दिल्लीके सिंहासन पर बैठनेवाले फिरोजशाह तुगलकने ही दिगम्बराचार्य्यों को वस्त्र पहरनेके लिये पहिले पहिल बाध्य किया था। उक्त दोनों बादशाहोंने भट्टारकोंको ३२ पदकी उपाधियां दी थीं। यदि वास्तवमें देखा जाय तो ये उपाधियां बादशाहोंने भट्टारकोंके विद्या चमत्कार पर मोहित होकर दी थी। ये लोग उनका बड़ा आदर सत्कार किया करते थे, कोल्हापुर, दिल्ली, नागौर आदिके भट्टारकोंके यहां आज पर्यन्त भी ये बादशाही सनदें मौजूद हैं।

पट्टावलियोंकी प्राप्ति ।

(मूलसङ्घ)

नीचे लिखी हुई मूलसङ्घकी पट्टावलियां अन्यान्य जगहोंसे प्राप्त हुई हैं । "वसुनन्दिश्रावकाचार" में साङ्गोपाङ्ग समयनिर्देशपूर्वक बड़ी विस्तृत पट्टावली मूलसङ्घकी है । इण्डियन ऐण्टिक्वेरीमें भी "वसुनन्दि श्रावकाचार" ही के अनुसार समयकी जहां तहां भिन्नताके साथ प्रकाशित हुई थी, जो जयपुरके किसी प्राचीन भण्डारसे प्राप्त हुई थी । बड़े परिश्रमसे दक्षिण देशके किसी एक प्राचीन भण्डारसे भी एक मूलसङ्घकी पट्टावली प्राप्त हुई है । और वी० नि० सं० २४३५ के "जैन मित्र" के किसी अङ्कमें मूलसङ्घके आचार्य्योंके नाममात्र प्रकाशित हुए थे, जिन पर लिखा हुआ है कि "बम्बई चौपाटीके चैत्यालयमें यह पट्टावली मौजूद है ।" और एक मूलसङ्घकी पट्टावली पिटर्सनकी सम्पादित संस्कृत ग्रन्थोंकी रिपोर्टमें प्रकाशित हुई है । इन पट्टावलियोंसे मिलाकर सर्वाङ्गपूर्ण मूलसङ्घकी तीन पट्टावलियां प्रकाशित की जाती हैं । मूलसङ्घकी ही दो और पट्टावलियां प्रकाशित की गई हैं किन्तु ये शुभचन्द्राचार्य्यकी पट्टावलीके नामसे प्रकाशित है । आशा है कि इतिहासवेत्ताओंको इनसे जैन इतिहासकी बहुतसी मार्मिक बातें मालुम हो जांयगी ।

(काष्ठासङ्घ)

यह पट्टावली दिल्ली सिंहासनाधीश स्वर्गीय श्री १०८ "मुनीन्द्रकीर्तिजीके भण्डारके किसी अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थसे उतारी गयी है । वह ग्रन्थ इतना जीर्ण शीर्ण था कि इस पट्टावलीमें बहुधा संस्कृतकी तथा छन्दकी अशुद्धियां रह गई हैं किन्तु ऐतिहासिक दृष्टिसे यह पट्टावली बड़ी ही उपयोगी है । अन्यत्र "काष्ठासङ्घ" की उत्पत्ति भी दी गयी है । *

मथुराके अजायबघरकी जैन मूर्तियां।

कई वर्षसे मथुरामें एक सरकारी अजायबघर है। इसमें इमारतोंके अंशों, मूर्तियों, सिक्कों और पीतलकी चीजोंका बहुत अच्छा संग्रह है। ऐतिहासिक दृष्टिसे यह अजायबघर बड़े महत्वका है यहांकी मूर्तियां किसी विशेष धर्म या समयसे संबध नहीं रखतीं। ब्राह्मणों और बौद्धोंकी मूर्तियां बौद्धोंके स्तूप, मुसलमानों और बौद्धोंकी इमारतोंके अंश, यक्षों और नागों की मूर्तियां, राजाओंकी मूर्तियां, इत्यादि दर्शनके योग्य बहुतसी चीजें यहांपर हैं। लगभग एक सौ जैन मूर्तियां भी हैं जो प्रायः सभी खण्डित हैं, कोई जियादा और कोई बहुत कम। यहांपर एक अत्यंत महत्वपूर्ण आयाग-पट्ट है जिसपर एक जैन स्तूपका चित्र और एक प्राकृतका लेख है।

ये मूर्तियां मथुराके टीलोंमेंसे या इस नगरके आस पाससे ही प्राप्त हुई हैं। मथुरा अत्यंत प्राचीन क्षेत्र है यह तो सब जानते हैं। यहां कई स्थान खोदे गये हैं। खुदाईके चिन्ह इनमेंसे कई स्थानोंपर अब तक ज्योंके त्यों मौजूद हैं। जैनियोंकी मूर्तियां यहांके एक नहीं वरन् कई स्थानोंमें मिली हैं परन्तु अधिकांश कंकाली टीलेमें मिली हैं। इसमें कोई संदेह नहीं रहा है कि कंकाली टीला प्राचीन कालमें जैनियोंका अतिशय क्षेत्र था। किसी समय यहां जैनियोंकी पवित्र इमारतोंका एक बड़ा समूह था मथुरा और आस पासके जैनियोंका यही प्रधान स्थान था। यहां दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंका एक एक विशाल मंदिर था। यहां एक जैन स्तूप भी था जिसको 'देव निर्मित' कहा जाता था। यह स्तूप कुशान राजाओंके समय तक विद्यमान था और अब खोदे जानेपर टीलेमें दबा हुआ मिला। यह भी पता लगता है कि महमूद गजनी द्वारा जिसने मथुराको सन् १०१८ई०में लूटा था, इस जैन क्षेत्रको बहुत कम हानि पहुंची। हुविष्क और वासुदेवके समयमें भी यहां जैनधर्मका खूब प्रचार था। मथुराके बौद्धमठोंके सर्वथा नाश हो जानेपर भी यह जैन क्षेत्र मौजूद था इस क्षेत्रको हूणोंने अथवा और किसीने विध्वंश किया

इस बातका ठीक २ पता नहीं लगता। कंकाली टीलेसे मिली हुई बहुतसी चीजें तो लखनऊके अजायबघरमें भेज दी गई हैं और कुछ यहां पर भी रक्खी हैं। इनसे और अन्य मूर्तियोंसे मथुराके प्राचीन जैनक्षेत्रका कुछ अंदाजा लगाया जा सकता है।

यह भी पता लगा है कि मथुरामें किसी समय गृह-निर्माण विद्या खूब प्रचलित थी। इसकी उन्नति कनिष्क, हुविष्क और वासुदेवके समयमें खूब हुई क्योंकि यहांकी मूर्तियों आदिके अधिकांश लेख ब्रह्म लिपिमें ही मिलते हैं इस लिपिका प्रचार उक्त राजाओंके समयमें था, लेखोंमें संवत् भी इन्हीं राजाओंके राजत्वकालके मिलते हैं। यहांपर अच्छे कारीगर थे। ये अधिकतर सिकरीके पत्थरका प्रयोग करते थे। इनकी बनाई हुई मूर्तियां दूर दूर तक जाती थीं। गोरखपुर इत्यादि स्थानोंमें भी यहांकी बनी हुई मूर्तियां पाई गई हैं।

इस अजायबघरकी सब मूर्तियां दिगम्बर सम्प्रदायकी हैं। एक मूर्ति संगमरमरकी (श्वेत) है, एक संगमूसाकी (काली) है और शेष लाल या सफेद पत्थरकी हैं। कई प्रतिमाओंपर लेख हैं, कईके लेख खंडित होगये हैं या हैं ही नहीं। ये मूर्तियां खड्गासन और पद्मासन दोनों प्रकारकी हैं। कई मूर्तियां चौमुखी, "प्रतिमा सर्वतो भद्रिका," हैं अर्थात् चार सम्पूर्ण मूर्तियां एक दूसरीके साथ पीठकी ओरसे जुड़ी हुई हैं। किसी किसीमें एक पत्थरमें चारों प्रतिमा उभड़ी हुई बना दी गयी हैं। चौमुखी प्रतिमायें भी खड्गासन और पद्मासन दोनों प्रकार की हैं। यहांपर एक बात ध्यान देने योग्य है जो अधिकांश चौमुखी प्रतिमाओंमें पाई जाती है। उनमेंसे प्रत्येकमें एक मूर्ति "श्रीपार्श्वनाथ" की है क्योंकि उसके ऊपर नाग-फण है, एक मूर्तिके केश इतने लम्बे हैं कि कंधों तक लटके हुए हैं, एकाधमें कंधोंसे पीठपर और सामनेकी ओर आगये हैं और शेष दो मूर्तियोंमें कोई विशेष बात नहीं है उनके बाल छोटे और साधारण हैं और पीछे प्रभामण्डल है ऐसी चार मूर्तियोंसे मिलकर एक चौमुखी प्रतिमा बनी हुई है। ऐसी प्रतिमाओंपर लेख भी हैं जिससे यह निश्चित हो जाता है कि ये जैनधर्म सम्बन्धी हैं दो एक अकेली प्रतिमाओंमें भी लम्बे केश कंधों तक लटक रहे हैं। एक अकेली प्रतिमामें सिरपर उष्णिषा (मस्तिकका उभार) भी है। अधिकांश प्रतिमाओंमें सिंहा-

सन दो सिंहोंपर बना हुआ है। सिंहोंके अतिरिक्त किसी २ प्रतिमामें तीर्थंकरोंके चिन्ह भी बने हुए हैं। जिन प्रतिमाओंमें केवल सिंहासनके सिंह बने हैं और कोई अन्य चिन्ह नहीं है उनके संबंधमें वोगेल साहबने लिखा है कि ये सिंह तो सिंहासनके हैं, इन प्रतिमाओंपर तीर्थंकरोंके चिन्ह नहीं हैं, कदाचित् प्राचीन कालमें जैन प्रतिमाओंमें तीर्थंकरोंके चिन्ह बनानेकी प्रथा न थी, यह प्रथा बादमें जारी की गई है। परन्तु हमारी समझमें तो यह आता है कि ये प्रतिमायें "श्रीमहावीर स्वामी"की है क्योंकि उनका चिन्ह सिंह है। एक ही प्रतिमामें दो सिंहोंका होना कोई अनोखी बात नहीं है, और चिन्होंके भी ऐसे उदाहरण मिले हैं। कंकाली टीलीसे निकली हुई श्रीऋषभदेव की एक प्रतिमामें दो वृषभ (बैल) बने हुए हैं *। जिन प्रतिमाओंमें अन्य चिन्ह होनेपर भी सिंह बने हुए हैं उनको सिंहासनके सिंह मानना चाहिये। परन्तु कुछ ऐसी मूर्तियां भी मिली हैं जिनमें न तो सिंहासनके सिंह है न और कोई चिन्ह ही है। किसी किसी प्रतिमाके लेखमें तीर्थंकरका नाम भी लिखा है कई प्रतिमाओंके सिंहासनमें सामनेकी ओर बीचमें एक धर्म चक्र बना हुआ है और उसके दोनों तरफ पूजा करनेवाले पुरुषों और स्त्रियोंके चित्र बने हुए हैं यह बात प्राचीन प्रतिमाओंमें ही मिलती है। अधिकांश प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा स्त्रियोंद्वारा हुई है। यह बात स्त्रियोंकी धर्म--रुचि प्रकट करती है।

अब हम इस अजायबघरकी उन मूर्तियोंका परिचय देते हैं जो जैन इतिहासपर कुछ प्रकाश डालती हैं। सब मूर्तियोंका वर्णन नहीं किया जायगा क्योंकि इस लेखका अभिप्राय अजायबघरकी मूर्तियोंकी सूची बनाना नहीं है। मूर्तियोंके लेखोंकी भाषा मिश्रित-प्राकृत व संस्कृत है। सब लेख देवनागरी लिपिमें नहीं हैं परन्तु यहांपर इसी लिपिमें लिखे जाते हैं।

लेख सहित प्रतिमायें।

(तिथि सहित कालक्रमानुसार)

१—† B 71. यह एक चौमुखी प्रतिमा है। चारों तरफ एक एक तीर्थंकरकी मूर्ति है ऊंचाई, २ फोटसे कुछ कम। इसमें एक मूर्ति "श्रीपार्श्वनाथ"

* नोट—देखो "जैन स्तूप" चित्र नं० ९८।

† ये नम्बर अजायबघरमें इन मूर्तियोंपर पड़े हैं।

की है, नागफण कुछ खण्डित है। सिंहासनके चारों कोनोंपर दो मुख-वाले मनुष्योंके चित्र हैं। एक लेख चारों ओर एक पंक्तिमें लिखा है। वह यह है:—

(सं) ५ टे ४ दि २० (अस्य पूर्वायां कोटिया) गणातो उचेनगरितो शखातो ब्रम्हदा (सिकातो) (कुलातो) मिहिला तस्य शिष्यो आर्य्यो

* अनुवाद—संवत् ५ में हेमंत अर्थात् जाड़ेके ४ महीनेमें, वीसवें दिवस कोटिया गण उचेनगरशाखा ब्रम्हदासिका कुलमेंसे ... मिहिला- उनके शिष्य आर्य्य

यह इस अजायबघरका सबसे प्राचीन जैन लेख है। इस लेखकी लिपि से इसका संवत् ५ कनिष्कका चलाया हुआ (शक ?) संवत् मालूम होता है।

२—B 70, चौमुखी प्रतिमा। इसमें एक मूर्ति श्रीपार्श्वनाथकी नाग-फण सहित है। सिंहासनपर यह लेख है परन्तु खंडित है:—

सिद्धं (सं) ३५ हे-१ दि १२ अस्य पूर्वा ये कोटातो ब्रह्मदासिकातो उचेनकृतो श्र(ी) गृहातो ... (शा) नि (भ) ... बोधिलाभाय विष्णुदेव प्रति सर्व-स(त्वा) नां हित सुखा(य)।

अनुवाद - सिद्धि। सं ३५में, हेमन्तके पहले मासमें बारहवें दिन ... कोटि-या (गण), ब्रह्मदासिका (कुल), उचैनगर (शाखा) श्रीगृह (संभोग) में से ...

सब व्यक्तियोंके लाभ और सुखके लिये।

३—B 29. यह एक प्रतिमाके सिंहासनका ऊपरी अंश है और उसके ऊपर प्रतिमाके केवल चरण हैं। शेष खंडित है। सिंहासनमें धर्मचक्र और पूजा करनेवालोंके चिन्ह कुछ २ बाकी हैं। लेख खंडित इस प्रकार है:—

महाराजस्य देवपुत्रस्य हुविष्कस्य र(ा) ज्य-सं० ५० हे. ३ दि. (२)··· वह ... वोटा स घ ने।

अनुवाद—महाराज हुविष्कके राजत्व कालमें, संवत् ५० में, हेमन्त (जाड़े) के तीसरे महीनेमें, दूसरे दिन ······

४—B. 2. प्रतिमा जिनदेवकी ध्यान मुद्रामें। सिर और बाईं भुजा खंडित है। छातीमें श्रीवत्सका चिन्ह, हथेली और चरणोंमें भी चिन्ह हैं। दो पंक्तिका यह लेख है:—

* प्रतिमाओंके लेखोंका अनुवाद अंग्रेजी अनुवादसे अनुवादित है।

सिद्धं महाराजस्य वासुदेवस्य सं ८३ ग्रो.२ दि १६ एतस्य पूर्व्वायि सेनस्य (धि) तु दत्तस्य वधुये व्या ··· च ··· स्य गंधिकस्य कुटुम्बिनिये जिन दानिय प्रतिमा धर्मदानं।

अनुवाद—सिद्धि! महाराज वासुदेवके संवत् ८३ में, ग्रीष्मके दूसरे मासमें, १६ वें दिवस सेनकी पुत्री दत्तकी वधू (पुत्रकी स्त्री) और व्या ·· च ·····गांधीकी स्त्रीका प्रतिमाका पवित्र दान।

५—B 3. जिनदेवकी प्रतिमा ध्यानमुद्रामें। सिर तथा बाईं भुजा खंडित है। श्रीवत्सका चिन्ह छातीमें है तथा हथेलियों और पदोंपर भी चिन्ह है।

एक खंडित लेख एक पंक्तिका है—

सं० ८३ ग्री. २ दि० २५ [एतये पूर्व्वायि]

६—B 4 श्रीऋषभदेवकी प्रतिमा ध्यानमुद्रामें। सिर और भुजाएं खंडित हैं। प्रभामंडलका कुछ अंश बाकी है। श्रीवत्स छातीमें है तथा हथेलियों और पदोंपर चक्र बना है। सिंहासनमें सामनेकी ओर एक स्तम्भपर धर्म्मचक्र बना हुआ है दस पुरुष व स्त्रियां इसका पूजन कर रही हैं, कुछके पास पुष्प हैं और कुछ हाथ जोड़े खड़े हैं। सिंहासनके दोनों कोनोंपर दो सिंह हैं। श्रीऋषभदेवका नाम लेखमें लिखा है।

लेख इस प्रकार है :—

सिद्धं महार[ा]जस्य र[ा]जा[ति]र[ा]जस्य देवपुत्रस्य [शाहि] व[ा]सुदेवस्य राज्य-संवत्सरे ८४ ग्रीष्ममासे द्वितिदि ५ एतस्य पूर्वायां भटदत्तस्य उगभिनकस्य वधुए स्य कुटुंबिनिये भगवतो अरहतो ऋषभस्य प्रतिमा प्रतिष्ठापिता धरसहस्य कुटुंबिनिए—मि—गुत्त-कुमार [द]त्तस्य निर्वर्तन।

अनुवाद—सिद्धि! राजाओंके राजा महाराज [शाहि] वासुदेवके राजत्वकालमें, संवत् ८४में, ग्रीष्मके दूसरे मासमें ५वें दिन ··· की स्त्री भटदत्त उगभिनककी वधू, ··· ने कुमारदत्तके अनुरोधसे अरहत् ऋषभ भगवानकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा कराई।

यह प्रतिमा बलभद्रकुण्डके पास मिली थी, वहां इससे पीसनेका काम लिया जाता था।

७—B. 5 जिनदेवकी प्रतिमा ध्यानमुद्रामें। यह प्रतिमा कङ्कालो टीलेमें मिली है। सिर और भुजाएं खण्डित हैं। हाथ पैरोंपर चक्रके चिन्ह हैं।

सिंहासनके कोनोंपर दो सिंह बने हैं इनके बीचमें त्रिशूलसी वस्तुपर धर्मचक्र रक्खा है जिसके दोनों ओर छः पूजनेवालोंका समूह है इनमें पासके दो मनुष्य घुटनोंके बल पड़े हैं शेष खड़े हैं। एक खण्डित लेख इस प्रकार है ;—

संव ९०⋯⋯(कु) टुंवनिए दिनस्य वधुय को[ट्टियातो] गणातो [पा] वहकातो कुलातो मझमतो शाखा [तो] सनिकय भटि बलाए थभनी ये द[ा] नं।*

८ B 15 जिनदेवकी प्रतिमा ध्यानमुद्रा आसनमें। यह प्रतिमा एक दीवारमें चिनी हुई मिली थी। सिर खण्डित है परन्तु प्रभामण्डलका कुछ अंश अब तक बाकी है। प्रतिमाके दोनों ओर एक नाग नमस्कार कर रहा है परन्तु बाईं ओरका नाग खण्डित है। सिंहासनमें वही दोनों ओर सिंह हैं, इनके बीचमें धर्मचक्र और पूजनेवालोंका समूह है जिसमें तीन स्त्रियां और दो बालक भी हैं। लेख यह है:

सम्वत्सरे सप्रपञ्चारे ५७ हेमन्त नि[तृ]तीये दिवसे त्रयोदशेस्य पूर्व्वायां⋯

अनुवाद—५७ वें वर्षमें, हेमन्त [जाड़े] के तीसरे मासमें, १३ वें दिन.

९—B 25. जिनदेवकी श्वेत सङ्गमरमरकी प्रतिमा, ध्यानमुद्रामें। सिर खण्डित है। यह प्रतिमा माघ वदी ७ विक्रम सं० १८२६ की है। लेख नागरी लिपिमें है और इस प्रकार है:—

संवत् १८२६ वर्षे मिती माघ वदि ७ गुरुवासर हीगमगरे महा[रा]जे केहरी सिंह राजा विजय [राज्ये] महाभट्टारक श्रीपूज्य श्रीमहानन्द सागर- सूरिभिस्तदुपदत [देशात] पल्लीवाल वंशमगिहागे त्रिहरसाणा नगर वासिना चौधरी जोधराजेन पतिष्ठा कारितेयां।

अनुवाद—संवत् १८२६ माघ वदि ७ गुरुवारको महाराजा राजा केहरसिंहके विजय-राज्यमें श्रीपूज्य श्रीमहानन्दसागरसूरिके उपदेशसे यह प्रतिष्ठा पल्लीवाल जाति और मगिहाकुलके हरसाणा निवासी चौधरी जोधराजने कराई।

[तिथि रहित]

१०—B. 14 जिनदेवकी छोटी प्रतिमा, ध्यानमुद्रा आसनमें। कङ्काली टीलेमें मिली है। सिंहासनमें पहिलेकी तरह दो सिंह बने हैं, इनके

* इसका अनुवाद हमारे पास नहीं आया। सं०

बीचमें धर्मचक्र है जिसके दोनों ओर पूजा करनेवालोंका समूह है। इन्हीं-के ऊपर यह लेख है :—

सिद्धं वाचकस्य दत्त शिष्यस्य मीहस्य नि[वर्तनः]...

अनुवाद—सिद्धि ! उपदेशक मीह (सिंह) के [अनुरोधसे] दत्तके शिष्यने....

११—B 22 श्रीनेमिनाथकी प्रतिमा ध्यानमुद्रामें। इसमें विशेष कारीगरी है। प्रतिमाके दोनों ओर ऊपरकी तरफ दो उड़नेवाले मनुष्य [गंधर्व ?] चौरी लिये हैं। उनके नीचे एक तरफ एक पुरुष [यक्ष ?] और दूसरी तरफ एक स्त्री [यक्षणी ?] हाथ में लाठीसी लिये खड़ी हैं। सबसे ऊपर कोनों-पर दो हाथी हैं इनके भी ऊपर बीचमें भी एक मनुष्यके चिन्ह बाकी हैं। सिंहासन दो सिंहोंपर है। लेख इस प्रकार है। लेखके नीचे शंख बना है।

संवत् ११०४ श्रीबोधापगच्छ महिला ...

यह कदाचित् विक्रम संवत हो।

१२— B.21 श्रीआदिनाथकी प्रतिमा। सिर खंडित है। केश कंधोंपर लटके हुए हैं। प्रतिमा एक चैत्यालयमें रक्खी हुई बनाई गई है। सिंहा-सनसे एक कपड़ासा लटका हुआ है जिसपरसे हार लटक रहे हैं। सिंहा-सनके सिरोंपर सिंह हैं बीचमें धर्मचक्र है वहींपर एक बैल है। नीचे पांच जिनदेव खड़े हैं और किनारोंपर दो मनुष्य घुटनोंके बल हैं। पांच पांच जिनदेव प्रतिमाके दायें बायें एक दूसरेके ऊपर पद्मासनमें हैं। ऊपरके खंडित अंशमें आठ जिनदेव और अवश्य होंगे। इस तरह कुल मिलकर २४ होंगे। नागरी लिपिमें यह लेख है:—

ओं पंडित श्री गणधर देवाय।

(लेख रहित प्रतिमायें)

१३—B 1. जिनदेवकी विशाल प्रतिमा पद्मासनमें। ऊंचाई ४फीट ७॥ इंच भुजाओंके नीचेका अंश और प्रभामंडलके ऊपरका अंश खंडित है श्रीवत्स छातीके बीचमें है हाथ पैरोंमें चक्र है। प्रतिमा गुप्त राजाओंके समयकी मालूम होती है।

१४—B 61 यह एक विशाल प्रतिमाका सिर है। केवल इस सिरकी ऊंचाई २ फिट ४ इंच है।

१५—B 95. चौमुखी प्रतिमा। एक मूर्तिके ऊपर सात नाग-फण हैं, और चारों ओर सिंहासनमें एक एक धर्मचक्र है। एक ओर कदाचित

कुबेर और हारितीके चित्र हैं। ये चित्र और भी कई प्रतिमाओंमें हैं। प्रत्येक मूर्तिके सिरके दोनों ओर एक इन्द्र (?) माला लिये हैं।

१६—B 78 जिनदेवकी चौमुखी प्रतिमा। इसको अजायबघरके आनरेरी क्यूरेटरराय पंडित राधाकृष्ण बहादुरने मथुराके एक ब्राह्मणसे मोल लिया था। यह ब्राह्मण इस प्रतिमाकी पूजा "ब्रह्मा" समझ कर किया करता था और अनपढ़ मनुष्योंसे यह कह देता था कि यह चारों युगोंकी मूर्ति है।

(आयाग-पट)

Q 2. यहांपर एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण आयागपट है। यह २ फीट ४ इंच लम्बा और १ फीट ९ $\frac{3}{4}$ इंच चौड़ा है। ऐसे पट और भी प्राप्त हुए हैं। इन पटोंपर जिनदेव, स्तूप इत्यादिके उभड़े हुए चित्र बने हुए हैं। इनके लेखोंसे यह विदित हुआ है कि ये मंदिरोंमें अर्हन्तोंकी पूजाकेलिये रक्खे जाते थे। यहांके आयाग-पटमें एक जैनस्तूप बना हुआ है. प्राचीन कालमें जैनस्तूपके आस्तित्वके अनेक प्रमाणोंमें यह भी एक प्रमाण है। स्तूपके चारों ओर घेरेकी दीवार लगी हुई है। सामने सीढ़ियां हैं जो एक अतिसुसज्जित दरवाजे (तोरण) तक चली गई हैं। स्तूपके दोनों ओर एक २ स्तंभ है। एक स्तंभके ऊपर चक्र और दूसरेके ऊपर सिंह बना हुआ है। स्तूपके दोनों ओर तीन २ चित्र हैं ऊपरके दो चित्र कदाचित् मुनि मालूम होते हैं, ये उड़ रहे हैं। ये नग्न हैं, इनके एक हाथमें कमंडलु और एक कपड़ासा मालूम होता है और दूसरा हाथ माथेपर नमस्कार रूपमें लगा हुआ है। इनके नीचे इधर उधर दो सुपर्ण अथवा किन्नर हैं; एकके हाथमें फूल और दूसरेके हाथमें हार है। इनके नीचे दो नग्न स्त्रियां स्तूपके सहारे झुकी हुई खड़ी हैं। कदाचित् ये यक्षणी हों। सीढ़ियोंके दोनों तरफ दो चित्र हैं जो बहुत साफ नहीं हैं. एक तो पुरुष मालूम होता है जिसके पास एक बालक भी है, और दूसरा स्त्रीका चित्र है। स्तूपके गुंबजपर एक प्राकृतका लेख ६ पंक्तिका है:—

१. नमो आर्हतो वर्धमानस (आराये) गणिका
२. ये लोणसोभिकाय धितु श्रमण साविकाये
३. नादाये गणिकाये वसु (ये) आर्हातो देविकुल
४. आयाग सभा प्रपा शिल(ा) प(टो)पतिठ(ा) पितो निगथा-
५. नां अर्ह(ता)यतने स(हा) म(ा) तरे भगिनिये धितरे पुत्रेण

६. सर्वेन च परिजनेन अर्हत् पूजाये।

अनुवाद—नमो अर्हत वर्धमान। मुनियोंके शिष्य आराये [?] लोणसोभिका [लवणशोभिका] की पुत्रीनादाये[?] बसुने अपनी माता, अपनी भगिनी, अपने पुत्र और अपने सब कुटम्ब सहित अर्हत्की पूजाके निमित्त अर्हत्का मन्दिर, आयागसभा प्रया [ताल?] और निर्गंथ अर्हतोंके मन्दिर पर एक शिला बनवाई।

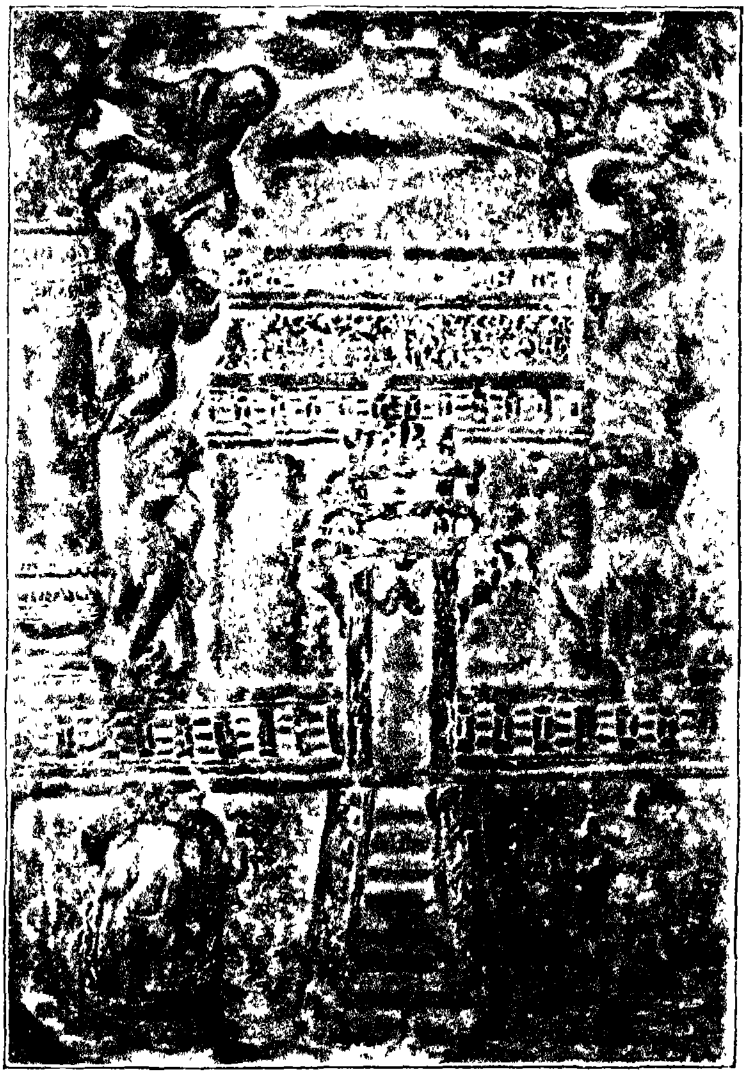
इसकी फोटो स्मिथ साहबने एकबार ली थी। उसमें इस पटके दोनों बगल एक २ नग्न स्त्रियोंकी मूर्ति भी है, परन्तु ऐसा मालूम होता है कि अब ये मूर्ति इससे अलग होगई हैं। नग्न स्त्रियोंकी मूर्ति और भी दो एक शिलाओंके साथ मिली हैं। ये नहीं मालूम कि ये स्त्रियां क्यों बनाई जाती थीं अथवा कौन हैं।

जैनस्तूप बौद्धस्तूपोंसे बहुत समानता रखते हैं। दरवाजे इत्यादि सभी बातें मिलती हैं। इतनी समानता है कि चीनकी एक प्राचीन पुस्तककी कथाके अनुसार राजा कनिष्क जैन और बौद्ध स्तूपके पहिचाननेमें धोखा खा जाता था। बौद्धोंने मूर्तियों, मन्दिरों और स्तूपोंके अतिरिक्त शिलाओं अथवा पटोंपर "गौतम बुद्धके जीवन दृश्य" बनाए हैं। ऐसी शिलायें बहुत मिली हैं। कहीं गौतम बुद्धकी पैदाइशका दृश्य है; कहीं बुद्धदेवका निर्वाण दिखाया है; उनके शिष्य इत्यादि उनकी मृत्युशय्याके पास विलाप कर रहे हैं, कहीं बुद्धदेव बनारसके पास उपदेश दे रहे हैं; कहीं उनके दर्शन करनेको कोई राजा आये हुए हैं। इत्यादि। जैनियोंने भी ऐसा ही किया इस बातके भी प्रमाण मिले हैं:—एक शिलापर देवनंदा ब्राह्मणीके गर्भसे त्रिशलारानीके गर्भमें श्रीमहावीरके ले जाये जानेका दृश्य है *। हिन्दुओंकी भी बहुतसी बातें जैनियों और बौद्धोंसे मिलती हैं। ऐसी ही बातोंसे डा० बुहलरने यह नतीजा निकाला है कि हिन्दुओं, बौद्धों और जैनियोंकी शिल्पकला और चित्रकला पृथक् २ न थीं किन्तु तीनोंने समय २ पर प्रचलित कलाओंका ही प्रयोग किया है।

जैन मूर्तियोंके लेखोंसे गच्छों, गणों, शाखाओं, कुलों, राजाओं इत्यादिका बहुत पता मिलता है। इनसे जैन इतिहास लिखनेमें बहुत सहायता मिल सकती है कैसा अच्छा हो यदि हमारे भाई इस ओर भी लक्ष्य रक्खें।

मोतीलाल जैन, आगरा।

* नोट—देखो स्मिथ कृत "जैन स्तूप" चित्र १८।



मथुराके अजायबघरका एक आयाग-पट और,
उसके अन्तर्गत एक जैन-स्तूप।

ऐतिहासिक सामग्रियोंमें पट्टावलियोंकी मुख्यता।

भारतवर्षके इतिहासके दो विभाग किये जा सकते हैं। एक राजनैतिक और दूसरा धार्मिक। उसमेंसे "राजनैतिक" इतिहास तो अभीतक शृङ्खलाबद्ध मिलता नहीं। इसका कारण यह है कि समय समयपर अनेक धर्म्मके अनेक२ राजा होते गये हैं जिनका उल्लेख उन्हीं२के धर्म्मग्रन्थोंमें हुआ है, किसी एक जगह नहीं। दूसरा "धार्मिक" इतिहास इसका सम्बन्ध आचार्य्योंसे है जिनकी कि गुरुपम्पराकी पट्टावलियां शृङ्खलाबद्ध मिलती हैं जिनमें आचार्य्योंके लिखित ग्रन्थोंका समय, उनकी विद्वत्ता, ऐतिहासिक घटना और उस समयके कुछ राजाओंका भी उल्लेख मिलता है। इस लिये इस समय यह एक पट्टावली ही भारतीय इतिहासका सच्चा मार्ग दिखानेवाली इतिहास उपयुक्त सामग्री जान पड़ती है।

और धर्म्मका तो मैं नहीं कह सकता किन्तु जैनधर्म्मके इतिहासके सौभाग्यसे वर्तमान समय तकके जैनाचार्य्योंकी पट्टावलियां शृङ्खलाबद्ध मौजूद हैं। इनकी खोज करनेसे जैनधर्म्मका सच्चा इतिहास बड़ी आसानीसे तैयार हो सकता है। इसलिये"भास्कर"ने पट्टावलियां प्रकाशित करना जैनइतिहासकी परिष्कृति तथा सुशृङ्खलताका मुख्य उद्देश मान रक्खा है। इस किरणोंमें भी शुभचन्द्राचार्य्य, (मूल) नन्दीसङ्घ, सेनसङ्घ तथा काष्ठासङ्घकी सब मिलाकर सात, पट्टावलियां और गुर्वावलियां प्रकाशित की हैं उसीमें एक मूल (नन्दी) सङ्घकी पट्टावलीकी पुष्टिके लिये हमने अन्यत्र छः शिलालेख प्रकाशित किये हैं। जिससे मूलसङ्घकी पट्टावलीके आचार्य्योंका अस्तित्व और इनके सम्बन्धमें राजाओंके नाम तथा समयके साथ साथ अन्यान्य ऐतिहासिक घटनाओंका भी पता लगता है। और काष्ठासङ्घकी पट्टावलीकी पुष्टिमें "आरा नगरकी प्राचीनता" वाले लेखमें मसाढ़की प्राचीन जैन मूर्तिपरका वि० सं० १४४३ का शिलालेख ही काफी है। अब

हमारे इतिहास-प्रिय विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि ऐतिहासिक सामग्रियोंमें पट्टावलियोंकी कैसी आवश्यकता है।

इसलिये शास्त्र स्वाध्याय करनेवाले सभी जैन भाइयोंसे भी हमारा अनुरोध है कि वे जिस शास्त्रकी स्वाध्याय करें, उस शास्त्रके रचयिता आचार्यकी गुरुपरम्परा, राजपरम्परा और भिन्न भिन्न ऐतिहासिक बातें जानने और खोजनेकी अवश्य चेष्टा करें। और यदि मिल जाय तो सर्व साधारणको जाननेके लिये किसी समाचारपत्रमें छपवा दें नहीं तो वे "भवन" को भेज दें, "भवन" उनके नामके साथ साथ उसे अवश्य प्रकाशित कर देगा। क्योंकि हम लोगोंके आचार्योंने अपने अपने ग्रन्थोंमें अपनी २ गुरुपरम्परा तथा उस समयके राजाओंकी परम्परा भी थोड़ी बहुत अवश्य दी है। बल्कि हम जहां तक समझते हैं कि अन्यान्य पुराणोंमें यह क्रम है ही नहीं और यदि हो भी तो शायद ही कहीं। हमारे कई इतिहासवेत्ता परम विद्वानोंने हमसे यह कहा था कि आपके यहां जो पट्टावलियां हैं वे ही इतिहासकी अत्यन्तोपयोगी सामग्री है। अतः आप इसके संग्रहकी ओर विशेष ध्यान दीजिये। हमने तभीसे जहां तहांसे बड़े परिश्रमसे पट्टावलियां खोजनी प्रारम्भ की है। उनमेंसे कई तो प्रकाशित हो चुकी हैं और कितनी ही हो रही हैं। "भवन" पट्टावलियोंको इकट्ठा करनेमें बड़ा ही प्रयत्नशील हो रहा है। और भी कई पट्टावलियां हैं जो क्रमशः प्रकाशित होती रहेगीं।

अग्रवालोंकी उत्पत्ति ।

पहिले पहिल श्री१००८ आदिनाथ स्वामीने वैश्यवर्ण स्थापित किया था। उसकी प्रथा, क्रमसे बढ़ते बढ़ते, वैश्यजातिमें ८३ भेद हुए। जैनधर्म्मका प्रचार अन्यान्य देशों तथा वैश्योंमें प्रख्यात था। अग्रोहानिवासी राजा अग्रके द्वारा एक नया अग्रवाल वंश प्रचलित हुआ। ये उस समयके बड़े प्रतापी राजा थे। इनका विवाह नागलोकके कुमराजकी माधवी नामकी कन्यासे हुआ था। इन्हींसे उत्पन्न, इनकी सन्तान अग्रवाल कहलाई। और इनके लड़कोंके नामसे निम्नलिखित साढ़े सत्रह गोत्र स्थापित हुए :—

१ गर्ग, २ गोइल, ३ गावाल, ४ वात्सिल, ५ कासिल, ६ सिंहल, ७ मङ्गल, ८ भद्दल, ९ तिंगल, १० ऐरण, ११ टैरण, १२ ठिंगल, १३ तित्तल, १४ मित्तल, १५ तुन्दल, १६ नागल, १७ गोभिल, और आधेमें गवन अर्थात् गोइल है।

राजा अग्रसेनकी राजधानी उत्तर देश चम्पावतीमें थी, किन्तु किसी राजासे पराजित होकर वहांसे सपरिवार आकर हिसारके जङ्गलमें रहने लगे। यहांपर इन्होंने एक नगर बसाया जो राजा अग्रके सम्बन्धसे "अग्रोहा" नामसे प्रसिद्ध हुआ। आगरा भी इसी राजाका बसाया हुआ है, इसके कई प्रमाण मिलते हैं।

धीरे धीरे इनकी सन्तान बढ़ते बढ़ते हांसी, हिसार, आगरा, दिल्ली, गुड़गांव, मेरट और मारवाड़ आदि उत्तरीय देशोंमें फैली। ये राजा क्षत्रिय थे किन्तु बहुसन्तान होनेके कारण एक ही राज्यमें सभीका समावेश नहीं होनेकी वजहसे लोगोंने आजीविकाके लिये भिन्न भिन्न वाणिज्य व्यापार किया इसी कारणसे आगे चलकर इनकी भी गणना, लोग वैश्यवंशमें करने लगे। गुड़गांव जिसका शुद्ध नाम "गोड़ग्राम" है यह ग्राम अग्रवालोंके पुरोहितोंको मिला। इसीलिये इस ग्रामके रहनेवाले ब्राह्मण भी गौड़ कहलाये। अब भी लोग उसी पुरानी प्रथाके अनुसार गोड़ ग्राम ही की देवी (माता) को पूजते हैं। राजा अग्रसेन धर्म्मानुयायी थे

और इनके गुरु पुरोहित भी यही गौड़ ब्राह्मण थे। इन्होंने एकबार सत्रह यज्ञ किये, अट्ठारहवां यज्ञ ये कर ही रहे थे कि बीचमें ही इन्हें याज्ञिक हिंसामें बड़ी घृणा और ग्लानि उत्पन्न हुई। बल्कि उस समय ये कह बैठे कि हमारे वंशमें कहीं कोई भी मांस नहीं खाता है परन्तु दैवीहिंसा (पशु यज्ञ) होती है सो आजसे मेरे वंशजोंको मेरी आन (शपथ) है कि वे न दैवीहिंसा यानि पशुयज्ञ ही करें और न वलिदान ही दें। कितने ही लोगोंका यह भी कथन है कि इन्हीं साढे सत्रह यज्ञोंके नामानुसार इनके उपर्युक्त साढ़े सत्रह गोत्र कायम हैं। अग्रराजा बूढ़े होकर तपस्या करने चले गये और इनके पुत्र "विभु" राज्य सिंहानपर बैठे। इनकी कई पीढ़ीके नृपतिगण सनातनधर्म्मके ही माननेवाले थे किन्तु इन्हींके वंशधर एक दिवाकर राजाने वैदिकधर्म्मको छोड़ कर जैनधर्म्मको अपनाया। इन्होंने बहुतसे लोगोंको जैनी किया। इस वंशका राज्य अग्रचन्दके समयसे घटने लगा। जब इनपर शाहबुद्दीनने चढाई की तो उसमें इनके बहुतसे लोग मारे गये थे। और इनकी कितनी ही स्त्रियां सती होगईं, जो आजतक अग्रवालोंके घरोंमें पूजी और मानी जाती हैं।

यही समय ठीक अग्रवालोंकी अवनतिका था। बहुतेरोंने धर्म्म छोड़ दिया, और यज्ञोपवीत तोड़ डाले। उस समय जो अग्रवाल देश छोड़ कर भागे, वे मारवाड़ और पूर्वमें जा बसे। ये ही मारवाड़ी और पूर्वी कहलाये। इसी प्रकार उत्तरीय और दक्षिणीय भी प्रसिद्ध हुए। पर मुख्य अग्रवाले पछांही वे ही कहलाये कि जो दिल्ली प्रान्तमें बच गये थे। जब मुसलमानोंका राज्य हुआ तो अग्रवालोंका फिर सौभाग्य-सूर्य्य एकबार देदीप्यमान हो चला। जबसे अकबरने अपने यहां अग्रवालोंको वजीर बनाया तबसे अग्रवालोंका विशेष वृद्धि हुई। अकबरके दो प्रसिद्ध अग्रवाले मुख्य वजीर (प्रतिनिधि) थे। एकका नाम महाराज टोडरमल्ल और दूसरेका नाम मधुसाह था। टोडरमल्लने ही पहिले पहिल भारतवर्षकी भूमि नापकर उसपर राज्य कर (बादशाही मालगुजारी) निर्धारित किया था। यह प्रथा अबतक भी पूर्णरूपसे प्रचलित है। और दूसरे मधुसाहका अबतक "मधुसाही" पैसा प्रचलित है।

यह संक्षिप्त लेख भारतेन्दु हरिश्चन्द्र रचित "अग्रवालोंके इतिहास" से लिखा गया है जिन्हें पूर्ण देखना हो वे उक्त पुस्तकको देखें।

आरानगरकी प्राचीनता।

इस नगरका प्राचीन नाम महाभारतमें "एकचक्रपुर" लिखा हुआ है। जिसके विषयमें महाभारतमें एक कथा लिखी हुई है जो कि इस प्रकारसे है :—

यहांसे एक कोशकी दूरीपर एक "बकरी" नामका ग्राम है। वहां एक "बकाया बक" नामका असुर रहता था वह प्रतिदिन नगरमें आकर अनेक नरहत्या किया करता था इसलिये नगरवासियोंने असुरके साथ यह प्रतिज्ञा की कि आपके, नगरमें आनेसे बड़ी हलचल मच जाती है। अतः आप यहां आनेका कष्ट न उठाया करें। आपको अपने स्थानपर ही प्रतिदिन भोजनकी सामग्री (अन्नादि और एक मनुष्य) पहुंच जाया करेगा। असुर, नगरवासियोंकी इस सम्मतिसे सहमत होगया और नगरवासियोंने भी अपने अपने घरोंमें पारी बांध दी कि अमुक दिन अमुक व्यक्तिके घरसे और अमुक दिन अमुक व्यक्तिके घरसे भोजनकी सामग्री आया करेगी। कुछ दिनों तक इस नियमका पालन बराबर होता रहा।

एक बार, अपनी माता कुन्तीके साथ पांचो पाण्डव जब अज्ञात-वास बिता रहे थे उसी यात्रामें घूमते घामते करुषदेशके इसी असुराक्रान्त नगरमें पहुंचे और गांवके किसी ब्राह्मणके घर ठहर गये। अकस्मात् एक दिन उस ब्राह्मणके घरमें बड़े उच्चस्वरसे रोने पीटनेकी आवाज सुन पड़ी। सहृदय-दयालु पाण्डवोंने घरमें जा कर देखा तो ब्राह्मण और ब्राह्मणी फूट फूट कर रो रहे हैं। उनसे रोनेका कारण पूछनेपर ज्ञात हुआ कि असुरके भोजनार्थ, आज इनके पुत्रके जानेकी पारी है। इसपर धर्म्म परायण, युधिष्ठिर तथा वीरमाता कुन्तीने ब्राह्मणीको बहुत समझा कर कहा कि तुम किसी बातकी चिन्ता मत करो ; तुम्हारे पुत्रके बदलेमें मेरा पुत्र जायगा। इसपर ब्राह्मणीने कहा कि नहीं तुम हमारे अतिथि हो, तुम्हारे पुत्रको अपने पुत्रके बदलेमें बलि प्रदान देना बड़ा भारी अधर्म्म करना है। अन्तमें कुन्तीने ब्राह्मणीको बहुत कुछ समझा बुझा कर असुरके यहां भीमको ही भेजा। भीम, भोजनकी सब सामग्री लिये हुए वहांसे चले। जिस पीपल-वृक्षके नीचे असुर

भोजन करता था, ये वहीं बैठ कर सब सामग्री चट कर गये और भोजन-पात्रको मिट्टीसे भर दिया। क्षुधातुर असुर, जब भोजनकी सामग्रीके पास आया तो उसे केवल मिट्टी ही मिट्टी मिली। इससे उसको बड़ा ही क्रोध उत्पन्न हुआ। अब देर ही क्या थी; असुरकी ओर पीठ करके बैठे हुए भीम-पर उस असुरने झपट कर दो घुस्से जमाये। भीमने उठ कर बड़ा ही अट्टहास किया। इसपर असुर और भी क्रोधसे आज्वल्यमान हो गया और झट एक वृक्षको उखाड़ कर भीमको मारनेकेलिये झपटा, किन्तु भीमने उसे पकड़ कर ऐसे ज़ोर शोरसे पटका कि वह उसी समय परलोक पहुंचा। यह घटना देख कर और जितने असुर थे वे भीमके पैरोंपर गिरे और क्षमा मांगने लगे। भीमने उनसे प्रतिज्ञा कराई कि "आजसे हम लोग नरहत्या नहीं करेंगे तथा नगरमें किसी प्रकारका उपद्रव नहीं मचावेंगे"। पश्चात् भीम उस असुरकी टांग पकड़ कर नगरके द्वारपर घसीट लाये। और आकर ब्राह्मण तथा ब्राह्मणीसे सब वृतान्त कह दिया। यह समाचार सुन कर नगरनिवासी लोग उन्हें धन्यवाद देनेके लिये दौड़े आये। किन्तु युधि-ष्ठिरने अज्ञातवासके प्रकट हो जानेके भयसे, वहांसे शीघ्र ही किसी दूसरे स्थानको कूंच कर दिया।

कनिंग हांग साहबका कथन है कि नामके परिवर्त्तनमें और चाहे जो कुछ कारण हो किन्तु इस स्थानका उल्लेख महाभारतमें पूर्णरूपसे किया गया है। "एक चक्रपुर"से आरा नाममें परिवर्तित होनेकी एक यह भी वजह हो सकती है कि भीम उस असुरको मार कर मंगलवारको नगरमें लाये। मङ्गलको संस्कृतमें 'कुज' तथा "अर" कहते हैं सम्भव है कि इसीसे इसका आरा नाम पड़ गया है। और जैनियोंके ग्रन्थोंमें इसका नाम "आरामपुर" मिलता है।

दूसरी बात यह है कि ६०० A. D. में जब चीनयात्री हूनसङ्ग भारतवर्ष-में आया था तब वह यहां भी आया था। क्योंकि उसने अपनी डायरी (दि-नई) में लिखा है कि "बनारससे जब हम गंगाके तटसे पूरब-वैशाली (पटना) की ओर चले तो "मसाढ़" होते हुए नारायणदेवके मन्दिरपर पहुंचे। यहांसे ३० लीकी दूरीपर एक स्तूप मिला, जिसको अशोकने असु-रोंके नर-भक्षण त्यागने तथा अहिंसा धर्म्मके पालनेके उपलक्ष्यमें निर्माण किया था।

इसके बाद इस स्थानसे १०० ली (lie) अर्थात् १७ मीलपर दक्षिण-पूरव के कोणमें एक दूसरा स्तूप मिला। बुद्धदेवके निर्वाण (Realice) के बाद इनके अस्थिविभागके लेनेके उपलक्ष्य तथा स्मरणार्थमें ब्राह्मणोंने यह स्तूप निर्माण किया है। इसका प्रसिद्ध नाम "द्रोणस्तूप" है। यहांसे चल कर १५० ली (Lie) यानी २५ मीलकी दूरीपर वैशालीमें हम पहुंचे।" चीन-यात्रीके इस वर्णनसे तथा पूर्वोक्त पौराणिक ऐतिहासिक घटनासे यह स्थान निस्सन्देह "आरा" ही मालूम होता है।

इस स्तूपका अब कुछ चिन्ह नहीं मिलता है सम्भव है कि ब्राह्मणों तथा मुसलमानोंने मन्दिर और मसजिद बना कर इसका चिन्ह मिटा दिया हो। मसाढ़के जैनमन्दिरमें जो विक्रम सम्वत् १४४३ की मूर्त्तियां पाई गई हैं उनमें इस नगरका नाम "आरामनगर" अङ्कित है। जिससे मालूम होता है कि किसी समयमें, यहां मुनियोंके रहनेके मठ तथा शान्तिनिकेतनोंकी अधिकता थी। चाहे वे बौद्धोंके हों अथवा जैनियोंके क्योंकि इधर बौद्धोंका भी प्रचार था और जैनियोंका भी। अनेक तीर्थङ्कर इसी देशमें विहार करते हुए सम्मेदशिखरपर जा कर निर्वाणको प्राप्त हो गये हैं।

[मसाढ़]

आरासे तीन कोशपर मसाढ़ नामका एक ग्राम है। चीनयात्री हूं न-संगने अपनी डायरी (दिनई) में इस स्थानका उल्लेख करते समय इसका नाम "मुहसोलो" लिखा है। कालान्तरमें यही शब्द "मसाढ़" रूपमें परिवर्त्तित होगया है। कितने ही लोगोंका कथन है कि इसका नाम 'शोणितपुर' है। यहां एक "बाणासुर" रहता था। इसकी कन्या ऊषाकी, कृष्णके पोते "अनिरुद्ध"से शादी हुई थी। यहां कई एक प्राचीन खँडहर मिले हैं। इनमें बौद्धों तथा शिवकी कई टूटी फूटी मूर्त्तियां मिली हैं। इन्हींमेंकी एक विशाल बौद्धमूर्तिको लोग बाणासुरकी * मूर्ति कहते हैं। इस मूर्तिको बुच-

* नोट—आराके भूतपूर्व कलेक्टर मिष्टर नोलन साहबने इस मूर्त्तिको लाकर डुमराव महाराजकी फुलवारीमें रक्खा है।

मैन साहबने अपनी आंखोंसे गढ़े में पड़ी हुई देखा था। इसे ग्रामवासी लोग ढेलों से मारते थे क्यों कि हिन्दूमतसे यह, कृष्ण-द्रोही समझी जाती है इसलिये इसे द्रोहदृष्टिसे लोग देखते थे। यह स्थान बनारससे पूरब दिशामें ६००ली (Lie) अर्थात् १०० मील और वैशालीसे दक्षिण-पश्चिमके कोणमें २५० ली (Lie) अर्थात् ४२ मीलकी दूरीपर है। हूनसंग साहब अपने यात्रा-विवरणमें लिखते हैं कि इस ग्राममें ब्राह्मण रहते हैं और इन्हींकी टूटी फूटी मूर्त्तियां पाई जाती हैं जिनसे बौद्धधर्म्मका कोई सम्बन्ध नहीं मालूम होता।

यहांपर एक बहुत ही प्राचीन जैनमन्दिर है। इस ग्राममें मारवाड़के राठौर क्षत्रिय बसते हैं। इनके वंशधर "खरगसी" और "वीरमसी" नामके दो आदमी अपने पुरुषाओंके चौदह पीढ़ी बाद इस देशमें आये। ये लोग जैन-क्षत्रिय थे। इनका समय अन्दाजसे ५०० वर्ष पहिलेका मालूम होता है। क्योंकि जैनमूर्तियोंपर विक्रम सं० १४४३ अर्थात् १३८३ A. D. का लेख अङ्कित है।

इससे मालूम होता है कि इन्हीं राठौर जैन राजाओंने यह मन्दिर बनवाया था। और हम समझते हैं कि इनकी "विरमदेवकी मृत्यु" जो योधपुरके सरदार थे, टाड साहबने राजस्थानमें १३८१ A. D. की लिखी है और, ये चौदह पुत्र छोड़ कर मरे। इस बातका उल्लेख चौहान राजभाट मुकुन्दने किया है, इन्हींके सन्तानके लोग आ कर इस ग्राममें बसे हैं। क्योंकि इनके समयकी ८ जैनमूर्तियां अब भी मौजूद हैं और इनपर "राजा देवनाथ राय"का नाम और प्रतिष्ठा करानेवाले काष्ठासङ्घके आचार्य्य "कमलकीर्ति" का नाम खुदा हुआ है। इनका समय वही विक्रम सम्वत् १४४३ खुदा हुआ है। ये सब बातें अन्तमें दिये हुए "मसाढ़की जैनमूर्तिपर खुदे हुए लेख" से साफ साफ ज्ञात हो जायगी। इन मूर्तियोंको बुचमैन साहबने एक छोटेसे मन्दिरमें देखा था जिससे उपर्युक्त कथन ठीक मालूम होता है कि राठौर वंशमें राजा देवनाथ राय थे। क्योंकि उस समय इस यात्रीने उस मन्दिरके एक पुजारीसे पूछा कि "यह मन्दिर किसका बनाया हुआ है" तो उसने कहा कि "देवनाथ रायका"। १८१९ A. D. में वहींपर एक नवीन पार्श्वनाथका मन्दिर बन रहा था, जिसको बुचमैन साहबने अधूरा देखा था, किन्तु इसी मन्दिरको आरामपुरके शङ्करलालजी

अग्रवाल जैनने साङ्गोपाङ्ग तैयार करा कर विक्रम सं० १८७६ में इसकी बिम्ब-प्रतिष्ठा कराई। इनके लघु पुत्र प्यारेलालजी १८७२ A. D. की जनवरी तक विद्यमान थे।

मूर्तियोंपर खुदे हुए लेखोंसे प्राचीन और नवीन मन्दिरोंके बनानेवाले तथा प्रतिष्ठा करानेवालेका नाम और समय भली भांति ज्ञात हो जायगा। आराकी सामग्रियोंसे आरामनगरकी प्राचीनता, उपर्युक्त मसाद, और इनसे जैनियोंका सम्बन्ध, पाठकोंको भली भांति प्रकट हो जायगा। इन प्राचीन ऐतिहासिक लेखोंके देखनेसे मालूम होता है कि इस नगरसे जैनियोंका सम्बन्ध, कमसे कम ५०० वर्षोंसे बराबर चला आता है। इस समय भी यहां, जैनी अग्रवालोंके घर लगभग १०० हैं। इनकी मनुष्य गणना भी ४०० की है। बड़ों बड़ों लागतोंके, यहां, जैनमन्दिर भी ३० हैं। इन मन्दिरोंमें बहुतसी प्राचीन प्रतिमाएं हैं।

बाबर बादशाह महम्मद लोदी, अपने समकालीन अफगानी राजद्रोहियोंको पराजित कर, आरामें आया। इसने पश्चिमीय बिहारके विजयोपलक्ष्यमें बड़ी धूमधामसे यहां उत्सव किया। यह स्थान अभी तक पुरानी जज्जीके निकट, प्रसिद्ध है। इसी कारणसे इसका नाम "शाहाबाद" पड़ा। भारतीय इतिहासकी प्रसिद्ध घटनाओंमेंसे एक जो कि ई० सन् १८५७ में सिपाही विद्रोहियोंकी घटना हुई थी उसका चिह्नस्वरूप यहां एक आरा हौस (Arrah house) नामका प्रसिद्ध मकान भी है। इस छोटेसे मकानमें ६८ अंग्रेजों और हिन्दुस्थानियोंने रह कर आत्मरक्षा की थी। यह मकान जज साहबके बंगलेके हातेमें है।

यह स्थान काशीसे श्रीसम्मेदशिखर जानेके मार्गमें है अर्थात् काशीके और पटनेके बीचमें है। इसलिये श्रीसम्मेदशिखरके जानेवाले यात्री, यहांके अतिशयशाली मन्दिरोंके दर्शनकेलिये, अवश्य यहां ठहरते हैं। इस नगरके विशेष परिचय देनेकी आवश्यकता हमें नहीं दीख पड़ती क्योंकि हमारे जैनी भ्रातृगण, अधिक परिचित हैं। इसी नगरमें एक विशाल मन्दिर, श्री १००८ शान्तिनाथजीका है। इसको श्रीमती स्वर्गीया श्रेयांसकुंवरीने बनवाया है। इसी मन्दिरके एक भागमें स्वर्गीय बाबू देवकुमारजीका स्थापित "श्रीजैनसिद्धान्त भवन" है।

यहांकी प्रसिद्ध दर्शनीय चीजें "जैन मन्दिर" तथा "आरा हौस" हैं। क्योंकि गत वर्ष तो हमारे सम्राट् पञ्चम जार्ज भी, इस हौसको देखनेके लिये दिल्लीसे लौटती बार यहां उतरे थे। आरा हौसको देखनेकेलिये, जहां तहांके बड़े बड़े विद्वजन आते हैं जो इस "भवन"को भी देख कर बड़े ही कृतकृत्य तथा प्रसन्न हो कर यहांसे जाते हैं और जैनीभाई तो अवश्य ही मन्दिरोंके दर्शनोंके साथ साथ "श्रीजैनसिद्धान्त भवन" का दर्शन करते हैं। पूरबमें जैनियोंका यहां एक प्रसिद्ध स्थान है। यहांकी मनुष्य गणना ५०००० है। यह बिहार तथा मध्य प्रदेशकी सीमापर है। यहां जज्जी और कलकृरी कचहरियां भी हैं। एक "नागरी प्रचारिणी सभा" भी है जो हिन्दीकी थोड़ी बहुत सेवा करती है। इनके अतिरिक्त और भी अनेक धार्म्मिक संस्थाएं हैं जिनके सम्बन्धसे अन्य देशोंसे कई विद्वान् यहां आकर, यहांकी प्रसिद्ध संस्थाओंमेंसे "भवन" को देख कर अति प्रसन्न होते हैं और ऐतिहासिक लाभ उठाते हैं।

इस आराका, पूरा यदि इतिहास लिखा जाय तो एक बड़ी पुस्तक तैयार हो जावे इसलिये उस इतिहासका यह संक्षिप्त नोट समझना चाहिये। समय मिलनेपर पीछे कभी, इसका "पूर्ण इतिवृत्त" भी लिखा जायगा।

ममाड़की जैनमूर्त्तियोंपर खुदे हुए लेख।

(प्रतिमा, नं० १ *)

सं० १४४३ समयेजेष्ट (ज्येष्ठ) सुदि ५ गुरौ महासारस्य।
नमो राजनाथ देवराजो काष्टासंघेश्व (र) चा
रु कमलकीर्ति जे० सारग थाज
......स पुत्रल......

(प्रतिमा, नं० २ *)

सं० १४४३ समये ज्येष्ट (ज्येष्ठ) सुदि ५ गुरौ दिने।
महासारस्य मा राजनाथ देव प्रवर्धमाने। काष्टासं
ङ्घे माथुरान्धयपुष्करगणे प्रतिभा धा? वाज?
कमलकीर्ति देवजे सवाल सवालव सालारग
भाजी जूहल पुत्रलवम हैवारू प्रतिष्टित?

(प्रतिमा, न० ३, श्री१००८ नेमिनाथकी)

सं० १४४३ ज्येष्ट (ज्येष्ठ) सुदि ५ गुरौ। महासारस्य मा
काष्टासङ्घे आचार्य कमलकीर्ति देव। ··जै० महाम
सी भार्य्या उदैसिदि?

(प्रतिमा, न० ४, श्री१००८ पार्श्वनाथकी)

सं० १८७६ वैशाख शुक्ल ६ शुक्रे कुन्दकुन्द चार्यान्वये भट्टारक विश्वभूषण
मूलसङ्घे कुन्दकुन्दान्वये क? श्री···षणजी भट्टार॥? णजी तदाम्नाये अ
जिनेन्द्रभूषण जी भट्टारक महेन्द्रभूषण प्रोत कारान्वये कांसिल गोत्रे ल०
शाहजी दवमावर सिंघस्य पुत्र श्री जो तस्य पुत्रास्चत्वारः बाबू श्रीरत्न
बाबू शङ्करलाल श्री बाबू कारती चन्द जी बाबू प्यारेलालजी आराम
चन्द श्री बाबू गुपालचन्दजी श्रीवारे नगरवासिभिः मथाढ़ नगर अङ्गरेज
जिन मन्दिर बिंबप्रतिष्ठामाकार···राज्ये वर्तमाने कारुष देशे श्री।

---

* नोट—इन दो प्रतिमाओंके चिन्ह मालूम नहीं होते इसलिये इनका नाम नहीं लिखा गया।

इतिहास क्या है ?

सारगर्भित राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक घटनाओंका, पक्षपातरहित वर्णन, उनके स्थूल और सूक्ष्म कारणों एवं प्रमाणोंका निरूपण : और मनुष्य-जीवनके प्रत्येक अंशसे सम्बन्ध रखनेवाली उन्नति और अवनतिके सूत्रोंको साफ साफ दिखला देना ही इतिहास है, केवल राजाओंके नाम, युद्ध, और जय-पराजयकी सूचीका नाम इतिहास नहीं है।

आज कल स्कूलोंमें जो इतिहासकी पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं वे प्रायः सभी, केवल राजनैतिक-घटनाओंका संग्रह-मात्र हैं। अस्तु।

शोक है कि हमारे पूर्वजोंद्वारा पूर्वोक्त प्रकारसे रचे हुए इतिहासके सच्चे ग्रन्थ, इस समय, हमको नहीं मिलते। इसके दो कारण हो सके हैं—एक तो यह कि उन्होंने इस ढङ्गके ऐतिहासिक-ग्रन्थ रचे तो हैं परन्तु वे नष्ट हो गये हों और दूसरा यह कि उन्होंने राज्यविभव और सांसारिक-घटनाओंको तुच्छ समझा हो।

इन दोनोंमेंसे पीछेका कारण युक्तयुक्त मालूम होता है क्योंकि इनके खुद, धार्मिक-ग्रन्थोंसे ही यह उपर्युक्त भाव झलकता है कि राज्यविभवादि वस्तुयें नश्वर और अन्ते-विरस हैं और यहीं तक नहीं, किन्तु इन विषयोंकी चर्चाको भी इन्होंने विकथा माना है जिसके कि करनेमें एक अशुभ कर्मका आस्रव होता है।

इन्हीं विचारोंके कारण, हमारे भारतीय जैन इतिहासमें वैसी घटनाओंका उल्लेख नहीं मिलता जैसा कि समकालीन ग्रीक-विद्वानोंने अपने ऐतिहासिक-ग्रन्थोंमें किया है। यहां तक कि सिकन्दरके आक्रमण सरीखे महत्त्वपूर्ण घटनाका भी उल्लेख, हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें कहीं नहीं मिलता।

हमारे पूर्वज, धार्मिक तत्त्वके अद्वितीय विचारक थे। इसी कारणसे धर्मसंबन्धी जो घटनाएं होतीं थीं उनका, वे धर्म-प्रभावनाकेलिये अपने अपने धर्म-ग्रन्थोंमें, उल्लेख किये बिना न रहते थे। इसके प्रमाणमें जैनों बौद्धोंके ग्रन्थ, वेद, उपनिषद्, सूत्रग्रन्थ, महाभारत, काव्य, तन्त्र और साहित्य आदि महत्त्वशाली बहुतसी सामग्रियां मौजूद हैं। जिनसे भारतीय आचार-विचार और समाज तथा धर्म आदिके इतिहासका पूर्ण पता लगता है। और हम समझते हैं कि, ये राजनैतिक इतिहाससे कहीं महत्त्वपूर्ण तथा शिक्षाप्रद हैं।

आश्चर्य है कि पाश्चात्य विद्वद्गण इनको धार्म्मिक गल्पोंका संग्रह कहते हैं। किन्तु हमारी समझमें यह उनकी बिल्कुल ही भूल है क्योंकि आज तक खुद इन लोगोंने ही, उन्हीं पौराणिक-सामग्रियोंको भारतवर्षके इतिहासका एक मात्र आधार मान रक्खा है जैसा कि इनका कथन है कि "इसके सिवाय भारतवर्षके इतिहासके-लिये और कोई दूसरी सामग्री उपलब्ध ही नहीं है।" वास्तवमें यह बात ठीक है यदि पौराणिक विषयोंपर विश्वास नहीं किया जाय अर्थात् उन्हें धार्म्मिक-गल्प माना जाय तो भारतवर्षके सभी धर्मों तथा धर्म-नेताओंका अस्तित्व ही लुप्त हो जाय और भारतीय इतिहास, और भी अत्यन्त अंधेरी गुफामें विलीन हो जाय।

इसलिये भारतवर्षके सच्चे इतिहास जिज्ञासुओंको चाहिये कि वे जैन, बौद्ध और सनातनी इन तीनोंके धर्म ग्रन्थोंको, पुराणोंको तथा अन्यान्य ऐतिहासिक सामग्रियोंको विचारपूर्वक निष्पक्ष भावसे अवलोकन करें। क्योंकि जिस समय जैनियोंके अन्तिम तीर्थङ्कर श्री१००८ महावीर स्वामी, बौद्धोंके बुद्धदेव और हिन्दुओंके भी धार्म्मिकनेताओंका प्रभाव पराकाष्ठा-को पहुंच गया था। उस समयकी राजसभाओंमें, अन्यान्य धर्मके अनेकों पंडित रहते थे। और जब धार्म्मिक-शास्त्रार्थ, सर्वश्रेष्ठ राजकीय पण्डितोंके साथ होता था तो उस समय राजाको 'जयपराजय'के अनुसार उसी विजयी धर्मको मानना पड़ता था। उस समय, ग्रन्थ-प्रणयन और इतिहास-प्रणयनका काम इन्हीं आचार्योंके हाथमें था। इसलिये वे, केवल अपने ग्रन्थोंमें अपने ही धर्मके महत्त्व प्रकट करनेवाले विषयोंका उल्लेख करते थे। दूसरोंके महत्वोंका उल्लेख अपने ग्रन्थोंमें करते ही नहीं

थे क्योंकि उनमें अपने २ धर्म्मों का पक्षपात था। और सच पूछिये तो सभी जातियां, अपना अपना इतिहास, आप ही लिख सकती हैं ? इसलिये तीनों धर्म्मकी ऐतिहासिक सामग्रियोंकी पूर्ण-विवेचना किये बिना, वास्तवमें भारतीय-इतिहासका प्रणयन हो हां नहीं सकता। आज तक जितने भारतीय-इतिहास लिखे गये हैं वे बिना जैनग्रन्थोंके देखे ही प्रणीत हुए हैं इसलिये वे सर्वमान्य नहीं हो सकते।

अब मुझे वर्त्तमान इतिहास-प्रणयनके विषयमें एक परमावश्यक बात दिखानी है। वह यह है कि हम सब प्राचीन इतिहास प्रणालीका असामञ्जस्य देख कर पूर्वाचार्य्योंकी ही उलटी सीधी, जो मनमें आयी, समालोचना करने लगते हैं किन्तु यह स्वप्नमें भी कभी नहीं सोचते कि हम सबोंकी सामाजिक, धार्म्मिक तथा ऐतिहासिक घटनाओंकी सामग्री कहां २ संगृहीत है ? समाज तथा धर्म्मका उत्कर्षापकर्ष कब २ हुआ है ? किन २ अन्यान्य घटनाओंसे समाज तथा धर्म्ममें हलचल मची है ? तथा इन्होंने कब २ जागृतीका जोर पकड़ा है ? अब हमारे वर्त्तमान जैनसमाजका मुख्य कर्त्तव्य है कि वह इन उपर्युक्त प्रश्नोंको भलीभांति हल करके एक सर्वांगपूर्ण अपना इतिहास तैयार करै नहीं तो हमारी भावी सन्तान, इस विषयमें, हमारी इस भूलकी कड़ी समालोचना किये बिना न रहेगी क्योंकि जब कि लगभग १०० वर्षोंसे सभी समाजोंके कानोंपर इतिहासके नक्कारे पीटे जा रहे हैं तो इतिहासकी ऐसी धूमधामके समयपर भी और हम सोते रहें।

यद्यपि ऐसी त्रुटियोंको ही पूर्ण करनेकेलिये "श्रीजैनसिद्धान्तभवन आरा" का शुभ जन्म हुआ है और वह अपने इस कर्तव्यके पालन करनेमें, प्रत्येक प्रकारकी आपत्तियोंका सामना करता हुआ, बड़ा भारी प्रयत्न कर रहा है लेकिन क्या आपको यह पूर्ण विश्वास है कि अकेली यह संस्था ही इस बहुविद्वद्गण-साध्य महान् कार्यको पूर्ण कर सकेगी ? नहीं, यह गुरुतर कार्य तभी सिद्ध हो सकेगा जब कि समूची जैनसमाज, इसकेलिये स्वयं प्रयत्न करै या इस कार्यमें लवलीन इस "भवन" को हर प्रकारकी सहायता पहुंचावै।

एक हर्षकी बात सुननेमें आई है कि लाहोरमें भी इसी कार्य्यको पूर्ण करनेकेलिये एक नूतन संस्थाका जन्म हुआ है। देखें, यह कुमारी कहां तक इस महती कमीको पूर्ण करनेमें समर्थ होती है।

भारतीय प्राचीन चित्रकला और मूर्तिनिर्माणविद्या।

प्रायः विद्वानोंका कथन है कि कवितामें और चित्रविद्यामें बड़ी समानता है! क्योंकि कवि, जो भाव, शब्दद्वारा प्रकट करता है, चित्रकार भी, वही भाव, चित्रद्वारा प्रकाशित करता है। परन्तु हमारी तुच्छ बुद्धिमें कविताकी अपेक्षा चित्रविद्या अधिक प्रशस्य है। क्योंकि शब्दोंद्वारा प्रकट किया हुआ भाव, शब्दोंकी अनेकार्थताकी वजहसे, कन्दुकमा इधर उधर लुढ़कता रहता है; किन्तु चित्रमें जो भाव, चित्रकार प्रकट करता है, वह भाव, देखनेवालोंके हृदय-पट्टपर साक्षात् अङ्कित हो जाता है और चित्रका वह भाव, कभी भी परिवर्तित नहीं होता। दूसरी बात यह है कि हृद्गत भावको, चित्रद्वारा तद्रूप प्रकट करनेकेलिये, चित्रकारको हस्तकौशलकी एकान्त आवश्यकता है। अब पाठक स्वयं विचार करें कि कविता और चित्रविद्यामें क्या अन्तर है?

प्राचीन आचार्य्यों और ऋषियोंने भी इन्हीं उपर्युक्त बातोंको विचार कर चित्रविद्याका इतना प्रचार किया था। इस चित्रकलाका वर्णन जैन, बौद्ध, हिन्दू आदि धर्मों के सभी ग्रन्थोंमें मिलता है। जिन लोगोंने अन्यान्य सभी पुराणादिको पढ़ा होगा, उन्हें भली भांति ज्ञात हो गया होगा कि उन ग्रन्थोंमें इस विद्याका कैसा आदर किया है। जैनाचार्य्योंने तो स्त्री और पुरुषकी बहत्तर कलाओंमेंसे चित्रकलाका जानना मुख्य रक्खा है बल्कि पहलेके लोग अपने धार्म्मिक भावों तथा ऐतिहासिक घटनाओंको चित्रद्वारा ही प्रकट किया करते थे। इसके नमूने अब भी प्राचीन देशोंमें पाये जाते हैं। श्रवणबेलगुलके चिकपेट पर्वतकी "चन्द्रगुप्त वस्ती *" के दोनों पार्श्वमें एक ऐसा ही चित्रमय ऐतिहासिक लेख उकेरा हुआ है। इसके अतिरिक्त, भिन्न देशमें भी ऐसे लेख मिले हैं, जिनमें सभी लेख चित्रलिपिमें ही लिखे हुए हैं। धीरे धीरे इन्हीं चित्रोंकी रूपान्तर, भिन्न भिन्न लिपियोंका प्रादुर्भाव हुआ। बल्कि इसी

* इस बस्ती (मन्दिर) का चित्र भास्करकी १री २री किरणमें प्रकाशित है।

चित्रलिपिके विषयमें "सरस्वती" के कई अङ्कोंमें "अशोक-लिपि" इस शीर्षकके कई लेख प्रकाशित हुए हैं। उनके पढ़नेसे पाठकोंको, चित्रलिपिका पूरा २ इतिहास मालूम हो जायगा।

इस चित्रका दूसरा अंग 'मूर्तिनिर्माण' माना गया है। जब मनुष्योंको, ईश्वर-भक्तिमें प्रगाढ़ प्रेम उत्पन्न हुआ तो इस बातकी आवश्यकता हुई कि कोई ईश्वरीय शक्तिका दिव्य आकार प्रत्यक्ष हो तो ईश्वरीय भाव एक अवस्थामें कुछ काल तक टिक सकता है। दूसरी बात यह कि आदमी जिस वस्तुको, दृष्टिके सामने देखता है वैसा ही भाव उसके अन्तरंगमें भी पैदा होता है और वह वैसा ही बननेकी चेष्टा करता है। इसी अभिप्रायसे ऋषियोंने मूर्तिपूजाकी प्रथा चलाई थी। विद्वानोंका कथन है कि सबसे प्रथम मूर्ति पूजाकी प्रथा, जैन और बौद्धोंसे ही प्रारम्भ हुई है। बल्कि उस समयकी, कई एक प्राचीन मूर्तियां मथुराके कंकाली टीलेमेंसे निकली हैं जिनपर सन् संवत् कुछ भी अङ्कित नहीं है। मूर्तिपूजाके विषयमें १९१४ वाली अगस्तकी "सरस्वतीमें" पं० हीरानन्द शास्त्रीका एक बड़ा गवेषणापूर्ण लेख निकला हैं। मि० इ० बी० हैविल साहब जो पहिले कलकत्तेके "स्कूल आफ् आर्टस्" के प्रधानाध्यापक थे वे आजकल पेन्सन ले कर विलायतमें हैं। आपने भारतके मूर्त्तिनिर्माण तथा चित्रकलाके ऊपर एक बड़ी, महत्वपूर्ण सचित्र पुस्तक लिखी है। इसमें अनेक प्राचीन मूर्तियां तथा चित्रोंके भी नमूने दिये हैं। आपने, इस पुस्तकमें, भारतीय चित्रविद्या और मूर्ति निर्माणकलाकी बड़ी प्रशंसा की है। आपने इस बातको सप्रमाण सिद्ध किया है कि इन कलाओंकी प्राप्तिमें, भारतवर्षने, और किसीसे सहायता नहीं ली है। इस विषयके ऊपर, माननीय आनन्दाके कुमारस्वामीने और मि० फर्गुसन साहब आदि इतिहासवेत्ताओंने कई पुस्तकें लिखी हैं। मैंने भी इन्हीं उपर्युक्त विद्वानोंके लेखों और पुस्तकोंके आधारपर, यह एक छोटासा लेख, लिखनेका प्रयत्न किया है।

प्राचीन भारत, जैसे अन्यान्य विषयोंमें *विख्यात था वैसे ही मूर्तिनिर्माण* और चित्रकलामें भी इसने यत्परोनास्ति प्रख्याति पाई थी। शोककी बात है कि भारतकी अगणित उत्तमोत्तम मूर्तियां विधर्मी आक्रमणकारियोंकी तलवारका लक्ष्य बन कर नष्ट होगयीं। परन्तु अब

भी उनके नमूने जैन विहार, स्तूप तथा मन्दिर आदि ऐतिहासिक स्थानोंमें पाये जाते हैं:—खण्डगिरि, एलोरा, श्रवणबेलगुल, मथुरा इत्यादि। बौद्धोंकी भी भारतीय चित्रकलाके नमूने, तिब्बत, ब्रह्मदेश, नेपाल लङ्का और जावा आदि प्रान्तोंमें देखे जाते हैं। इन्हें देख कर मूर्ति-निर्माण विद्याके प्राज्ञल आचार्य, भारतीय मूर्तिविषयक शिल्पकलाकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करते हैं।

भारतमें, प्रथम मूर्तियां पाषाणकी बनीं पीछे काष्ठकी, तत्पश्चात् इनकी स्थिति, कम समझ कर धातुकी बनने लगीं। अब भी भारतमें, मूर्तिनिर्माण के सर्व प्रसिद्ध स्थान जयपुर और दिल्ली आदि हैं। यहां बड़े २ कारीगर हैं ये हजारों रुपयोंकी लागतकी जैन और हिन्दू देवताओंकी मूर्तियां बना कर जहां तहां बाहर भेजते हैं।

मूर्तिनिर्माणकी तरह चित्रविद्याकी भी इस देशमें बड़ी उन्नति थी। इनके कितने ही टूटे फूटे अंश भारतके जैन विहार, स्तूप और मन्दिरोंमें पाये जाते हैं। उनमेंसे एक, दक्षिणमें बंबईके पास 'एजण्टा' नामका एक गुफामन्दिर है। यह ईसाके दो सौ वर्ष पहिलेका अर्थात् आजसे दो हजार वर्षका पुराना समझा जाता है। इसकी दीवारों और छतोंपर रंगीन चित्रकला कुछ अब भी मौजूद है।

इन्हें देख कर गुणग्राही, चित्रकलाके अद्वितीय पाश्चात्यविद्वान् चक्कर खा जाते हैं। बल्कि एक पाश्चात्य विद्वान्ने इनका पूर्ण वर्णन एक सचित्र पुस्तकमें प्रकाशित भी किया है। पुस्तकके देखनेसे ही मालूम होता है कि उस समयमें इस भारतने चित्रकलामें कैसी उन्नति की थी। अगले समयमें मन्दिरों, राजभवनों और धनवानोंके मकानोंकी दीवारोंपर धार्मिक तथा ऐतिहासिक चित्र अङ्कित होते थे। इनके नमूने अब भी कई जगह मन्दिरों तथा राजभवनोंमें पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त कपड़ेपर भी चित्र बनते थे। किन्तु खेद है कि उनका नमूना अब नहीं मिलता।

भारतमें जो, तक्षशिला, नालन्द और श्रीधन्यकटकमें विश्वविद्यालय थे उनमें अन्यान्य विषयोंके सिवाय चित्रकला और मूर्तिनिर्माण विद्याकी भी शिक्षा दी जाती थी। भारतीय छात्रोंके अतिरिक्त सिंहल और चीन तकके विद्यार्थी इस कलाओंको पढ़नेकेलिये यहां आये थे। बल्कि इन्हीं लोगोंने अपने देशमें जा कर भारतीय चित्रकलाका प्रचार किया

था और यह चित्रविद्या, धीरे २ कोरिया, चीन तथा जापान आदि देशोंमें भी फैल गई। तुर्किस्थानमें बौद्धोंके कई स्तूप और विहार मिले हैं कि जिनकी दीवारोंपर बहुतसी कारीगरी पाई गई है। भारतकी कुछ चित्रविद्याके नमूने सिंहल, चीन और लङ्काकी प्राचीन इमारतोंकी दीवारोंपर भी मिलते हैं। इस विषयमें हैविल साहबका यह कथन है कि "प्राचीन भारतके पूर्वोक्त विश्वविद्यालयकी शिक्षाका ही यह फल है कि ये नमूने रोम और ग्रीसके प्राचीन चित्रोंसे नहीं मिलते। इन चित्रोंका भाव सर्वथा भारतीय है। और यह भाव विदेशी चित्रोंमें नहीं है। इसलिये जिनका कथन है कि भारतीय चित्रोंमें रोम और ग्रीसकी चित्रकलाकी छाया पड़ी हुई है वे भ्रममें हैं। उनको चित्रोंकी परीक्षा ही नहीं आती है। वे स्वदेशी और विदेशी चित्रोंके भिन्न भिन्न भावोंको जानते ही नहीं।

तिब्बतमें भी बहुतसी चित्रकारीके नमूने पाये जाते हैं। इनमेंके कई एक नमूने कलकत्तेकी आर्टस्यूजियम (कला संरक्षिणी संस्था) में सुरक्षित हैं।

जब चीनके तुर्किस्थानके मंगोल लोग वर्तमान टर्की और फारिसमें गये तो वहां भारतसे प्राप्त की हुई चित्रविद्याका प्रचार किया। इसके बाद इन देशोंमें मुसलमानी धर्म्मकी जागृति हुई। इस धर्म्मके समयमें मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जीवधारियोंका चित्र बनाना धर्म्मविरुद्ध समझ कर इसका प्रचार रोक दिया। इसके स्थानपर अर्बी और फारसीकी शेर, असार और कुरानकी आयतें बेलबूटोंके अक्षरोंमें लिख कर जिसे लोग "तोगरा" कहते हैं, मकानोंको सुसज्जित करनेकी प्रथा चलाई गयी। मुसल्मानोंने जब भारतवर्षमें पहिले पहिल पदार्पण किया तो उस समय लाखों भारतीय देवमूर्तियां और ऐतिहासिक चित्रोंको नष्ट भ्रष्ट कर दिया। हाय!!! इनमें कई भारतीय अपूर्व नमूने नष्ट हो गये। धीरे २ जब इनका बल कम पड़ा तो पशु पक्षी तथा मनुष्योंके चित्र कथापहेलियोंकी पुस्तकोंमें बनने लगे। इसके बाद जब अकबर बादशाह भारतके साम्राज्य-सिंहासनपर आरूढ़ हुए तो धीरे २ सभी प्राचीन कलाओंकी उन्नति होने लगी। क्योंकि ये बड़े ही निष्पक्ष, गुणग्राही और विद्वान थे। अब इनका ध्यान चित्रकलाकी ओर भी आकृष्ट हुआ। इसीलिये एक दिन बड़े २ मौलवियोंको अपने दरबारमें बुला कर पूछा कि जीवधारियोंकी मूर्ति और चित्र बनानेमें क्या दोष है? उन सबोंने वही अपना

पुराना मन्तव्य प्रकटित किया कि "जीवधारियोंकी तस्वीर बनाना, मानो खुदाकी बनाई हुई दुनियांकी नकल करनी है और यह इन्सानके अधिकारके बाहर है क्योंकि इन्सानको खुदा बननेका दावा होता है। इसीलिये हम लोगोंके यहां जीवधारियोंकी तस्वीर बनाना कुफ्र (पाप) है।" इसपर अकबरने कहा कि "यह तुम सबोंकी भूल है। क्योंकि संसारमें कोई, ईश्वरके विषयमें विश्वास करा सकता है तो वह एक चित्र ही, इसका कारण यह है कि जब चित्रकार किसी जीवधारीका चित्र तद्रूप बना कर तैयार करता है तो उसको उस समय ज्ञान होता है कि हमने इसके सब अङ्गोपाङ्ग बनाये किन्तु आत्मा नहीं दे सकते. इसलिये मुझसे अनन्तशक्तिशाली कोई व्यक्ति है जो प्राणियोंके शरीरमें जीवनदान देता है। और वही ईश्वर है। उस समय उस चित्रकारको ईश्वरशक्तिका पूर्ण ज्ञान होता हैं।" बादशाहके इस युक्तियुक्त कथनको सुन कर सब मौलवी चुप हो रहे। किसीसे इसका उत्तर देते न बना।

इसके बाद अकबरने आज्ञा दी कि "सभी चित्रकार दरबारमें उपस्थित होवें।" उस समय भी बचे खुचे कई अच्छे शिल्पी तथा चित्रकार, भारतमें विद्यमान थे वे दरबारमें उपस्थित हुए। उन लोगोंको शाही खान्दान (राजकीय वंश)के लोगोंके, दरबारके प्रतिष्ठित पदाधिकारियोंके तथा अमीरोंके चित्र बनानेकी आज्ञा दी गई। फारिससे भी चित्रकार बुलाये गये। इस कलाका एक पृथक् ही विभाग खोला गया। जहां तहांसे बुला कर इसमें कई प्रवीण चित्रकार, भर्ती किये गये। बादशाहको इस कलासे इतना प्रेम था कि वे स्वयं जा कर, चित्रकारोंका काम देखते थे। जिसका चित्र पसन्द हो जाता था उसे पारितोषिकमें हजारों रुपये और जागीरें भी देते थे।

इन चित्रकारोंकी वेतनमें भी पूरी होती थीं। इस विभागके कई चित्रकार "मनशब्दार" की पदवीपर भी थे। इनके पास रिसाले और पैदल सैनिक भी रहते थे। उस समय रिसालेदारोंकी वेतन बारह सौसे अधिक और साठ दामसे कम न होती थी। इसीसे पाठक समझ सकते हैं कि, पहिले चित्रकारोंकी कितनी प्रतिष्ठा थी। उस समयसे यह कला फिर उन्नतावस्थाको पहुंची थी। इस दरबारके प्रसिद्ध चित्रकारोंमें मुख्य दसवन्त और बसावन नामके दो व्यक्ति थे। ये मनुष्यके चित्र बनानेमें

बड़े ही सिद्धहस्त थे। इसलिये ये बादशाहके ही काम करते थे।

उस समय सैकड़ों ऐतिहासिक अथवा कथापहेलियोंकी पुस्तकें अरबी और पारसी भाषामें लिखी गयीं और उनमें सभी घटनाओंके चित्र बनाये गये. उन सचित्र पुस्तकोंमेंसे कुछ पुस्तकें शाहनामा, नलदमयन्ती, कलेला, दमना आदि हैं। इन पुस्तकोंकी लिखाईमें अटूट द्रव्य खर्च किया गया। इनमेंकी कुछ पुस्तकें अब भी, भारत तथा विलायतकी राजकीय पुस्तकालयमें सुरक्षित हैं। कुछ पुस्तकें पटनेकी "खुदाबक्स खां लायब्रेरी में भी हैं, जिनमें बादशाही मुहरें तथा उनके हाथकी लिखी हुई कुछ टीका टिप्पणी भी अङ्कित हैं। इसके अतिरिक्त ऐसी पुस्तकें कई रजवाड़ोंमें भी पायी जाती हैं। इन्हींमेंकी एक दो पुस्तकें "श्रीजैन-सिद्धान्तभवन" आरामें भी विद्यमान हैं। इनके देखनेसे ही उस समयके भारतीय चित्रकारोंके चित्राङ्कणकौशलका पता लगता है। उस समय, उत्तमोत्तम चित्र हाथीदांतकी पटरियों, कागजकी वसली (कूट) और शीशोंपर अङ्कित होते थे। इनके कितने ही नमूने कलकत्तेके अजायबघरमें तथा विलायतके "अल्बर्ट म्यूजियम" में विद्यमान हैं और ऐसे चित्र कितने ही राजा महाराजाओंके यहां भी देखे जाते हैं। उस समयके, कागज और कपड़ेपरके अङ्कित दो तीन चित्र, 'भवन' की "चित्र-शाला" में भी संगृहीत हैं।

मुगल बादशाहोंके भी राजत्वकालमें इसकी बराबर उन्नति होती रही।

इन चित्रोंके बनानेकेलिये उस समय रंग भी यहीं तैयार होता था। ये सब नाना प्रकारके रंग काली पत्थर तथा विविध भांतिकी जड़ी बूटियोंको घोंट कर बनते थे। ये रंग, बड़े ही चटकीले सुहावने और अमिट होते थे। इस समयके अंग्रेजी रङ्ग, पुराने भारतीय रंगका किसी प्रकार सामना नहीं कर सकते। सुनहला और रुपहला रंग सोने और चांदी-के पत्रोंको अच्छी तरह घोंट कर बनाया जाता था, जिसकी चमक, सैकड़ों वर्ष तक ज्योंकी त्यों बनी रहती थी। चित्र बनानेकी लेखनी भी यहीं बनती थी। यह गिलहरीके बच्चेके पूंछके कोमल बालोंको, एकत्र बांध कर बनायी जाती थी। इस लेखनीकी नोंक, एक बाल तककी महीन होती थी। क्योंकि उस समय, ऐसी लेखनियोंसे इतने सूक्ष्म काम होते

थे कि जिनकी कारीगरीका पता, आजकलके लोगोंको, बिना आइग्लास (सूक्ष्मदर्शी यंत्र) लगाये, नहीं मिल सकता। उस समय, दो प्रकारके रंगों-के चित्र बनते थे। एक पानीमें घोल कर और दूसरा तेलमें। पानीवाले रंगसे हाथीदांत, कपड़ों और कागजोंपर चित्र बनते थे और तेलवाले रंगसे, मोटी लेखनोकेद्वारा भित्ती, काष्ठ तथा पत्थरोंपर चित्र बनते थे। उस समयके, इनके नमूने अब भी दिल्ली, जयपुर और ग्वालियरके जैनमन्दि-रोंमें अङ्कित पाये जाते हैं। हमने अपनी आंखों, महाराज मैसोरके महलोंमें तथा टीपू सुलतानके महलोंकी भित्तियोंपर उपर्युक्त प्रकारके चित्र देखे हैं।

उस समय इस कलाकी ऐसी उन्नति थी कि सभी रजवाड़ोंमें और जय-पुर आदि मुख्य २ स्थानोंमें इसका एक २ विभाग खुल गया था। वहां हजारों उत्तमोत्तम चित्र बना करते थे तथा अनेक छात्र, वहां चित्रकलाकी शिक्षा पाते थे।

जब दिल्लीके मुगल बादशाहोंका पतन और लखनऊके बादशाहोंका उत्थान होने लगा तो वहांके कितने ही चित्रकार, लखनऊ दरबारमें पहुं-चे। लखनऊमें इस कलाकी उन्नति, नव्वाब आसफुद्दौलाके राजत्वकालसे अधिक हुई। इनके दरबारके प्रसिद्ध चित्रकार नूरमुहम्मद थे। इनके बाद इनके छोटे भाई मीरकल्लू मसव्विर, बादशाह गाजीउद्दीनके समयमें थे। इन्हींके राजत्वकालमें, भारतवर्षमें, "ईस्ट इण्डिया कंपनी" का पदार्पण हुआ। इसके सम्बन्धसे इस देशमें कई अङ्गरेज चित्रकार भी आये। बाद-शाह नसिरुद्दीन हैदरके दरबारमें मामीरकम, जवाहिरलाल और नूर-मुहम्मद मसव्विरके नाती मीरमुहम्मदजान आदि प्रसिद्ध चित्रकार रहते थे। उस समय, एक अंग्रेज चित्रकार भी बादशाहके दरबारमें आया था। वह कपड़ेपर तैल-चित्र बनाता था। ये सब चित्रकार, लखनऊ (अवध) के अन्तिम बादशाह वाजदलीशाहके समय तक, इनके दरबारमें रहे और इसी समय तक भारतीय प्राचीन चित्रकलाकी प्रतिष्ठा रही।

उस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनीके बड़े २ अधिकारी लोग भी अपनी मेमोंका चित्र हाथीदांत और कागजोंपर इन्हीं चित्रकारोंद्वारा बनवाते

थे और सैकड़ों चित्र, अपने इष्टमित्रोंके ब्रोच* और लाकेट† में लगानेके-लिये यहांसे बनवा कर विलायत भेजते थे। क्योंकि यहांकेसे सुन्दर और सूक्ष्म-कामके चित्र वहां नहीं बनते थे।

धीरे २ जब यहां अंग्रेजोंका अधिकार जमने लगा तो इन सबोंने भी बबई तथा कलकत्ता आदि मुख्य २ स्थानोंमें चित्रशालायें स्थापित कीं। इनमें बड़े २ प्रसिद्ध चित्रकार विलायतसे बुलाये गये। इन लोगोंकी प्रसिद्धि, तैलचित्रके ही बनानेमें हुई।

उपर्युक्त चित्रशालाओंमें अब भी सैकड़ों विद्यार्थियोंको चित्र-कला और मूर्तिनिर्माणकी शिक्षा दी जाती है। इसी एक चित्रशालाके प्रधान शिक्षक हमारे मि० इ० बी० हैविल साहिब थे कि जिनके स्थानपर अब मि० अवनीन्द्रनाथ टैगोर विद्यमान हैं। इन शालाओंद्वारा भारत-वर्षमें, तैल रंग तथा विदेशीय रंगढंगके चित्रोंका प्रचार पूर्णरूपसे हो चला है। इसके अतिरिक्त फोटोग्राफी (प्रतिबिम्बकला) का भी धड़ाधड़ प्रचार हो रहा है।

इन्हीं उपर्युक्त कारणोंसे भारतीय चित्रकारोंकी आजीविका नष्ट हो गई। लेकिन अब भी दिल्ली, जयपुर आदि स्थानोंमें, भारतीय चित्रकलाकी प्रतिष्ठा रखनेवाले कुछ चित्रकार, वर्त्तमान हैं। इस समयके भारतीय चित्रकारोंमें दक्षिणके स्वर्गीय राजा रविवर्मा और कलकत्तेके बाबू अवनीन्द्रनाथ ही भारतीय चित्रकलाकी लज्जा रखनेवाले माने जाते हैं क्योंकि इन लोगोंने बहुतसे पौराणिक चित्र, बना कर प्रकाशित किये हैं जिससे अब, भारतीय गुणग्राहियोंका अपने देशकी चित्रकलाकी ओर ध्यान, आकृष्ट हुआ है।

परन्तु बहुतेरे विद्वानोंका कथन है कि इन चित्रोंमें अधिकांश भाव, अंग्रेजी वेषभूषा-रचनाका ही पाया जाता है और भारतीय भाव, बहुत कम प्रकटित होता है। इसलिये इस विषयमें उन पाश्चात्यविद्वानोंका, जिन्होंने भारतीय चित्रकलाके भावोंका पूर्ण अनुभव किया है, कथन है कि 'भारतीय चित्रकारोंको, विदेशीय वेषभूषा तथा भावभंगीवाले चित्रों-

नोट--*यह एक प्रकारका अंग्रेजी गहना होता है जिसे मेमें, अपने वक्ष पर पहिनती हैं।

† यह भी एक प्रकारका गहना होता है जो जेबघड़ियोंकी जंजीरमें लटकाया जाता है।



श्रीसीताजी की अग्निपरीक्षा।

कर्मणा मनसा वाचा रामं त्यक्त्वा परं नरम् । समुद्वहामि न स्वप्नेऽप्यन्यं सत्यमिदं मम ॥
यद्येतदनृतं वच्मि तदा मामेष पावक । भस्मसाद्भावमप्राप्तामपि प्रापय तत्क्षणात् ॥

(श्रीरविषेणाचार्य)

यह चित्र ... सचित्र जैन-रामायण से लिया गया है।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

की कभी नकल नहीं करनी चाहिये। उन्हें अपने देश, धर्म्म, और समाजके अनुकूल बने हुये चित्रोंका ही आदर करना चाहिये। प्राचीन भारतीय चित्रकलाका अनादर न करके उन्हें, उसमें भक्ति, तथा उसकी पुनर्जागृतिकेलिये अविश्रान्त परिश्रम करना चाहिये।

लोग नकलबाजी करनी ही अपनी बुद्धिकी पराकाष्ठा समझते हैं यहां तक कि रंगढंग, और भावभंगी सभीकी नकल, की जाती है। पहिले तो नकल करना ही, मानसिक-संकीर्णता प्रकट करता है। परन्तु चित्रणकलासी कलामें, जिसकेद्वारा भावीसन्तानें अपने पूर्वजोंके आचारव्यवहार और उनकी रहनसहनके रंगढंगकी परीक्षा करेंगी; नकल करना, विदेशीय भावभंगीमें काम लेना, उनमें विदेशी रंगढंगका भाव प्रविष्ट कर देना, केवल मानसिक-दौर्वल्य तथा परबुद्धिकी सेवकायी ही नहीं है किन्तु अपनी सन्तानोंको धोखा देना, या उन्हें अपने इतिहास, अपने आचरण और रहनसहनके ढंगके जाननेके एक पथको नष्ट कर डालनेका एक महापाप है।

भारतीय स्त्री—चरित्रका एक अपूर्व आदर्श।

भारतीय आर्य-महिलाओंका पवित्र निष्कलंक चरित्र, आज भी सारे संसारकेलिये आदर्श है यह बात प्रायः सर्वमान्य हो चुकी है।

हमारी भारत-मातायें अपने पवित्र सतीत्वकी रक्षाकेलिये—अपनी धर्मरक्षाकेलिये—अपने प्राणोंका विसर्जन करना एक साधारण बात समझा करती थीं। भारतीय इतिहास इसके अगणित प्रमाण दे सकता है। कई प्रसिद्ध निष्पक्ष विदेशीय इतिहास-लेखकोंने बड़े महत्वपूर्ण वाक्योंमें लिखा है कि एकमात्र भारतीय स्त्री-सतीत्व ही सारे संसारकी सभ्यतामें अपना स्थान, सर्वश्रेष्ठ रखनेकेलिये यथेष्ट होगा। भारतवासी; क्या शिक्षित

और क्या अशिक्षित, सभी, आज पर्यन्त भी उन सतिओंका नाम बड़े गौरवके साथ स्मरण किया करते हैं कि जिन्होंने एकमात्र अपने सतीत्वकी रक्षाकेलिये कुछ स्वार्थत्याग किया हो। इसीसे हमारे पाठक समझ सके हैं कि हम लोग स्त्री-सतीत्वको किस महत्वकी दृष्टिसे देखते हैं। हमारे ऋषि महर्षियोंने भी स्त्री-सतीत्वकी गुणगाथाओंका गान, पुराण, नाटक और काव्यद्वारा बड़ी ही मधुरध्वनिसे किया है। आज "भास्कर" भी एक ऐसे ही विचित्र स्वार्थत्याग और आत्मसमर्पणका अपूर्व दृष्टान्त ले कर पाठकोंके सन्मुख उपस्थित हुआ है।

जगन्माता, लोकललामभूता, सतीशिरोमणि सीताजीका नाम किसे स्मरण न होगा। हमारे पूर्व ऋषियोंने पुराणोंसे और कवियोंने अनेक काव्योंसे आपका यश दिगन्तव्यापी कर दिया है अस्तु। आपके नामसे केवल भारतवासी ही क्यों, सारा संसार ही परिचित है और हम बड़े अभिमानके साथ कह सकेंगे कि आपके परिचयमात्रसे ही आज पर्यन्त अगणित नरनारियां, अपनी धर्म्मरक्षा करनेमें समर्थ हुई हैं। आपकी जन्मभूमिके गौरवकेलिये आज तक भी यह भारतभूमि प्रसिद्ध गिनी जाती है।

सीताजीके गौरवमयजीवनकी अनेक घटनाओंमेंसे यह भी एक घटना है कि जिस समय श्री रामचन्द्रजी लंकासे सीताजीको लेकर अपनी राजधानी अयोध्या-पुरीमें आये तब कुछ लोगोंको सन्देह होने लगा कि "सीताजी अपने पति रामचन्द्रसे अलग रह कर और एक दूसरे प्रभावशाली राजाके वशमें हो कर इतने दिन उसके राज्यमें रहीं इसलिये शायद वे अपने सतीत्वकी रक्षा न कर सकी हों।" रामचन्द्रजीको यह लोकापवाद असह्य हो उठा और उन्होंने, संसारके सन्मुख सती सीताको निर्दोष सिद्ध करनेकेलिये, एक विकट मार्ग सोचा—

रामचन्द्रजीने आज्ञा दी कि "एक विशाल अग्निकुण्ड बनाया जाय और उसमें सीता प्रवेश करें, यदि उनका सतीत्व निर्मल हुआ तो वे उस कुण्डमेंसे जीवित निकल आयेंगी नहीं तो उसीमें भस्मसात् हो जायगी।" इस कठोर भयानक परीक्षाको सुन कर किसका हृदय न कम्पित हो उठता होगा

परन्तु सीताने बड़े हर्ष और उत्साहके साथ इस परीक्षाको स्वीकार किया।

बस देर ही क्या थी रघुपतिकी आज्ञानुसार एक विशाल अग्निकुण्ड तैयार कराया गया और संस्कार-पद्धतिसे शिक्षाप्राप्ता परीक्षार्थिणी सीताका आह्वानन किया गया। वे भी परीक्षाका सुअवसर सुन, सहर्ष दौड़ी आईं और अपने इष्टका स्मरण कर कहने लगीं कि "हे अग्निदेव! अगर मैंने किसी भी प्रकारसे स्वप्नमें भी अपने पति (रघुवीर) को छोड़ अन्य किसी पुरुषका चिन्तवन भी किया हो तो तू मुझे अभी भस्मसात् करके मुझ पापिनीका अमंगलजनक मुख, अन्य सदाचारी नरनारियोंको, देखनेका कुअवसर मत आने दे और यदि अपना तनमन, निजपतिके ही चरणारविन्दोंमें लगाती रही हों तो तू संसारको उसका प्रमाण दे कर उसका भ्रम दूर कर" इतना कह कर सतीशिरोमणि सीताने झट अपने कोमल शरीरको, उस जगद्भस्मकारी अग्निदेवकी गोदमें समर्पण कर दिया।

अहा!! सतीत्वका क्या ही अपूर्व ज्वलन्त दृष्टान्त है! क्या भारतमाताओंके सिवाय अन्य किसी भूमिको, ऐसी सतियोंके जन्म देनेका सौभाग्य, प्राप्त है? क्या आर्य्यनारियोंके अतिरिक्त कभी किसीने ऐसा सतीत्वका उन्नतर आदर्श दिखाया है?

हमारे प्रश्नका उत्तर दिक्कन्निकायें बड़े महत्वके साथ यही देंगीं कि नहीं; यह सौभाग्य इसी भारतभूमि और इन्हीं आर्यललनाओंको ही प्राप्त है।

सीताजीने अग्नि-प्रवेश करते समय जो कुछ कहा वेही वाक्य हमारे पद्मपुराणके कर्ता श्रीरविषेणाचार्यजीने, बड़े महत्वपूर्ण वाक्योंमें अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ पद्मपुराणमें यों प्रकाशित किये हैं—

कर्मणा मनसा वाचा रामं त्यक्त्वा परं नरम्।
समुद्वहामि न स्वप्नेऽप्यन्यं सत्यमिदं मम॥ १॥
यद्येतदनृतं वच्मि तदा मामेष पावकः।
भस्मसाद्भावमप्राप्तामपि प्रापय तत्क्षणात्॥ २॥
मिथ्यादर्शिनीं पापां क्षुद्रिकां व्यभिचारिणीम्।
ज्वलनो मां दहत्येव सतीं इत्तास्थितां तु मा॥ ३॥

जिनको आज पर्यन्त, जैनसमाजका प्रत्येक बालक भी बड़े महत्वके साथ, प्रातःकाल ही स्वाध्यायके समय, याद किया करता है और भारतकी वर्तमान हीनावस्थापर दो उष्ण अश्रुधारा भी बहा देता है।

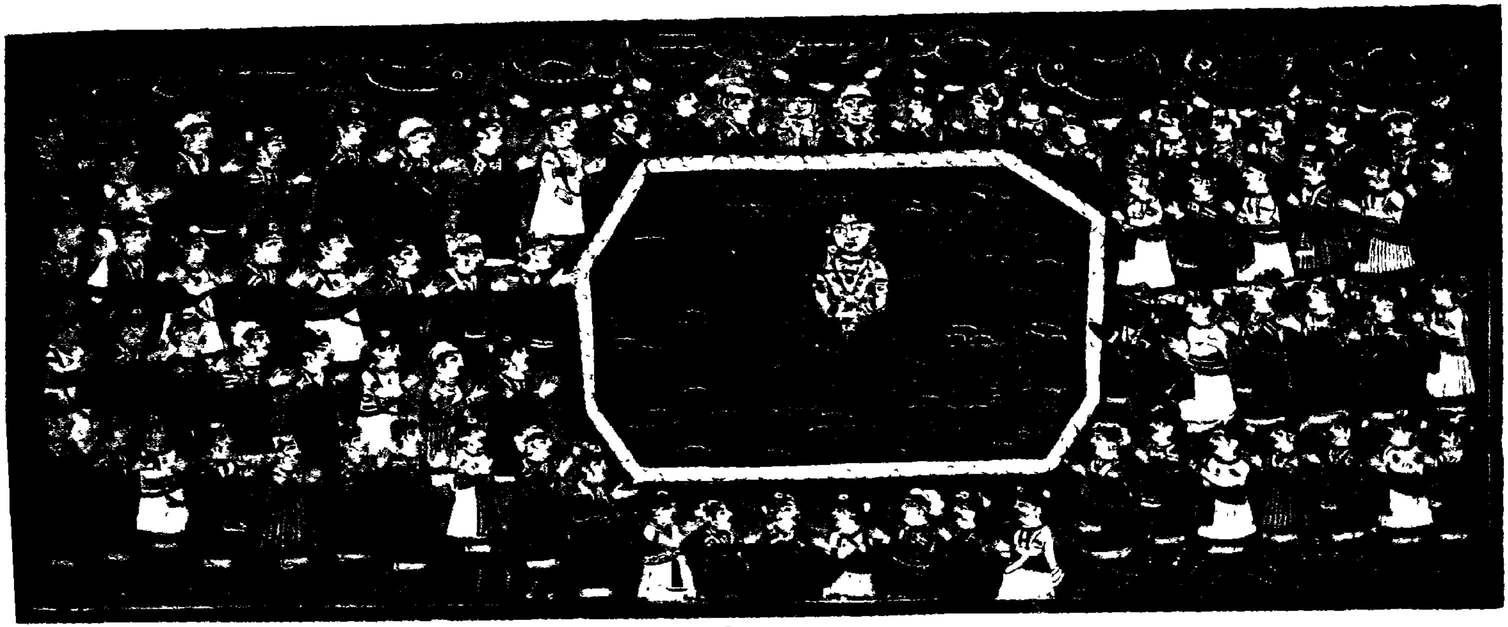
माता सीताजीके हृदयमें तो पातिव्रत्य-धर्मका पवित्र-स्रोत बह रहा था. उनके हृदयमें रघुपति-चरण-चन्द्रकान्तमणिकी निर्मल माला रटी जा रही थी, भला ऐसे समयमें कब सम्भव था कि सीताजीके पवित्र शरीरको, अग्निका स्फुलिङ्ग भी स्पर्श करे। अग्निने भी सतीत्व-गौरव गौरवान्विता सीताको भस्म करना अनिवार्य पाप समझ कर अपने स्वरूपको बदल कर निर्मल वापिकाका रूप धारण कर लिया।

उन्हीं कविने कैसे महत्वपूर्ण वाक्योंमें इस चिरस्मरणीय घटनाका उल्लेख किया है :—

अविचार्यैति सा देवी प्रविवेशानलं च तम्।
जातं च स्फटिकास्याच्छं सलिलं सुखशीतलम्॥ १॥
भित्त्वेव महसा क्षोणीं तरसा पयसोद्गता।
परमं पूरिता वापी रगद्गगाकलाभवत्॥ २॥
दयां कुरु महासाध्वि! मुनिमानसनिर्मले!।
इति वाचो विनिश्चेरुर्वारिविह्वललोकतः॥ ३॥

क्या अभागे भारतको फिर भी कभी सीता जैसी सतियोंके चरणस्पर्शका सौभाग्य प्राप्त होगा! हे जगज्जननि सीते! एकबार पुनः वर्तमान भारतीय स्त्रियोंकी दुर्दशाका स्मरण कर अपनी सन्तानको, उस प्राचीन सतीत्वके गौरवका स्मरण करा दें।

पाठकोंको, भारतीय प्राचीन चित्रकौशलका दिग्दर्शन करानेके लिये पौनेतीन सौ वर्ष पुरानी सचित्र "जैन रामायण" से, उपर्युक्त विषयके, भावपूर्ण दो चित्र इसी किरणमें अन्यत्र प्रकाशित किये हैं।



श्रीसीताजी के सतीत्व का फल।

अथ पश्चान्नरं नान्यं मनसापि वहाम्यहम् । ततोऽयं ज्वलनो व्याप्नोतु मां शुद्धिसमन्विताम् ॥
मिथ्यादर्शिनी पापा क्षुद्रिका व्यभिचारिणीम् ज्वलनो मां दहत्वेष सती व्रतस्थिता तु मा ॥

(श्रीरविषेणाचार्य्य)

[यह चित्र भी उसी प्राचीन जैन-रामायण से लिया गया है]

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

एक ऐतिहासिक स्तुति ।

जैनियोंमें यह कथा प्रसिद्ध है कि पूज्यवर "श्रीमाघनन्दी" आचार्य एक दिन आहारके निमित्त किसी गांवमें जा रहे थे। उस समय मार्गमें एक कुम्हारकी कन्या उनके दृष्टिगोचर हुई। वह अत्यन्त सुन्दरी तथा मनोहराङ्गी थी। उसे देख कर तीव्र कर्मोंके अशुभोदयसे उसके प्रति इन्हें रागभाव उत्पन्न हो गया। इस अगदनिवार्य रागभावके वशीभूत हो कर उनको अपने पवित्र मुनिलिंगको त्यागना पड़ा और उस कन्याके साथ व्यवाह किया। तबसे वे उसके ही घरमें रहने लगे और उस कन्याके साथ २ मिट्टीके घड़े वगैरह भी बनाने लगे। कहा जाता है कि जब ये घड़ा बनानेको बैठते थे तो उसपर थपड़ी लगाते समय श्लोकोंको बना २ कर गाया करते थे।

हमें भी कर्नाटक देशसे जिस देशके वे रहनेवाले थे, सौभाग्यवश उन्हींके बनाये हुये कुछ श्लोक प्राप्त हुये हैं जो कि इस प्रकार हैं :—

वन्दे तानमरप्रवेकमुकुटप्रोतारुणिप्रस्फुट—
द्रामस्तोमविमिश्रिताः पदनखा इषुत्करा रेजिरे।
येषां तीर्थकरेशिनां सुरसरिद्वारिप्रवाहोद्भट
हृदयेद्धवमितम्भिसीस्तनगलत्काश्मीरपूरा इव ॥ १ ॥
वृषभं त्रिभुवनपतिशतवन्द्यं, मन्दरगिरिमिव धीरमनिन्द्यम्।
वन्दे मनसिजगजमृगराजं, राजिततनुमजितं जिनराजम् ॥ २ ॥
संभवदुज्ज्वलगुणमहिमानं, संभवजिनपतिमप्रतिमानम्।
अभिनन्दनमानन्दितलोकं, विद्यालोकितलोकालोकम् ॥ ३ ॥
सुमतिं शमितानियसमुदीयं, निर्दलिताखिलकर्मसमूहम्।
वन्दे तं पद्मप्रभजिनदेवं देवासुरनरकृतसेवम् ॥ ४ ॥
सेवकमुनिजनसुरतरुपार्श्वं, प्रणमाम्यर्चित तं जिनपार्श्वम्।
त्रिभुवनजननयनोत्पलचन्द्रं, चन्द्रप्रभमपवर्जितचन्द्रम् ॥ ५ ॥
सुविधिं विधुधवलोज्ज्वलकीर्तिं, त्रिभुवनजनपतिकीर्तितमूर्तिम्।
भूतलपतिनुतशीतलनाथं, ध्यानमहामलहुतरतिनाथम् ॥ ६ ॥

स्पष्टानन्तचतुष्टयनिलयं, श्रेयो जिनपतिमपगतविलयम् ।
श्रीवसुपूज्यसुतं नुतपादं, भव्यजनप्रियदिव्यनिनादम् ॥ ७ ॥
कोमलकमलदलायतनेत्रं, विमल केवलसंस्थक्षेत्रम् ।
निर्जितकन्तुमनन्तजिनेशं, वन्दे मुक्तिवधूपरमेशम् ॥ ८ ॥
धर्मं निर्मलशर्म्मापन्नं, धर्मपरायणजनताशरणम् ।
शान्तिं शान्तिकरं जनतायाः, शान्तिभरक्रमकमलनतायाः ॥ ९ ॥
कुन्थुं गुणमणिरत्नकरण्डं, संसाराम्बुधितरणतरण्डम् ।
अमरीनेत्रचकोरीचन्द्रं, भुवि परमं पदविनुतमहेन्द्रम् ॥ १० ॥
उद्धतमोहमहाभटमल्लं, मल्लिं फुल्लसुरेतिमल्लम् ।
सुव्रतमपगतदोषनिकायं, चरणाम्बुजनुतदेवनिकायम् ॥ ११ ॥
नौमि नमिं गुणरत्नसमुद्रं, योगिनिरूपितयोगसमुद्रम् ।
नीलश्यामलकोमलगात्रं, नेमिस्वामिनमेनोदात्रम् ॥ १२ ॥
फणिफणमण्डपमण्डितदेहं, पार्श्वं निजहितगतसन्देहम् ।
वीरमपारचरित्रपवित्रं, कर्ममहीरुहमूललवित्रम् ॥ १३ ॥
संसाराप्रतिमप्रतिबोधं, परिनिष्क्रमण केवलबोधम् ।
परिनिर्वृतिसुखबोधितबोधं, सारासारविचारविबोधम् ॥ १४ ॥
वन्दे मन्दरमस्तकपीठे, कृतजन्माभिषवं नुतपाठे ।
दर्शनान्तविलब्धिविकरणं, केवलबोधामृतसुखकरणम् ॥ १५ ॥

अमरगुणनिबद्धामर्हतां माघनन्दि—
व्रतिरचितसुवर्णानेकपुष्पव्रजानाम् ।
स भवति जयमालां यो विधत्ते स्वकण्ठे—
प्रियपदसुमरश्रीमोक्षलक्ष्मीवधूनाम् ॥ १६ ॥

इन श्लोकोंमेंसे एक आदिका और एक अन्तका इस प्रकार दो श्लोक ऐसे हैं जो शेष १४ श्लोकोंसे समानता नहीं रखते हैं इनमेंसे भी अन्तके श्लोकके द्वितीय और चतुर्थ पदका तो अन्त्यानुप्रास मिल ही जाता है नहीं तो शेष सभी श्लोकोंके छन्द और प्रत्येक पदके अन्त्यानुप्रास अलंकारको देख कर यह उपर्युक्त बात भले प्रकार सिद्ध हो जाती है। तथा हमने, अपने, एक संगीत-प्रवीण मित्रको भी ये श्लोक, परीक्षा करनेकेलिये दिये थे तो उनकी भी यही सम्मति स्थिर हुई कि "ये श्लोक घड़ेकी थपड़ीपर ठीकमठीक बैठते हैं।"

मंगलाचरणके श्लोकोंका परिचय ।

इस निष्पक्षताके संसारमें भूमंडलके सभी विद्वानोंके कानों तक यह यथार्थ बात, भलीभांति पहुंच चुकी है कि "जैनधर्म" संसारके प्राचीन धर्मोंमेंसे एक धर्म है । और इसके न्याय, व्याकरण, सिद्धान्त, काव्य, कोषादि साहित्य किसीसे भी किसी प्रकारसे कम नहीं है ।

यह बात दूसरी है कि इस धर्मके ऊपर ऐसी २ असामान्य आपत्तियां आई हों कि जिनसे यही एक ऐसा प्रबल धर्म था जो संसारमें अभी तक आपना अस्तित्व शेष रख सका ।

सब आपत्तियोंमेंसे सबसे बड़ी आपत्ति इसकेलिये इसका "साहित्य नाश" आई कि जिसका साहित्य, जहाजोंके जहाजों समुद्रोंमें डुबाया गया ; महीनों, जिसके ग्रन्थोंकी अग्निसे, एक सैनादलकी रसोई बनती रही, पाठक समझ सकते हैं कि यह किस प्रकारकी साक्षात्प्रलयस्वरूप आपत्ति है और इससे क्या कुछ शेष रह सका है !

तौभी इसका लक्षांश साहित्य, अब भी भगवान्‌की कृपासे जो कुछ शेष रह गया है वही जगत्‌के प्रबल विद्वानोंके मानमर्दनकेलिये बस है ।

पाठक, इसको, हमारी गर्वोक्ति न समझ कर इसी किरणके प्रारम्भमें दिये हुये मंगलाचरणके दो श्लोकोंपर पुनः एकबार दृष्टिपात करें ।

इन दूसरे श्लोकके विषयमें, एक प्राचीन भंडारके ग्रन्थमें यह कथा लिखी हुई है :—

एक समय "श्रीजिनेन्द्रभूषण" भट्टारक महाराज, अनेक तीर्थंकर-निर्माण-भूमि अतएव अत्यन्त पवित्र "श्रीसम्मेदशिखर" की यात्रा करनेकेलिये, दक्षिण देशसे आ रहे थे । मार्गमें जब काशी आये तो ब्राह्मणोंने इनकी पालकी आनेसे रोकी कि ये "जैनगुरु" हैं । उस समय आप अपने मंत्रबलके प्रभावसे, बिना कहारोंकी सहायताके ही, अपनी पालकीको काशीके अन्दर अन्तरीक्ष ले गये । तब तो ब्राह्मण

लोग बड़े घबराये और कहने लगे कि "शास्त्रार्थ करो"। इसके उत्तरमें आपने कहा कि "इस समय तो हम यात्राको जा रहे हैं वहांसे लौट कर आपसे शास्त्रार्थ करेंगे तब तक आप, इस श्लोकका अर्थ विचार रखिये" इतना कह यहांसे रवाना हुये और आप शिखरजी पहुंचे। वहां आपने एक बड़ी धर्मशाला बनवाई जो कि अब भी "उपरेली कोठी" के नामसे प्रसिद्ध और विद्यमान है।

वहांसे लौटते समय आप, अपनी प्रतिज्ञानुसार फिर काशी आये। उनका आगमन सुन अबकी बार आपकी पालकी स्वयं काशीनरेशने ही रुकवाई। लेकिन क्या ऋषियोंकी पालकी राजा रोक सके हैं? अबकी बार भी पहिलेकी भांति आप ठेठ राजसभामें ही उतरे और उन विद्वानोंसे अपने पूर्वके श्लोकका अर्थ पूछने लगे तब तो सबने दांतोंतले अंगुली दबाई। लेकिन क्या हो सका था?। बाद शास्त्रार्थ भी हुआ और उसमें आपने विजय प्राप्त की।

वहांसे चल कर आप बटेश्वर पहुंचे। वहां आपने जमुनाके किनारे एक विशाल जैनमन्दिर निर्माण करवाया जो कि इस समय भी उनकी कीर्तिका गान कर रहा है।

एक हर्षसमाचार, हम अपने पाठकोंको यह भी सुनाये देते हैं कि "भवन" की ओरसे प्रकाशनार्थ, हमें यह एक सूचना मिली है कि अब भी यदि कोई विद्वान् महाशय इन दोनों ही श्लोकोंका अर्थ, व्याकरण, और कोषादिकी युक्तियां सहित, दो मासके अन्दर २, हमारे पास भेजेंगे उनको पारितोषिकमें २५०) रु० दिये जांयगे। और नहीं तो, "भवन" को, प्राचीन साहित्यकी अन्वेषणामें मिली हुई उपर्युक्त दोनों श्लोकोंकी टीकाओंसे उनका अर्थ "भास्कर" की किसी किरणमें उद्धृत किया जायगा।

उनमेंसे पहिला श्लोक और उसकी टीका 'मंजुसूर' या 'सूरचन्द्र' आचार्यकी है जो कि "फलहिंपुर" के पार्श्वनाथके मन्दिरमें बनाई गई है। (इस समय मारवाड़में एक 'फलौदी' नामका ग्राम है और वहां एक पार्श्वनाथका मन्दिर भी है तथा फलहिंपुर शब्दका फलौदी नाममें परिवर्तन होना भी संभव है) अतः मालूम पड़ता है कि यह श्लोक टीका इसी

फलौदी * ग्रामके पार्श्वनाथके मन्दिरमें बनाई गई हैं। यह प्रति बहुत प्राचीन है।

और दूसरे स्रग्धराछन्दकी टीका, उसी प्राचीन भंडारकी संभाल करते हुये मिली है जिसके एक ग्रन्थके आधारपर ऊपरकी कथा लिखी गई है।

आवश्यकता।

आवश्यकताने संसारमें कैसे २ परिवर्त्तन कराये हैं! इसके उदाहरण—भारतीय साहित्य, इतिहास, दर्शनशास्त्रमें अनेक पाये जा सकते हैं।

इसी आवश्यकताके अनुसार सैद्धान्तिक और सामाजिक विचारोंमें परिवर्तन, कब २ और कैसा २ हुआ? तथा उस परिवर्त्तनके मूल कारण क्या थे? इन बातोंका अन्वेषण करना ही सच्चा इतिहास कहलाता है।

हमारे जैनग्रन्थोंमें इस आवश्यकताकी पूर्तिकेलिये हमारे परमपूज्य आचार्य्योंने अनेक नवीन २ विषयोंका समावेश किया है कि जिनके देखनेसे हमें इस बातका पता लगता है कि उस समय हमारी सामाजिक अवस्था कैसी थी।

इस विषयका एक प्रकाशमान उदाहरण, हम, पाठकोंके सामने रखना चाहते हैं।

श्रीज्ञानार्णव नामक महाग्रन्थके रचयिता श्रीशुभचन्द्राचार्य्यजीसे प्रायः सारी जैनसमाज परिचित है। आपने एक स्थानपर महाव्रतोंका वर्णन किया है। उसके प्रारम्भमें चारित्रका लक्षण प्रतिपादन करके यह बात लिखी है कि आदिनाथस्वामी आदि तीर्थंकरोंने चारित्रके सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात

* नोट—इस ग्रामको स्टेशन जे० बी० आर० के मेडतारोडके नामसे प्रसिद्ध है।

इस प्रकार पांच भेद किये हैं और श्रीमहावीरस्वामीने पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति, इस प्रकार चारित्रके तेरह भेद किये हैं अर्थात् यह तेरह प्रकारका चारित्र श्रीमहावीरस्वामीके समयसे चला है इसके पहिले सामायिक आदि पांच प्रकारका ही चारित्र था। यथा :—

सामायिकादिभेदेन पञ्चधा परिकीर्तितम्।
ऋषभादिजिनैः पूर्वं चारित्रं सप्रपञ्चकम् ॥ १ ॥
पञ्चमहाव्रतमूलं समितिप्रसरं नितान्तमनवद्यम्।
गुप्तिफलभारनम्रं सन्मतिना कीर्तितं वृत्तम् ॥

(छपा हुआ ज्ञानार्णव पृष्ठ १०९)

स्वर्गीय प० जयचन्द्रजी कृत भाषा टीका।

"यह चारित्र है सो पूर्वैं, ऋषभदेवतैं लगाय सर्व तीर्थंकरनिनैं सामायिक आदि भेद करि पञ्च प्रकार बिस्तारि करि कह्या है ते सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात ऐसें पांच प्रकार है ॥ १ ॥ बहुरि सोही चारित्र श्रीवर्धमान नामा अन्तम तीर्थंकरनैं कह्या है पांच महाव्रत है मूल जाका, बहुरि समिति है प्रसर फैलना जाका, बहुरि अतिशय करि निर्दोष है, बहुरि गुप्ति रूप फलके भार करि नम्रीभूत है (भावार्थ) चारित्र तेरा प्रकार है सो वृक्षकी उपमा लिए है। पञ्च महाव्रत तौ जाकैं जड़ है अर पांच समिति जाका बिस्तार है तीन गुप्ति जाका फल है"

अगर हम उपर्युक्त कथनको ऐतिहासिकदृष्टिसे देखैं तो हमें इसके गर्भमें यह बात स्पष्ट झलकती है कि श्रीमहावीरस्वामीके पहिले हिंसा आदि पापोंको व्रतरूपसे (विशेष रीतिसे) निरूपण करनेकी आवश्यकता नहीं थी क्योंकि आजसे २५७० वर्ष पहिले हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रहमें अत्यन्त गृद्धता आदि पापोंने स्वर्गमयी इस भारतभूमिको कलंकित नहीं किया था, * बादमें इनका प्रचार देख कर श्रीमहावीरस्वामीने इनके विरोधी व्रत, समिति और गुप्ति रूपी चारित्रका निरूपण किया।

---

* नोट—इसके और भी अनेक उदाहरण मिल सकते हैं जैसे देखो इसी किरणके "चन्द्रगुप्तका संक्षिप्त शासन" शीर्षक लेखमें २८वें पृष्ठपर यहांकी चोरीके विषयमें एक विदेशीय व्यक्तिकी सम्मति। सम्पादक।

अहिंसानुसार आचरण कहां है ?

इस कुछ २ विचारस्वातन्त्र्यके संसारमें, भारतकी प्राचीन और नवीन अवस्थाके ऊपर गहरा विचार करनेवाले किसी भी व्यक्तिको इस बातका सन्देह शेष न रहा होगा कि जैन, बौद्ध और वैदिक ये तीनों ही धर्म, भारतके पुरातन धर्म हैं क्योंकि यहांपर इनके चिरकालीन अस्तित्वकी सामग्री, बहुत कुछ पायी जाती है।

बौद्धधर्म यद्यपि इस समय अपनी जन्मभूमि माताके गोदमें नहीं खेल रहा है तथापि, वह अपने सब अंगोपांगसहित जीता जागता अन्यत्र विद्यमान है। अस्तु। कहनेका अभिप्राय यह है कि इस समय उसके यहां न होनेके कारण हमें उसके आचारविचारोंसे भलीभांति परिचय नहीं इसलिये इसके विषयमें हम कुछ नहीं कह सकते किन्तु जैन और वैदिक धर्मसे तो हमारा ही क्या, संसारभरका परिचय होगा।

ये दो धर्म, एकदेशीय होनेके कारण इनके आचारविचार तथा कुछ सिद्धान्तके भी मोटे २ अंश परस्पर मिलते जुलतेसे मालूम देते हैं। जैसेः—गायत्री, आचमन, तर्पण, मूर्तिपूजन आदि क्रियायें जैनधर्मके यहां हैं और वैदिकधर्मके यहां भी हैं। यह बात अलग है कि जैन इनका स्वरूप कुछदूसरा मानते हों और वैदिक, कुछदूसरा; जैन इनके आचरणका उद्देश्य, कुछऔर निरूपण करते हों और वैदिक, कुछऔर। इसी तरह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र इन चार वर्णोंकी अस्ति तो दोनों ही, भले प्रकार स्वीकार करते हैं, हां अधिकार, कोई, किसी वर्णको कितना ही देता है और कोई कितना। यही हाल स्वर्ग, नर्क, मोक्ष और ईश्वर आदि सैद्धान्तिक विषयोंका है। यहां तक कि इनके रामचन्द्र, भीम आदिक आदर्श महात्मा भी प्रायः परस्पर मिलते ही हैं। इनका चरित्र तथा सम्बन्ध, दोनोंके यहां ज्योंका त्यों है, दो चार घटनायें केवल ऐसी होंगी जो कि शायद परस्परमें न मिल सकें, यह बात तो अवश्य है कि इनके चरित्र और जीवनघटनाओंको लिखते समय,

किसीके आचार्यका किसी तत्वके ऊपर लक्ष्य रहा है और किसीके आचार्यका किसी तत्वके ऊपर। अस्तु।

इन्हीं सब बातोंके देखनेसे हमारे हृदयमें यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई थी कि जैनधर्ममें अहिंसाके ऊपर अत्यन्त ध्यान रक्खा गया है जहां देखो वहां यही विषय भरा पड़ा है यहां तक कि वृक्षादिकोंमें भी जीवोंका अस्तित्व, बड़े उच्चस्वरसे प्रमाणित किया है, तो फिर देखना चाहिये कि इस विषयमें वैदिकधर्म, कहां तक क्या कहता है। अवश्य; इसके इस विषयमें जैनधर्मकी हिंसाके सदृश, कुछनकुछ, सूक्ष्म-सिद्धान्त होने चाहिये।

लेकिन वैदिकग्रन्थोंमें इस उपर्युक्त प्रश्नका हल करना कष्टसाध्य पाया गया और यह कार्य एक अत्यन्त-सूक्ष्म अन्वेषीके परिश्रमका फल मालूम हुआ। हमें तभीसे विश्वास हो गया कि वैदिकधर्ममें अत्यन्त सूक्ष्महिंसाके विषयमें ध्यान बिलकुल नहीं दिया गया, उलटा यज्ञमें पशुवध तक और पाया गया।

परन्तु आज हम प्रोफेसर बालकृष्ण (कांगणी) एम्० ए० महोदयको हृदयसे धन्यवाद देते हैं कि जिन्होंने अपनी सूक्ष्म गवेषणाके बलसे, दिसम्बर सन् १९१४ की 'सरस्वती' में "वृक्षोंमें जीव" नामका एक छोटासा, परन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित कर, हमारा उपर्युक्त भ्रम दूर किया।

यद्यपि इस विषयके ऊपर बहुत दिनोंसे छानबीन हो रही है और कई बंगाली विद्वानोंने इसके ऊपर बड़े २ विचार प्रगट किये हैं तथापि, यह प्रोफेसर साहबका लेख, वेदानुयायी प्राचीन २ ऋषियोंके मतोंको ढूंढ निकालनेके कारण बड़े महत्वका है।

लेकिन अभी यह बात और शेष है कि "जैनधर्म, अहिंसाके विषयमें सबसे बढ़ा चढ़ा है" क्योंकि एक वृक्षोंकी ही बात क्या, किसी २ पृथिवी, जल, अग्नि और वायु तकमें भी इसने जीव सिद्ध किये हैं। तिसपर भी इतना विपुल और सूक्ष्म साहित्य है कि कौनसे २ वनस्पतिमें कितने २ जीव हैं, किस २ प्रकारकी पृथिवी, जल, अग्नि और वायुमें कितनी २ संख्यामें जीव हैं; कैसे २ पापोंके करनेसे जीव किन २ गतियोंमें जाता है; संसारके कौनसे २ भागपर या कैसे २ स्थलपर, किस २ प्रकारके जीवोंका, कितनी २ संख्यामें

अस्तित्व पाया जा सकता है इत्यादि विषयोंसे बड़ी २ संख्याओंमें अनेकों ग्रन्थ भरे पड़े हैं।

प्रोफेसर साहबको एक बात बड़ी अनौखी मिली है कि वृक्षोंके नाक, कान, और आंखें भी हैं लेकिन इस बातके सिद्ध करनेके हेतु, प्रायः पोच हैं। अस्तु, यह लेख इस उद्देश्यसे नहीं लिखा जाता है कि किसीका खण्डन करे किन्तु हम इस विषयपर फिर कभी अपने विचार प्रगट करेंगे।

अन्तमें आपका एक प्रश्न बड़े महत्वका है कि वनस्पति आदिमें जब जीव हैं और इनके ऊपर हम बड़ी निर्दयताका वर्ताव करते हैं तो फिर उसकी हिंसाका पाप क्या हमें नहीं लगेगा ?

तो फिर हम सभी "अहिंसा परमो धर्मः" के माननेवालोंको इस विषयपर बड़ी सावधानीसे विचार कर यह निश्चय करना चाहिये कि "हमारा आचरण किस प्रकारसे हो ?"

वास्तवमें इस प्रश्नके उत्तरमें जो कुछ कहा जा सक्ता है वह संसारभर-के आचरणमें सर्वथा परिवर्तन करानेवाली वस्तु है अतः यह एक अद्वि-तीय प्रश्न है।

इस विषयमें हम एक बड़े हर्षकी बात यह सुनाते हैं कि यह जो उपर्युक्त प्रश्न, संसारने आज अपने पवित्र कानोंमें सुना है। बस इसी प्रश्नका उत्तर ऐसे विस्तारके साथ, जैनाचार्य, हजारों वर्ष पहिले अपने साहित्यमें लिख कर रख गये हैं कि उस विस्तारका अर्थ यदि हम यह करें कि सबका सब जैनधर्म एक इसी प्रश्नके उत्तरसे भरा पड़ा है तो कुछ अत्युक्ति न होगी।

तिसपर भी उसके सिद्धान्त, इतनी अद्वितीयतासे लिखे गये हैं कि उसके अनुसार आचरण करनेपर भी व्यक्ति, रणाङ्गणमें युद्ध कर सक्ता है किसी प्रकारका विरोध नहीं आ सकता। यद्यपि यह एक बात ऐसी है कि सुननेवालोंको उसी समय आश्चर्यमें डाल देगी, परन्तु इसके साहित्यसागर-में जब सज्जन, डूबकी लगा कर, इसकी तहपर पहुंचेंगे तब उनको इसकी अगाधताका परिचय मिलेगा।

जैनाचार्य इस प्रश्नका उत्तर केवल अपने साहित्यमें लिख कर ही नहीं रख गये किन्तु उसके अनुसार स्वयं आचरण करके संसारमें अपना आदर्श

बतला गये हैं। जिस किसीको अभिलाषा हो वे उनके आचरण-विधियों-(क्रियाचरणों) को इनके ग्रन्थोंसे अवलोकन करें।

मुझे अच्छी तरह विश्वास है कि उन्होंने प्रत्येक क्रियायोंका उत्कृष्ट जघन्य और भली बुरीकी अपेक्षासे जो निर्णय किया है, वह केवल एक अहिंसा-हिंसाके ही आधारपर।

सम्पादकीय टिप्पणियां।

यह बात प्रायः सर्वमान्य हो चुकी है कि इतिहास और समाजका एक गूढ़तर सम्बन्ध है क्योंकि इतिहास भी गत समाजकी व्यवस्थाका एक चित्र है। यही कारण है कि किसी समाजकी भावी उन्नति, उसके इतिहास-पर्य्यालोचन तथा इतिहास भण्डारकी परिपूर्णता-पर निर्भर है। अस्तु यदि हमारे जैन इतिहासकी ओर देखा जाय तो सहसा यही कहना पड़ेगा कि यह कई शताब्दियोंसे विचारा अनाथ हो कर अस्तव्यस्त हो रहा है।

जैनियोंको इतिहासकी आवश्यकता।

साधारणतया प्रत्येक समाजको चार भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। जैसेः—सैद्धान्तिक, साहित्यिक, सामाजिक और ऐतिहासिक। यद्यपि जैनधर्मावलम्बियोंका साहित्यिक और सैद्धान्तिक साम्राज्य सारे साहित्य समूहमें अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शित कर सकता है तो भी हम यह नहीं कह सकते कि जैनियोंके सामाजिक और ऐतिहासिक गौरवको कहां स्थान दिया जायगा। एक समय जब कि यह जैनधर्म्म प्रायः सारे संसारका राष्ट्रधर्म्म हो चुका था, उस समय इसकी सैद्धान्तिक गगनभेदिनी ध्वनिने सारे ससारको अहिंसामय कर दिया था और जिसके आचार्य्योंकी स्याद्वादिनी-सिंहगर्जनासे क्षणिकवादी बौद्धोंको भी अहिंसाकी पवित्र रटन लग

गई थी सो हाय ! ! ! उसी धर्म्मका समाज और इतिहास आज अगाध सागरमें विलीन प्राय हो चला है। मालूम ही नहीं होता कि जैनियोंकी सर्वग्रासकारी इस मोहनिद्राका कब अन्त होगा।

हजारों वर्ष हुये कि हमारे महर्षियोंने हमारे कल्याणार्थ मौखिक-विद्याको ग्रन्थरचनामें परिणत कर दिया था किन्तु हम लोग उनके ऐसे कुपुत्र सन्तान हुये कि अपने उपकारियोंके समय और उनके जीवनकी सामान्य घटनायें भी स्मरण न रख सके। कृतघ्नता, इतिहासविमुखता तथा मिथ्यादर्पान्धताका घोर कलङ्क क्या कभी जैनसमाज अपने ऊपरसे हटायेगी ?

हम इस बातको साभिमान कह सकते हैं कि जब तक जैनेतिहासका पूर्णरूपसे उद्धार न हो जायगा तब तक भारतीयेतिहासकी पूर्णता होनी तो अलग रहे उसके एक अङ्गकी भी पूर्ति नहीं हो सकती क्योंकि भारतवर्षके इतिहासके साथ जैनेतिहासका बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है।

यदि किसी जैनीसे पूछा जाय कि महाराष्ट्राधिपति शिवाजीके समयमें दिल्लीका सम्राट् कौन था ? तो शायद वे इसका उत्तर देदें किन्तु उनसे यदि यह पूछा जाय कि श्री१००८ महावीरस्वामीने जब भारतवर्षमें धर्म्मका प्रचार किया था तो उस समय मगधदेशमें कौन राज्य करता था ? तो मौनके अतिरिक्त उन्हें दूसरी शरण नहीं मिलेगी, अकबरका समय लोग भले ही कह दें किन्तु जिनसेनका समय अथवा उनकी जीवन-घटनाका कहना उनकेलिये आकाशको तारायें गिननेकासा हो जायगा ताजमहलकी ऐतिहासिक बात तो शायद कोयी जैनी कह दें किन्तु खण्ड-गिरिकी अगणित जैनगुफायें तथा एजन्टा और एलूराकी जगत्प्रसिद्ध गुफाएँ कब बनी थीं ? इस बातका उत्तर देना उनकेलिये "आकाश पुष्पवत्" हो जायगा।

जैनियोंकी इतिहाससे ऐसी उदासीनता और तद्विषयक ऐसी हृदय-शून्यता न मालूम कब इनका पिण्ड छोड़ेगी ! सच मुच हमें तो अपने भाइयों और विशेष कर जैनपण्डितोंकी इतिहासानभिज्ञता देख कर बड़ा ही दुःख होता है क्योंकि इसकी मात्रा, लोगोंकी यहां तक बढ़ी है कि कि जैन शायद ही कभी अकबर और अशोकको समकालीनतामें सन्देह करें ?

इतिहास न जाननेसे समाजकी जो हानि हो रही है वह तो होती है किन्तु उसमें भी और अधिक हानि उनकी इससे होती है कि जो कभी कभी, कुछ इतिहासप्रेमी महोदय, अपने इतिहास तथा साहित्यके गौरवकी ओर ध्यान न देते हुये, एकाध ऊटपटांग बात कह बैठते हैं। हमारी समझमें तो, उसकी अपेक्षा उन्हें मौनावलम्बन करना ही श्रेयस्कर है।

* * * * *

वदान्यता। १

राय बहादुर श्रीमान् सेठ त्रिलोकचन्द्र कल्याणमलजीने जैनजातिमें पहिले पहिल दो लाख रुपये दान देकर अपनी वदान्यता प्रकटित करनेके साथ २ विद्यामन्दिरका सुवर्णमय कपाटका उद्घाटन कर दिया है। आपके इस सद्दानद्रव्यसे इन्दोरमें ही एक आदर्श "जैन हाईस्कूल" खोला गया है। आशा है कि अन्यान्य जैन धनाढ्य भी इस अनुकरणीय दानका अनुकरण करेंगे।

* * * * *

वदान्यता। २

वदान्यताके प्राज्वल आदर्श इन्दोरके प्रख्यात सेठ श्रीमान् हुकमचन्द्रजीने अपने चार लाख दानकी रकम, निम्नलिखित संस्थाओंमें विभक्त करनेकेलिये निर्द्धारित की है :—

(१) तुकोगञ्ज-इन्दोरके उदासीनाश्रमको १००००)

(२) स्वरूपचन्द्र हुकमचन्द्र दि० जैन महाविद्यालयके मकानकेलिये ६५०००)

(३) उपर्युक्त विद्यालयको चलानेकेलिये २०००००)

(४) 'कंचनबाई दि० जै० श्राविकाश्रम' की इमारतकेलिये १५०००)

(५) उल्लिखित आश्रम तथा उसके साथ एक औषधालयको चलानेके लिये ८५०००)

(५) मक्सियांकी धर्म्मशालाको २५०००)



PANDIT ARJUN LAL SETHI B.A.
DIRECTOR ALL-INDIA JAINA EDUCATIONAL SOCIETY

Engraved & Printed by Calcutta Phototype Co.

सेठजीका यह दान, जैनियोंमें आदर्श दान हुआ है। आशा है कि अन्यान्य दानी महोदय भी ऐसी ही उपयोगी संस्थाओंमें जी खोल कर दान देंगे।

* * * * *

अब दिन आ रहा है।

"निउ इण्डिया" नामक बारहीं सितम्बर १९१४ के दैनिकपत्रमें मिस एनी वेसेन्टने लिखा है कि अली भाई नामक एक प्रसिद्ध खोजा मुसलमानने राजकोटमें जैन-व्रत धारण किया है। राजकोट प्रान्तमें इनके इस जैनधार्मिक सन्न्यासजीवनकेलिये चारों ओर बड़ी प्रतिष्ठा हो रही है। इन्होंने अपनी यह भी इच्छा प्रकटित की है कि मेरे मरनेपर मेरी अन्तेष्टि-क्रिया जैनधर्म्मानुसार होनी चाहिये। हर्षको बात है कि इस बातको जैनियोंने सहर्ष स्वीकार किया है। शायद जैनियोंकी धार्म्मिक जागृतिका अब दिन आ रहा है?

* * * * *

यही भ्रातृभाव है।

अबकी वार श्रीपावापुरजीके निर्वाणोत्सवका मेला बहुत ही विरल हुआ। निर्वाणोत्सवमें दिगम्बरियोंकी ओरसे जो रथयात्रा हुयी थी उसमें श्वेताम्बर भाई श्रीमान् पूर्णचन्द्रजी नाहर एम्० ए० बी० एल्० रईस मकसूदाबाद और श्रीमान् भाई लाभचन्द्रजी जौहरी और मुकीम कलकत्ता आदि कयी प्रतिष्ठित सज्जन सम्मिलित हुये थे। दूसरे दिन दिगम्बर लोग भी श्वेताम्बरीय-रथोत्सव तथा पूजा आदिमें सहर्ष समवेत हुये थे। इस दृश्यको देख कर दोनों समाजोंमें आनन्दके सोते बहे। बल्कि पं० तुलसीरामजी काव्यतीर्थने "दोनों सम्प्रदायोंमें ऐक्य होनेसे लाभ तथा अनैक्यसे हानि" के ऊपर एक अच्छा प्रभावशाली व्याख्यान दिया। व्याख्यानका असर भी लोगोंके ऊपर अच्छा पड़ा। सचमुच इस जागरूक समयमें दोनों सम्प्रदायोंको, तीर्थस्थानादिका महान् अशुभकारक वैरविरोधको छोड़ कर आपसमें भ्रातृभाव संस्थापित कर अपनी

कार्य्यकारिणी शक्ति तथा द्रव्यको जैनधर्म्मके प्रचार तथा जिनवाणी माताके उद्धारमें ही लगाना चाहिये क्योंकि इसके बिना जैनधर्म्मकी बड़ी भारी हानि होनेकी सम्भावना दीख पड़ती है। जो हो अबकी बारके पावापुरमें दोनों सम्प्रदायोंके पारस्परिक धार्म्मिक कृत्यमें, वह, एकत्रित होना सूचित किये देता था कि यही भ्रातृभाव है।

* * * * *

आश्चर्य।

जैनजाति सदासे शान्तिसेवी, राजभक्त तथा सरकारकी कृपापात्र बनी चली जाती है। फिर न मालूम क्यों जैनियोंके धार्मिक संस्थाके एक नेता, अहिंसाधर्मके यत्परोनास्ति भक्त पं० अर्जुनलालजी सेठी बी० ए० दिल्लीके षड्यन्त्रमें सम्मिलित समझे गये और सन्देह किया गया कि शायद आरेके "महन्तका खून" वाले मामलेमें भी आपका कुछ संबन्ध हो लेकिन हर्ष है कि आप दोनों मामलोंसे सर्वथा निर्दोषी समझे गये।

परन्तु न जाने क्यों, इतना होनेपर भी जयपुर रियासतने एक यह आज्ञापत्र निकाल कर कि "अर्जुनलालजी सेठीका संबन्ध राजनीतिक षड्यन्त्रोंसे गहरा है और उसकी यह कारवाई रियासतके नियमके विरुद्ध है। इस लिये ऐसे पुरुषका स्वतंन्त्र रखना भयंकर है। इसलिये पांच साल तक वा जब तक दूसरा हुक्म न दिया जाय, अर्जुनलालजीको हिरासतमें रक्खा जाय" उन्हें जेलकी आज्ञा दी है।

हमारे न्यायप्रिय ब्रिटिशसरकारके राज्यमें एक निर्दोष व्यक्तिको, बिना किसी दोषारोपणके, ऐसी आज्ञाका दे देना कहां तक न्यायसंगत हो सक्ता है यह हम नहीं कह सक्ते। सुना जाता है कि इस आज्ञाने जैनसमाजमें बड़ी खलबली उत्पन्न कर दी है और यह भी सुना गया है कि भारतवर्षके अनेक स्थानोंको अनेक जैनसभाओंने इस आज्ञापर शोक प्रकाश करनेकेलिये और सच्चे हितैषी पण्डितजीके उद्धारकेलिये श्रीमान् वाइसरायको सेवामें कुछ निवेदन भी किया है। देखना चाहिये इसका क्या फल होता है। हमें यह देख कर किसी कविकी यह उक्ति हठात् स्मरण हो आती है.—

ज्यों प्रीतिवश निजबल विचारे,-बिन स्ववत्स बचाइवे ।
अतिदीन हरिनी सिंहके, डरपे न सनमुख जाइवे ॥

आशा है कि इस अविश्वस्त अपराधसे इनका अवश्य छुटकारा होगा ।

* * * * *

यह वर्ष जैनसंसारकेलिये बड़ा ही अशुभकारकसा प्रतीत हुआ क्योंकि

शोककी उत्तुङ्ग तरङ्ग ।

जिन निःस्वार्थ धर्म्मात्मा महोदयोंके ऊपर जैनियोंकी धार्म्मिक, सामाजिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक तथा विद्यासम्बन्धिनी उन्नतियां निर्भर थीं वे आज इस संसारमें नहीं हैं ।

निम्नलिखित स्वर्गवासी महोदयोंकी "श्रीजैनसिद्धान्तभवन आरा" के साथ पूर्ण सहानुभूति रहती थी । अतः शोकशीर्णमानस हो कर यह भवन इनके परिवारवर्गों के साथ आन्तरिक समवेदना प्रकटित करता हुआ इनकी आत्माकी सद्गतिकेलिये श्री १०८ जिनवाणी मातासे अविरत प्रार्थना करता है ।

(१) दानवीर जैनकुलभूषण श्रीमान् सेठ माणिकचन्दजी जे०पी०, मुम्बई ।
(२) जैनजातिभूषण डिप्टी चम्पतरायजी, कानपुर
(३) श्रीमान सेठ परमेष्ठीदासजी, कलकत्ता
(४) श्रीमान् बाबू धन्नूलालजी अटर्नी, कलकत्ता
(५) श्रीमान बाबू मंगलचरणजी वकील, आरा

* * * *

हमारे पाठकोंके हृदयमें यह बात अवश्य बैठी हुयी होगी कि भास्कर

विलम्बभ्रम-निवारण ।

की यह चतुर्थ किरण देरसे निकली है बस इसी इतिहास-प्रणयन-विषयक उनके इस अनभिज्ञताजन्य भ्रमको दूर करनेकेलिये यह लेख लिखा जा रहा है ।

सबसे पहिले पाठकोंको यह बात अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि इस पत्रका जन्म, सामाजिक विषयोंको प्रकाशित करनेकेलिये या कीर्ति और द्रव्यके उपार्जनके अभिप्रायसे नहीं हुआ है ।

इसका जन्म, केवल जैनेतिहासके उद्धार या उसके प्रणयन करनेकेलिये ही हुआ है जो कि अभी तक सर्वथा निबिड़ अन्धकारमें विलुप्त है और जिसकी इस समय अत्यन्त आवश्यकता है।

ऐसे गुरुतर कार्यके सम्पादन करनेमें हमें अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है उनमेंसे स्थूल २ चारछ: कठिनाइयोंका दिग्दर्शन, हम पाठकोंको यहां करा देना उचित समझते हैं।

सबसे पहिली कठिनायी—कार्यकर्त्ताओंकी त्रुटि है। इस कार्य्यको सम्पादन करनेकेलिये ऐसे २ कितने ही विद्वानोंकी आवश्यकता है जो इतिहास विषयमें अपना सारा जीवन व्यतीत कर चुके हों और एतद्विषयके भलीभांति अनुभवी हों क्योंकि इसमें इसको आवश्यकता पड़ती है कि इस शिलालेखकी लिपि कौनसे समयकी है या इस विषयका सब विवरण और कहां २ मिल सक्ता है इत्यादि। इस प्रकारके विद्वान् हमारे पास एक भी नहीं है, हमी दो एक व्यापारी लोग इस कार्य्यको साधे हुये हैं।

दूसरे—यह विषय भी बड़ा अनोखा है, जब तक एक बात किसी प्रमाणके आधारपर तैयार करते हैं तब तक दूसरा प्रमाण ऐसा मिलता है कि जिससें हमें यह बनाबनाया और कापी कियाकराया मेटर समूल रद्द कर देना पड़ता है और जब तक दूसरा तैयार करते हैं कि इतनेमें एक शिलालेख और मिला जो कि कुछऔर ही कहता है तो फिर उसके अनुसार हमें काटछांट करनी पड़ती है इस तरह दो वार नहीं चार वार नहीं वोसियों वार एक ही लेखमें रद्दोबदल करनी पड़ती है।

तीसरी बात—आप समझते हैं कि इस इतिहास विषयक हमारे पूर्वजोंकी सामग्री कितनी अल्प मिलती है! कहीं दसवीस शिलालेख बड़ी कठिनाइयोंसे मिलते हैं नहीं तो ग्रन्थोंके मंगलाचरणों प्रशस्तियों और पट्टावलियोंके ही आधारपर समूचा मकान तैयार करना पड़ता है और अधिकतर तो हमें अपनी कल्पनाओंको उत्पन्न करके फिर उनका संपूर्ण ऐतिहासिक प्रमाणोंसे मिलान करना पड़ता है। और, भंडारोंसे ग्रन्थ मिलनेकी तो सम्भावना ही क्या—उनका सूचीपत्र बनाना भी जैनसमाजमें कितना कष्टसाध्य कार्य है सो तो पाठक जानते ही होंगे।

चौथी बात—हमारे कार्य्यक्षेत्रका फैलाव ही कितना है ! न हमें यूरोपका ही इतिहास लिखना है और न भारतका ही, और न बौद्धोंके ही इतिहाससे मतलब है न वैदिकोंकेसे। हमें मतलब है केवल जैन-इतिहाससे।

पांचवीं बात—समयकी है। यदि हमारे पास समय हो अर्थात् हमारी आजीविका आदि इसके ही ऊपर निर्भर हो तो सो भी हो सकता है। हमें तो अपने व्यापारके ओर भी पूरा २ ध्यान रखना पड़ता है। घर-गृहस्थी भी है उसकी भी सभी प्रकारकी आपत्तियोंका सामना करना पड़ता है।

इसपर भी भास्करने कार्य कितना किया है ? इस बातका उत्तर इसी किरणके ३४वें पृष्ठपर प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मि० भिनसेण्टस्मिथके विचारसे या स्याद्वादमहाविद्यालय काशीके दशवें वार्षिकोत्सवके सभापति श्रीमान् तुकारामकृष्णजी लड्डू बी० ए०, पी० एच्० डी०, एम० आर० ए० एस०, एम्० ए० एस० बी०, जी० ओ० एस०, महाशयके व्याख्यानसे भलीभांति पता लग सक्ता है। अस्तु।

आज हमारे हाथमें एसियाटिक सोसाइटी बंगालके एक ऐतिहासिक पत्रके दो अंक हैं जिनके टाइटिलपेजपर लिखा हुआ है कि "अंक-जून सन् १९१४का ; प्रकाशित २१ अक्टूबर सन् १९१४, अंक-जौलाई और अगष्ट सन् १९१४का, प्रकाशित ९ दिसम्बर सन् १९१४"।

इसपर भी यह याद रहे कि उपर्युक्त सोसाइटीको सब तरहकी सहायता उपस्थित है:—कार्यकर्त्ता एकसे एक अद्वितीय, वे भी एक दो नहीं, अनेक ; लाखों पुस्तकें, शिलालेख तथा ताम्रपत्र आदि ऐतिहासिक वस्तुयें आवश्यकतानुसार सब जगहसे मिल सक्ती हैं क्षेत्रका भी संकोच नहीं ; बौद्ध, वैदिक, जैन, जैमिनी आदि जो विषय मिल गया वही प्रकाशित कर दिया, समयका तो अभाव होने ही क्यों चला जब कि पचासों विद्वान् केवल इसी कार्यपर नियुक्त हैं।

बस, उपर्युक्त सोसाइटी और भास्करकी कठिनायी और कार्यका मिलान कर पाठक स्वयं विचार सक्ते हैं कि भास्कर विलम्बसे निकला है या जल्दीसे।

इसपर भी, इन सब बातोंको न विचारते हुये हमारे कितने ही सहयोगियोंने कुछ टीकाटिप्पणी की है लेकिन हम उसपर ध्यान देनेमें कुछ लाभ नहीं समझते क्योंकि यदि ये टीकाटिप्पणियां किसी ऐसे अनुभवी सज्जनोंकी लिखी हुयी होतीं जिनको कि हमारासा कार्य करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ हो तो निस्सन्देह उनकी इस विषयपर की हुयी नुक्ताचीनीमें कुछ वास्तविकताका अंश समझ कर उसपर ध्यान दिया जाता लेकिन यह नुक्ताचीनी सब उन्हीं महाशयोंकी है जिनको कि केवल सामजिक पत्रोंके ही सम्पादनका या उनके पढ़नेपढ़ानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

हमने कई वार अपनी शक्तिहीनता प्रगटित कर सर्व साधारणोंसे भास्करके लेखोंकी वास्तविक भूलें, निष्पक्षभावसे प्रकाशित करनेकेलिये और लैखिक आदि अन्यान्य सहायताओंकेलिये प्रार्थना की, किन्तु बदलेमें चुटकियोंको चटचटाहट और व्यङ्गके सिवाय भास्करको कुछ भी नहीं मिला।

फिर अबकी वार भी सहृदय विद्वानों तथा इतिहासप्रेमियोंसे हमारा साञ्जलि निवेदन है कि हमारे ऐतिहासिक स्तम्भोंमें बहुतसी भूलें होनेकी सम्भावना है। इसलिये वे उनका संशोधन कर निष्पक्षभावसे प्रकटित करने तथा भवनमें भेजनेकी कृपा करें।

ऐसी अवस्थामें भी हम अपने विचारोंसे कभी विचलित नहीं हो सकते क्योंकि हम लोग "पृथ्वीराज रासो" के रचयिता श्रीकविराय चन्दवरदाईके निम्नलिखित दोहोंके अनुयायी हैं:—

"सरस काव्य रचना रचौं, खल जन सुनिन हसंत।
जैसे सिन्धुर देखि मग, स्वान स्वभाव भुसन्त॥
तौ पुनि सुजन निमित्त गुनि, रचिये तन मन फूल।
जूंका भय जिय जानिकैं, क्यों डारिये दुकूल"॥

* * * * *

गतवर्ष स्याद्वादमहाविद्यालयके वार्षिकोत्सवमें डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषण एम० ए०, पी० एच० डी० ने जो स्पीच दी थी उसका अनुवाद "जैनहितैषी"के १०वें भागके ४-५ वें अङ्कमें छपा है। अनुवादक—मुख़तार जुगुलकिशोरजी हैं।

प्रेमीजीकी उदारता।

व्याख्यानका अन्तिम भाग प्रेमीजीने अतिशयोक्तिपूर्ण तथा अनावश्यक समझ कर निकाल दिया है क्योंकि उसमें विद्याभूषणजीने जैनसंस्थाओं तथा उनके कार्यकर्त्ताओंका धन्यवादपूर्वक उल्लेख किया था। व्याख्यानके नीचे प्रेमीजीने अपनी एक सुसम्पादकीय टिप्पणी विज्ञप्ति कर दी है। वह निम्नलिखित है:—"यह विद्याभूषण महाशयके व्याख्यानका पूर्वभाग है। इसके आगे उन्होंने जैनसंस्थाओं और वर्तमान जैनकार्यकर्त्ताओंकी प्रशंसा की है वह बहुधा अतिशयोक्तिपूर्ण है इसलिये हम उसका प्रकाशित करना उचित नहीं समझते।"

बड़े शोककी बात है कि आपके जगद्व्यापक कार्यालय तथा "लेखकरत्न" उपाधिप्राप्त, जैनसाहित्यिक तथा ऐतिहासिक कार्य्यक्षेत्रके सर्वप्रसिद्ध कार्य्यकर्त्ता आप जैसे उदार विज्ञकी कुछ चर्चा ही नहीं की इसलिये वह "बहुधा अतिशयोक्तिपूर्ण" हो गया। यदि वे आपेसे बाहर हो कर आपकी प्रशंसा करते तो वह ठीक "स्वभावोक्तिपूर्ण" हो जाता।

किन्तु स्तुतिस्तोत्रसे तरस खा कर जहां किसीने जैनहितैषीकी—सचमुच प्रेमीजी "लेखकरत्न" हैं और प्रेमीजीने जैनहितैषीमें नई जीवन डाल दी है इत्यादि रोचक भरी समालोचना की, बस वहां प्रेमजीको आनन्दपरम्पराकी लड़ी बँध जाती है। और आप झट उस समालोचनाको "हमारे परिश्रम और सम्पादकताके विषयमें और लोग क्या कहते हैं" ऐसा नोट लिख कर जैनहितैषीमें प्रकाशित कर बैठते हैं। उस समय प्रेमीजीके विषयमें जो कुछ कहा जाय अर्थात् प्रेमीजी "लेखकसागर" हैं, इन्होंने भारतीय साहित्यिक कार्य्यकलापका उच्छृङ्खल प्रथाप्रवाह रोक दिया है इत्यादि २. वह सब आवश्यक तथा स्वभावोक्तिपूर्ण ज्ञात होता है। धन्य है ऐसी उदारताको !!!

* * * * *

प्रेमीजीका इतिहाससे प्रेमाधिक्य।

सरस्वती-प्रशंसित जैनहितैषीके सुयोग्य सम्पादक "लेखकरत्न" नाथूराम प्रेमीजीने स्वविरचित "विद्वद्रत्नमाला"में "जिनसेनाचार्य्य" की ऐतिहासिक घटनान्तर्गत सेनसंघका आचार्य्यक्रम दिखाते हुये "देवसेनसूरि" की दो गाथा लेकर वीरसेनके बाद पद्मनन्दी, जिनसेन, विनयसेन और गुणभद्र यह आचार्य्य-परम्परा दिखलायी है किन्तु "भास्कर" की सेनगणकी पट्टावलीमें वीरसेन, जिनसेन और गुणभद्र यह क्रम उल्लिखित है।

बस इसी कारणसे अर्थात् आपकी 'गाथा' तथा 'माला' की हांमें हां न मिलानेसे आपने "जैनहितैषी" के ९ वें भागके ९ वें अङ्कमें हास्य-जनक अकाण्डताण्डव किया है।

भास्करकी प्रथम किरणमें प्रकाशित सेनगणकी पट्टावलीमें, शब्दाडम्बर होनेके कारण आधुनिकताका और आचार्य्यके नामोंमें अक्रम होनेके कारण अविश्वस्तता तथा अतथ्यताका उसपर कलङ्क लगा कर देवसेनसूरिके वचनोंकी अपेक्षा उसे अप्रमाणिक सिद्ध किया है। इसकेलिये मुझे प्रेमीजीसे कुछ विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि ऐतिहासिक सामग्रियोंमेंसे सारी ऐतिहासिक बातें चुन लेना अथवा उन्हें ऐतिहासिकता तथा अनैतिहासिकताकी अपने हस्ताक्षरित सनदें दे देना प्रेमीजीको स्वभाव-सिद्ध है। इस सेनगणकी पट्टावलीका आधुनिक रचयिता प्रेमीजीका बड़ा ही कृतज्ञ होगा क्योंकि प्रेमीजीने इसकी भाषाकी धज्जियां नहीं उड़ा कर बल्कि दबी जीभसे कुछ प्रशंसा ही की है। किन्तु शायद प्रेमीजीने कहीं शब्दोंका घटाटोप ही आधुनिकता और अतथ्यताका एकमात्र कारण तथा लक्षण मान रक्खा हो तो शब्दोंका घटाटोप दिखानेवाले कितने ही स्वर्गीय प्राचीन कवि भी प्रेमीजीका आधुनिकता और अतथ्यताका यह नया लक्षण देखकर डर गये होंगे कि प्रेमीजीकी कहीं हमारी ओर भी वह साहित्यिक अथवा ऐतिहासिक दृष्टि न फिर जाय।

कृपा कर बतलाइये कि पट्टावलीमें आचार्य्योंकी नामावलीमें क्रमभङ्ग आपने अपनी किस ऐतिहासिक विशुद्धदृष्टिसे देखा है? यदि आपके पास इससे प्राचीन कोयी और शृङ्खलाबद्ध सेनगणकी पट्टावली

हो तो उसे प्रकाशित करनेकी उदारता दिखलावें कि हम लोग फिरसे इसका क्रम ठीक कर दें।

इतनेपर भी आपको सन्तोष नहीं हुआ इसलिये आप कहते हैं कि पट्टावलीमे और भी बहुतसी ऐसी बातें हैं, जिनसे पट्टावलीपर विश्वास नहीं किया जा सकता।

आपका कहना बहुत ठीक है किन्तु हमारी सम्मति यह है कि प्रेमीजी अपनी हृद्गत अविश्वासजनक बातोंको बहुत शीघ्र प्रकाशित करें कि जिससे इतिहासवेत्ताओंका भ्रम दूर हो जाय। और, कृपा करके यह भी लिखें कि महावीरस्वामीसे ले कर आज तककी कौनसी ऐसी बहु विश्वास-जनक ऐतिहासिक सामग्री आपके पास है कि जिससे जैन इतिहासका प्रणयन हो सके।

इसके बाद प्रेमीजीने लिखा है कि "इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार कथामें लिखा है कि वीरसेनस्वामी चित्रकूटपुरनिवासी एलाचार्य्यके पास सिद्धान्त पढ़नेकेलिये गये। कुन्दकुन्दके नामोंमें पद्मनन्दी और एलाचार्य्य एकार्थवाची हैं तदनुसार यदि एलाचार्यका ही नामान्तर पद्मनन्दी हो और वे ही वीरसेनस्वामीके बाद उनके पट्टके अधिकारी हुये हों तो कोई आश्चर्य नहीं" वास्तवमें प्रेमीजीके इस कथनको देख कर हमें यही कहना पड़ता है कि आपकी इतिहासज्ञता अद्वितीय है परन्तु आपको स्मरण रखना चाहिये कि 'भवन' या 'भास्कर' ने कोई ऐतिहासिक पाठशाला तो खोली ही नहीं है कि जो इतिहासकी वर्णमालासे ले कर आपको जिनसेन-स्वामीकी समालोचना तक पढ़ा कर तैयार करे। यदि समय आया तो यह भी हो जायगा।

महाशय! आप जिन एलाचार्य्य अपर नाम पद्मनन्दी, कुन्दकुन्द-स्वामीको वीरसेनस्वामीके समकालीन बनाना चाहते हैं वे उनसे कयी शताब्दियों पूर्व हो चुके हैं और इस सिद्धान्तको भारतीयेतिहासितत्त्व-वेताओंने आजसे बहुत वर्षों पहिले स्वीकार कर लिया है। जिसके विषयमें हम बहुतसे प्रमाण दे सक्ते हैं।

तीसरी बात यह है कि जिनसेनस्वामीने अथवा उनके समकालीन अन्य आचार्य्योंने और गुणभद्र तथा हस्तिमल्लकविने जहां कहीं अपने २ ग्रन्थोंमें थोड़ाबहुत इस गुरुपरम्पराका उल्लेख किया है वहां

जिनसेनस्वामीको वीरसेनस्वामीके शिष्यरूपसे और गुणभद्रस्वामीको जिनसेनस्वामीके शिष्यरूपसे उल्लेख किया है। यदि वीरसेन, जिनसेनके बीचमें पद्मनन्दी और जिनसेन, गुणभद्रके बीचमें विनयसेन पट्टाधीश हुये होते तो उनका नामोल्लेख करनेमें उनको क्या बाधा थी।

यह तो शायद आपको निर्विवाद स्वीकार ही होगा कि जिनके पट्टपर कोयी आचार्य पट्टाधीश होते हैं तो उस पाश्चात्यपट्टाधीशको उन्हें अपने गुरुरूपसे स्वीकार करना पड़ता है इसके अनुसार—जब जिनसेनने जयसेन और विनयसेन इन दोनों गुरुओंका उल्लेख किया है * तो फिर कोयी कारण नहीं मालूम होता कि पद्मनन्दी पट्टाधीश होते हुये भी इनका वे उल्लेख न करते। अस्तु।

यदि जिनसेन और गुणभद्रने पद्मनन्दी और विनयसेनका किसी कारणवश उल्लेख न भी किया हो लेकिन हरिवंशपुराणके कर्ता जिनसेनने जहां उल्लेख किया है वहां जिनसेनको वीरसेनके शिष्यरूपसे उल्लेख किया है * और उस कथनसे आदिपुराणके कर्ता जिनसेनको अपनेसे भिन्न बतलाया है। यदि पद्मनन्दीके पट्टपर जिनसेन बैठे होते तो सर्वथा सम्भव था कि वे उनका उल्लेख करते।

एक बात और भी है कि देवसेनसूरिके इन गाथाओंसे आपने यह अर्थ कौनसी साहित्यव्युत्पत्तिसे निकाला है कि:—वीरसेनके बाद पद्मनन्दी सेनसंघके पट्टाधीश हुये और उनके बाद जिनसेनस्वामी।

सिरवीरसेणसीसो जिणसेणो सयलसत्थविण्णाणी।
सिरिपउमणंदिपच्छा चउसंघसमुद्धरणधीरो॥ १॥

इसका तो यह अर्थ होता है कि वीरसेनके शिष्य, सकल शास्त्रोंके ज्ञाता जिनसेनस्वामी पद्मनन्दीके बाद चारसंघके शासन करनेमें निपुण हुये।

संभव है कि देवसेनसूरिने नन्दीसङ्घके किसी पद्मनन्दीकी और सेनसङ्घके जिनसेनकी समकालीनता दिखलानेके अभिप्रायसे ऐसा लिखा हो।

* नोट—इनके प्रमाणके लिये भास्करीय प्रथम किरणके २३, २७, ४७, और ४८ के पृष्ठपरकी श्लोकावलि देखियें।

आगे आप एक जगह लिखते हैं कि "पद्मनन्दी और विनयसेनके कोयी ग्रन्थ नहीं जिनसे कि आप यह बतला सकें कि इनका पाण्डित्य गुणभद्रसे कम था। इसके विषयमें हमारा यह निवेदन है कि पद्मनन्दीके विषयमें तो हम ऊपर कही आये हैं रही विनयसेनकी बात, सो यदि वे गुणभद्रसे अधिक विद्वान् होते तो आपके कथनानुसार गुणभद्रसे पहिले विनयसेन जिनसेनके पट्टपर बैठे तो जिस तरह गुणभद्रने उनके पट्टपर बैठनेके बाद जिनसेनके अधूरे महापुराणको पूरा किया, तो विनयसेनने अपने पट्टगुरु जिनसेनको अधूरी कृतिको गुणभद्रके पहिले ही क्यों न पूरी की क्योंकि उनको तो आपने गुणभद्रसे पहिले ही उनके पट्टपर बैठाया है।

तथा इन्हें आचार्य माननेमें हमें कोयी आपत्ति नहीं है। सम्भव है कि ये जिनसेन और गुणभद्रके समकालीन आचार्य हुये हों क्योंकि एक समयमें अनेक आचार्य होते हैं किन्तु पट्टावली उन्हीं आचार्योंकी होती है जो एकके बाद दूसरे पट्टाधीश हुआ करते हैं न कि समकालीन सभी आचार्योंको। यदि ऐसा होता हो तो तीर्थङ्करोंके समयमें तो कितने ही केवली हो गये हैं, उनका पुराणोंमें वर्णन अथवा अन्यान्य तीर्थङ्करोंकीसी उनकी भी मन्दिरोंमें पूजा क्यों नहीं होती ?। इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि ऐतिहासिक आचार्योंका ही पट्टावलीमें नाम दिया जाता है।

चन्द्रगुप्तके बारेमें जो प्रेमीजीका आक्षेपप्रक्षेप है, मेरी समझमें यह बात आती ही नहीं कि मैं इसके बारेमें प्रेमीजीको कौनसा उत्तर दूं क्योंकि आपको ऐतिहासिक बातें समझाना "टेढ़ी खीर" है। उन लोगोंको समझानेमें हमें उतनी अड़चन नहीं पड़ती जो कि आधुनिक ऐतिहासिकप्रवाहसे पूर्ण परिचित हैं लेकिन प्रेमीजीने तो इतिहास-रत्नाकरमें गोते लगा २ कर अपनी रहीसही भी इतिहासज्ञता धो डाली है क्योंकि आपकी रायमें सम्राट् मौर्य्य चन्द्रगुप्त जैनी नहीं थे। चन्द्रगुप्तके जैनत्वमें तो प्रेमीजीको अवश्य ही सन्देह होगा क्योंकि मुझे यह बात सुन पड़ी है कि प्रेमीजी आगामी जैनहितैषीके किसी अङ्कमें कमसे कम एक सौ जैनाचार्योंके ग्रन्थोंकी नामावली प्रकाशित कर यह घोषणा देंगे कि जो आधुनिक सुधारक इन ग्रन्थोंकी पोलें खोल कर उनकी कड़ी शुद्ध समालोचनाको जैनहितैषीमें छपनेको भेजेंगे उन्हें उपहारमें "रत्नाकर" से रत्नजटित

सुवर्ण-वलय मिलेगा। तो फिर प्रेमीजीको चन्द्रगुप्तके जैनत्वमें सन्देह होना भला कौन बड़ी बात है?

प्रेमीजी! अच्छा होता यदि आप विन्सेन्टस्मिथकी अभीहालकी छपी नयी आवृत्ति मंगा कर किसी बी०ए०से चन्द्रगुप्तके इतिहासका अनुवाद करा कर समझ लेते।

विन्सेन्टस्मिथने चालीस वर्षकी सपरिश्रम अविश्रान्त ऐतिहासिक पर्य्यालोचनासे अनेक ऐतिहासिक प्रमाणोंद्वारा अपनी इतिहास-पुस्तकमें यह सिद्ध कर दिखाया है कि चन्द्रगुप्त जैन थे और अन्तमें इन्होंने मुनिवृत्ति धारण कर इस लोकको छोड़ा है।

दूसरी बात यह है कि हमने श्रुतकेवली भद्रबाहुस्वामी और इनके शिष्य महाराज चन्द्रगुप्तके इतिहासकी पुष्टिकेलिये प्रथम किरणसे लेकर इस चौथी किरण तक कयी शिलालेख तथा अन्यान्य कयी ऐतिहासिक प्रमाण प्रकाशित किये हैं।

अब मुझे आपसे यह पूछना है कि आपको "भद्रबाहुचरित्र" माननीय है कि नहीं? नहीं है तो आपसे कुछ कहना ही खपुष्पके ऐसा है और यदि माननीय है तो आप ही कहें कि "भद्रबाहुचरित्र"के भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त कौन हैं? उनकी कौनसी ऐतिहासिक घटना है? और यह भी कहें कि शिलालेखोंमें जो भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त ये दोनों नाम आये हैं ये कौन हैं? उसी भद्रबाहुचरित्रमें जो श्वेताम्बर और दिगम्बरका अलग होना लिखा है वह घटना कब की तथा कैसी है!

आशा है कि प्रेमीजी उपर्युक्त प्रश्नोंका उत्तर देकर आप तथ्य इतिहासके सूत्रधार बनेंगे। नहीं तो फिर भी कहीं रत्नाकरकार्य्यालयकी कार्य्यावलियोंमें अस्तव्यस्त होते हुये आप वही मीठी २ चुटकियां लेना प्रारम्भ करेंगे तो भास्करकी तो वे "तीखी २ किरणें" हयी हैं।

भद्रबाहुस्वामीके ऊपर भी आपका कुछ दृष्टिपात हुआ है। महाशय! उसकी सर्व प्रसिद्ध बात यों है कि श्वेताम्बरियोंके और दिगम्बरियोंके यहां महावीरस्वामीसे लेकर आद्य भद्रबाहुतककी जो पट्टावलियां हैं वे सब ज्योंकी त्यों बराबर मिलती आती हैं। बस वहींसे भेद पड़ता है। श्वेताम्बरियोंकी पट्टावलियां आद्य भद्रबाहुके बाद स्थूलभद्रको कहती हैं और दिगम्बरियोंकी विशाखाचार्य्यको।

तथा जो भारतवर्षमें १२ वर्षका विकराल अकाल पड़ा है जिसका कि उल्लेख कयी विद्वानोंने किया है वह समय इन्हीं आद्य भद्रबाहुस्वामीके समयसे मिलता है और किसी भद्रबाहुके समयसे नहीं। इसके प्रमाण मेंसीडोनिया और ग्रीककी हिस्टरीमें आपको अनेकों मिलैंगे।

आपने यह अर्थ चन्द्रगिरिके शिलालेखके कौनसे शब्दसे निकाला कि चन्द्रगुप्तके गुरु भद्रबाहु श्रुतकेवली नहीं थे। शायद् आपकी कृपा "अष्टाङ्गनिमित्तनरवज्ञेन" इस पदपर हुयी है। सो महाराज! इसका तो अर्थ यह है कि १२ वर्षके अकालकी बात उन्होंने ज्योतिश्शास्त्रके आधारसे जानी थी क्योंकि श्रुतकेवली अन्य केवलियोंकी भांति पदार्थोंको स्पष्ट तो जानते ही नहीं हैं वे जो कुछ जानते हैं सो सब शास्त्रके आधारसे।

या शायद आपको उस शिलालेखमें कुछ शङ्का इस कारणसे हुयी हो कि उसमें कुछ आचार्योंके नाम देकर अन्तमें भद्रबाहुस्वामीका नाम दिया है लेकिन इन विषयोंके ऊपर "इण्डियम एण्टिक्वेरी" के कयी अङ्कोंमें फ्लीट हेल और लुइस राइस आदिने आपसमें बहुत दिनोंतक बड़ी २ यक्तियों और प्रमाणों सहित वादविवादरूपसे लेख चले हैं जिनका हम यहां देना पिष्टपेषणमात्र समझते हैं: लेकिन इन सबका मथन कर मि० भि० स्मिथ साहबने जो सार निकाला है वह सारे संसारको विदितप्रायः हो चुका है।

इसीलिये हम आपसे कहते हैं कि यदि आप वर्त्तमान इतिहास प्रवाहका कुछ आस्वादन करना चाहते हैं तो पहिले थोड़ीबहुत इतिहासकी शिक्षा लीजिये जिससे कि इतिहासपत्रसंपादकोंको आपको ऐतिहासिक बातें बतानेकेलिये किंडरगार्टनकी आवश्यकता न पड़े।

प्रेमीजीकी मीठी २ अथवा खट्टी २ चुटकियोंमेंसे भास्करके बारेमें एक यह भी चुटकी थी कि "इतिहासके महत्व प्रकटित करनेकेलिये इसके सम्पादकने भास्करको त्रैमासिकरूपमें नहीं निकाल कर वार्षिक निकालना सोचा है" किन्तु भिन्सेंट स्मिथका ऐतिहासिक कार्य्य देख कर प्रेमीजी अवश्य समझ जायगें कि अगर ऐतिहासिक समस्यामें पड़ कर इसके सम्पादक इसे त्रैवार्षिक भी बनावें तो कुछ अनुचित न होगा क्योंकि करोड़ोंकी लागतके गवर्नमेन्टके ऐतिहासिक संग्रहालयमें बैठ कर चालीस वर्षतक अलभ्य अलभ्य ऐतिहासिक सामग्रियोंका

पर्य्यालोचन करके तो आज उसने अपना अन्तिम मन्तव्य प्रकाशित किया है कि "चन्द्रगुप्त जैनी थे"।

अगर प्रेमीजीको ऐतिहासिक-महत्व देखना हो तो भवनमें आकर देखें कि चन्द्रगुप्तके जैनत्व दिखानेकेलिये कितनी सामग्री संगृहीत है। और आपको यह भी ज्ञात हो जायगा कि ऐतिहासिक-महत्व दिखानेकेलिये कितने समय, कितनी बहुदर्शिता और कितने संग्रहकी आवश्यकता है।

* * * * *

पूर्ण न हो सके।

पाठको! दूसरी, तीसरी किरणमें "विक्रमादित्य सम्वत्, भगवज्जिनसेनाचार्यका पाण्डित्य, शाका सम्वत्की उलझन और भगवज्जिनसेनाचार्य और कविवर कालिदास" शीर्षक लेख अधूरे रह गये थे। उनको इस चौथी किरणमें पूर्ण कर देनेकी हमारी पूर्ण अभिलाषा थी लेकिन कितने ही महानुभावोंकी प्रबल प्रेरणासे हमें चन्द्रगुप्तका पूर्ण इतिहास इसी किरणमें देना पड़ा इसलिये उन शेष लेखोंकी अशेष सामग्री उपस्थित रहनेपर भी बल्कि "भगवज्जिनसेनाचार्यका पाण्डित्य" नामक लेखको तो सर्वतया लिखालिखाया भी रहनेपर इस चौथी किरणमें हम प्रकाशित न कर सके।

तथा "शाकासम्वत्की उलझन" वाला लेख तो इसलिये भी प्रकाशित नहीं किया गया कि अभी उसके ऊपर विद्वान् लोगोंने अपने २ सन्तोषप्रद विचार प्रगट नहीं किये हैं। संसारमें उसके ऊपर भले प्रकार आन्दोलन हो जाय तब हम उसके शेषांशको प्रकाशित करना चाहते हैं।

* * * * *

बाबूजीकी भूल।

दूसरी, तीसरी किरणमें "शाकासम्वत्की उलझन" वाले लेखमें हमने कयी प्रश्नोंद्वारा इस बातके निर्णय करनेकी कोशिश की है कि जिसकी सभामें महाकवि कालिदासादि रहे हों, जो म० कालिदासकी बड़ीर कल्पनाओंका मापक हुआ हो और विक्रमसम्वत्को चलानेवाला ऐसा कोयी

प्रथम शताब्दिमें विक्रमादित्य नामका राजा हुआ या नहीं ?। उन कयी प्रश्नोंमेंसे एकाध प्रश्नका उत्तर देते समय हमने यह कहा है कि "प्रथम शताब्दिमें कोयी विक्रमादित्य नहीं हुआ"।

शायद हमारे मित्र 'भवन' के सुयोग्य मंत्रीने हमारा यह मन्तव्य समझ कर कि 'विक्रमादित्य कोयी था ही नहीं' इसी किरणमें एक विक्रमसम्वत्‌की समस्या" शीर्षक लेख लिखा है। संभव है कि बाबू साहबने ऐसा समझनेमें भूल खायी हो क्योंकि जब तक हम उन सब प्रश्नोंका उत्तर ऐतिहासिक प्रमाणोंद्वारा या इतिहासवेत्ताओंकी सम्मतिद्वारा न दे लें तब तक एक २ प्रश्नके उत्तरसे हमारी अन्तिम सम्मतिका निर्णय नहीं हो सक्ता। अस्तु। हम इतना कहे बिना न रहेंगे कि आपका यह लेख अत्यन्त गवेषणापूर्ण है।

चित्रपरिचय।

(डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषणजीका)

महामहोपाध्याय डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषण, एम्. ए., पी. एच्. डी., आजकल संस्कृत-कौलेज कलकत्तेके प्रिन्सपल हैं। आप अन्यान्य साहित्यिक, दार्शनिक तथा ऐतिहासिक लेख लिखनेमें बड़े ही सिद्धहस्त हैं। जैनसाहित्यके भिन्न २ विभागोंको आपने अपने बहुमूल्य साहित्यिक कार्य्योंसे बड़ी सहायता पहुंचायी है। इसीलिये वी० नि० सं० २४४० के स्याद्वादजैनमहाविद्यालयके उत्सवमें "भारतजैनमहामण्डलने परम पवित्र वाराणसीपुरीमें आपको "सिद्धान्तमहोदधि" की उपाधि दी है। विद्यालयके उत्सव तथा जोधपुरके "जैनसाहित्यसम्मेलन" के उत्सवमें जो आपका महत्वपूर्ण व्याख्यान हुआ था वह भिन्न २ जैनसमाचारपत्रोंमें छपा है। आपकी "श्रीजैनसिद्धान्तभवन आरा" के साथ पूर्ण सहानुभूति रहती है।

(डा० हर्मन जेकोबीजीका)

डा० हर्मन् जैकोबी एम्० ए०, पी० एच्० डी०. जर्मनीकी बोन यूनिवर्सिटीके प्रोफेसर तथा लण्डनकी जैनसाहित्यसभाके सभापति हैं। आपने ही अनेक पूर्वीय धार्मिक पुस्तकोंका पर्य्यालोचन कर यह सिद्ध कर दिया है कि "जैनधर्म्म" बौद्धधर्म्मसे अलग है और श्रीमहावीरस्वामीके २५० वर्ष पहिले भी तेयीसवें तीर्थङ्कर श्रीपार्श्वनाथस्वामी हुये थे। आपने ही आक्सफोर्ड जैसे सुशिक्षित स्थानकी एक धार्म्मिक सभामें अनेक प्रमाणोंके साथ मुक्तकण्ठसे कहा था कि "जैनधर्म्म एक असली धर्म्म है और यह ब्राह्मण तथा बौद्ध धर्म्मसे एकदम विभिन्न है।" आपने जैनसाहित्य जैनेतिहास तथा अधिकतर जैनदर्शनका बड़ा ही अनुशीलन किया है इसीलिये भारतजैनमहामण्डलने पवित्र वाराणसीपुरीमें स्याद्वादजैनमहाविद्यालयके उत्सवके अवसरपर आपको सभापति बना कर "जैनदर्शनदिवाकर"की पदवी दी है। अजमेरमें स्थानकवासी जैन और जोधपुरमें श्वेताम्बरी महोदयोंने आपकी बड़ी ही प्रतिष्ठा की है। अबकी वार आपको कलकत्तायूनिवर्सिटीने अलङ्कारशास्त्रके ऊपर व्याख्यान देनेकेलिये जर्मनीसे बुलाया था। वहां आपका आलङ्कारिक व्याख्यान बड़ा ही पाण्डित्यपूर्ण हुआ था। आपने कयी जैनसाहित्यिक तथा दार्शनिक ग्रन्थोंका सम्पादन किया है।

(श्रीमान् सेठ माणिकचन्द्र हीराचन्द्रजी जैन, जे०पी० का)

जैन संसारमें श्रीमान् सेठ दानवीर, जैनकुलभूषण, माणिकचन्द्र हीराचन्द्र जैन, जे० पी० जीका नाम बड़े ही आदरकी दृष्टिसे लिया जाता है। आप जैनतीर्थोंकी रक्षाके महाव्रती थे। इसका ज्वलन्त उदाहरण आपकी "जैनतीर्थक्षेत्र कमिटी" ही पर्य्याप्त है। आप बड़े ही मधुरभाषी, शान्तिसेवी तथा सहिष्णु व्यक्ति थे। आपकी व्यवहारपटुता तो बड़ी ही विलक्षण थी क्योंकि अपनी ही देहसे आपने इतनी सम्पत्ति उपार्जित की है। आपने मन्दिरों, तीर्थों और ग्रन्थोंके जीर्णोद्धार करने, धर्म्मशालायें तथा छात्रावास (Boarding house) बनवाने,

स्कूल, औषधालय और श्राविकाश्रम खुलवाने तथा छात्रवृत्तियां देनेमें कयी लाख रुपये दानमें दिये। बल्कि मरती वार भी लाखों लाख रुपयेका वसीयतनामा आप लिख गये हैं। इसके व्याजसे जैनतीर्थरक्षा, परीक्षालय, छात्रवृत्तियां और धर्म्मोपदेशका काम होता रहेगा। बम्बयीमें हीराबाग नामकी प्रसिद्ध धर्म्मशाला आपकी ही है। ऐसे नररत्नके स्वर्गवास होनेसे जो जैनसंसारकी सुदुस्सह क्षति हुयी है वह अचिन्तनीय है। इन्होंने १० हजार रुपये व्यय करके वर्षोंके परिश्रमसे एक महत्त्वपूर्ण जैनडायरेक्टरी नामका ग्रन्थ सम्पादन करवाया है। इसमें भारतीय सभी दिगम्बर जैनियोंके तीर्थ, स्थान और नेता आदिका पूर्ण उल्लेख है। आप "भवन" के संरक्षक भी थे। आपका पूर्ण जीवनचरित्र "जैनमित्र" आदि समाचारपत्रोंमें प्रकाशित हो गया है, इसलिये इस चित्रपरिचयमें अधिक बातोंका उल्लेख करना पिष्टपेषणमात्र है।

(सेठ परमेष्ठीदासजी रानीवालोंका)

वैसे तो खुर्जेके रानीवालोंके नामसे प्रायः सारी जैनसमाज परिचित ही है क्योंकि पश्चिम प्रान्तमें रानीवालोंका घराना, प्रसिद्ध घराना और धर्मात्माओंमें अग्रेसर परिगणत है।

आज हमें भी एक उसी वंशके सुपुत्र श्रीमान् सेठ परमेष्ठीदासजीका परिचय देना है। यद्यपि आपके परिचयकेलिये आपके वंशका उल्लेख कर देना ही पर्याप्त है। लेकिन आपने भी अपने कुलकी मर्यादाके अनुसार अनेक धार्मिक कार्य किये हैं। आपके अनेक धार्मिक कार्योंमेंसे उल्लेखयोग्य श्रीसम्मेदशिखरके मामलेकी घटना है।

बंगालके छोटे लाट माननीय फ्रेजर सितम्बर सन् १९०७में जब श्रीसम्मेदशिखरपर पधारे थे उस समय तीर्थराजपर जैनसमाजके बड़े २ नेताओंकी एक सभा इस उद्देश्यसे संगठित हुयी थी कि इस कार्यका भार कौन ग्रहण करे तब आपने बड़े उत्साहके साथ इस महान् कार्यको ग्रहण करनेका वचन दिया था और उस कार्यको आपने कितने उत्साह और परिश्रमसे किया इससे सारी जैनसमाज भलीभांति परिचित है।

जिस समय समाजके नेता उपर्युक्त लाट साहिबके साथ २ पर्वतपर घूम रहे थे उस समय आपने बड़ी निर्भीकताके साथ लाट साहिबसे निवेदन किया कि "महाराणी विक्टोरियाजीकी यह घोषणा है किसीके धर्मपर किसी प्रकारका आघात न पहुंचाया जाय" और इस समय आप महाराणीके प्रतिनिधि होनेके कारण हमारे लिये वे ही हैं अतः हम आपसे बलात्कार अर्थात् जिस तरह हो, इस पूज्य तीर्थ स्थानको अवश्य बचा लेंगे और आपको अवश्य छोड़ना ही होगा। आपने उस समय यहां तक भी कहा कि हम पहाड़से नीचे जभी उतरेंगे जब कि आप हमसे यह कह देंगे कि "हमें तुम लोगोंको प्रार्थना स्वीकार है"।

इस बातपर माननीय छोटे लाट बहुत हंसे और बोले कि सरकार आपके इस कथनका विचार अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक करेगी और आप निश्चिन्त रहें कि आपके धर्म्मपर किसी प्रकारकी बाधा नहीं होने पायेगी।

आपको श्रीसम्मेदशिखरके मामलेकेलिये कयी बार हजारीबाग, रांची, दार्जिलिंग, शिमला आदि कयी स्थानोंपर जानेका काम पड़ा था। आपने इन कामोंकेलिये कयी हजार रुपये अपने पाससे व्यय किये थे। आपका यदि विशेष विवरण लिखा जाय तो एक बहुत बड़ी पुस्तक तैयार हो सक्ती है। लेकिन आज यह कहते हुये हमारा हृदय विदीर्ण होता है कि आज आप समारमें नहीं हैं। आपकी मृत्यु बड़ी ही आश्चर्यजनक हुयी है— भाद्रपद शुक्ला ११ वि० सम्वत् १९७१के दिवस आप प्रातःकाल ही दर्शनोंकेलिये जिनालयमें आये वहां आपका कुछ स्वास्थ्य बिगड़ा। उसी समय आपको कोठी पहुंचाया गया बस कोठीतक पहुंचते २ आप सीधे स्वर्गकोठी पहुंचे। आपकी अवस्था केवल ४६, ४७ वर्षके लगभग थी। इस आकस्मिक मृत्युसे केवल कलकत्तेकी ही समाज नहीं किन्तु भारतवर्ष मात्रकी जैनसमाज शोकार्द्रित है।

(बाबू धन्नूलालजी अटर्नीका)

आप कलकत्तेके हायीकोर्टके प्रसिद्ध अटर्नियोंमेंसे एक थे। कलकत्तेके हायीकोर्टकी बारलाइब्रेरीमें इतने प्रसिद्ध वकीलोंके मध्य आप ही एक

अग्रवाल जैन वकील थे। आपने वकालतका काम संभालनेके बाद कलकत्तेके हायीकोर्टमें बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की थी। मारवाड़ी समाजमें आप बड़ी उच्च दृष्टिसे देखे जाते थे। कलकत्तेके कयी प्रसिद्ध २ धार्मिक और सामाजिक संस्थाओंके आप सभापति थे। और, कितनी ही असहाय विधवाओं, कुटुम्बियों और अनाथोंके पेट आपके गुप्तदानसे पालित हुआ करते थे। कहा जाता है कि आप लगभग २००) रु० मासिकका ऐसा दान करते थे जिसका उल्लेख आपके किसी बहीखातेमें नहीं पाया जाता। आपने ही सबसे प्रथम इस बंगालप्रान्तमें महासभा और यंग-मैन एसोसियेशनको निमंत्रित किया था। जब सितम्बर सन् १९०७में बंगाल-के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर माननीय फ्रेजर महोदय श्रीसम्मेदशिखरपर पधारे थे उस समय इस मामलेका भार मुख्यतया आप और सेठ परमेष्ठीदासजी-के ऊपर दिया गया था। आपके ही कारण इस मामलेमें जैनियोंका शतांश भी व्यय नहीं हुआ। यदि आपके स्थानपर अन्य कोयी वकील होता तो जैनसमाजको अधिक व्ययके कारण एक गहरी जोखिम सहनी पड़ती। इस सम्मेदशिखरके संबन्धसे आपको कयी वार अपने कार्य्यालय-को बन्द करके दार्जिलिङ्ग, रांची, शिमला आदि बड़ी २ दूर जाना पड़ा। आप सेठ परमेष्ठीदासजीके हार्दिक मित्र थे। आपने ही अपने माताके श्राद्धमें श्रीमान् स्या०वा०, वा०ग०के०, न्या०वा०, पं० गोपालदासजी बरैया, श्रीयुत सेठी अर्जुनलालजी बी० ए०, श्रीयुत कुंवर दिग्विजयसिंह आदि बड़े २ विद्वानोंको बुलाकर जैनधर्मकी सच्ची प्रभावना की थी।

और यह कार्य अग्रवाल समाजकेलिये ही क्यों, सारी जैनसमाजकेलिये अपूर्व हुआ। उस समय आपने प्रायः सारी जैनसंस्थाओंको उनकी योग्यतानुसार दान दिया। भवनको तो आपने १०००) रु० दिया था। आपका यह कहना ही रहा करता था कि जब हम इन सांसारिक कर्त्तव्योंको पूरा कर अवसर पावेंगे, तब अपना सारा जीवन श्रीभवनकी पवित्र सेवाकेलिये अर्पण करेंगे। इससे ही पाठक पता लगा सकते हैं कि आप भवनको किस आदरकी दृष्टिसे देखते थे।

लेकिन शोक है कि विकराल कालने आपकी ये शुभभावनायें पूर्ण न होने दीं और आपको श्रावण शुक्ला ११ वि० सं० १९७१ को अकालमें ही

जैनगजट, सन १९१४का—इसके संपादक हैं बाबू अजितप्रसादजी एम० ए०, एल्० एल्० बी०, और बाबू जुगमन्दरदासजी एम० ए०, बेरिस्टर-एट्-ला। भाषा और लिपि इंग्लिश। लखनऊ, अजिताश्रमके पतेसे प्राप्य।

६,७वें अङ्कमें—एक ऐतिहासिक लेख प्रकाशित हुआ है जिससे सिद्ध होता है कि पञ्चतन्त्रके कर्ता कोयी जैनाचार्य थे। लेख महत्वका है।

११वें अङ्कमें—"जैनआदर्शएसोसियेशन, इलाहाबाद"के प्रथम अधिवेशनकी रिपोर्ट प्रकाशित है। उसके खोलनेकेलिये लखनऊसे बाबू अजितप्रसादजी एम०ए०, एल्०एल्०बी० और बाबू चेतनदासजी बी०ए० पधारे थे। इसके दो एक प्रस्ताव उत्थानसूचक, नहीं २ अधःपतनसूचक हुये हैं। उनमेंसे एक प्रस्ताव इस अभिप्रायका हुआ है कि स्त्रियोंका परदासिस्टम उठा देना चाहिये। पाठको ! याद रखिये, इस प्रस्तावका जन्म, भारतवर्षको लन्दन नाममें परिवर्तन करनेकेलिये हुआ है। इस प्रस्तावके प्रस्तावक कामातुर बाबुओंकी यह उत्कट अभिलाषा है कि हमारी त्रिवर्गसंसाधिनी गृहिणियां हमारे साथ२ साग-पात सामानके खरीदनेकेलिये बाजारमें घूमें। इस प्रस्तावकी पहुंच यहां तक है कि स्त्रियोंको घरके कामकाज ही आवश्यकीय नहीं हैं किन्तु पुरुषोंके कामकाज भी वे करें अर्थात् पुरुषोंकी तरह उनको भी सर्वथा स्वातन्त्र्य प्राप्त है, वे पुरुषोंकी भांति हर एक व्यक्तिसे अनर्गल हो बातचीत कर सक्ती हैं।

प्यारे पाठको ! ये मेम्बरगण उस परदेका निषेध नहीं करना चाहते जो कि कुछ बादशाहोंके प्रसादसे दिल्ली, आगरा आदि नगरोंमें फैल गयी है। ये उस प्राचीन भारतीय सभ्यताके भी विरोधी हैं कि जो इस समय कर्णाटक, गुजरात, महाराष्ट्र, आदि देशोंमें कुछ बचीखुची भारतीय सभ्यताका नमूना दिखला रही है। ये भारतीय अविरोधप्रथाके विरोधी हैं। पाठकगण दूर न जाकर उन देशोंके परिणामफलको देख लीजिये जिनमें कि इस प्रकारकी प्रथा प्रचलित है और जिनको आदर्श मानकर इस देशमें भी यह प्रथा चलायी जाती है। हमारा उन सुधारक महानुभावोंसे निवेदन है कि उन देशोंमें जिनमें कि स्त्रियोंकी स्वच्छन्द प्रवृत्ति है उस प्रवृत्तिसे उत्पन्न हुयी कौनसी ऐसी बात या ऐसा गुण है जिसको कि हम आदर्श मानें।

जैनगजट, सन् १९१४का—इसके संपादक हैं बाबू अजितप्रसादजी एम० ए०, एल्० एल्० बी०, और बाबू जुगमन्दरदासजी एम्० ए०, बैरिस्टर-एट्-ला। भाषा और लिपि इंग्लिश। लखनऊ, अजिताश्रमके पतेसे प्राप्य।

६,७वें अङ्कमें—एक ऐतिहासिक लेख प्रकाशित हुआ है जिससे सिद्ध होता है कि पञ्चतन्त्रके कर्ता कोयी जैनाचार्य थे। लेख महत्वका है।

११वें अङ्कमें—"जैनग्रादर्सएसोसियेशन, इलाहाबाद"के प्रथम अधिवेशनकी रिपोर्ट प्रकाशित है। उसके खोलनेकेलिये लखनऊसे बाबू अजितप्रसादजी एम०ए०, एल०एल०बी० और बाबू चेतनदासजी बी०ए० पधारे थे। इसके दो एक प्रस्ताव उत्थानसूचक, नहीं २ अधःपतनसूचक हुये हैं। उनमेंसे एक प्रस्ताव इस अभिप्रायका हुआ है कि स्त्रियोंका परदासिस्टम उठा देना चाहिये। पाठको! याद रखिये, इस प्रस्तावका जन्म, भारतवर्षको लन्दन नाममें परिवर्तन करनेकेलिये हुआ है। इस प्रस्तावके प्रस्तावक कामातुर बाबुओंकी यह उत्कट अभिलाषा है कि हमारी त्रिवर्गसंसाधिनी गृहिणियां हमारे साथ२ साग-पात सामानके खरीदनेकेलिये बाजारमें घूमें। इस प्रस्तावकी पहुंच यहां तक है कि स्त्रियोंको घरके कामकाज ही आवश्यकीय नहीं हैं किन्तु पुरुषोंके कामकाज भी वे करें अर्थात् पुरुषोंकी तरह उनको भी सर्वथा स्वातन्त्र्य प्राप्त है, वे पुरुषोंकी भांति हर एक व्यक्तिसे अनर्गल हो बातचीत कर सक्ती हैं।

प्यारे पाठको! ये मेम्बरगण उस परदेका निषेध नहीं करना चाहते कि कि कुछ बादशाहोंके प्रसादसे दिल्ली, आगरा आदि नगरोंमें फैल गयी है। ये उस प्राचीन भारतीय सभ्यताके भी विरोधी हैं कि जो इस समय कर्नाटक, गुजरात, महाराष्ट्र, आदि देशोंमें कुछ बचीखुची भारतीय सभ्यताका नमूना दिखला रही है। ये भारतीय अतिथिप्रथाके विरोधी हैं। पाठकगण दूर न जाकर उन देशोंके परिस्थलको देख लीजिये जिनमें कि इस प्रकारकी प्रथा प्रचलित है और जिनको आदर्श मानकर इस देशमें भी यह प्रथा चलायी जाती है। हमारे उन सुधारक महानुभावोंसे निवेदन है कि उन देशोंमें जिनमें कि स्त्रियोंकी स्वतंत्र प्रवृत्ति है उन महाशयोंने बतलावें कि कौनसी ऐसी बात या ऐसा गुण है जिसको कि हम आदर्श मानें।

एक और भी प्रस्ताव है वह भी इसका भावीबन्ध है : उसका अभिप्राय है कि छोटी २ विधवाओंका विवाह किया जाय और इस एसोसियेशनके मेम्बर स्वयं करें तथा औरोंके प्रेरक हों और उनमें हार्दिक सहानुभूतिके साथ सम्मिलित हों। इसका भी जन्म हमारे पतिपत्नियोंका स्वर्गीय-प्रेम नाश करनेकेलिये हुआ है। यह बिल्कुल सत्य है कि "विधवासे विवाह करना" कुरके लाडू हैं जो करता है वह भी पछताता है और, जो नहीं करता वह भी इसकेलिये हृदयसे लालायित रहता है। हम इसके कितने ही प्रत्यक्ष दृष्टान्त देख चुके हैं कि जो विधवाविवाहके कट्टर पक्षपाती थे वे उसके साथ विवाह करके पीछेसे पछताते हैं और अपने विचारोंको एक दम बदलकर दूसरोंको अनुभूत उपदेश देते हैं कि तुम कभी इस कार्यको न करना। विधवाविवाहके अनुयायियोंको उचित है कि वे इसके काल्पनिक फलका चित्र न खींचकर उन जातियों या उन देशोंकी दशाको निहारें जिनमें कि इस विषमयफलदायी प्रथाका प्रचार है। हम उनके अनुयायियोंसे पूछते हैं कि जिन योरुप आदि देशोंमें इस प्रथाका प्रचार है उन्होंने अभी तक कितने महावीर या कितने अकलङ्क और कितने महाराणा प्रताप पैदा किये हैं। यह विधवाविवाह आर्षवाक्योंसे सर्वथा निषिद्ध है और इस पवित्र सतीत्वका नाशक है जिसकी योरुपके बड़े २ अनुभवी विद्वान् भी प्रशंसा करते हैं। लेकिन इस मूर्खताकी क्या हद्द है कि इस देशके सुधारक उल्टे उसीको छोड़कर और विदेशीय निन्द्य प्रथाके प्रचारकेलिये कमर कसनेको तयार हैं। उन पूज्य सतियोंका विधवाविवाह होना तो दूर रहे प्रत्युत, कदाचित्परपुरुषके वायुका संसर्ग भी न हो जाय इस भयसे एक ही दम अपने रूपलावण्यका आहुति ज्वलन्त चिताओंमें देदी जिसके आज तक भी अगणित प्रमाण भारतका प्राचीन इतिहास बड़े महत्वके साथ दे सक्ता है। हाय! शोक है कि आज उन्हीं सतियोंकी सन्तान विधवाविवाहका प्रस्ताव करें।

इस एसोसियेशनमें निरे बाबूलोग ही सम्मिलित नहीं हैं किन्तु एक पण्डितजी भी हैं। आपका नाम है पं० दीपचन्द्रजी परवार। आप, दि० जै० बोर्डिङ्गहाउस, इलाहाबादके सुपरिन्टेण्डेण्ट हैं। पण्डितजी! इसमें आपका सम्मिलित होना आपको उस रंगे हुये गीदड़की उपमा देनेकी कल्पना उत्पन्न करता है। उसपर भी खूबी तो यह है कि आप पूरे गीदड़

भी तो नहीं है क्योंकि न तो आप पूरे पण्डित हैं और न पूरे बाबू ही। फिर न मालूम आप क्यों चिमगादड़ बनकर इधर उधर दौड़ लगा रहे हैं। हमें आश्चर्य है कि आपको इस बोर्डिङ्गहाउसका सुपरिण्टेण्डेण्ट किस बुद्धिमानने नियुक्त किया है। इसमें सन्देह नहीं कि एक तो जैनियोंमें संस्थायें हीं बहुत कम हैं और, जो कुछ हैं भी वे ऐसे २ कर्मचारियोंद्वारा नष्ट हो जाती हैं।

हमें इस बातको देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि पण्डित और बाबू श्रीयुत अजितप्रसादजी एम० ए०, एल० एल० बी० के रहते हुये भी ऐसे धर्मघातक और अनर्गल प्रस्ताव पास हो गये क्योंकि हमें विश्वास है कि जैनियोंमें प० अर्जुनलालजी सेठी बी०ए०के बाद पण्डितत्वके मनि प्रेज्य-येटत्वका नंबर यदि किसीको प्राप्त है तो वह आपको ही।

अन्तमें निवेदन हमारा कुमार देवेन्द्रप्रसादजीसे है कि आप "श्री जैनसिद्धान्तभवन, आरा" के सुयोग्य कार्यकर्त्ताओंमेंसे एक हैं इसलिये कर्तव्यानुरोधसे हमें आपसे यह कहना है कि यदि इस विधवाविवाहकी कुभावनाने आपके सुकुमार हृदयको क्षणभरकेलिये भी अपवित्र किया हो तो आप अपने हृदयसे इस कलङ्कमयी भावनाको निकालकर उस सतीत्वकी रटन और सतियोंके नामस्मरणद्वारा अपने हृदयको पवित्र कर लीजिये। जैनसाहित्य और जैनेतिहास ही क्यों, भारतीयसाहित्य और भारतीयइतिहासमात्र आपके सामने इस बातके अगणित प्रमाण उपस्थित कर सकेगा कि हमारी सती माताओंके हृदयमें इन कुभावनाओंने स्वप्न तकमें भी स्थान नहीं पाया और यही कारण है कि यहांकी जननियोंने महावीर सरीखे धर्मनेता, अकलङ्क सरीखे विद्वान, सीता और पद्मनी सरीखी स्त्रियां और महाराणा प्रताप या राणा राजसिंह सरीखे वीर उत्पन्न किये थे।

१२वां अङ्क—इस अङ्कमें मालवाप्रान्तिकसभाके अभीहालके अधिवेशनकी रिपोर्ट प्रकाशित है। उसमें सभापतिका व्याख्यान और, एक प्रस्ताव विशेष ध्यान देने योग्य है।

सभापतिने अपने व्याख्यानमें जातिभेदके उड़ा देनेकी सर्वथा सम्मति दी है और इसका फल भी उसी अधिवेशनमें दृष्टिगोचर होने लगा अर्थात् एक प्रस्ताव भी पास हुआ कि परवारोंमें जातिभेद उड़ा दिया जाय। बड़े

आश्चर्यकी बात तो यह है कि कुछ दिन पहिले बम्बयीप्रान्तिकसभाके अभीके बम्बयीवाले अधिवेशनके सभापतिने अपने व्याख्यानमें जब जातिभेद उड़ा देनेकेलिये कहा था उस समय सभामें एकदम क्षोभ हो गया था, यहां तक कि मारपीटकी भी नौबत आ पहुंची थी लेकिन न मालूम दो ही एक वर्षमें क्या परिवर्तन हो गया कि जातिभेदके कट्टर पक्षपाती इन्दौरनिवासी सेठ हुकमचन्द्र सरीखे महाशयोंके सभामें उपस्थित होते हुये भी उपर्युक्त प्रस्ताव पास हो गया। समय! तेरी बलिहारी!!

सभापतिने अपने व्याख्यानमें कहा है कि दानवीर सेठ हुकमचन्द्रजीका जो चार लाखका दान हुआ है वह बड़े जैनधर्मको भीतरी पृष्ठी न पहुंचा सका। यह दान ऐसा हुआ है कि जैसे भूखसे जर्जरित शरीरवाले व्यक्तिको ऊपरसे मखमली दुशाला उढ़ा दिया हो।

आपका यह विचार अत्यन्त उपयोगी है कि जैनसाहित्यका जब तक इतना प्रचार न होगा कि वह बायिबिलकी तरह संसारके घर २ में विराजमान हो तब तक उन्नतिका केवल स्वप्न ही स्वप्न है क्योंकि अब समय कह रहा है कि अब तक तुम अपने सिद्धान्तोंपर विचार करनेका हर एक व्यक्तिको अवसर न दोगे तो हम तुम्हें अपने राजत्वकालमें संसारके किसी कोने तकमें न रहने देंगे।

इस मासिकपत्रमें अमृतचन्द्रसूरिका बनाया हुआ संस्कृतभाषामयी पुरुषार्थसिद्ध्युपाय नामक ग्रन्थ भी सम्पादकद्वारा अंग्रेजीमें अनुवादित होकर निकलता है। इसमें सन्देह नहीं कि यह कार्य्य बड़े महत्वका है लेकिन जितने महत्वका है उतना ही कठिन भी है क्योंकि संस्कृतभाषाके शब्दोंका भाव इंग्लिशभाषामें खींचने लोहेके चने हैं इस कार्यको वही व्यक्ति कर सकता है कि जो अपनी मातृभाषाकी तरह उन दोनों भाषाओंमें पूर्ण अधिकार रखता हो और, यह विषय भी तो जैनसिद्धान्त है जिसपर कि अधिकार विरलोंका ही हुआ करता है।

जैनमित्र—यह पाक्षिकपत्र "दिगम्बरजैनप्रान्तिकसभा" का मुखपत्र है। वार्षिक मूल्य ३) रु०। भाषा हिन्दी और लिपि नागरी। यह १६ वर्षसे निकल रहा है। तबसे इसके कयी भिन्न २ सम्पादक हो चुके हैं लेकिन अब कुछ दिनोंसे शीतलप्रसादजी अग्रवाल हैं। आप सप्तम प्रतिमाके धारी ब्रह्मचारी हैं और जैननेताओंमें परिगणित हैं। जैनसमाजमें यही एक पाक्षिक सामाजिक पत्र है कि जिसे लोग अच्छी दृष्टिसे देखते हैं। इसके संपादक जैनसिद्धान्तके भी अच्छे ज्ञाता और प्रेमी होनेके कारण इसमें सिद्धान्त विषयके भी कुछ लेख रहते हैं।

इसके वीरनिर्वाण स० २४४१ के १२ वें अङ्कमें भी "जैनग्रादर्सएसोसिएशन, इलाहाबाद" के प्रथम अधिवेशनकी रिपोर्ट प्रकाशित है और वह रिपोर्ट भी इस एसोसियेशनके मन्त्री बाबू निहालकरण सेठीद्वारा ही प्रकाशित है। परन्तु इस रिपोर्टमें विचित्रता यह है कि अंग्रेजी जैनगजटमें जो विधवाविवाहका प्रस्ताव है वह इसमें नहीं है जहां तक हमें मालूम है अंग्रेजी जैनगजट भी जैनमित्रकार्यालयमें आता है फिर एक ही संस्थाकी एक ही मन्त्रीद्वारा लिखित अंग्रेजी और हिन्दी रिपोर्टमें यह वैचित्र्य क्यों ?

संभव है कि हिन्दीके पाठकोंको धोखा देनेकेलिये यह कारवायी की गयी हो। यदि यह कारवायी मन्त्रीने स्वयं की है तो हमें यह अवश्य कहना पड़ेगा कि ऐसी कारवायियोंसे सफलता प्राप्त करना असंभव है और यदि इसमें संपादक महोदयकी कुछ काटछांट है तो हम यह अवश्य कहेंगे कि ऐसी कारवायी केवल संपादकत्वको ही नहीं बल्कि आपके पदको भी लाञ्छन लगानेवाली है। आपको स्मरण रखना चाहिये कि आप उदासीन श्रावकोंकी श्रेणीमें परिगणित हैं। सुना जाता है कि आप बाहरके आये हुये लेखोंमें कांटछांट करनेकी आपमें बड़ी आदत है। संभव है कि उसीके वश हो रिपोर्टमें भी आपने काटछांट की हो। महाराज! आपके विचारोंसे यदि कोयी बात विरुद्ध हो और वह आपको भली न मालूम हो जिससे कि आपको काटछांट करनी पड़ती है। अच्छा हो कि उसके स्थानपर आप एक मनमानी अपनी टिप्पणी जोड़ दिया करें ताकि पाठकोंको दोनों पक्षोंको युक्तियोंके समझनेका और उसपर मनन करनेका अवसर प्राप्त हो सके।

दिगम्बरजैन—वीरनिर्वाण सं० २४४१ का सचित्र खास अङ्क। इस मासिकपत्रका वार्षिक मूल्य १॥) रु० है परन्तु इस अङ्कका मूल्य १) रु० है। इस अङ्कके चित्रोंकी संख्या देखनेसे तो यही ज्ञात होता है कि इसी एक अङ्कका यदि १॥) रु० मूल्य होता तो कुछ आश्चर्य न था, उसपर भी ८,१० पुस्तकें अभी उपहारकी और शेष हैं पर यह नहीं कह सकते कि वे पुस्तकें कितने महत्वकी होंगी। जो कुछ हो, १॥) रु० में यह एक पोथा, ११ अङ्क तथा ८-१० पुस्तकें किसी भी तरह कम नहीं हैं। संपादकका उत्साह और कार्य करनेका ढंग प्रशंसनीय है। इसके संपादक और प्रकाशक हैं—श्रीयुत मूलचन्द्र किसनचन्द्र कापड़िया (सूरत) और यही इसके मिलनेका पता है।

इस अङ्कमें चित्रोंकी संख्याका जितना अधिक ध्यान रक्खा गया है उतना उनकी सफायीका नहीं। अस्तु, चित्र प्रायः ऐसे व्यक्तियोंके दिये गये हैं कि जिन्होंने जाति और धर्मकी कुछ सेवा करके अपने कर्तव्यका पालन किया है जिनके देखनेसे पाठकोंके हृदयमें उनके प्रति वात्सल्य और अपनी आत्माको उन्नत करनेकेलिये या वैसा ही अपनी आत्माको बनानेकेलिये एक विशेष प्रकारके भावोंका संचार होता है।

उसी तरह जहां तक हो सका है लेख भी भिन्न२ कयी भाषाओंमें प्रकाशित करनेका जितना अधिक ध्यान रक्खा गया है उतना उनके महत्वका नहीं। उर्दू को भी एक भाषामें परिगणित कर लेनेसे संपादककी यह उत्कट अभिलाषा प्रकटित होती है कि उनको यदि इनसे भी दो चार और भिन्न २ भाषाओंमें लेख मिल पाते तो वे अपनी टिप्पणीका भी मैटर निकालकर उन लेखोंको स्थान अवश्य देते। अस्तु यह कार्य भी किसीनकिसी प्रकारसे लाभदायक ही है क्योंकि अन्य लोगोंको यह विश्वास होता है कि जैनियोंमें भी प्राकृत, संस्कृतके विद्वान् उत्पन्न हो गये हैं और जैनसमाजको भी एक प्रकारका आत्मगौरव रहता है कि उक्त भाषाओंके हमारे यहां भी विद्वान् हैं तथा उन छात्रोंकी भी आत्मा विकसित होती है कि जिनको पत्रमें लेख भेजनेका अवसर तो शायद ही कभी मिलता है लेकिन भविष्यमें काम उन्हें उसी संसारमें आकरके करना है।

यद्यपि इसमें कुछ कवितायें ऐसी भी हैं कि जो अपने २ छन्दोंके निय-

मोंका पूर्ण परिपालन नहीं करती तब भी भाव प्रायः सभीके अच्छे हैं। संस्कृतकी कविताके भी भाव अपनी शैलीको लिये हुये हैं।

संस्कृतलेखोंके शोधनेमें संपादकने बहुत कम परिश्रम किया है। ऐसा मालूम होता है कि लेखकोंने अपने २ लेख जैसे भेज दिये हैं वैसे ही छाप दिये गये हैं क्योंकि "जैनदर्शनस्यानुवादः" वाले लेखमें तो पदच्छेद कुत्रचित् ही पाये जाते हैं और उसी पृष्ठपर "जैनानां वर्तमानप्रगतिः" वाले लेखमें पदच्छेद कुत्रचित् ही नहीं पाये जाते हैं।

संपादककी टिप्पणी और कृतिसे विश्वास होता है कि यह पत्र नागरी-लिपि और हिन्दी-भाषाके ऊपर विशेष लक्ष्य रक्खेगा। इसका साक्षात् दृष्टान्त इसी अङ्कमें है कि गुजराती और मराठी भाषाके भी कुछ लेख नागरी लिपिमें ही हैं और हिन्दीके लेखोंकी संख्या भी सन्तोषजनक है।

जैनतत्वप्रकाशक—यह "जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा, इटावह" का मासिक मुखपत्र है। लिपि नागरी और भाषा हिन्दी। वार्षिक मूल्य १) रु० है और इसी मूल्यमें ग्राहकगण उक्त नामकी सभाके सभासद् भी बना लिये जाते हैं। इन दो कामोंके करनेसे यह पत्र, आमके आम और गुठिलियोंके दामवाली कहावतको तो पूर्णतया चरितार्थ करता ही है पर उसी मूल्यमें ट्रेक्ट भी भेजनेके कारण "सो भी सवाये" यह एक नया टुकड़ा भी उसी कहावतमें जोड़ना पड़ता है। इसके संपादक और प्रकाशक जैनसमाजके सुपरिचित श्रीयुत चन्द्रसेन-जैनवैद्य (इटावह) हैं।

यह पहिले भी श्रीयुत कुंवर दिग्विजयसिंहद्वारा सम्पादित होता था लेकिन न मालूम किन कारणोंसे बीचमें यह बन्द हो गया था। अस्तु। अबकी बार यह अपने आकार-प्रकारमें पहिलेसे नवीन ही रूप धारण करके निकला है। यद्यपि अभी तो यह धूमधड़ाकेके साथ नहीं निकला है परन्तु इसके संपादककी आत्मशक्तिमात्रका ज्ञान कर यह बात संभव हो सकी है कि समाजमें यह पत्र एक जोशीला पत्र होगा।

अशोक व प्रियदर्शी—इसके लेखक श्रीयुत चारुचन्द्र वसु और प्रकाशक श्रीयुक्त-केशवचन्द्र चौधरी "सीटी बुक सोसायिटी" कालेजष्ट्रीट, कलकत्ता। भाषा और लिपि बंगाली। जिल्द उत्तम। मूल्य १॥) रु० । प्राप्य प्रकाशकसे।

इस पुस्तकका विषय ऐतिहासिक होनेके कारण यह शान्ति और बड़े ध्यानके साथ पढ़ी जानी चाहिये जिसमें कि कुछ समयकी आवश्यकता है। हमारे पास हालमें विशेष समय न होनेके कारण हम इसका चिन्तवन नहीं कर सके इसलिये इसकी समालोचना आगामी किरणमें की जायगी।

लेकिन यह हमारा अनुमान है कि यह पुस्तक बड़ी गवेषणासे लिखी गयी होगी क्योंकि इसके लेखक विद्वान्से हमारा पूर्ण परिचय है। आप एक अच्छे ऐतिहासिक विषयके खोजी और प्रेमी हैं आपने अन्यान्य भी कयी उपयोगी पुस्तकें लिखकर बंगीय साहित्यको उन्नत किया है वे पुस्तकें भी विद्वत्तापूर्ण हैं सामान्यावलोकनसे मालूम हुआ है कि इसकी भाषा बहुत ही मधुर है। अन्तमें "मौर्यवंशेर उत्पत्ति" नामक प्रकरणमें जैनग्रन्थ, वैदिकपुराण, मसीडोनियाके वर्तमान इतिहास, महावंश आदिके आधारपर आपने सिद्ध किया है कि मौर्यवंशी चन्द्रगुप्त शूद्रगर्भोत्पन्न नहीं थे किन्तु क्षत्रियवंशावतंस थे। जिन्हें चन्द्रगुप्तके क्षत्रियत्वमें सन्देह हो वे उक्त पुस्तकका अवश्य अवलोकन करें।

व्याख्यान—यह व्याख्यान "स्याद्वादमहाविद्यालय, काशी"के दशम वार्षिकोत्सवके सभापति श्रीयुत तुकारामकृष्ण शर्म्मा लट्टू, बी० ए०, पी० एच० डी०, 'क्विन्सकालेज बनारस'के शिलालेखादि विषयके अध्यापक महोदयका है। इसकी भाषा संस्कृत और लिपि नागरी है। पृष्ठ-संख्या ८। छपायी, सफायी उत्तम। संशोधनमें ब, वका और पदच्छेदका पूर्ण ध्यान रक्खा गया है उसपर भी जो अशुद्धियां रह गयी हैं वे स्वाभाविक हैं। भाषा सरल और मधुर है। शब्दोंका प्रयोग यथास्थान है। शब्दाडम्बर बिलकुल नहीं। लिखनेकी शैली भी विद्वत्तावञ्चित नहीं है। विषय महत्त्वका नहीं २ अत्यन्त महत्त्वका है क्योंकि अभी तक भारतीय

अन्य विद्वानोंके भी कयी वार जैनधर्म्मके ऊपर व्याख्यान हुये हैं जिनका कि अधिकतर महत्व. जैनसिद्धान्तकी अत्यन्त गवेषणापूर्वक होनेसे ही था लेकिन यह व्याख्यान, जैनेतिहासकी अत्यन्त गवेषणापूर्वक दिये जानेके कारण इसका नम्बर सर्वोपरि है।

यद्यपि यह व्याख्यान इस किरणके अन्तमें ज्योंका त्यों दिया गया है तथापि संस्कृतानभिज्ञ पाठकोंके अवलोकनार्थ. इसके ऐतिहासिक भागका भावानुवाद हम नीचे देते हैं:--

सबसे पहिले इस भारतवर्षमें "ऋषभदेव" नामके महर्षि उत्पन्न हुये। वे दयावान् भद्रपरिणामी, पहिले तीर्थंकर हुये जिन्होंने कि मिथ्यात्व-मोह रज्जुसे बंधे हुये, जड़ कीचड़में फंसे हुये जीवोंकी अत्यन्त दरिद्रा-वस्थाको देखकर "सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी मोक्ष-शास्त्रका उपदेश किया। बस यही 'जिनदर्शन' इस कल्पमें हुआ। इनके पश्चात् अजितनाथसे लेकर महावीर तक तेयीस तीर्थंकर अपने २ सम-यमें अज्ञानी जीवोंका मोहान्धकार नाश करते रहे। इसी काशीपुरीमें सातवें सुपार्श्वनाथ और तेयीसवें पार्श्वनाथ तीर्थंकर उत्पन्न हुये और, इसीके पास चन्द्रपुरी और सारनाथ (श्रेयांसपुरी) नामके दो स्थान हैं वहांपर आठवें चन्द्रप्रभ और ग्यारहवें श्रेयांसनाथ नामके दो तीर्थंकर क्रमशः उत्पन्न हुये। इन २४ तीर्थंकरोंमेंसे पार्श्वनाथ और महावीर ये दो अन्तिम तीर्थंकर अत्यन्त प्रसिद्ध हुये जिनके जगह व जगह आजकल अनेकों मन्दिर पाये जाते हैं। कुछ आधुनिक विद्वान्, बौद्ध (शाक्य-मुनि) के समकालीन और अत्यन्त प्रसिद्ध होनेके कारण महावीरको ही इस जिनमतका आदि संस्थापक मानते हैं वास्तवमें उन्होंने जैनग्रन्थों-का मननपूर्वक अवलोकन नहीं किया। किन्तु पहिले तीर्थंकरोंद्वारा कथित जिनधर्मका, महावीरस्वामीने पुनः उपदेश दिया है न कि एक नवीन ही मत चलाया यह बात अनेक ऐतिहासिक आदि प्रमाणों-द्वारा सिद्ध हो सकती है। बौद्धोंके प्राचीन २ ग्रन्थोंमें महावीरको "नात-पुत्त" शब्दद्वारा ही कहा है न कि एक 'नवीनमतप्रचारक' शब्दसे। जैन-ग्रन्थोंसे इस बातका पता लगता है कि ये वीर भगवान् ईस्वीसन्से ५२१ वर्ष पहिले हुये हैं और बौद्धग्रन्थोंसे भी यही सिद्ध होता है कि ये बौद्धके समकालीन थे अर्थात् अपने मतसे ये ६०० बी०सी०में हुये। लेकिन

कुछ आधुनिक विद्वान् इनको ५०० बी० सी० का मानते हैं। बस यहीं मतोंमें थोड़ासा भेद है। अस्तु। इस बातको तो बौद्ध और जैन मतके जाननेवाले सब ही विद्वान् मानते हैं कि ये जिनमतके प्रतिपादक महावीर, शाक्यमुनि (गौतम) से बादमें नहीं हुये।

ऐसा सुना जाता है कि मौर्यवंशीय चन्द्रगुप्तके राजत्वकालमें भद्रबाहु नामक किसी जैनाचार्यने अपने तपश्चरणके प्रभावसे आगामी बारह वर्षका घोर अकाल जानकर शिष्यभूत चन्द्रगुप्तके साथ २ अपने सङ्घको दक्षिण देशमें ले गये और तभीसे इस जैनसमाजके दो भेद हो गये। एक तो जो भद्रबाहुके अनुयायी थे वे दिगम्बर कहलाये और दूसरे श्वेताम्बर।

बौद्ध और जैनियोंके प्राचीन ग्रन्थोंसे यह बात मालूम होती है कि शाक्यमुनि और वर्धमान (महावीर) ये दोनों बिम्बसार और अजातशत्रुके समकालीन थे। वर्धमान तो कुन्दग्रामके राजा सिद्धार्थ और उनकी रानी त्रिशलाके पुत्र थे। अजातशत्रु और शाक्यमुनिका संलाप प्रसिद्ध ही है और त्रिशला अजातशत्रुके बाबाकी बहिन थी जिनके कि पुत्र महावीर थे। इसलिये अजातशत्रुका जैनियोंसे घनिष्ट संबन्ध होनेके कारण यह सम्भव हो सकता है कि अजातशत्रु पहिले जैन थे और बौद्धधर्मकी दीक्षा शाक्यमुनिके संलापके बाद ली हो। भारतवर्षके प्राचीन इतिहासमें जैनियोंका सबसे पहिला नाम इसी जगह आया है।

तथा दूसरा प्रमाण यह भी है कि मौर्यचन्द्रगुप्त और भद्रबाहु विषयक एक प्राचीन शिलालेख भी कर्नाटक देशके चन्द्रगिरिपर्वतपर चन्द्रगुप्तबस्तिमें मिला है।*

इस शिलालेखकी व्याख्या करनेमें कुछ प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वानोंमें मतभेद है—राियस आदिक कुछ विद्वान् तो यह कहते हैं कि यह शिलालेख आद्यभद्रबाहु और चन्द्रगुप्त विषयक है लेकिन दूसरे फ्लीटादिक महाशय कहते हैं कि यह शिलालेख चन्द्रगुप्त विषयक नहीं हो सकता क्योंकि पहिले तो इसमें किसी भी समयका उल्लेख नहीं है, दूसरे चन्द्रगुप्तके समयकी अपेक्षा इसकी लिपि भी पीछेकी है, तीसरे शिलालेखमें प्रभाचन्द्रका नाम है और इसमें कोयी प्रमाण नहीं कि यह चन्द्रगुप्तका नामा-

* नोट—यह शिलालेख प्रथम किरणके १५ में पृष्ठपर उद्धृत है।

न्तर हैं, चौथे जैनपट्टावलियोंमें कयी भद्रबाहु जैनाचार्योंके नाम हैं. पांचवे इस शिलालेखमें इस तरह लिखा है कि "आचार्य प्रभाचन्द्रो नामावनितलललामभूते ....शिखरिणि निःशेषेण मङ्घं विसृज्यैकेन शिष्येण .. शिलासु स्वदेहं संन्यस्याराधितवान्.. " इस जगह प्रभाचन्द्र यह एक आचार्यका नाम है न कि भद्रबाहुके शिष्यका। लिपि विज्ञानसे इस लिपिका समय ६ठवीं शताब्दिका निश्चित होता है। इन्हीं विषयोंके ऊपर दोनों ओरसे उत्तरप्रत्युत्तररूपमें बहुतसे निबन्ध लिखे गये हैं। ये सब बातें स्मिथसाहिबद्वारा संपादित प्राचीन भारतवर्षके इतिहासकी अभीहालकी आवृत्तिसे भलीभांति जानी जा सकी हैं। इन दोनों ओरके निबन्धोंको जांचकरके उपर्युक्त इतिहासवेत्ताने यह निश्चय कर दिया है कि यह शिलालेख मौर्यवंशीय सम्राट् चन्द्रगुप्तके विषयका ही है।

एक बात और भी देखने योग्य है कि "जैनसिद्धान्तभास्कर" नामक त्रैमासिक समाचारपत्रमें प्रकाशित उपर्युक्त शिलालेखकी प्रतिलिपिमें* यह स्पष्ट दीखता है कि णकार द्रकारके बाद है और द्रकारके बाद जो ओकार है उसे हम एकार भी पढ़ सक्ते हैं † तो फिर जिस तरह फ्लीट महाशय पढ़ते हैं कि "प्रभाचन्द्रो णाम" यह ठीक नहीं क्योंकि ऐसी दशामें णकार नहीं पढ़ा जा सक्ता (१)। यद्यपि भद्रबाहु नामके जैनियोंमें अनेक आचार्य हो गये हैं और इस शिलालेखमें आद्यभद्रबाहुके बाद उनके पीछेवाले और भी भिन्न २ नामवाले कयी आचार्योंके नाम दिये हैं तथा लिपिके देखनेसे यह लेख बादका लिखा हुआ ज्ञात होता है लेकिन इसमें हम यह कह सक्ते हैं कि यह लेख जिस समय लिखा गया है उस समयसे ये आचार्य, जिनके नाम भद्रबाहुके नामके पीछे दिये हैं, पहिले ही हुये थे।

प्रभाचन्द्र यह नाम चन्द्रगुप्तका दीक्षानाम है इस बातको वहांके चन्द्रगिरि पर्वत और चन्द्रगुप्तवस्ती तथा अन्यान्य भी शिलालेख भलीभांति सिद्ध करते हैं क्योंकि इनसे ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त वहां अव-

नोट—* देखो प्रथम किरणमें शिलालेख नं० ५। स०

† क्योंकि इस लिपिमें एकार और ओकार एकसा ही लिखा जाता है। स०

(१) क्योंकि संस्कृतके व्याकरणके अनुसार नकारको णकार एक पद होनेसे होता है लेकिन "प्रभाचन्द्रो नाम" ऐसी दशामें नामका नकार अन्य पदमें है। स०।

त्य गये थे। इन सब बातोंसे राथिस आदि विद्वानोंने जो यह निश्चय किया है कि भद्रबाहुके साथ चन्द्रगुप्त वहां गया था वह बिल्कुल युक्तियुक्त है।

इसके बाद आपने दिगम्बर जैनसाहित्यका वर्णन किया है, उसमें दिखलाया है कि न्याय, व्याकरण, काव्य, कोष, दर्शन, सिद्धान्त, गणित, आचारविचार आदि सभी विषयके अनेकों ग्रन्थ इस धर्मके ऋषियोंने बनाये हैं। जिनमेंसे किसी २ ग्रन्थके लिखनेकी शताब्दिका भी आपने निर्देश किया है। तत्पश्चात् अत्यन्त संक्षेपसे जैनियोंके सिद्धान्तों और आचारविचारोंका थोड़ासा नामनिर्देश करके, आपने बतलाया है कि जैनधर्म और बौद्धधर्मको बहुतेरे लोग एक समझ रहे हैं यह उनकी भूल है वास्तवमें ये दोनों धर्म सर्वथा अलग २ हैं और आपसके कयी विषयोंमें विरोध भी है।

हमारे पास आपका इंग्लिशका व्याख्यान भी आया है। उसमें इससे कुछ २ विशेष है। पुस्तकपरसे ज्ञात नहीं हो सकता कि इसकी और भी प्रतियां मिल सकती हैं या नहीं? विद्यालयके मन्त्री और अधिष्ठाताको इसकी कयी हजार प्रतियां छपवाकर विदेशमें भी भेजना चाहिये।

चित्रतत्त्व—The sacred books of the jains—chart No. 1

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वोंका यह एक चित्र (नकशा) है। इसमें तत्त्वार्थसूत्रका भेदप्रभेदरूप सभी विषय आगया है। यह एक जैनसाहित्यकेलिये नयी वस्तु है। इसके देखनेसे जैनद्रव्योंके भेदादिक बहुत जल्दी समझमें आसक्ते हैं। इसके संपादक हैं पण्डित दीपचन्द्रजी जैन, सुपरिण्टेण्डेण्ट "सुमेरचन्द्रदिगम्बरजैनबोर्डिङ्ग हाउस, इलाहाबाद" और, प्रकाशक-कुमार देवेन्द्रप्रसादजी जैन, मन्त्री "ऐतिहासिकविभाग भारतजैनमहामण्डल, आरा"। पता तो लिखा नहीं, शायद प्रकाशकसे मिल सके। भवनवासी और व्यन्तर देवोंके नाम तथा कुछ नामकर्मकी प्रकृतियां अक्रमसे दी गयी हैं तथा एकाध विषय भी सिद्धान्तसे विरुद्ध हो गया है जैसे "असैनी-कर्मभूमिज मनुष्य"। मनुष्य कभी भी असैनी नहीं होता। आशा है अबकी आवृत्तिमें शुद्ध हो जायगा।

प्रकाशक महोदयको इस बातका ध्यान रहना चाहिये कि यह सिद्धा-

नका मामला है इसके संपादनकेलिये जितना अधिक विद्वान् मिल सके उतना ही अच्छा है। कुछ भी हो यह कार्य अवश्य अनोखा है। और आशा की जाती है कि इसके नीचे लिखे हुये लोकालोक, गुणस्थानादिके भी चार्ट कुछ और ही नये ढंगको लिये हुये अच्छी चटकमटकके साथ निकलेंगे। जैन-साहित्य इस वर्त्तमान समय प्रवाहके अनुसार अपनेको पाकर आपका अत्यन्त अनुगृहीत होगा।

श्रीमहावीरचरित्र--चुन्नीलालजैनग्रन्थमालाका ६टवां अङ्क। संग्रहकर्ता-जैनमित्रके संपादक ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी। छपानेवाले भारतीयजैनसिद्धान्तप्रकाशिनीसंस्थाके मन्त्री पन्नालाल जैन। द्रव्यसहायक-अजमेरनिवासी बाबू चांदमलजी अजमेरा। मूल्य-जैनोंसे -) और, अजैनोंसे कुछ नहीं।

सब मिलाकर इस पुस्तकमें ३२पृष्ठ हैं। पाठकगण आश्चर्य न करें कि क्या ये ३२के ३२ ही पृष्ठ चरित्रवर्णनमें लगा दिये गये हैं, नहीं, इसमें भी किफायत की गयी है क्योंकि यह समय ही किफायतका है। अच्छा तो अब हिसाब लगायिये—

३ पृष्ठ विज्ञापनकेलिये अलग निकल गये।
४ „ संग्रहकर्ताकी कुछ टीकाटिप्पणी सहित महावीरके विषयमें अन्य विद्वानोंकी दो तीन सम्मतियोंको उद्धृत करनेकेलिये
१ „ संग्रहकर्ता आदिके नाम देनेकेलिये
१ „ कोरा शोभाकेलिये
२ „ भजनोंकेलिये

जोड़ ११ पृष्ठ। ३२—११ २१

लीजिये हिसाबी अठपेजी कागजके २१ पृष्ठमें अन्तिम तीर्थङ्कर श्रीमहावीरस्वामीका गर्भसे लेकर निर्वाण तकका पूर्ण जीवनचरित्र।

पाठकगण यह भी आश्चर्य न करें कि इतनेमें क्या २ विषय आगया होगा! इतनेमें ही ऋषभदेवसे उपक्रम उठाकर महावीरस्वामीके शिष्यों तक अतिसंक्षेपसे वर्णन है, किसी २ तीर्थंकरकी जन्मभूमि और निर्वाण-

भूमि कहां २ है, पहिले समयमें उस जगहको क्या कहते थे? और, इस समय वह किस नामसे पुकारी जाती है इत्यादि ऐतिहासिक विषय भी थोड़ासा है, नाना मतोंके नाम और, एकान्तके स्वरूपका वर्णन जो कि चरित्रनायकने कहा है उसका भी कुछ कथन है तथा इतना ही नहीं, प्राचीन आचार्य्योंके श्लोक भी जहांकहीं आवश्यकतानुसार उद्धृत किये गये हैं जिनकी संख्या कुल मिलाकर ३९। हैं।

एक जगह लिखा है कि "राजा अपनी धर्मसहायिनी परम मित्राको सभामें आते हुये देख उठे और खड़े हो सन्मान सहित मिष्ट वचन बोल अर्धासन दे आप बैठे। जैसा कि कहा है:

> आगच्छन्तीं नृपो वीक्ष्य प्रियां संभाष्य स्नेहत ।
> मधुरैर्वचनैस्तस्यै ददौ स्वार्धासनं मुदा ॥ ९० ॥"

क्यों साहिब इसमेंसे यह अर्थ आपने कौनसे शब्दसे निकाला कि "उठे और खड़े हो ?" मालूम होता है कि स्त्रियोंको पुरुषोंके अधिकार देनेकेलिये इस प्रकारकी धीरे २ खेंचातानी की जा रही है।

इस पुस्तक भरमें पञ्चमवर्णके स्थानमें सर्वत्र अनुस्वार किया गया है। और, यह नियम केवल हिन्दीमें हीं नहीं बल्कि संस्कृतके श्लोकोंमें भी चरितार्थ किया गया है जो कि किसी भी व्याकरणसे सिद्ध नहीं हो सकता। महाराज! हिन्दी तो आपके घरकी है पर संस्कृतके ऊपर तो थोड़ा कृपाकटाक्ष रखिये। अस्तु।

संशोधनमें अच्छा ध्यान रक्खा गया है। पुस्तक जैनधर्मसे अपरिचित नवयुवक मण्डलकेलिये अत्यन्त उपयोगी है अधिकतर, स्कूलके छात्रोंकेलिये अथवा उन व्यक्तियोंकेलिये कि जो जैनधर्मके इतिहासका सामान्य ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं।

हमारे पास निम्नलिखित पुस्तकें भी समालोचनार्थ आयी हुयी हैं लेकिन अपने समयकी और, किरणमें जगहकी अल्पताके कारण तथा पुस्तकोंकी साधारणताके कारण उनकी समालोचना करनेमें हम लाचार हैं। प्रेषक महोदय क्षमा करें:—

विद्या विषयपर व्याख्यान—श्रीजैनधर्मप्रचारिणीसभा, बाराबंकीका ट्रैक्ट नं० १

गृहस्थाचरण—उपर्युक्त सभाका ही ट्रैक्ट नं० २

तीसरी रिपोर्ट—श्रीजीवदयाज्ञानप्रसारकमण्डली, बम्बईकी १ जनवरी सन् १९१२से ३१ दिसम्बर सन् १९१३ तककी

रिपोर्ट—श्रीधर्मप्रबोधिनीदिगम्बरजैनपाठशाला, कलकत्ताकी १ सितम्बर सन् १९१० से ३१ दिसम्बर सन् १९१३ तककी

वार्षिक रिपोर्ट—श्रीजैनसिद्धान्तप्रचारिणीसभा, मुरैनाकी (ग्वालियर) कार्तिक शुक्ला १ सम्वत् १९६९ से भाद्रपद शुक्ला १५ सम्वत् १९७० तककी

१०वें वर्षकी रिपोर्ट—श्रीस्याद्वादमहाविद्यालय, काशीकी १ सितम्बर सन् १९१३ से ३१ जुलायी सन् १९१४ तककी

सुभाषितावली।

(१)

ये हैं प्रवीण सुकुलीन सदात्मलीन
दीनोपकार नित जो करते अदीन।
क्योंकी जगद्विदित है तव वाक्य सूक्त !
"काकोऽपि जीवति चिराय बलिञ्च भुङ्क्ते" ॥

(२)

विविधविषयभोगी हो तथा दिव्ययोगी
मनुजमन कराता बन्धमोक्षोपयोगी।
यह समझ सभी हों तुष्टचेता विनिद्र
"मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः" ॥

(३)

घुग्घूकी प्रभु ! दिव्य दृष्टि अब हो क्लीव प्रधी भीम हो
जम्बूकी मृग-राजको अब जने सद्धर्ष निस्सीम हो।
दाता कर्ण समान क्यों सब शठ प्राणी सभी मन्मना
"प्राकाश्यं स्वगुणोदयेन गुणिनो गच्छन्ति किं जन्मना" ॥

(४)

भूखे हों अथवा बड़ी विपदके मारे मनस्वी कभी
याञ्चा जीवनमें कहीं न करते सत्कार्य्य करते सभी।
हैं ये ही इस भव्य भारतमहीके योग्य सत्केशरी
"किं जीर्णं तृणमत्ति मानमहतामग्रेसरः केशरी" ॥

(५)

सभी चीजें यांकी जलबुद्बुदोंसी विनशतीं
पर सत्कीर्त्ती हां अचल रहती है प्रिय सती।
सुरोंको तृष्णे ! तू विवश करती है रि चपले
"शरीरे का वार्त्ता करिकलभकर्णाग्रचपले" ॥

केम्ब्रिजनामकांग्लभूमिस्थविश्वविद्यापीठदत्तबी.ए.पदविशिष्टस्य शर्मण्यदेशीयहलेनामकविश्वविद्यापीठसमर्पितपीएच्.डी.पदममलंकृतस्य राजकीयक्वीन्स्कालेजाख्यविद्यालयगतसंस्कृतप्राचीनशिलालेखादिविषयाध्यापकपदभृतः स्याद्वाद (दिगम्बरजैन) महाविद्यालयदशमवार्षिकमहोत्सवाध्यक्षस्य लद्दुवंश्यकृष्णात्मजतुकारामशर्मणो

व्याख्यानम्।

विद्वद्वराः सभ्यमहाशयाः !

विदितमेव भवतां किमत्र समुपागताः स्मः। जैनमतावलम्बिनामत्रत्यस्य



[illegible]

[illegible]

स्याद्वादमहाविद्यालयस्याद्य दशमवार्षिकोत्सवस्तत्सम्बद्धं छात्रेभ्यः पारितोषिकवितरणं जिनशास्त्रे कृतपरिश्रमाणां तन्मतानुयायिनां च जैनमतप्रतिपादकानि व्याख्यानान्यस्मिन् दिनद्वयेऽत्र भविष्यन्तीत्यपि भवत्कर्णपथमागतमेव भवितव्यम् । अस्मिन्संवत्सरे छात्रै: किं कृतमध्यापकै: किं सम्पादितं मन्त्रिप्रभृतिभिः कार्यद्रष्टुभिश्च किमनुष्ठितमित्येतत्सर्वं स्पष्टीकृतमेवाचिरानुवाचितया वार्षिकसमालोचनया । सर्वथा प्रशंसामर्हन्त्यर्हन्मतावलम्बिन एते जैनमहाशयाः । आशास्महे चोत्तरोत्तरं सविशेषं समुत्कर्षमस्य विद्यापीठस्य ।

कीदृशः खल्वयं जिनधर्मः ? के नाम तीर्थकराः ? किंचरितौ पार्श्वमहावीरौ ? अविभक्तः सुविभक्तो वा जैनसङ्घ ? यद्यपरः कदा बभूव स सङ्घभङ्गः ? कुतश्च कारणात् ? अस्ति किञ्चिदैतिहासिकं प्रमाणमेतन्मतस्य प्राचीनत्वद्योतकमुतैतिह्यमात्रावलम्बी जिनमताडम्बरः ? के नामैतेषां धर्मग्रन्थाः ? कीदृशानि जैनदर्शनानि ? कति वर्णा जैनानाम् ? कति चाश्रमाः ? किंस्वरूपास्तेषामाचाराः ? के वै यमनियमाः ? अपि साम्यं जैनबौद्धमतयोरुत वैषम्यम् ? कश्च तयोः परस्परसम्बन्धः ? इत्येतेऽन्ये चैतादृशाः प्रश्नाः प्रादुर्भवन्त्यस्मन्मनसि विशेषतश्च यदा समुपगच्छामो वयमेतादृशे जनसमाजे । एतान्सर्वान् विषयानधिकृत्यापरिचितांग्लभाषाणां संस्कृतज्ञानां विशेषतः छात्राणां कृते संक्षेपतः प्राचीनग्रन्थकृदभिमतां सुगमपदशालिनीं नैकविधापूर्वविषयविवेचनकुशलां नवीनां लेखपद्धतिमनुसृत्य ब्रवीमि यदहं पश्चाद्यथासमयमांग्लभाषया सविस्तरं प्रवक्तुकामः ।

पुरा किल सुविश्रुतनामधेयः कश्चिदृषभदेवाख्यो महर्षिः प्रादुर्बभूवास्मिन्भारतवर्षे । मिथ्यात्वादिमोहगुणप्रबद्धपुद्गलपङ्कनिमग्नातिकृपणदशापन्नजीवानवलोक्य दयापरवशः सुकोमलान्तःकरणः स आदिमस्तीर्थकरः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकं मोक्षशास्त्रं निर्माय जिनदर्शनमस्मिन् कल्पे प्रकटीचकारेति वदन्ति सम्प्रदायविदः । तदनु चाजितनाथाद्यो महावीरान्तास्त्रयोविंशतिस्तीर्थकराः स्वस्वकालेषु निजज्ञानकिरणैरज्ञजीवानां मोहतिमिरं दूरीचक्रुरिति चोपलभ्यते जैनग्रन्थेषु । अस्यामेव वाराणस्यां सप्तमस्तीर्थकरः सुपार्श्वनाथस्तथा पार्श्वनाथस्त्रयोविंशतितम एवमितो नातिदूरवर्तिनि चान्द्रपुरग्रामेऽष्टमश्चन्द्रप्रभुरेकादशः श्रेयांसनाथश्च सारनाथक्षेत्रे बभूवुरिति श्रूयते । एतेषु तीर्थकरेषु सुप्रसिद्धतमावन्तिमौ पा-

र्श्वनाथमहावीरौ यन्मन्दिराणि दृश्यन्ते बहुषु क्षेत्रविशेषेषु। तत्र बुद्धापर-नामकशाक्यमुनिगौतमसमकालीनतया सुप्रथितयशस्तया च श्रीवर्धमान-महावीरस्य तस्मिन्नेव जैनमतनिर्मातृत्वमधिरोपयन्ति केचित्सम्यगनधोत-जिनग्रन्था आधुनिकाः। तत्र पूर्वतीर्थंकरप्रचारितमेव जिनमतं पुनः प्रति-पादयामास स महावीरपुरुषो महावीरो न तु स्वबुद्धिपरिकल्पितमपूर्वमत-मिति वस्तुस्थितिः शक्या च प्रमाणीकर्तमैतिहासिकैरन्यैश्च प्रमाणैः। प्राचीनतमेषु बौद्धग्रन्थेषु नातपुत्तेति सुप्रसिद्धे नैव स्वमाम्नाऽयं यतीन्द्रो महावीरो बहुवारं वर्णितो न तु नवीनमतप्रचारक इति। अयं महात्मा खिस्तशकात्प्राक् सप्तविंशत्युत्तरपञ्चशततमेऽब्दे निर्वाणपदमयासीदिति जनग्रन्थेभ्योऽवगम्यते। बौद्धग्रन्था अपि तं बुद्धसमकालीनोऽर्थात्स्वमतानु-सारेण खिस्तशकात्पूर्वं षट्शताब्दिक इति प्रमाणयन्ति। आधुनिकास्तात्र-द्विद्वांसस्तं खिस्तशकात्प्राक् पञ्चशताब्दिकं मन्यन्त इत्यस्ति किञ्चिदत्र वैम-त्यम्। इदं तावत्सर्वैर्बौद्धग्रन्थेषु तथा जैनग्रन्थेषु कृतपरिश्रमैर्विद्वद्भिर्निर्वि-वादमङ्गीक्रियते यज्जिनमतप्रतिपादकः श्रीमहावीरः शाक्यमुनेर्गौतमान्ना-र्वाचीन इति।

पुरा किल मौर्यनृपतौ चन्द्रगुप्ते महीं शासति भद्रबाहुस्वामी कश्चिज्जै-नाचार्य स्वतपोबलादागामिद्वादशवर्षदुर्भिक्षसमयमवबुध्य स्वमुनिसमन्वितः शिष्यभूतेन चन्द्रगुप्तेनानुगम्यमानो दक्षिणापथमगमदिति श्रूयते। तत प्रभृत्येव जैनजनसमवायो दिगम्बरश्वेताम्बररूपेण द्विधा बभूव, भद्रबाहु-नुयायिनो दिगम्बरा उत्तरपथवर्तिनश्च श्वेताम्बरा इति।

बौद्धानां तथा जैनानां प्राचीनग्रन्थेभ्यः शाक्यमुनिवर्धमानौ बिम्बसारा-जातशत्र्वादीनां समकालीनौ, वर्धमानश्च कुन्दग्रामाधिपस्य सिद्धार्थस्य त्रिशलायाश्च पुत्र इत्यवगम्यते। अजातशत्रोः शाक्यमुनेश्च संलापः सुप्र-सिद्ध एव। अजातशत्रोर्मातामहस्य स्वसा वर्धमानस्य माता त्रिशाला। अतोऽतिनिकटसम्बन्धादजातशत्रोः पूर्वं जैनत्वं सम्भाव्यते। शाक्यमुनिसंवा-दानन्तरं बौद्धधर्मदीक्षा च तस्य स्वमातामहं वैशालीनृपमाक्रम्य तद्राज्य-ग्रहणेन वर्धितवर्धमानमन्युतयाऽऽवश्यकेत्यपि विशदम्। भारतवर्षप्राचीने-तिहासेन केवलमयमेवाद्वितीयो जैनभामनिर्देशः। अस्त्यन्योऽपि प्राचीनः शिलालेखो मौर्यनृपतिचन्द्रगुप्तजैनाचार्यभद्रबाहुविषयकः। निर्दिष्टपूर्वजिन-सङ्घदक्षिणापथप्रस्थानसम्बद्धोऽयं लेखः कर्नाटकदेशे श्रवणबेलगोलनामकग्रामा

व्यवहितचन्द्रगिरौ चन्द्रगुप्तवस्त्याख्यस्थानान्नातिदूरं वर्तते। एतद्व्याख्याने शिलालेखविज्ञानधुरंधरा विप्रतिपद्यन्ते केचिद्रायिसप्रमुखा आद्यभद्रबाहु-चन्द्रगुप्तविषयक इति मन्यन्ते। अपरे विद्वद्वरफ्लीटादयो वितर्कन्ते, नायं लेखश्चन्द्रगुप्तविषयको भवितुमर्हति. अत्र समयनिर्देशस्याविद्यमानत्वादस्य लिपेराधुनिकत्वाच्चन्द्रगुप्तकालापेक्षया लेखवर्तिप्रभाचन्द्रशब्दस्य चन्द्रगुप्त-वाचके प्रमाणाभावाद् बहुषु भद्रबाहुभिधजैनाचार्येषु जिनपट्टावल्यां विद्यमानत्वाच्च। किञ्च शिलालेखेऽस्मिन्विद्यन्तेऽक्षराणि "आचार्यः प्रभाचन्द्रो नामावनितलललामभूते ....शिखरिणि निःशेषेण सङ्घं विसृज्यैकेन शिष्येण शिलासु स्वदेहं सन्यस्याराधितवान्.. "। अत्र प्रभाचन्द्र इत्याचार्यस्य नाम, न तु भद्रबाहुशिष्यस्येति च लिखति स महाशयः। लिपिविज्ञानशास्त्रबलादस्य शिलालेखस्य समयः षष्ठखिस्तशताब्दिक इति च निश्चिनोति। एत विषयमधिकृत्योभयपक्षवर्तिभिरुत्तरप्रत्युत्तररूपेण बहवो निबन्धा ग्रथिता इति स्मिथमहाशयनिर्मितप्राचीनभारतवर्षेतिहास-ग्रन्थस्य नवीनावृत्तिगतस्यावलोकनेन विज्ञायते। उभयपक्षलेखान् परीक्ष्यायमितिहासकारस्तावत्तं शिलालेखं मौर्यचन्द्रगुप्तविषयकं प्रमाणयति। इदं तावदत्रानुसन्धेयम्—सिद्धान्तभास्करनाम्नि त्रैमासिकवृत्तपत्रे मुद्रितेषु प्रतिमाक्षरेष्विदं तावत्स्पष्टं दृश्यते यत्तत्र मूर्धन्यो णकारो द्रस्य पश्चात्। द्रुत-र्णान्तरं यथा ओकारस्तथा एकारोऽपि पठितुं शक्यः। फ्लीटमहाशयेन पठितवद्यदि प्रभाचन्द्रो नामेति तत्राऽभविष्यत्तर्हि णकाराप्राप्तेः प्रभाचन्द्रो णामेति णकारो नाभविष्यत्। सत्यं बहवो भद्रबाहवो जिनाचार्याः। अस्मिंल्लेखे चाद्यभद्रबाहोः पश्चाद्बहूनामाचार्याणां नामानि दृश्यन्तीति च। परं लिपिशास्त्रानुसारेणास्य लेखस्यार्वाचीनत्वं निर्विवादं सिद्धतया लेखसमयापेक्षयाऽऽद्यभद्रबाहुनुगाचार्याणां प्राचीनतया तन्नामानि दृश्यन्तीति वक्तुं शक्यम्। प्रभाचन्द्र इति चन्द्रगुप्तस्यापरं दीक्षानामेति च चन्द्रगिरीतिपर्वतनाम्नश्चन्द्रगुप्तवस्तीतिस्थाननाम्नश्चान्येभ्यश्च शिलालेखेभ्यस्तत्रस्थेभ्यश्चन्द्रगुप्तस्य तत्र गमनं प्रमाणयितुं न दुष्करम्। एतेन रायिसस्मिथ-प्रभृतिभिर्विद्वद्वरैः कृतो निर्णयः समीचीनः, मौर्यचन्द्रगुप्तः स्वगुरुभद्रबाहुना सह तत्रागमदिति च प्रतिभाति।

एतेषां जैनमहाशयानां धर्मग्रन्थेषु श्वेताम्बरीया विद्वद्वरवेबरमहाशयेन तथा जैनदर्शनदिवाकरपदसमलङ्कृतेन याकोब्याख्यपण्डितवरेण नवि-

स्तरं वर्णिततया नात्र पुनर्लिख्यन्ते। दिगम्बरजैनग्रन्थास्तावत्केचिदतिप्राचीनाः। ख्रिस्तीयप्रथमशताब्दिकेनोमास्वामिना जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षेति सप्ततत्त्वविवरणात्मकं तत्वार्थाधिगमोक्षशास्त्रं निर्मितम्। अयमुमास्वामी कुन्दकुन्दाचार्यस्य शिष्यः। कुन्दकुन्दाचार्येणापि बहवो ग्रन्था लिखिता यथा प्रवचनसारः पञ्चास्तिकायः समयसारोऽष्टपाहुडो रयणसारोऽन्ये च। भूतबलिश्च धवलजयधवलमहाधवलाख्यान् प्राकृतभाषायां ग्रथितवान्। जयधवलैकांशमूलको गोम्मटसारो रचितो नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिना ख्रिस्तीयसप्तमशताब्दिकेन। बहवश्चान्ये ग्रन्था मुद्रणमपेक्षमाणा विस्तरभयान्नात्र निर्दिश्यन्ते।

बहवो न्यायव्याकरणादिदर्शनग्रन्था दिगम्बरजैनप्रणीतास्तेषु कतिचिदेव मुख्यतमा अत्र निर्दिश्यन्ते। तत्र व्याकरणशास्त्रे अमोघाचार्यकृता शाकटायनामोघवृत्तिर्यक्षवर्मकृतः शाकटायनचिन्तामणिः श्रीपूज्यपादस्वामिकृतं जैनेन्द्रव्याकरणमभयनन्दिकृता जैनेन्द्रमहावृत्तिः श्रीप्रभाचन्द्रकृतो जैनेन्द्रशब्दार्णवः शर्ववर्मकृतं कलापव्याकरणं श्रीशुभचन्द्राचार्यकृतः प्राकृतलक्षणशब्दचिन्तामणिः स्वोपज्ञटीकासहितः पण्डितराजवर्धमानकृतो गणरत्नमहोदधिरन्ये च ग्रन्थाः। न्यायशास्त्रे श्रीप्रभाचन्द्रकृतः प्रमेयकमलमार्तण्डः श्रीअकलङ्कदेवकृताऽष्टशती श्रीधर्मभूषणयतिकृता न्यायदीपिका विद्यानन्दिस्वामिकृता अष्टसहस्र्याप्तपरीक्षाप्रमाणपरीक्षाः प्रभाचन्द्रकृतो न्यायकुमुदचन्द्रोदयोऽन्ये च ग्रन्थाः। साहित्यशास्त्रे अजितसेनकृतोऽलङ्कारचिन्तामणिर्वाग्भटकृते वाग्भटालङ्कारकाव्यानुशासने सोमदेवसूरिकृतं यशस्तिलकचम्पूकाव्यं वादीभसिंहकृतो गद्यचिन्तामणिः श्रीभगवज्जिनसेनकृतः पार्श्वाभ्युदयः श्रीहस्तमल्लिकविकृता सुभद्रानाटिका समन्तभद्रस्वामिकृतं जिनशतकाचित्रबद्धकाव्यमन्ये च बहवः साहित्यग्रन्थाः। दर्शनग्रन्थेषु श्रीअकलङ्कदेवकृतं राजवार्तिकं विद्यानन्दिकृतं श्लोकवार्तिकं श्रीपूज्यपादकृता सर्वार्थसिद्धिर्देवसेनसूरिकृताऽऽलापपद्धतिरुमास्वामिकृतं मोक्षशास्त्रमन्ये च ग्रन्थाः। प्राकृत (महाराष्ट्री) भाषायां लिखितग्रन्थेषु नेमिचन्द्रकृतो गोम्मटसारस्त्रिलोकसारलब्धिसारौ च भूतबलिकृता धवलजयधवलमहाधवलाः श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकृता नाटकसमयसारात्मख्यातिप्रवचनसारपञ्चास्तिकायाद्यो ग्रन्था अन्ये च ग्रन्थाः। गणितशास्त्रे भद्रबाहुस्वामिकृता भद्रबाहुसंहिता सार्धद्वयद्वीपप्रज्ञप्तिश्चान्ये च ग्रन्थाः। पुराणेषु जिनसेनाचार्यकृतमादिपुराणं

रविषेणकृतं पद्मपुराणं (जैनरामायणं) वादिराजसूरिकृतं पार्श्वपुराणम् । प्राकृत (महाराष्ट्री) भाषायां लिखितेषु ग्रन्थेषु पुष्पदन्तकृतं त्रिषष्टिशलाकापुराणं तथा हरिवंशश्च प्रधानतमा ग्रन्थाः । न्यायव्याकरणादिविषयेभ्यः प्रचलितग्रन्थेभ्य एतेषु को विशेष इति निर्णेतुमनधीत्यैतान्नैव संभाव्यते, परं तत्तच्छास्त्राधिकारिणां जिज्ञासूनां सौकार्यार्थमयमत्र नामनिर्देशः कृतः

जैनमतस्य किं तात्त्विकं स्वरूपमित्यत्र विविच्यते । प्रायः सर्वेषु धर्मेष्वस्मिञ्जगति कतिपयभारतीयधर्मान् विहायेश्वरो जगतः कर्त्तेत्याम्नायते । भारतीयेषु मतविशेषेष्वनीश्वरवादिनोऽपि धर्माम्नाताः । क्षणिकसुखदुःखादिकारणमज्ञानं बन्धस्तदभावश्च मोक्ष इत्यन्यान्यपर्यायशब्दैः सर्वाणि मतानि प्रख्यापयन्ति । तत्र साङ्ख्यवद्बौद्धजैनादयोऽपि जगत्कर्तृत्ववानीश्वर इति न वदन्ति । जैनानां मते षड् द्रव्याणि जीवपुद्गलाकाशकालधर्माधर्माः । अनादिरनन्तश्चायं प्रपञ्चः । सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मको मोक्षमार्गः । बद्धदशामारभ्यामुक्तेश्चतुर्दश गुणस्थानानि । तत्राद्यानि पञ्च श्रावकाणामभ्यासानुरोधेन । ततः सप्त स्थानानि जैनमुनीनामभ्यासपरिपाकापेक्षया । त्रयोदश स्थानं सयोगकेवलिनः । स एवार्हत्पदभाक् । तेषु केचित्तीर्थकरत्वं प्रतिपद्यन्ते न तु सर्वे । चतुर्दशं स्थानं यमरयोगकेवलिनः । अन्तिमौ द्वौ जीवन्मुक्तौ परमात्मानाविति कथ्येते । सप्त पदार्थास्तेषां, यथा जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षाः । तत्राजीवपदेन पुद्गलादीनि पञ्च द्रव्याणि गृह्यन्ते । आस्रवो नाम कायवाङ्मनःकर्म योगः । बन्धो नाम पुद्गलात्मनोर्योगः । आस्रवनिरोधः संवरः । तपो निर्जरा । अजीवाज्जीवस्य पृथक्स्थितिर्मोक्षः । हिंसाऽसत्यस्तेयाऽब्रह्मपरिग्रहाः पापानि । हिंसा नाम प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणम् । तथैवाऽसत्यं प्रमत्तयोगादसदभिधानम् । स्तेयं प्र० अदत्तादानम् । अब्रह्म प्र० मैथुनम् । परिग्रहो मूर्च्छा (ममत्वपरिणामः) ।

पुरा किल त्रय एव वर्णा गुणकर्मानुरोधेन समाम्नाताः ऋषभदेवेनास्मिन् कल्पे, तत्पुत्रेण ब्राह्मणवर्णोऽपि निर्मित इति जैनानामाशयः । त्रिपञ्चाशत्सन्ति गृह्यसंस्काराः । तत्र त्रैवर्णिकाचारविषयको भद्रबाहुसंहिताख्यो ग्रन्थः संस्कारकर्मणि पुराणवाक्यानि पठ्यन्त इति च भाति । जैनमतानुसारेणाऽन्यधर्मावलम्बिनो जैनधर्मं गृह्यन्ते ।

बौद्धजैनमतयोः को विशेष इत्यत्र किञ्चिल्लिख्यते । बौद्धानां प्राचीन–

धर्मग्रन्थाः समुपलभ्यन्ते न तथा जैनानामिति बहवोऽनधीतजिनशास्त्रा-श्चिरं जिन इति शाक्यमुनिर्गौतमस्यैवापरं नामेति मन्यन्ते स्म। उभयमतवादिन स्वान्तिमधर्मप्रवक्तारं जिनार्हन्महावीरसर्वज्ञसुगततथागतसिद्धबुद्धसम्बुद्धपरिनिर्वृतमुक्तेत्यादिनामभिर्निर्दिशन्ति, स्वस्वतीर्थंकरमीश्वरवत्संमानयन्ति, मूर्त्यादिभिश्च पूजयन्ति, तथास्य स्वमतस्याहिंसालक्षणे धर्मविशेषे दृढनिर्भरा इति च वदन्ति। अत्र बौद्धमतं जैनमतादतीव भिन्नं, तेषामाचार्यपरम्परा भिन्ना, तेषां संज्ञाविशेषाश्च भिन्ना, न केवलमेतौ धर्मावन्यौ किन्तु परस्परविरुद्धावेतौ, जिनमतं च तयोः प्राचीनतरम्। तत्र जिनशास्त्रे कृतपरिश्रमा नवीना विद्वांसो वेबरयाकोबीप्रभृतयो जैनसिद्धान्तादिग्रन्था बौद्धग्रन्थेभ्यो महता कालेनाव्यवहिता इति प्रमाणयन्ति। श्वेताम्बरग्रन्था देवर्धिगणिसमये लिखिता इति चाहुः। तत्राद्योपलभ्यमानग्रन्थानां सिद्धान्तग्रन्थग्रन्थनकालापेक्षयाऽर्वाचीनत्वेऽपि तेषां सम्प्रदायपरम्परया आगततया प्राचीनत्वमप्रतिहतमिति पाश्चात्याः। दिगम्बरजैनग्रन्थाः केचिद्यथा कुन्दकुन्दाचार्यकृताः प्रवचनसारादयोऽतिप्राचीनाः। खिस्तीयप्रथमशताब्द्यां कुन्दकुन्दाचार्यो बभूवेति 'इंडियन् अ न्टिक्वरी' इत्याख्यस्य ग्रन्थस्यैकविंशतितमे खण्डे मुद्रितदिगम्बरजैनपट्टावल्यनुसारेण ज्ञायते। खिस्तीयपञ्चमशताब्दिसमुत्पन्नश्वेताम्बरजैनदेवर्धिगणिप्रणीतग्रन्थेभ्यो दिगम्बरजैनानां कतिपयग्रन्था प्राचीनतरा इति प्रतिभाति। सम्यगधीतेषु तेषु ग्रन्थेषु ज्ञायते यज्जैना जिनमहावीरार्हन्सिद्धेतिसंज्ञाभिः प्रायो निर्दिशन्ति स्वतीर्थंकरान्महावीरप्रमुखांस्तथा बौद्धाः सुगततथागतेत्यादिनामभिः शाक्यमुनिम्। अन्यानि नामानि च यथार्थाक्षराणि विनियुज्यन्ते। बौद्धमताविरुद्धं च मनुजानां देवरूपेण पूजनं मूर्त्यापादनं च। निर्विवादसर्वसंमतप्राचीनत्वस्य वैदिकधर्मस्य तावद्देवताद्रूपूजनं प्रधानं लक्षणम्। यदि जैनैस्तदन्येभ्यः परिगृहीतमिति स्वीक्रियेत तर्हि तद्वैदिकमतानुयायिभ्यो भवितुमर्हति न ताद्रूपूजनविरुद्धेभ्यो बौद्धेभ्यः। यो यो हि मतविशेषो येषां सोऽन्येभ्य एव गृहीतोऽभविष्यदिति तु नावश्यकम्, सर्वे साधारणा महापुरुषा बाढमेताद्दक्पूजनकल्पने सुसमर्थाः। अनेनैवाऽहिंसालक्षणसाम्यं व्याख्यातम्। इद तावदत्रानुसन्धेयम्-बौद्धाः स्वप्राचीनग्रन्थेषु महावीरप्रमुखजिनवरनिर्देशे न कुत्रापि नवीनमतप्रचारकत्वं तेष्वापादयन्ति। किन्तु प्रचलितमतप्रतिपादकत्वमेव जैनाना-

मिति बौद्धग्रन्थकृदाशयोऽनुमीयते । अनेन जैनमतस्य बौद्धमतापेक्षया प्राचीनत्वं सिद्ध्यति । शाक्यमुनिः षड्वर्षावधितपस्यामुग्रां कृत्वा तपसो नैष्फल्यमवगम्य कालान्तरेण सम्बोधिं जगाम नवीनं च मतं प्रख्यापयामास । महावीरः पुनर्द्वादशवर्षावधितपस्यां कृत्वा तपोबहुफलं मत्वा तपसि सर्वोऽजनान् प्रेरयामासेत्यस्त्ययं महान्विशेषो बौद्धजैनमतयोः । किञ्च बौद्धमते न केवलं परमात्मनोऽस्तित्वमनावश्यकं किन्त्वात्मनोऽपि सत्त्वमस्ति नवेति न ज्ञायते । जैनमते पुनर्न केवलं जीवास्तित्वं प्रमाणितं किन्तु जले वृक्षादिस्थावरवस्तुन्यपि तद्विधीयते ।

एवंस्वरूपमतावलम्बिनां दिगम्बरजैनानां काशीस्थस्याद्वादमहाविद्यालयवद् बहून्यन्यानि विद्यापीठानि, बहवः संस्थाविशेषा भारतवर्षे विद्यन्ते । तत्र मोरेनग्रामे सिद्धान्तविद्यालयं हस्तिनापुरे ऋषभब्रह्मचर्याश्रम आरानगरे सिद्धान्तभवनं दिल्ल्यामनाथबालकाश्रमो बहुवश्चान्ये छात्राश्रमाः श्राविकाश्रमा विधवाश्रमाः जैनमहोदयैः सर्वत्र संस्थापिता अन्यांश्च संस्थापयिष्यन्तीत्याशास्महे । तथा सुबहूनि वृत्तपत्राणि साप्ताहिकपाक्षिकमासिकत्रैमासिककालेन जिनमतप्रसारं कुर्वन्ति । अस्य दिगम्बरजैनसङ्घस्य भूषणमिव विशिष्टं स्याद्वादमहाविद्यालयस्य मन्त्री कुमारो देवेन्द्रः स्वेनापरिश्रान्तव्यापारेणानेकसंस्थाः यद्वाविस्त्रौदासिन्यालस्यादिभ्यो नैकविधप्रायिकविघ्नग्रहेभ्यः परिहरन् स्वमन्त्रप्रभावेणोज्ज्वलीकरोतीति महत्खलु भाग्यमेतासां संस्थानाम् । आशास्महे च तस्य तत्सहशाग्यजैनवराणां व्यवहारशास्त्रविद्ग्धाजितप्रसादप्रमुखाणां च प्रयत्नसामार्थ्यात्तथा स्याद्वादविद्यालयाध्यक्षशीतलप्रसादब्रह्मचारिसमानैकतपोधनतपःसामर्थ्याज्जैनविश्वविद्यालयमचिरेणैव कालेन सुसमृद्धजैनश्रेष्ठिवर्गसाहाय्येनाज्ञानतिमिरान्धं जनं दिव्यचक्षुष्कं करिष्यतीति शम् । *

लड्डुवंश्यः कृष्णात्मजस्तुकारामशर्मा ।

नोट—* इसके बाद आपने एक शिलालेख दिया है कि जिसके विषयमें पीछे कुछ कहा गया है, वह हमारी प्रथम किरणके १६वें पृष्ठमें प्रकाशित हो चुका है इसलिये पुनः यहां उद्धृत करना हम उचित नहीं समझते । सं० ।

विविध विषय।

व्याख्याताके चित्रका परिचय—आप पंढरपुर (शोलापुर) के निवासी हैं। यद्यपि आपने अपने घरपर भी बहुत-कुछ विद्याध्ययन किआ था लेकिन मुख्यता तभीसे समझनी चाहिए जबसे कि आप ईस्वी सन १९०२ में बनारस पढ़नेकेलिए पहुंचे। इस समय आपकी अवस्था लगभग १९ वर्षकी थी। आप "सेन्ट्रलहिन्दूकोलेज" में भर्ती हुए और, वहांपर अपने अविश्रान्त-परिश्रम, सदाचार, दैवी-बुद्धि आदि छात्रोचित गुणोंसे एक सुयोग्य छात्र गिने जाते थे। यहांसे आपने सन् १९०६ में बी०ए०की डिग्री प्राप्त कर "क्विंसकोलेज, बनारस" में डा० भिनिस और, महामहोपाध्याय पं० गङ्गाधर शास्त्री, तैलिङ्गसे संस्कृत पढ़नेकेलिए "साधूलाल-छात्र-वृत्ति" प्राप्त की। इसकेलिए आप सबसे प्रथम छात्र चुने गये थे। यहांपर तीन वर्ष पढ़नेके बाद आपको भारतसरकारने पाश्चिमात्य-अनुसंधानकी उच्च शिक्षा पानेकेलिए योरुप भेजा। पाश्चिमात्य-अनुसन्धानकी उच्च शिक्षा पानेकेलिए योरुपमें जानेवाले संस्कृतज्ञोंमें आपका ही नम्बर सबसे पहिले है। वहांपर आप दो वर्ष पढ़े और, "केंब्रिज" विश्वविद्यालयसे ओनरके साथ बी०ए०की डिग्री प्राप्त की।

तदन्तर आप जर्मनी भी पहुंचे। यहांपर आप प्राकृत भाषा पढ़ते थे और, उसीमें व्याख्यान भी देते थे। आपने जैनाचार्य त्रिविक्रमका बनाया हुआ प्राकृत-व्याकरण पढ़ा। यहांके बड़े २ प्रोफेसरोंसे दो वर्ष तक शिक्षा ग्रहण कर "हले" यूनिवर्सिटीसे बड़े महत्वके साथ सन् १९१२ दिसम्बरमें पी०एच०डी०की डिग्री प्राप्त की।

आपका परिश्रम और, ग्रन्थ-आलोडन बड़ा विकट होता है क्योंकि आपने अभी तक जितनी परीक्षाएं दी हैं उन सबोंमें आप प्रथम श्रेणिमें ही उत्तीर्ण हुए हैं।

यद्यपि "जैनधर्म भी संसारमें एक धर्म है" इस बातका पता आपको अपनी जन्मभूमिसे ही ज्ञात था लेकिन जर्मनीमें डा० एच० जैकोबी

आदि विद्वानोंसे इस बातका बहुत कुछ हाल मालूम हुआ कि "जैनधर्म क्या वस्तु है" और, तभीसे इसकी ओर आपकी धीरे २ रुचि बढ़ती चली आरही है।

जबसे आप जर्मनीसे भारत वापिस आये हैं तभीसे भारतसरकारने "क्विंसकोलेज, बनारस" का आपको प्रोफेसर नियुक्त किआ है। वहांपर सबसे पहिले आपको प्राकृत पढ़ानेका भार सौंपा गया। उसमें आप डा० हर्मन जैकोबीकी चुनी हुई प्राकृत-पुस्तकें पढ़ाते थे जिनमें कि कुछ २ जैनाचार्योंका भी वर्णन है। सन् १९१४से आपको शिलालेखादि विषयके पढ़ानेका काम दिआ गया है जो कि उस कोलेजमें एक नवीन विभाग खोला गया है। उसमें अधिकांश शिलालेख अशोकके समयके हैं जिनसे कि जैन साहित्यके अवलोकनकी आपको अत्यन्त आवश्यकता प्रतीत हुई। तबसे आप विशेष रीतिसे जैन ग्रन्थोंका अवलोकन तथा मनन करते आरहे हैं। भास्करको प्रथम किरणमें प्रकाशित भद्रबाहु और, चन्द्रगुप्त विषयका जो शिलालेख आपको मिला है वह संसारमें आपकेलिए एक अपूर्व वस्तु हुई है। हर्षका समाचार है कि इस समय आप कुन्दकुन्दस्वामीके बनाये हुए प्रवचनसार नामक प्राचीन सिद्धान्त-ग्रन्थका इंग्लिश भाषामें अनुवाद कर रहे हैं।

लंदनकी "रायलएसियाटिकसोसाइटी" का जो एक प्रतिष्ठित पत्र निकलता है जिसमें कि लेख भेजनेका विरलोंको ही सौभाग्य प्राप्त होता है। उसमें भी आपके लेख प्रकाशित हुआ करते हैं।

चन्द्रगुप्तके चित्रकारका परिचय—इस किरणमें महाराज चन्द्रगुप्तके सोलह स्वप्नवाला जो चित्र प्रकाशित हुआ है उसके चित्राङ्कण-कर्त्ता "मीरमहम्मद अब्दुलगनी साहिब, मसब्बिर-टट्टौला" हैं। आपकी अवस्था इस समय लगभग ६५ वर्षकी है। आप लखनऊके वाजदअली शाहके दरबारमेंके एक सुप्रसिद्ध चित्रकार हैं। नब्बाब नसीरुद्दीन हैदरके दरबारमें आपके पिता एक प्रतिष्ठित चित्रकार थे जो कि वाजदअली शाहके दरबारमें भी कुछ दिनों तक रहे थे और, हमारे इस चन्द्रगुप्तके

ष्चित्रके चित्रकार तो वाजदअली शाहके अन्तिम समय तक उनके दरबारमें रहे। यहां आपने कितने ही अपूर्व चित्र कथा-पहेलिओंकी पुस्तकोंमें, हाथीदांतकी पटरिओंपर, तथा कागजोंपर बनाये। ये सब चित्र बादशाहके मरनेके बाद विलायत चले गये। उसी समयका बना हुआ वाजदअली शाहका चित्र लखनऊको शाही-चित्रशालामें अभी भी विद्यमान है। आपके चित्र-नैपुण्यकी प्रख्याति सुनकर नैपालके महाराज चन्द्रसमसेरजंग साहिबने आपको अपने यहां बुलाकर अपना और, अपनी रानीका चित्र आपसे बनवाया। चित्रकी सर्वाङ्ग सुन्दरतासे मुग्ध होकर महाराज साहिबने आपको अच्छा पारितोषिक दिआ और, आपकी बड़ी प्रशंसा की। इसके अतिरिक्त आपने कई बड़े २ अंग्रेजों और, मेमोंके भी चित्र हाथीदांतको पटरिओंपर बनाकर विलायत भेजे, जिनकी वहां बड़ी प्रशंसा हुई। आपने कितने हो राजे-रजवाड़े और, अमीरोंके चित्र बनाये जो कि अभी तक उनके घरोंमें टँगे हुए हैं। इन्हींमे स्वर्गीय बाबू देवकुमारजीने सोलह स्वप्नसे संयुक्त मरुदेवी माताका चित्र बनवाया था। कलकत्ते और, काशीकी प्रदर्शिनोमें चित्रकलाके जाननेवाले विद्वानोंने इस चित्रकी बड़ी प्रशंसा की थी। इसके अतिरिक्त बाबू साहिबने श्रीसम्मेदशिखरजी तथा पावापुरीजीका भी चित्र आपसे ही बनवाया था। हालमें श्री१००८ भगवान् ऋषभनाथजीके समवशरणका और, स्वर्गीय बाबू देवकुमारजोका अत्युत्तम चित्र आपने चित्रित किआ है। ये सब चित्र "भवन"की चित्रशालामें विद्यमान हैं जो कि उसकी शोभाको बढ़ा रहे हैं जिनको दर्शकवृन्द देखकर बड़ी प्रसन्नतासे भारतीय-चित्रकलाकी प्रशंसा करते हैं।

नोट—आप १० वर्षों से "भवन"के मन्त्री महोदयके मकानपर रहते हैं। बाबू साहिबकी निरीक्षकतामें आपने ये सब चित्र बनाये हैं। जिन महाशयोंको धार्मिक ग्रन्थोंमें चित्र खिंचवाने तथा मन्दिरोंमें लटकानेके भाव, पट या अपने चित्र खिंचवाने हों वे भवनके मन्त्रीसे पत्र-व्यवहार करें।

समाचारावलिः—

(१) तारीख २२-७-१९१४ को दानवीर जैनकुलभूषण श्रीयुत सेठ माणिकचन्द्रजी जे०पी०का स्वर्गवास हो जानेके कारण देहलीके जैन भाइयोंको बहुत शोक हुआ। इसपर एक शोक-सभा कर सेठजीके कुटुम्बिओंके पास सहानुभूति-सूचक एक तार दिआ गया।

(२) तारीख१-८-१४को श्रीयुत लाला मोतीरामजी जैन देहलीवालोंने अपने तीर्थक्षेत्रकी यात्रा करनेकी खुशीमें स्थानीय जैनपाठशालाओंके अध्यापकों सहित लगभग ३५० बालक-बालिकाओंको मिष्टान्नका आहारदान देकर १७२) रु०का नकद विद्यादान किआ।

(३) गृहस्थोंका मुख्य धर्म दान है, जिसके प्रभावसे वे उच्च पदके अधिकारी हो इस लोकमें यशस्वी और, परलोकमें अभ्युदयको प्राप्त करते हैं।

वर्तमान समयमें सम्यक् विधिके अनुसार विवाह-संस्कार करानेमें "मिथ्यात्वतिमिरनाशिनी सभा" के सभासदोंके उद्योगसे जैन-समाजको जो सफलता प्राप्त हुई है वह पाठक महाशयोंसे छिपी नहीं है अर्थात् प्रतिशत ६० विवाह जैन-पद्धतिसे होते हैं और, प्रतिवर्ष औसत बढ़तीपर ही दृष्टिगोचर हो रही है।

इस सभाने केवल मिथ्यात्व ही नहीं हटाया है किन्तु सज्जनोंको समीचीन दान देनेमें भी प्रवृत्त किआ है जिसके समाचार यथासमय सज्जनोंको भेट करते रहे हैं। आज ऐसा ही एक-औरस माचार आपके दृष्टि-गोचर करते हैं:—स्वर्गवासी पं० ज्ञानचन्द्र भगवानदासजीकी पौत्री और, किशोरीलालजीकी दौहित्रीका विवाह, प्रभावना-प्रभावक यशस्वी लाला मेहिरचन्द्रजीके सुपौत्र छुट्टनलालके साथ मिती ज्येष्ठ सुदी ८ श्रीवीर संवत् २४४०-को बड़े समारोहके साथ हुआ जिसमें वेश्यानृत्य आदि कुरीतिआं न होकर तथा अपनी फुलवाड़ी (पुष्पवाटिका) को न लुटवाकर सभाकी स्थायी फुलवाड़ीके साथ अपनी कीर्तिरूपी फुलवाड़ीको विस्तृत किआ और, उभय पक्षसे संस्थाओंको जो द्रव्य प्रदान किआ गया है वह अन्य गृहस्थिओंके अनुकरणीय है। जिसका विभाग निम्न-प्रकार है:—

पुत्रीपक्षका दान, लाला किशोरी-
लालजीकी तरफसे।

१११) जैनकन्याशिक्षालय, धरमपुरा (देहली)
११) नकद
१००) पाठशालामें फरश लगानेको
५१) स्त्रीसभा, शास्त्रवाचनालय (मकानके बनानेको)
२५) जैनट्रैक्ट।
२१) जैनपाठशाला, धरमपुरा (देहली)
२१) जैनविद्यालय, सेठका कूचा (देहली)
२१) स्याद्वादमहाविद्यालय, बनारस
२१) श्रीसम्मेदशिखरजी तीर्थराज
२१) श्रीगिरनारजी
२१) जैननाटकशाला, देहली
११) जैनअनाथाश्रम, देहली
११) श्रीऋषभब्रह्मचर्याश्रम, हस्तिनापुर
११) जैनसिद्धान्तपाठशाला, मोरेना
११) श्राविकाश्रम, मुरादाबाद
११) मिथ्यात्वतिमिरनाशिनी सभा, देहली
१४॥) जैन समाचार पत्र
११) श्रीसोनागिरजी तीर्थराज
१०) श्रीहस्तिनापुर जैनमन्दिरजी
१००) जैनबोर्डिंग (छात्रालय) देहली

५०३॥) कुलजोड़

पुत्रपक्षका दान लाला मिहरचन्द्रजी
साहिबकी तरफसे।

११) जैनपाठशाला, धरमपुरा (देहली)
१०) जैनकन्याशाला, धरमपुरा (देहली)
१००) अनाथाश्रम (४३ लड़कोंको वस्त्रकेलिए)

१२१) कुलजोड़

इसके अतिरिक्त लाला किशोरी-
लालजीने

श्रीहीरालालजैनविद्यालय, जैनविद्यालय सेठका कूचा, जैनपाठशाला धरमपुरा आदिके छात्रोंको मिष्टान्न प्रदान किया।

अत एव हम दम्पतीको शुभाशीर्वाद प्रदान करते हैं कि वे दाम्पत्य-सुख-साधन करते हुए त्रिवर्गका पालन करें॥ शम्।

प्रेषक—जगन्नाथ जैन, मंत्री।

(४) बम्बईकी "श्रीजीवदयाज्ञानप्रकाशक मण्डली" अभी तक जीवदया-संबन्धिनी लगभग २५०००० पुस्तकें भिन्न २ भाषाओंमें प्रकाशित कर चुकी है, और, वर्त्तमानमें अपने उपदेशकोंद्वारा स्थान२पर भ्रमण कराकर जीवदयाका प्रचार कर रही है। यह सभा योरुपके प्रसिद्ध २ स्थानोंमें ऐसे आश्रम और, स्थानोंके बनवानेका भी प्रयत्न कर रही है कि जिनके-द्वारा निरामिष-भोजी हिन्दू यात्रिओंको बिना किसी कठिनाईके उनके धर्मशास्त्राज्ञानुसार, वहांपर भोजनादिकी सामग्री मिल सके। इस उद्देश्यकी सिद्धिकेलिए उपर्युक्त सभाने कई बड़े २ राजा-महाराजाओंकी भी सहानुभूति प्राप्त की है।

वास्तवमें हिन्दू भारतवासी अपने व्यापार और, संसारकी उन्नति तभी कर सके हैं जब कि वे काशी, गया आदि स्थानोंपर घाट बनानेका विचार छोड़ लन्दन सरीखे शहरोंमें "भारतीयाश्रम" बनानेका विचार करें।

(५) "श्रीजैनसिद्धान्तविद्यालय, मुरैना"के छात्राश्रमके ये चार-पांच नियम अबकी बार बड़े ही अपूर्व बनाये गये हैं:— (१) कुप्पेका (चर्मस्पृष्ट) घृत, तैल, जल न लिआ जाय (२) बिना छना पानी किसी भी काममें न लिआ जाय (३) रात्रिमें अन्नका पदार्थ न खाया जाय (४) कन्दमूलका भक्षण न किआ जाय (५) बैंगन गोभी नहीं बनायी जाय।

ये कुछ २ प्रतिमा-चारित्र और, कुछ २ ज्ञानान्धकारसे प्रचलित चारित्र विद्यार्थियोंकेलिए परमावश्यकीय हैं यह बात क्या किसी प्राचीन आर्ष ग्रन्थमें निकली है? नहीं तो फिर इतनी आत्मिक-निर्बलता क्यों?

(६) जर्मनोंके यहां एक प्रकारकी तोपें हैं जो कि १७ इञ्चका गोला दागती हैं जिन्होंने नामूरसरीखे सुविशाल किलोंको देखते २ धराशायी कर दिए। ये भयंकर तोपें सैनिकोंद्वारा आगे २ बिछती हुई रेलोंपर चलती हैं। इनकी धमक ही केवल इतनी हाहाकारिणी होती है कि इनके चलानेवाले सर्वोत्तम इंजनियर भी बहुत दूर खड़े होकर बिजलीसे गोला दागते हैं। इनके एक २ गोलाके दागनेमें १८७५०) रु० व्यय होते हैं।

(७) "सत्यवादी" के जन्म-दाता संपादक महोदय पं० उदयलालजी काशलीवालने अब उसका संपादन-कार्य छोड़ दिआ है। आपने अभी तक किस योग्यतासे पत्रका सुसंपादन किआ है इस बातका पता समाचार-पत्र-

प्रेमिओंसे छिपा न होगा क्योंकि आपने एक ही दम इस गुरुतर पदको ग्रहण नहीं किआ था किन्तु क्रमानुसार ही—आप बहुत दिनों पहिलसे लेख लिखते आरहे थे और, कई पुस्तकोंका संग्रह तथा अनुवाद भी आपने हिन्दी-भाषामें किआ था जिससे आप हिन्दीकी लेखन-प्रणालिसे भली-भांति परिचित हो चुके थे। आपने इस पदके छोड़नेके समाचार लिखते समय कोई कारण नहीं बतलाया है, इससे जैन-समाजके मनमें नाना प्रकारकी कल्पनाए उठ रही हैं। अस्तु।

आपके बाद एक ऐसे सुयोग्य व्यक्तिके संपादक होनेका नामोल्लेख पढ़ा गया है कि जो जैनिओंकी पुरानी एवं प्रसिद्ध कई संस्थाओंके फल-स्वरूप हैं। इसीलिए आपके कर्तव्योंकी अपेक्षासे तो हमें यह कहना पड़ता है कि आप संस्थाओंसे परिपक्व होकर अलग होनेके साथ ही किसी भी सामाजिक-कार्यके संपादनद्वारा अपने मीठे रससे समाजको सन्तुष्ट और, उसका प्रत्युपकार करते लेकिन सुबहका भूला शाम तक यदि घर आजाय तो वह भूला नहीं कहलाता। इसलिए इस बातको सुनकर हमें अब भी हर्ष हुआ है कि "सत्यवादीके संपादक अब पं० खूबचन्द्रजी हुए हैं"। हमारी समझसे तो आप यदि किसी पाठशालाकी अध्यापकी-द्वारा या प्राचीन सिद्धान्त-ग्रन्थोंके अनुवादद्वारा या तत्त्वप्रकाशिनी सभाके "तत्त्वप्रकाशक" पत्रकी संपादकीद्वारा, इस सामाजिक-पत्रके संपादनकी अपेक्षा, समाजको अधिक लाभ पहुंचा सके थे क्योंकि आप संस्कृत, प्राकृतके अच्छे ज्ञाता हैं और, जैन-दर्शन तथा जैन-साहित्यके आलोचनमें तो आपने अपनी युवक-शक्ति ही खर्च की है। उसपर भी आपको स्या० वा, वा० ग० के०, न्या० वा०, पं० गोपालदासजी बरैयाके मुख्य शिष्यत्वका तथा उन्हींके समकक्ष-मित्र अनुभवी पं० धन्नालालजी काशलीवालके सत्संगतिका सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

(८) कलकत्तानिवासी श्रीयुत सेठ दयाचन्द्रजीने अपने सुपुत्र महावीरके विवाहोपलक्ष्यमें प्रसिद्ध २ कई भारतीय संस्थाओंको सब मिलाकर ३१००)रु० का दान दिआ है जिसमें भवनकेलिए भी ५००) रु० हैं। सेठजी-का यह कार्य मारवाड़ी-अग्रवालोंमें सबसे प्रथम हुआ है। इस आपकी सच्ची वीरताकेलिए हम आपको धन्यवाद देते हैं और, यह आशा करते हैं कि आपके चिरंजीव पुत्र महावीर, यथार्थ महावीर सन्ततिके जन्म-

दाता होंगे। मालूम होता है कि स्वर्गीय बाबू धन्नूलालजी अटर्नीने अपनी माताके श्राद्धमें ब्रह्मपुरीके स्थानमें जिस सच्ची प्रभावनाका बीज बोया था उसका अंकुरा अब धीरे२ फैल रहा है। अन्य धनाढ्य महोदयोंको भी आपका अनुकरण करना चाहिए।

(९) वर्त्तमान समयमें प्रसिद्ध संसारभरके छह महाद्वीपोंमेंसे एक द्वीप योरुपकी कुछ बड़ी२ शक्तियोंमें परस्पर घमसान युद्ध हो रहा है जिसमें कि जर्मनी, टर्की, आस्ट्रिआ एक ओर और, इङ्गलेंड, रूस फ्रांस, जापान तथा सर्विआ एक ओर है। इसमें भारतको भी अपनी सरकार इंग्लैंडका पक्ष गृहण कर सच्ची राज-भक्ति दिखलानेका सुअवसर प्राप्त हुआ है। भारतने अपने २०००० वीर योद्धाओंको इस भीषण युद्धमें भेजनेसे ही अपने सरकारकी ऐसे विकट समयमें सहायता नहीं की किन्तु कई करोड़ रुपयोंको आर्थिक सहायता भी दी है और, दे रहा है। हर्षकी बात है कि भारतको भी बहुत दिनोंके बाद परदेशमें जाकर अपने वीरत्वके परिचय देनेका पुन सौभाग्य प्राप्त हुआ है। कितनी ही वीर-रमणिआं भी यहांसे युद्ध-स्थलमें जानेकेलिए हृदयसे तैयार थीं किन्तु लार्ड हार्डिंज महोदयने अभी उनकी सहायताकी कुछ अधिक आवश्यकता न समझकर उनका प्रार्थना-पत्र लौटा दिआ है। बड़े २ इतिहास-वेत्ताओंका कहना है कि महाभारतसे अभी तक संसारभरमें, इस महायुद्धके सिवा कोई-और दूसरा ऐसा भीषण युद्ध नहीं हुआ है। अनुमान किआ जाता है कि दोनों ओरसे लगभग डेढ़ करोड़ रुपयेका नित्य व्यय होता है। अभी तक इसे प्रारम्भ हुए ८ मास तो बीत चुके हैं फिर भी समर-शास्त्रके अनुभविओंका कथन है कि यह अभी कुछ दिनों तक और भी चलेगा। जो कुछ हो संसारको इससे बहुत बड़ा धक्का पहुंचा है। इसी महायुद्धके कारण यहांसे बहुत अधिक गेहूं योरुपको गया है जिससे कि इस समय यहांपर गेहूंका भाव ड़) ड़ा) रु० मन हो गया है इससे भारतकी प्रजा इस समय बहुत दुःखित है। जिसका प्रबन्ध करनेकेलिए सरकारका ध्यान भी इस ओर आकृष्ट हो चुका है।

(१०) इस साल "श्रीजैनसिद्धान्तभवन, आरा" के निरीक्षण करनेकेलिए सनातन, आर्य-समाज, जैन आदि प्रायः सभी धर्मोंके बड़े २ विद्वान् पधारे हैं। और, उन्होंने बहुत ही सूक्ष्म-दृष्टिसे "भवन" का अवलोकन कर "सम्मति-पत्रिका" में सन्तोष-जनक सम्मतिआं लिखी हैं कि जिनको भवनके मन्त्री महोदय अपनी रिपोर्टमें प्रकाशित करनेवाले हैं।

सरस्वती-मन्दिरकी आवश्यकता—जैन-समाजके धनिक महोदय प्रायः ऐसे २ सुदीर्घ आकाश-स्पर्शी जिनालय, चैत्यालय बनवाते हैं जिनमें कि पूज्य तीर्थंकरोंकी प्रतिमाएं; विराजमान होती हैं। जहांपर कि सांसारिक-दुःखोंसे उदासीन आत्माएं; भगवानको शान्त-मुद्रा, नासा-दृष्टि, ध्यानावस्था तथा परिणामोंको शान्त करनेवाली और-अनेक चित्र, पट, एकान्त आदि सामग्रिओंको देखकर शान्ति-आनन्द प्राप्त करती हैं; अपनी भूली हुई आत्माकी याद करती हैं प्रायश्चित्तोंसे कृतपापोंको धोकर आत्माको निष्कलङ्क करती हैं। उसपर भी ऐसे चैत्यालय, जिनालय एक-दो नहीं किन्तु जिस प्रसिद्ध शहरमें जाइए उसीमें दस-बीससे कम न मिलेंगे।

तो फिर क्या कारण है कि जिनवाणी माताका एक भी ऐसा शास्त्रालय न हो कि जिसमें वे व्यक्ति बैठकर अपने सन्देहको दूर कर सकें और अपने विचलित परिणामोंको स्थिर कर सकें कि जिनके हृदय, जैन-धर्म बौद्धोंकी शाखा है यह एक नूतन मत है, इसमें कोई राजा-महाराजा नहीं हुए इत्यादि मिथ्या किंवदन्तिओंके सुननेसे जैन-धर्मसे विचलित हो चले हों या उनके हृदयमें इस धर्मका पूर्वापर-इतिहास जाननेकी उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई हो। जो कि नाना जगहोंमें संगृहीत प्राचीन लिपिके ग्रन्थ, शिला-लेख, ताम्र-पत्र, पट्टावलिआं सिक्के आदि ऐतिहासिक सामग्रिओंके मथनसे लाभ उठा सकें। क्या जैनी लोग तीर्थंकरोंकी भांति जिनवाणी माताको अष्ट-द्रव्यसे पूजन, साष्टाङ्ग-नमस्कार, चौबीस तीर्थंकरोंके नामोंकी तरह उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंके नाम, गुणोंका बखान नहीं करते ?

याद रहे कि ऐसे समयमें कि जिस समय न तो तीर्थंकर हो हैं और, न गुरुओंका ही अस्तित्व है कि जिससे जिन-धर्म संसारमें टिक सका है और, चारों ओर अपनी शान्त-गम्भीर सुगन्धसे संसारका मन अपनी ओर खींच सका है, केवल जीर्ण-कलेवर रही-सही जिनवाणी माता ही जिन धर्मका अस्तित्व शेष रख सकी है और आगामीकी भी आशा इसीपर ही निर्भर है।

तथा ऐसे समयमें जब कि स्थानस्थानपर लायब्रेरिओंकी स्थापनाकेलिए लाखोंके लागतकी इमारतें बन चुकी हैं और, दिनदिनपर बन रही है। जैसे कि खुदाबख्श लायब्रेरी, बांकेपुर" एसिआटिक सोसाइटी, कलकत्ता" कन्हईलाल लायब्रेरी, कायमगंज" आदि। तो फिर उन लोगोंका "सरस्वतीमन्दिर" केलिए एक भी ऐसा सुविशाल दर्शनीय भवन न हो

कि जिनके मन्दिरोंकी विशालताकी भारत-वर्ष ही नहीं किन्तु अन्यान्य देश भी शत-मुखसे प्रशंसा करते हैं।

इस कार्यमें जैनिओंकी शास्त्र-भक्तिकी परीक्षा होगी। जो शास्त्र-भक्त अभी तक जिनवाणीकेलिए मन्दिरमें जाकर स्तुति और मन्त्रोच्चारण-पूर्वक अर्घ चढ़ाते हैं उनके उस हार्दिक-भक्ति-अंशका पूर्ण परिचय मिलेगा. आज वह 'भक्ति' कार्यमें परिणत होगी।

स्वर्गीय बाबू देवकुमारजीका यही विचार था कि एक ऐसी संस्था स्थापित की जाय जिसमें जैन-संबन्धी प्राचीन साहित्य, शिला-लेख, ताम्र-पत्र, शिक्का आदि ऐतिहासिक सामग्रिओंका संग्रह किआ जाय। परन्तु बाबू साहिबको जब कालने अचानक आ घेरा तब उस समय अपने सब कुटुम्बिओंके समक्ष कहा कि आप सब भाइओंसे और, विशेषतया जैन समाजके नेताओंसे मेरी अन्तिम प्रार्थना यही है कि प्राचीन शास्त्रों, मन्दिरों, शिलालेखोंकी शीघ्रतर रक्षा होनी चाहिए क्योंकि इन्हींसे संसारमें जैन-धर्म्मके महत्वका आस्तित्व रहेगा। मैं तो इस ही चिन्तामें था किन्तु अचानक काल आकर मुझे लिए जा रहा है। मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक इस कार्य्यको पूरा नहीं कर लूंगा तब तक ब्रह्मचर्य्यका पालन करूंगा। बड़े शोककी बात है कि अपने अभाग्योदयसे मुझे इस परम-पवित्र कार्य्य करनेका पुण्य प्राप्त नहीं हुआ अब आप ही लोग इस पवित्र कार्यके स्तम्भ स्वरूप हैं। इसलिए इस परमावश्यक कार्य्यका सम्पादन करना आप सबोंका परम कर्त्तव्य है।

वास्तवमें यह कार्य्य तो बड़े ही महत्व तथा व्ययका है किन्तु बाबू साहिबने इस कार्य्यका अंकुरारोपण करनेकेलिए यथाशक्ति प्रबन्ध भी कर दिआ है, जिसका फलस्वरूप यह "जैनसिद्धान्तभवन" उस बड़े सिद्धान्तभवनका नमूना सन् १९११ में स्थापित हुआ। इसमें जैन-धर्म्मके प्राचीन ग्रन्थ, शिला-लेख, दान-पत्र तथा चित्र आदिका संग्रह किआ गया है। जिससे जैन-धर्म्मके खोजी एक स्थानमें बैठकर थोड़े ही कालमें बहुतसा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। जो कि कुछ विद्वानोंकी सम्मतिओंसे भलीभांति विदित होगा।

यह "भवन" अभी तक श्रीमती श्रेयांसकुंवरजीके श्रीशान्तिनाथजीके मन्दिरके एक बगलवाली दालानमें है। किन्तु दिनोंदिन शास्त्र-संग्रहको

अधिकतासे अब यह स्थान चारों ओरसे घिर गया है। इसलिए अब इसमें कुछ भी और सामग्री रखनेकी जगह नहीं रही है। इस कारण इसकेलिए अब एक स्वतन्त्र मकानकी बड़ी भारी आवश्यकता आन पड़ी है। इसी आवश्यकताको देखकर श्रीमान् ऐलक पन्नालालजी महाराज जब यहां पधारे थे तब यहांके सभी पञ्चोंको उपदेश देकर इस मन्दिरसे सटी हुई एक जमीन जो स्वर्गीय बाबू शङ्करलालजीकी पञ्चोंके अधिकारमें थी उसे 'भवन' केलिए उन्होंने दिलवाई। इसकी रजस्ट्री वगैरह सब हो गई है। इसके अतिरिक्त यहांकी जैन-महिलाओंको भी धर्म्मोपदेशसे उत्तेजित कर इनसे 'भवन'के मकानकेलिए १५००) रु० का चन्दा लिखवा दिआ। स्वर्गीय बाबू देवकुमारजी भी अपने विलमें 'भवन'के मकानकेलिए २०००) रु० लिख गये हैं।

इस "सरस्वतीमन्दिर"के मकानका नक्शा और, खर्चका व्यौरा भागलपुरके एक सुयोग्य इंजिनिअर बाबू केशवप्रसादजीकेद्वारा तैयार हुआ है इसमें लगभग ५००००) रुपये खर्च होंगे।

ऐसे आदर्शभूत "जैनसरस्वतीमन्दिर"केलिए इतनी रकम बहुत थोड़ी है क्योंकि जैनिओंके यहां लाखों रुपयोंकी लागतके मन्दिर, धर्म्मशाला और, छात्रावास बने हुए हैं तथा बन रहे हैं कि जिनसे जैन-धर्म्मकी बड़ी प्रभावना हो रही है किन्तु आश्चर्य है कि भारत-वर्ष भरमें "जैनसरस्वती मन्दिर" अबतक एक भी नहीं बना है। जैन तथा अजैन समाजमें जैन-धर्म्मका गौरव बढ़ानेवाला आदर्शस्वरूप यह एक 'भवन' ही है। जैनिओंके मन्दिरोंको जहां इतनी प्रशंसा है वहां ऐतिहासिक अथवा "सिद्धान्तमन्दिर"की भी सर्वोत्तमताकी ज्योति भारत-वर्षमें देदीप्यमान कर देनी चाहिए।

स्वर्गीय बाबूजीकी यह अन्तिम अभिलाषा थी कि यदि मैं जीता रहा तो सब देशोंमें घूमकर सर्व साधारण भाइओंसे सहायता लेकर जैन-इतिहासके उद्धारके उद्देश्यसे इस संस्थाको आदर्श बनाऊंगा कि जिससे जैन-धर्मका उद्योत भारत-वर्षमें फिर भी एक वार वैसा ही हो जाय। किन्तु आश्चर्य है कि इस कराल कालने बाबू साहिबकी इस सदभिलाषाको पूरी न होने देकर उनको सदाकेलिए स्वर्ग-सदनका अतिथि बना दिआ।

आप सब भाई तथा हमारी भगिनिआं इस बातके पूर्ण साक्षी हैं कि स्वर्गीय बाबू देवकुमारजीने धर्म्म और, समाजकी अपने जीवन भर कैसी

सेवा की है। अब आप सबोंका यह कर्त्तव्य है कि जिस तरह धार्मिक अथवा सामाजिक सेवोपलक्ष्यमें अपने शुभ-चिन्तकोंको बड़ी २ उपाधिओंसे लोग समलङ्कृत करते हैं अथवा उनके नामसे अन्यान्य संस्थाएं स्थापित कर प्रत्युपकृत होते हैं, उसी प्रकार बाबू साहिबकी उस अन्तिम अभिलाषाकी अपने तन, मन, धनसे पूर्ति कर आप सब अक्षय पुण्यके भागी हों। अभी तक आप लोगोंने मन्दिर आदि बनानेका तो बहुत पुण्य लाभ किआ ही है किन्तु सिद्धान्त-मन्दिरके निर्माण-जन्य पुण्योपार्जनका यह पहिला ही अवसर है।

इसलिए मुझे तो पूर्ण आशा है कि सिद्धान्त-मन्दिर अथवा ऐतिहासिक-मन्दिरकी आवश्यकता और उसके महत्त्वपर विचारकर हमारे सर्व साधारण भाई तथा भगिनिआं यथाशक्ति शीघ्र ही द्रव्यादिकी सहायता देनेका पुण्योपार्ज्जन करेंगी। जो भाई योग्य-सहायता करेंगे उनके नाम सुवर्णाक्षरोंमें लिखकर "भवन"में लटकाये जाइंगे।

विनीत-प्रार्थक :

करोड़ीचन्द्र जैन. मन्त्री—"भवन"।

सूचना —क्योंकि धन्नूलाल अटर्नी, एट-लो, रईस—मदनमोहन चटर्जी लेन नं० ४ कलकत्ता और, परमेष्टीदास सरावगी, रुजगारी और, व्यापारी, रईस—जगमोहनमल्लिक ष्ट्रीट नं०२ कलकत्ताने अपनी ओरसे तथा भारतवर्षीयदि०जैनसमाजकी ओरसे इस अदालतमें एक दीवानी मामला नं० २७५ सन् १९१३ वीं सालका, बनाम राजा रणबहादुरसिंह वल्द स्वर्गीय राजा पार्श्वनाथ सिंह जमींदार पालगंज स्टेट (हजारीबाग) के ऊपर दायर किआ है। जिस मामलेकेलिए मुद्दायलेकी ओरसे "छोटा नागपुर इनकम्बर्ड एक्ट नं० ५, १८७६" के अनुसार, पालगंज स्टेटके मैनेजर बाबू कृष्णचन्द्र घोष, रईस—हजारीबाग, संरक्षक और प्रतिनिधि नियुक्त हुए हैं। मुद्दईकी प्रार्थना:—

(१) कि जो लीज इकरारनामा ३० नवम्बर सन्१९०८को उपर्युक्त मुद्दायलेने ऊपर लिखित मुद्दईके साथ किआ है। जिसका कि मुद्दायल: कायल है। इससे निवेदन किआ जाता है कि:—

(२) उस इकरारनामेके ऊपर हुक्म दिआ जाय और, उसकी शर्त्तोंके अनुसार डिग्री दी जाय कि उस जायदादका अधिकार मुद्दइओंको हो और, उसके नुकसानकेलिए ५००००) रु० भी मुद्दइओंको दिलवा दिए जांय।

(३) यदि अदालत हमें उसके अधिकारी न समझती हो, तो फिर उस तारीख तकके कि जिस तारीखको रुपये वापिस हमें दिए जांय, १२) रु० सैकड़ा सालीनाकी दरसे मयव्याजके उस ५००००) रु०को हमें वापिस करनेकेलिए मुद्दायलोंको आज्ञा दी जाय कि जो ३ नवम्बर सन् १९०८को हमने उसे जमा दिआ था। तथा इस इकरारनामेके स्वीकार न करनेमें जो हमें नुकसान उठाना पड़ेगा उसकेलिए २०००००) रु० या कम-बढ़ जो अदालत उचित समझे, हमें और, भी देनेकेलिए मुद्दायलोंको आज्ञा दी जाय।

(४) एक हुक्म (इंगजंकशन) द्वारा मुद्दायलें या उसके नोकर, एजेंट तथा प्रतिनिधिओंको रोक दिआ जाय कि वे इस पार्श्वनाथ पहाड़की लीज श्वेताम्बरिओंको न दे सकें या उस इकरारनामेद्वारा प्राप्त मुद्दइओंके स्वत्वमें बाधा पहुंचे ऐसी कोई कार्रवाई न करने पावें।

(५) यदि आवश्यकता पड़े तो इस मामलेके फैसले तक एक रिसीवर नियत किआ जाय।

(६) सब हिसाब लिआ जाय, और, तलाशी ली जाय ताकि जायदादके विषयमें मुद्दइओंको सन्तोष हो।

(७) इस मामलेमें जो हमारा खर्च हुआ है वह दिलवाया जावे

(८) इसके अतिरिक्त और जो कुछ इस मामलेमें कोर्ट उचित समझे।

मुद्दइओंने इस अदालतसे यह भी प्रार्थना की है कि इस अदालतका ओर्डर १, रूल ८, एक्ट ५, सन् १९०८का सिविलप्रिसीडर कोर्टके अनुसार कि भारतवर्षीयदिगम्बरजैनसमाजकी ओरसे उपर्युक्त मुद्दइओंको मामला चलानेकेलिए आज्ञा दी जाय।

इस सूचनाद्वारा भा०दि०जै०समाजको सूचित किआ जाता है कि वह उपरोक्त मामलेको दायर कर सक्ती है और, यदि दि०जै०समाजके कोई मेम्बर लोग या कोई मेम्बर अदालतमें दरख्वास्त दे सक्ता है कि वह भी इस मामलेका मुद्दई बनाया जाय और, उपरोक्त नियमके अनुसार

उसको पूरा अधिकार है कि वह उस कायदेके भीतर२ कार्रवाई कर सक्ता है।

स्पेशल सबजज, हजारीबाग } { ता २० मार्च सन १९१४

निवेदन—इस चौथी किरणके साथ २ "भास्कर"के ग्राहकोंका एक वर्षका मूल्य समाप्त होता है। आगामी किरण शीघ्र ही तैयार होगी औ कि छपनेपर उनकी सेवामें वी०पी०द्वारा भेजी जायगी।

Notice—BIBLIOTHECA JAINICA

The Sacred Books of The Jainas.

VOLUME I.

DRAVYA-SANGRAHA.

By

NEMICHANDRA SIDDHANTA-CHAKRAVARTI

[Original Text consisting of Prakrit Gathas and Sanskrit renderings of the same in Devanagri with Transliteration in Roman characters.]

EDITED

With Introduction, Translation, Notes, Padapatha, Glossary, Index Ec and an Original Commentary in English

By

Sarat Chandra Ghoshal, M.A.B.L.

SARASWATI, KAVYA-TIRTHA, VIDYABHUSHAN BHARATI

Sometime Professor of Sanskrit, Edward College, Pabna, and Professor of English and Philosophy, Hindu College, Delhi.

Editor of "Prachina Bharatiya Granthavali,"

Translator of "Vedanta Paribhasha," "Vayu Purana" Etc

The long Introduction to this volume contains a lucid account of the principal tenets of Jaina Metaphysics and philosophy and it might also be said to be a monograph on the life and works of NEMICHANDRA and his patron CHAMUNDARAYA, the celebrated Jain minister who has left an immortal record of his piety in Jain temples and images at Sravana Belgola which have become wonders of the world. Illustrations of these images and temples have been prepared from photographs and reproductions of ancient inscriptions have been made at an immense cost and these with numerous charts revealing at a glance the complicate divisions and subdivisions of Jain philosophy, add to the value of this work Extracts from hitherto unpublished works of Nemichandra, such as LABDHI-SARA, KSAPANA-SARA, TRILOKA-SARA Etc have been quoted in the Introduction from rare Mss and the worth of this volume will be understood from only this remark that in it is published for the first time the Manglacharan and the colophon of the greatest of the Digambara canons DHAVALA and JAI-DHAWALA, only one Mss. of which exists in Mula Badri But which have been followed and quoted by all Digambara writers as works of Paramount authority

Orders are now being registered by

KUMAR DEVENDRA PRASAD JAIN.

Joint Secretary

Central Jain Oriental Library

ARRAH.

